

20780

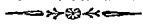
ॐ



बृहन्निघण्टुरत्नाकरः ।

(हिन्दीभाषानुवादसमेतः)

पाठकशास्त्रीयमथुरानिवासिमाथुरश्रीकृष्णलालतन-
यदत्तरामेणसकलितः स्वदृतभाषाटीकाविभू-
पितः संशोधितश्च ।



तस्यायं
तृतीयो भागः ।

श्रीयुत-
पं०



दत्तराम
चौवे.

1/1
PK

सच

श्रीकृष्णदासात्मज-गंगाविष्णु-सेमराजाभ्यां
मुच्यंतां "श्रीवैकटेश्वर" नाम्नि निजयशालये मुद्रितः ।

संवत् १९४७ सन् १८९१

गद
सणा
रानिस्ता

यह पुस्तक सन् १८६७ का ऐक्ट २९ के बमूजब रजिस्टरो
कराके सब हक यन्त्राधिकारिनें स्वाधीन रक्खा है.

सूचना ।



हम अपने भ्रियवांधव बृहन्निघण्टुरत्नाकर ग्राहकोंके प्रति सविनय प्रार्थना करते हैं कि आप अपनी सज्जनतासे हमारे अपराधको क्षमा करेंगे, क्योंकि इसके छपनेमें अतिविलंब होनेसे कईबार उसकी पूर्ती होनेके मध्ये आपको प्रपचित पत्रोंसे वंचितकरा, और हम जानतेहैंकि आपलोग खंडितपुस्तक देखकर अत्यंतखेदितहुएहोगे, परंतुक्याकराजाय एक-देह और अनेककार्य, फिर रोगाक्रांतहोना इत्यादिकारण इसमें बाधाके मुख्य कारण आप जानियेगा विशेष आपको क्यालिखे अब आर्यदा ऐसीगड़बड़नहींहोनेकी ।

इस बृहन्निघण्टुरत्नाकरके शारीरभाग और ऋतुचर्यादि दूसराभाग दोनो दोवर्षके माग आपकी सेवामें पहुँचे सो आपने देखेहोहै, अब यह तीसरा वर्षका तृतीयभागभी अनेक विघ्नोंको और अकथनीय जन्मसमयकी दुर्दशाओंको भोगकर सुसज्जितहो आपलोगोंके दर्शनका आकांक्षी हुआहै, सो इसप्रेमीको बहुतसे सज्जनजन दर्शनदेकरलतार्थ करेंगे ।

और स्वयंदृष्टिगोचरहोनेसे आप इसके गुणदोषोंको समझलेवेगे, परंतु तथापि इसके विषय कुछ संक्षेपसे हमही आपके आगे कहेदेतेहै ।

इसमें मूत्रपरीक्षा, आर्तवपरीक्षा, मलपरीक्षा, मुखपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, त्वचापरीक्षा, और जातिभेद द्वारा रोगपरीक्षा कहींहै, फिर कालज्ञान, वृत्तिभेद, स्वरूप, जठरस्थरोगोंकीपरीक्षा, बालकोकेरोगकीपरीक्षा, वस्त्रपरीक्षा, देशवर्णन, मानपरिभाषा, युक्तायुक्त, औषधखानेकेनियम, औषधभक्षणकाकाल, रसाविज्ञानीयाध्याय, दीपनादिगुण, धीर्य, विषाकादिवर्णन कपाय, पुटपाक, चूर्ण, अवलेह, उष्णोदक, वटिका, अनुवटिका, रसचूर्ण, तैलादिलेहसाधन, स्नेहपान, स्वेदविधि, वमनाविरेचनविधि, वस्तिक्रम, नस्याविधि, धूमपान, गंडूप, कवल, प्रतिसारण, नेत्रचिकित्साक्रम, एवंमंधान, सीसु, आसवादिकी निर्माणाविधि, भूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्याय, द्रव्यमंत्रहणीयाध्याय, संशोधनसंशामनीयाध्याय, द्रव्यविशेषविज्ञानीयाध्याय, हिताहितीयाध्याय, भाषायज्ञपुरुषीयाध्याय, इत्यादि वर्णनमें इस मिश्रखंडकी समाप्ति कथनके पश्चात् गुरु शिष्यके संवादसे चिकित्साखंडका प्रारंभ जिसमें चिकित्साकेनाम, चिकित्साकामयोजन, चिकित्साकेभेद, चिकित्साकेअंग, चिकित्साकेपाद, वैद्यकेगुणदोष, दशप्राणायतनीयाध्याय, रोगीकावर्णन, औषधकावर्णन, आयुकावर्णन, व्याधिभावर्णन सविस्तरहै । फिर त्रिविधरोगविज्ञानीयाध्याय, रोगगणना, ज्योतिःशास्त्रद्वाराज्वररोगकेकारण, औरउसकीशांति । ज्वररोगकाकर्म-विषाक, औरउसकाप्रायश्चित्त । ज्वररोगकी उत्पत्ति, ज्वरकेआठभेद, ब्राह्मणादिभेद, निदानपंचक, वातज्वरकेलक्षण, औरचिकित्सा । पित्तज्वरकेलक्षण और चिकित्सा, कफ-

ज्वरकेलक्षण और चिकित्सा । फिर द्वंद्वज और संनिपातज्वरके उत्पत्तिलक्षण और चिकित्सा सविस्तृतवर्णनइसतृतीयखंडमेंहै । बहुतलिखनाआपलोगोंकेसन्मुख व्यर्थहै अबतो यह-पुस्तक आपके हस्तगतहै जोकुछ भला वुराहै सो प्रत्यक्षहै ।

पहिले और दूसरेभागमें साठ २ फारिमहै इस तृतीयभागमें ७० फारिमहै. अब चतुर्थभागबराबरछपरहाहै परमात्माकी कृपासे शीघ्र तयारहोकर आप सज्जनोंके सेवामें पहुचायाजायगा आगेप्रभूकीइच्छा प्रबलहै ।

आपका दत्तराम चौबे मथुरानिवासी.

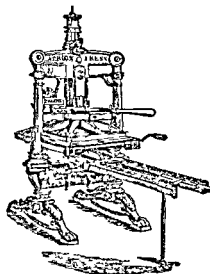
नवीनग्रंथोकी सूचना.

शाङ्गधर—भापाटीकासह. यह टीका आढमछी और गूढार्थप्रकाशिका जो इसकी सस्कृत टीकाहै उनके अनुसार भापाटीका करीगईहै प्रथमखंड पूर्ण होगया. मध्यखंड और उत्तरखंड छपरहे है सो बहुत जल्दी छपेगे इसके फारिम राईल करीव ८० अस्सीके होंगे जिसके दृष्ट ६३२ छः सौ बत्तीसके अनुमान होंगे, कीमत बहुत मस्ती रहेगी वागद और स्याही परमोत्तमहै. कि जिसके देखने मात्रसे चित्त अत्यंत प्रफुल्लितहो.

“श्रीवैकटेश्वर”छापाखाना. (वंवई.)



श्रीकृष्णदासात्मज-

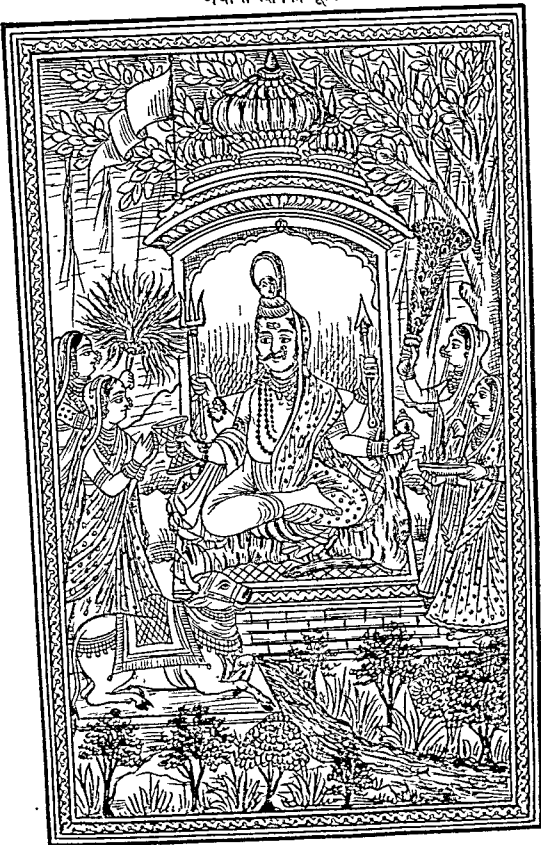


गंगाविष्णु-सेमराज.

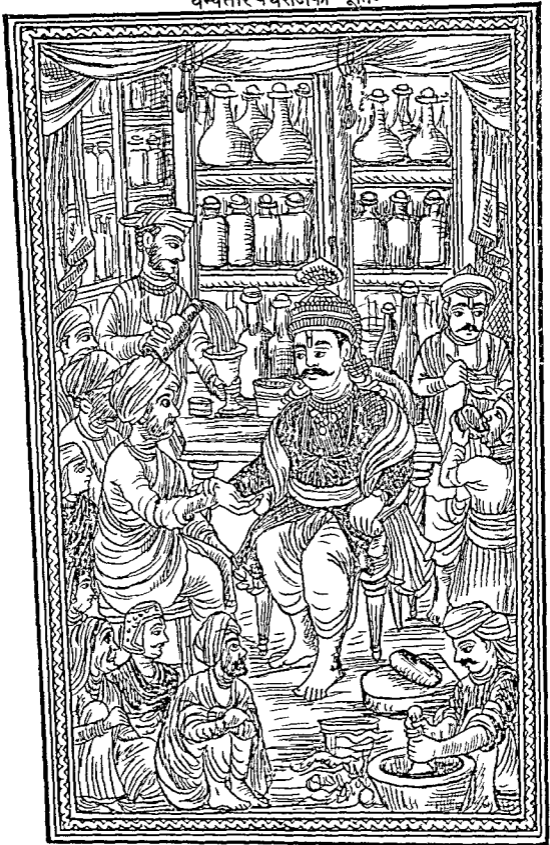
BOMBAY.

अष्टांगहृदय (वाग्भट) भापाटीका किं० १० रु० .

अर्धांगी शिवकी मूर्ति.



धन्वंतरि वैद्यराजकी मूर्ति.



वीरभद्र गण या ज्वरकी मूर्ति.

VIDYA BHARATI
Y.

ज्वरला.













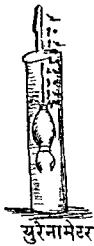
उक्तस्य ज्वर सातवा.





ज्वलद्वियह ज्वर नयवा.





युरेनामेटर



फ्लेक्सीमेटर



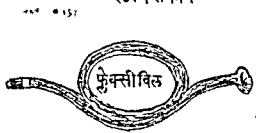
पट्टी (तरख्नी)



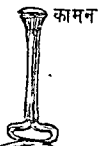
हैपोडर्मिकस्त्रिंज.



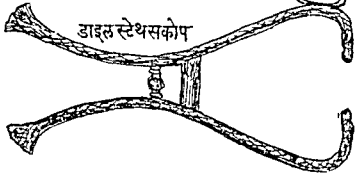
स्टेथिसकोप



फ्लेक्सीविल



कामन



डाइल स्टेथसकोप

बृहन्निघंटुरत्नाकरके तीसरे भागकी अनुक्रमणिका ।



विषय.	पत्रांक.	विषय.	पत्रांक.
अथ मूत्रपरीक्षा		तथा	”
मूत्रपरीक्षाका समय	९३५	तथा	९४१
प्रथम धारत्यागकर मूत्रपरीक्षाकी आज्ञा ..	”	मंदाग्निवाले आदिके मूत्रके वर्ण	”
वात पित्त कफ और मिश्रित मूत्रकी परीक्षा	”	गरमी आदिकारणोंसे मूत्रके विकारादि ..	”
तथा	”	रक्तपित्तके मूत्रका वर्ण	९४२
अजीर्ण रोगीके मूत्रकी परीक्षा	९३६	अतिरुधिर वृद्धिमें मूत्रके चिन्ह	”
द्वह्नज और सनिपातज मूत्रकी परीक्षा ..	”	भापासे मूत्रपरीक्षाका विस्तार कथन ..	”
तृणसे तेलकी बूद डालकर परीक्षा ..	”	मूत्ररंग जाननेके चक्र	९४३
तेलविंदुसे साध्यासाध्य परीक्षा	९३७	पीले रंगके छः भेद....	”
तेलबूंदके फैलनेसे रोगीकी परीक्षा....	”	हरित और लृष्ण वर्णके भेददर्शक यंत्र	९४४
नैरेग्यप्राणीके मूत्रके चिन्ह....	”	रक्तवर्णके भेद	”
मुसाध्यरोगीकीभी मृत्यु	”	श्वेतवर्णके भेद	”
परीक्षान्तर	”	मूत्रकी पक्कापक्कदशा प्रदर्शक यंत्र ...	९४५
आरोग्यलक्षण ...	९३८	स्वच्छता	”
मेतदोषके लक्षण....	”	रसूव (ऊर्ध्व मध्य अधोभागस्थ) मूत्रसे	
भूतबाधाके लक्षण	”	पूर्वोक्त पाकदशाका चक्र....	९४६
साध्यके लक्षणान्तर	”		
धातादिकीदूसरी परीक्षा	”	डाक्टरी मतानुसार मूत्रकी परीक्षा	
प्रकारान्तरसे मूत्रपरीक्षा	”	आरोग्यावस्थामें मूत्रपरीक्षा	”
		मूत्रमें मिश्रित वस्तुका नकसा	९४७
		मूत्र निकलनेकी रीति	९४८
यूनानीमतानुसार मूत्रपरीक्षा		मूत्रका प्रमाण	”
रोगपरीक्षामें मूत्रऔरनाडीपरीक्षाको		मूत्रका रंग	९४९
मुख्यत्व....	९४०	मूत्रकी गंध	”
मूत्रका वर्ण....	”	मूत्रका स्वाद	९५०
तथा	”	तलस्थ द्रव्य	”

मूत्रपरीक्षाकी तरकीब	”
यूरेनामीटर (मूत्रमापक यंत्र)	९९१	”
खुर्दवीनयंत्रका वर्णन	”
खुर्दवीनको कार्यमे लानेकी विधि....	९९२	”

इति मूत्रपरीक्षा

आर्चवपरीक्षा

शुद्धआर्चवके लक्षण	”
आर्चवके यथार्थ अमृत्तिके दौष	९९३	”

इति आर्चवपरीक्षा

मलपरीक्षा

वातपित्तादिसैं मलके चिन्ह	”
पित्तवात और कफ पित्तजन्य मलके चिन्ह....	९९४
त्रिदोषजन्य मलके चिन्ह...	”
जीर्ण मलके लक्षण....	”
क्षीण दौष और जलोदरवालेके मलके लक्षण....	”
क्षयादिमें मलके लक्षण	”
वातादिदोषजन्यमलके चिन्ह	९९५	”
आमादि रोगके कारण मलके लक्षण	”
वातादि मूत्रके लक्षणंतर....	”
असाध्य आदिसैं मलके चिन्ह	”

इति मलपरीक्षा

मुखपरीक्षा

वातादिसैं मुखका स्वाद	९९६
डाकरी मतानुसार मुखपरीक्षा	”

जिह्वापरीक्षा

वातादिदोषसैं जिह्वाके लक्षण	९९७	”
डाकरीमतसैं परीक्षा	”

शब्दपरीक्षा

वातादि दोषसैं स्वरके लक्षण	९९९	”
डाकरीमतानुसार शब्दपरीक्षा	९९०	”

नेत्रपरीक्षा

वातजन्यनेत्र	”
पित्तकफजन्यनेत्र	”
द्वंद्व और संनिपातजन्य....	९६१	”
असाध्य लक्षण	”
तथा....	”
तथा	”
तथा	”
यामलका प्रमाण	९६२	”
डाकरीमतसैं नेत्रपरीक्षा	”

स्पर्शपरीक्षा

वातादिमें स्पर्शके लक्षण	”
त्वचाका स्पर्श	९६३
थर्मामीटर लगानेकी विधि	”
प्लैग्सीमीटर यंत्र....	९६५
स्टियसकोप यंत्र	”
अवस्थापरीक्षा	”
जातिपरीक्षा....	९६६

कालज्ञानम्

कालको मुख्यत्व	१६७
मृष्टि संहार और पालनमें कालका मुख्यत्व कथन	”
छः माहिने पूर्व मृत्युजाना जाय है यह कथन	”
उत्पन्न संहार और सुभावस्थामें कालको मुख्यत्व कथन	”
देव नागादिकोंका कालसे नाश	”
ब्रह्मदेवका मरणत्वसे कालको मुख्यत्व कथन	१६८
वर्षाशीतादिकालके रूप	”
शुभ बीज और स्त्रीको प्रभूतित्व कथन	”
कालमें कर्मको मुख्यत्व	”
फालाग्निकी चतुर्विधवांच्छा....	”
पट्चक्रादिका कथन	”
तत्रादौपट्चक्राण्याह	”
मतांतर	१६९
पोडशाघार	”
त्रिलक्ष्य	”
स्नम्नादिकथन	१७०
प्राण पवनकी संख्या कथन	”
आत्मा अंतरात्मा और परमात्मा....	”
प्राण पवनको निकलनेके पश्चात् देहको शून्यत्वकथन	”
स्वरोदयकामत	”
सूर्य और चंद्रमार्गमें उदयाम्नकाकाल पक्षमें होनहार मृत्युका ज्ञान	१७१
शीघ्र मृत्यु होनेका ज्ञान	”

चंद्रसूर्यके गमनका क्रम	”
पंचमूलात्मक दीपकी रक्षा	”
आयुहीनके लक्षण	”
अरुणत्यादिकी संज्ञा	”
जलमें सूर्य चंद्रके प्रतिबिंबदर्शनद्वारा रोगीके मरणका ज्ञान	१७२
मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व	”
अरिष्टको निश्चय मारकत्व कथन....	”
अरिष्टके जाननेमें मूर्खको दुर्घटत्व	१७३

पंचेंद्रियार्थविप्रतिपत्ति

शरीरकी विप्रतिपत्ति	”
कर्णेंद्रिकी विकृति	”
त्वचाकी विकृति	१७४
निष्वाइन्द्रीकी विकृति	१७५
नासिका इन्द्रीकी विकृति	”
तथा	”
तथा	१७६

छायाविप्रतिपत्ति

छायाकी विपरीतता कथन	”
प्रभाकी विपरीतता	१७७
ओष्ठोंकी विकृति	”
दांतोंकी विकृति	”
निष्वाकी विकृति	”
नासिकाकी विकृति	”
नेत्रोंकी विकृति	”
बालोंकी विकृति	१७८
देहके अन्तर क्रियाही विपरीतता	”
गिरकर न उठनेकी विकृति	”

उत्तान शयनादिकी विरुक्ति	॥	रसज्ञानमें शंका समाधान	॥
श्वासकी विरुक्ति	॥	मुखमें तीन उंगली न जानेका फल....	॥
निद्रा जागरण और बोलनेकी विरुक्ति	॥	चंद्रादिककी छाया आदि न	॥
होठोंका चाटना आदि	२७९	दीखनेका फल	॥
रोमकूपोंमें रुधिर निकलना	॥	स्नानमें प्रथम छाती आदि सूखनेका फल १८७	॥
वाताष्ठीलका फल	॥	कानोंकी विपरीततादि	॥
अतिसारादि उपद्रव	॥	भोजनादिककी विपरीतता	॥
स्वेदादि उपद्रव	॥	पहुंचे न दीखने आदिका फल	॥
मुखकी विरुक्ति	२८०	रोमांच और नख उखरनेका फल	॥
तथा	॥	अरिष्टोंको मृत्युसूचकत्व कथन ...	१८८
देहभारीपना आदि विरुक्ति	॥	मुख प्राणोंको अरिष्टोंका अग्राह्यत्व ..	॥
गंधद्वारा विरुक्तिकथन	॥	अरिष्टका परिपाक	॥
यूकादिकी विरुक्ति	॥	वैद्यको अरिष्टज्ञानकी मुख्यता	॥
क्षुधाकी विरुक्ति	॥	अरिष्टकी शांति	२८९
प्रवाहिकादि उपद्रव	१८१		
अरिष्ट होने और उनको मारणमें			
कारणत्व	॥		
मरण समय क्रियाओंके निष्फलत्व			
होनेमें कारण	॥		

स्वभावंविप्रतिपत्तिं

देहमें स्वभावसिद्ध पदार्थोंकी विरुक्ति ॥		छाया पुरुष द्वारा काल ज्ञान कथन ॥	
तथा	१८२	एकान्तमें छायासाधन	॥
तथा	॥	मंत्रकथन	॥
तथा	२८३	कालपुरुषका स्वरूपदर्शन	॥
तथा	॥	दोषमें त्रिकालज्ञत्व	१९०
तथा	१८४	निरंतर अम्यासका फल	॥
ग्रहोंकी दुष्टी	॥	कालपुरुषके रुष्ण वर्ण दीखनेका फल ॥	
चिकित्साके विपरीत होनेकाफल	॥	पीत नीलादि वर्णका फल....	॥
पुष्पित मनुष्य....	१८५	अंग हीन कालपुरुषके दीखनेका फल ॥	
रसजन्य विरुक्ति	१८६	वृत्तिभेद (पेसा)	१९१
		स्वरूपपरीक्षा	॥
		जठरस्थ रोगोंकी परीक्षा	॥
		यकृत आमाशयादिकी विरुक्ति	१९२
		अभिधात द्वारा उदरकी परीक्षा	॥
		तथा	१९३

तथा १९४	देशोचित क्रियामें दुर्देशको
यकृत विद्रुधिके लक्षण ,,	अभयकारित्वकथन १००२
छोहा द्वारा परीक्षा.... .. १९५	स्वदेशजन्य औषधको मुख्यत्व ,,
वृक्क द्वारा परीक्षा ,,	स्वदेशसंचित दोषोंको अन्य देशमें
तिलक (छोम) को विकृति ,,	कुपित होनेसें निर्बलत्वकथन.... .. ,,
आंतोकी परीक्षा १९६	

बालकोंकेरोगकीपरीक्षा

बालकोंके रोग ज्ञानको दुर्घटत्व.... .. ,,	
बालकोंको दयाके पात्र कथन ,,	
बालकको यत्नमें असावधानी करने- वाले वैद्यको पापीयत्व कथन १९७	
धायसें प्रष्णद्वारा बालकोंके रोगकी परीक्षा ,,	
परीक्षा करनेमें आज्ञा और परीक्षाविधि ,,	
संनिपातादि परीक्षा.... .. १९८	

वस्त्रपरीक्षा

यातादिकी वस्त्रद्वारा परीक्षा ,,	
दीर्घ रोग और मरणासन्नके वस्त्रकी परीक्षा १९९	

देशपरीक्षा

अनुपदेशलक्षण ,,	
अनुपदेशके भेद.... .. १०००	
जांगल देशके लक्षण ,,	
तथा ,,	
साधारण देशके लक्षण.... .. १००१	
तथा ,,	
साधारणदेशके भेद.... .. ,,	

मानपरिभाषा

मानमूत्र १००२
त्रसरेणुसंज्ञा १००३
परमाणुके लक्षण.... .. ,,
वंश्यादिकोंके परिमाण ,,
मासेकापरिमाण.... .. ,,
ज्ञाण और कोलका परिमाण ,,
कर्पका परिमाण.... .. १००४
अर्धपल तथा पलका परिमाण ,,
प्रस्रुतिसें आदिलेमानिका पर्यंतका परिमाण ,,
प्रस्थ और आढकका परिमाण १००५
ट्रोगर्मिलेकर ट्रोणी पर्यंतका परिमाण.... .. ,,
सारीका प्रमाण.... .. ,,
भारका और तुलाका परिमाण १००६
मुखबोधार्थे उक्तमानका संग्रह ,,
परिभाषाके मतभेदकी ऐक्यता ,,
पनलीगोदी और शुष्क औषध इनके योगका मान १००८
दूध आदिपनत्री वस्तुनापनेकी युक्ति.... .. ,,
कलिंग, मागध और गौडदेशके मामे- की मंजा !.... .. ,,
मुश्रुन और चरक तथा गौडदेशका मान,, औषधनोलनेमें मागध परिभाषाके वजनका उदाहरण १००९

प्रथम औषधके नामानुसार योगकी	खांड और सहतकी परीक्षा १०१९
संज्ञा कथन १०१०	स्वभावसँ हितकारक द्रव्य ॥
अत्यंत और थोड़ी औषध देनेको निष्फलत्व,,	शिव्बीधान्यमें उत्तम... .. ॥
तथा ॥	उत्तम फल ॥
भक्षणरूप मात्राका अनियम ॥	पत्रफल और कंद इनशाकोंमें उत्तम ॥
औषध सेवनका प्रमाण कालग परिभाषाकर	मृग पक्षी और मछली इनमें उत्तम १०२०
के कथन १०११	हरिणोंके भेद ॥
कालिग परिभाषाका वजन.... ॥	जल दूध घृत तेल इक्षु विकार इनमें उत्तम,,
कृष्णात्रेयका वजन ॥	स्वभावसँ अहितकारी द्रव्य ॥
औषधोंका युक्तायुक्त विचार १०१२	संयोगविरुद्ध ॥
गीली औषध ग्रहणीय ॥	औषध ग्रहणमें संकेत १०२१
साधारण औषधकी योजना.... ॥	अंतःसंमार्जन और बाहिः संमार्जनमें
अनुक्त कालादिकोंकी योजना ॥	ग्राह्य १०२२
विशेष कथन १०१४	औषधभक्षणमें काल ॥
औषधके हीन वीर्य होनेमें प्रमाण.... ॥	औषधभक्षणमें पांच काल ॥
उक्तानुक्त द्रव्यका त्याग और ग्रहण ॥	प्रथमकाल ॥
देशभेदकरके औषधोंके भेद १०१५	द्वितीय काल ११२३
औषधी लेनेका प्रमाण ॥	तृतीय काल ॥
ऋतुविशेष करके रोगविशेषपर	चतुर्थ काल ११२४
औषध लेनेका फल.... ॥	पंचम काल ॥
औषध विशेषका अंग ग्रहण १०१६	औषधकी प्रतिनिधि ॥
पक्व पदार्थोंका फिर पक्व करनेमें दोष १०१७	अप्रधानकी प्रतिनिधिलेना प्रधानकी
द्रव्योंकी परीक्षा ॥	नहिलेना ११३१
बाराही कंद संचर और सँभव इनकी परीक्षा	
सुवर्णमाक्षिक तथा सौव्यमाक्षिककी परीक्षा,,	
शिलाजीतकी परीक्षा ... ॥	
कपूरइलायची और चंदनकी परीक्षा १०१८	
रक्तचंदनकी परीक्षा ॥	
देवदारु और सरलकी परीक्षा ॥	
दाहहलदी और जाषफलकी परीक्षा ॥	
दाखकी परीक्षा ॥	
	रस विशेषविज्ञानीयाध्यायः
	आकाशादिमें शब्दादिककी योजना कहकर
	आप्यरसकी उत्कृष्टता कथन ॥
	आप्यरसकेछः भेद ११३२
	छःरस ॥
	छःरसोंके त्रेसठ भेद ॥
	प्रत्येक रसका वर्णन ॥

मधुरादि रसोंको वातादि दोषनाशकत्व ,,	चार रसके भेद ,,
रसोंको स्वयोनिवर्द्धनत्व और परयोनि नाश	पांच रसके भेद ,,
कत्वकथन.... .. . ११३३	छः रसका भेद ,,
रसोंको अग्निसोमीयत्व ,,	भोजनोत्तर बलवान् रसके अनुयायी अन्य
रौक्ष गुणसँ वायुके कर्म.... .. . ,,	रसोंको कथन ११४४
उष्ण गुणसँ पित्तके कर्म ११३४	मधुरादिकोंके अन्य विशेषगुण तहाँ मधुर
माधुर्य गुणसँ कफके कर्म.... .. . ,,	रसके गुण ,,
रसोंके लक्षण ,,	अम्लरसके विशेषगुण.... .. . ,,
मधुर रसके लक्षण.... .. . ११३५	लवण रसके विशेष गुण ,,
अम्लरस ,,	तीक्ष्णरसके गुण ,,
लवणरस ,,	पीपल आदि तीक्ष्ण द्रव्योंको वृष्यत्व ११४५
कटुरस ,,	सयोगीगुण ,,
तिक्तुरस ,,	प्रथिव्यादि भूतोंके गुण ,,
कपायरस.... .. . ,,	लघुगुरु आदि पदार्थोंके गुण ,,
मधुररसके गुणागुण.... .. . ११३६	सुश्रुतोक्त विंशति गुणा. ,,
अम्लरसके गुणागुण ,,	गुरु गुण ११४६
लवणरसके गुणागुण ११३७	लघु गुण ,,
कटुक रसके गुणागुण ,,	स्निग्धगुण.... .. . ,,
तिक्तुररसके गुणागुण.... .. . ११३८	रूक्षगुण ,,
कपायररसके गुणागुण.... .. . ,,	तीक्ष्णगुण ,,
मधुररसकी द्रव्य (मधुरवर्ग) ११३९	श्लक्ष्ण गुण.... .. . ,,
अम्लवर्ग ,,	स्थिर और सर गुण ,,
लवण वर्ग ,,	पिच्छिल गुण ११४७
कटुक वर्ग.... .. . ११४०	विशद गुण.... .. . ,,
तिक्तवर्ग ,,	शीत गुण ,,
कपाय वर्ग.... .. . ,,	उष्णगुण ,,
रसोंके संयोगसँ भेद वर्णन.... .. . ११४१	स्थूलगुण ,,
पचद्वारारसोंके भेद वर्णन ,,	सूक्ष्मगुण ,,
एक रसके भेदका उदाहरण ११४२	द्रवगुण ,,
दोसरसके भेद.... .. . ,,	सुन्दरगुण ,,
तीन रसके भेद ११४३	आशुमारोद्भय ११४८

मंदगुण	”	अन्यच्च	”
मृदु और कर्कशगुण	”	विपाक	११५९
दोषन औषधकेगुण	”	विपाकके गुण	”
पाचनादि औषध	”	प्रभाव	”
संशमन औषध	”	औषधोंके प्रभावमें आचिंत्यत्व कथन	११५६
अनुलोमन औषध	”	औषधको हेतुद्वारा परीक्षाका निषेध	”
स्त्रंसन औषध	११४९	रसवीर्य विपाकको अन्योन्यनाशकत्व	”
भेदन औषध	”		
रेचन औषध	”		
धमन औषध	”		
संशोधन औषध.... .. .	११५०		
छेदन औषध	”		
लेखन औषध	”		
ग्राही औषध	”		
स्तंभन औषधि	११५१		
रसायन औषधि	”		
मधुनशक्ति वर्द्धक औषध	”		
धातुवर्द्धक औषधि	”		
वीर्योत्पादक तथावीर्यप्रवर्तक औषधि	”		
वाजीकरण औषधका निषेध	११५२		
सूक्ष्म औषध	”		
च्छदाक्षी औषध	”		
विकाशी औषध	”		
मदकारी पदार्थ	११५३		
प्राणहारक द्रव्य	”		
प्रमाथी औषध	”		
अभिप्यंदी पदार्थ	”		
विदाही पदार्थ	”		
योगवाही द्रव्य	११५४		
वीर्य.... .. .	”		
उष्ण शीत वीर्यके गुण	”		
		पंचकपायाः	
		स्वरस	११५७
		दूसराप्रकार	”
		तीसराप्रकार	”
		स्वरसकी मात्राका प्रमाण....	”
		कल्कविधि.... .. .	”
		कल्कमें मधुघृत डालनेका क्रम	११५८
		काथमें (काढे) की विधि....	”
		काथमें जलका प्रमाण	”
		काथकी मात्रा	”
		काथमें तोलका परिमाण	११५९
		काथमें मिश्री सहतडालनेका प्रमाण	”
		हिमाविधि	”
		मंथ	”
		तंडुलोदक	”
		फांटविधि	११६०
		यवागूकी विधि	”
		विलेपि लक्षण	”
		पानादिकल्पना	११६१
		पानादिमें सहत गुडडालनेकी विधि	”
		गूपकी विधि	”
		पेया लक्षण	”
		पट्टपाककी विधि	११६२

वमनमें हितकारी पदार्थ ११७	विना वमनके दस्तकराने योग्य ”
वमनमें काढेका प्रमाण ”	दस्तकराने योग्य रोग १२०९
वमनमें काढा पीनेका प्रमाण ”	दोष दूर करनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता ”
वमन विषयमें कल्कादिकोका प्रमाण ”	दस्तकराने योग्य मनुष्य ”
वमनके उत्तम मध्यम कानिष्ठवेग ११८	दस्त देना निषेध १२०६
वमन विरेचन आदिमें प्रस्थका प्रमाण ”	मृदु, मध्य, और क्रूरकोष्ठ ”
कफ पित्त और वातहारक औषधी.... ”	मृदुमध्यमादिकोष्ठोंमें मृदु मध्यमादिक
वातादि दोषोंके निकालनेको पृथक् २	औषध १२०७
औषधी ”	दस्तोंकाहीनोत्तमादि मात्रा ”
वमन करते समय बाह्योपचार ११९	दस्तोंमें काढे आदिकी मात्राका प्रमाण ”
दुष्ट वमन होनेके उपद्रव ”	दस्तोंमें कल्कादिकोंका प्रमाण १२०८
अतिवमन होनेके उपद्रव ”	वात पित्तकफमें औषधी ”
अति वमनका यत्न.... ”	अन्य औषध करके दस्तोंका विधान ”
उलटी करते २ जीभ भीतर चलीगई हो	ऋतु भेद करके दस्तकी विधि ”
उसका यत्न १२००	शरदकालमें विरेचन १२०९
उलटी करते २ जीभ बाहर निकल आई	हेमंतऋतुमें विरेचन ”
हो उसका यत्न ”	शिशिरऋतु और वसंत ऋतुमें विरेचन ”
वमनमें नेत्रोंमें विकार होनेका यत्न ”	ग्रीष्म ऋतुमें विरेचन * ”
वमन करते २ ठोडी स्तंभित होगई हो	मुखसे दस्त होनेके लिये अमयादिमोदक, ”
उसका उपचार ”	दस्तोंको सहाय करनेवाले पदार्थ १२१०
वमन करते २ रङ्गमें रुधिर आनेलगे उसका	दस्त होने पर रहनेके नियम ”
उपचार ”	दस्तोंमें निकलनेवाली वस्तु १२११
अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे उसकायत्न, ”	दुष्ट विरेचनके अवगुण ”
उत्तम वमन होनेके लक्षण १२०१	निससे उत्तम दस्तनहुएहो उसका यत्न, ”
उत्तम वमन होनेके पश्चात् पथ्य ”	अत्यंत दस्तहोनेके उपद्रव ”
उत्तम वमनका फल ”	अत्यंत दस्तोंका उपाय १२१२
वमनक्रममें निषिद्ध पदार्थ १२०२	दस्त बंद होनेका उपाय ”

अथ रेचनाधिकार

स्निग्ध स्विन्नको रेचन देना.... ”	उत्तम जुलाब होनेके लक्षण १२१३
दस्तोंका दूसरा प्रकार.... १२०४	उत्तम जुलाब होनेका फल ”
	जुलाबमें अपथ्य ”

निरूहवस्तीमें काढेआदिका प्रमाण	१२३८	वयोभुमानकरके मात्राका प्रमाण	१२३८
निरूहवस्ती अयोग्य	१२३९	उत्तरवस्तीकी योजना कैसे करावे	१२३९
निरूहवस्ती योग्य पुरुष	१२४०	स्त्रियोंके वस्ती देनेका प्रमाण	१२४०
निरूहवस्ती देनेका प्रकार	१२४१	बालकोंके वस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण	१२४१
निरूहको बाहर लानेवाली औषध	१२४२	स्त्री और बालकोंके वस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा	१२४२
निरूहवस्ती उत्तम होनेके लक्षण	१२४३	शोधन द्रव्यकरके वस्तीका विधान	१२४३
जिसको उत्तम नहुई हो उसके लक्षण	१२४४	उत्तम उत्तरवस्ति होनेके लक्षण	१२४४
निरूहवस्ती और स्नेहवस्ती उत्तम देनेका फल	१२४५	गुदामें फलवर्तीकी योजना	१२४५
निरूहवस्तिदेनेमें समयका प्रमाण	१२४६		
सुकुमारादि मनुष्योंके निरूहवस्तिकी योजना	१२४७		
आदिमध्य और अंत इनमें वस्तीकी योजना	१२४८		
उत्क्लेशन वस्ती	१२४९		
दोषहरवस्ती	१२५०		
शोधनवस्ती	१२५१		
दोषशमनवस्ती	१२५२		
लेखनवस्ती	१२५३		
बृंहणवस्ती	१२५४		
पिच्छलवस्ती	१२५५		
निरूहणमात्राकी विधि	१२५६		
मधुतैलवस्ती	१२५७		
दीपनवस्ती	१२५८		
युकरय वस्ती	१२५९		
सिद्धवस्ती	१२६०		
वस्तीमेंसिध्य पदार्थ	१२६१		

नस्यविधि

नस्यके नाम और भेद	१२६२
तथा भेद	१२६३
नस्यका काल	१२६४
नस्यका निषेध	१२६५
नस्यकर्ममें योग्य अयोग्य मनुष्य	१२६६
रेचक नस्यका विधान	१२६७
रेचन नस्य प्रकार	१२६८
नस्य कर्ममें औषधीका प्रमाण	१२६९
रेचन नस्यके दूसरे दो भेद	१२७०
अवपीडन और प्रथमनके लक्षण	१२७१
रेचन और स्नेहन नस्यके योग्य	१२७२
अवपीडन नस्य योग्य	१२७३
प्रथमन नस्यके योग्य	१२७४
रेचन संज्ञक नस्य	१२७५
रेचन नस्यकी दूसरी विधि	१२७६
रेचन नस्यका तीसरा प्रकार	१२७७
प्रथमन संज्ञक नस्य	१२७८
बृंहण नस्यकी कल्पना	१२७९
मर्श संज्ञक नस्य तथा विरेचन संज्ञक नस्य	१२८०

उत्तरवस्तीकी विधि

उत्तर वस्तीकी व्युत्पत्ति और उसका प्रमाण

इनके आधिक्य होनेसे जो	धूमपानार्थ ईपिकाका विधान	१२५४
रोग होतेहै उनका उपाय....	कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे,,	
जो बृंहण नस्यमें योग्यहै....	बालग्रहादि दूर करनेकी धूनी	१२५५
पक्षघातादि रोगोंपर नस्य....	धूम पीनेका यंत्र	
प्रतिमर्शनस्यकी दो विदुरूपमात्रा....	धूमपानके गुण	१२५६
विंदुसंज्ञक मात्रा	गंडूप और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ,	
प्रतिमर्श नस्यका समय	स्नेहादि गंडूपोंकी दोष भेदकरके योजना ,,	१२५७
प्रतिमर्श द्वारातुप्त हुएके लक्षण	गंडूप और कवल इनमें भेद	
प्रतिमर्शके योग्य	गंडूप और कवलकी औषधका प्रमाण १२५७	
कुसमयपरसपेदवाल होनेपरनस्य	किस अवस्थामें गंडूप करे और कैसे करे ,,	१२४८
नस्यकी विधि	प्रमाणान्तर	
नस्यकी ग्रहणमें आज्ञा	वातरोगमें चिकनाईके कुरले....	
नस्यसंधारणका प्रकार	पित्तरोगमें शमन संज्ञक गंडूप	१२४९
नस्यकर्ममें वर्जितवस्तु	ब्रणादि रोगोंपर मधु गंडूप	
नस्यमें शुद्धादिभेद	गंडूप धारणके गुण	१२५८
उत्तमशुद्धीके लक्षण	कवल धारणके गुण	१२५०
हीनशुद्धीके लक्षण		
भतिशुद्धीके लक्षण....		
हीनशुद्ध्यादिमें चिकित्सा		
अतिस्निग्धके लक्षण....		
नस्यमें पथ्य		१२५१
पंचकर्मोंकी संख्या....		
<hr/>		
धूमपान		
धूमपानकेउः भेद	प्रतिसारणकी संज्ञा और गुण....	
शामनादिक धूमोंके पर्याय शब्द....	गंडूप कवल और प्रतिसारणकी विधि १२५९	
धूमसेवनके अयोग्य	विषादिमें गंडूप	१२६०
धूमपानके उपद्रवोंका यत्न....	दंतचालनेमें गंडूप	
धूमपानका काल और उसके गुण....	मुखशोषपर गंडूप	
धूमोपयोग होनेपर गुण	कफपर गंडूप	१२६१
धूममें नलीका विधान....	कफ तथा रक्तपित्तपर गंडूप	
	मुखपाकपर गंडूप	१२६०
	गंडूपकी औषधोंतैही प्रतिसारण करण ,,	
	कवलका प्रकार	
	प्रतिसारणका भेद	
	प्रतिसारणचूर्ण	
	गंडूपादिकोंके हीनयोग होनेके लक्षण १२६१	

गुह्य गंडूपके लक्षण.... १२६१

इतिगंडूपादिविधि:

नेत्ररोगाचिकित्साविधि:

नेत्र अच्छे होनेके उपचार.... १२६२
 सेकके लक्षण १२६२
 सेकके भेद.... १२६३
 सेककी मात्रा १२६३
 सेक कर्मका काल.... १२६३
 वाताभिष्यंदारो गपर सेक १२६३
 तथा दूसराक्रम १२६३
 पित्त रक्त और अभिघातपर सेक १२६४
 रक्ताभिष्यंद १२६४
 तथा दूसरा १२६४
 नेत्रगूलमें सेक १२६४

आश्रोतनके लक्षण

आश्रोतनकी विधि १२६५
 छेखनादिक आश्रोतनमें कितनी बुँद डाले १२६५
 वातादिकमें आश्रोतन १२६५
 आश्रोतनकी मात्राकाक्रम १२६५
 वाताभिष्यंदपर आश्रोतन १२६५
 वायुन्य वा रक्तपित्तजन्य अभिष्यंदपर
 आश्रोतन १२६५
 सर्व अभिष्यंदपर आश्रोतन.... १२६५
 रक्तपित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्रोतन १२६५
 पिंडिकाके लक्षण १२६५
 वातपित्तरूपपरपिंडी १२६५
 नेत्राभिष्यंदमें शिरोविचरन १२६५

उपायांतर.... १२६५
 वाताभिष्यंदका यत्न १२६७
 वात तथा पित्ताभिष्यंदका यत्न १२६७
 पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी १२६७
 श्लेष्माभिष्यंदपर पिंडी १२६७
 कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी १२६७
 रक्ताभिष्यंदपर पिंडी १२६७
 सूजन खुजली आदिपर पिंडी १२६७
 बिडालकके लक्षण १२६७
 सर्व नेत्ररोगोंमें लेप.... १२६७
 तथा दूसरा लेप १२६७
 तथा तीसरा लेप १२६७
 चतुर्थ लेप १२६७
 अर्मरोगपर लेप १२६७
 अंजननामिकापर प्रतिसारण १२६७
 नेत्ररोगमें तर्पण १२६७
 हीनाधिक तर्पणमें उपचार.... १२६७
 तर्पणका निषेध १२६७
 तर्पणका विधान १२६७
 तर्पणकी मात्रा १२६७
 तर्पणमें स्नेहके अधिक योगद्वारा कफाधिक्य
 होनेका उपाय १२६७
 तर्पणकी मर्यादा १२६७
 तर्पण करके तृप्तके लक्षण १२६७
 तर्पण अत्यंत होनेके लक्षण ... १२६७
 हीन तर्पणके लक्षण १२६७
 तर्पणमें हीनाधिक्य सिग्धका यत्न १२६७

पुटपाक

पुटपाककी विधि १२६७

पुटपाक संबंधी रस नेत्रमें डालनेकी विधि	दूसराप्रकार ११
१२७३	नेत्रप्रसादन ११
स्नेहनादिभेदसँ पुटपाककी योजना ११	शिरोत्पातरोगमें अंजन ११
स्नेहपुटपाक ११	अंधापन दूर होनेकी रसक्रिया ११
लेखनपुटपाक १२७४	अंजन योग.... .. ११
रोपणपुटपाक ११	रतौघादूरहोनेको लेखन कर्णांजन १२८३
दोष पकहोनेसँ अंजनका साधारण विधान १२७५	कंडूकाचादिपर लेखन चूर्णांजन ११
अंजनके भेद ११	सर्व नेत्रके रोगमें अंजन ११
अंजनके गुटकादि तीन भेद ११	सर्व नेत्ररोगपरसौवीरअंजन १२८४
अंजनके अयोग्य १२७६	शिरोकीसलाई बनानेका क्रम ११
अंजनमें बत्तीका प्रमाण ११	प्रत्यंजन करनेका विधान ११
अंजनमें रसका प्रमाण ११	सदोपनेत्रमें निषेध ११
विरेचन अंजनमें चूर्णका प्रमाण ११	प्रत्यंजन चूर्ण ११
सलाई बनानेकी युक्ति १२७७	सर्पविपनाशक अंजन ११
लेखनादिमें शलाईका प्रमाण ११	नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय १२८६
अंजनमें समयका निश्चय.... .. ११	तथा उपायांतर ११
चन्द्रोदयवर्ती ११	
फूलाछर इत्यादिक रोगोंमेंलेखनी वर्ती १२७८	
दूसरी विधि ११	
लेखनीदंतवर्ती ११	
तन्द्रानाशक लेखनवर्ती १२७९	
रोपणी कुशमिता वर्ती ११	
नक्तांध्यनाशिनी वर्ती ११	
नेत्रस्त्रावनाशक वर्ती.... .. ११	
रसक्रिया १२८०	
फूला दूर होनेको रसक्रिया ११	
अतिनिद्रा दूरहोनेको लेखनी रसक्रिया ११	
तन्द्रानाशिनी रसक्रिया ११	
संनिपातमें लेखनी रसक्रिया १२८१	
तिमिरादिरोगोंमें रोपणा रसक्रिया ११	
	संबानके भेदकथन ११
	आसवारिष्टके लक्षण ११
	अरिष्ट १२८७
	सामान्यसँ अरिष्टविधि: ११
	द्विविधसौधु ११
	मुरादिलक्षण ११
	मुराप्रसन्नादिमद्योके भेद १२८८
	वारुणी ११
	शुक्त ११
	गुडशुक्त १२८९
	मृद्धाकाशुक्त ११
	तुपांबु और सौवीर.... .. ११
	ग्रन्थांतरसँ ११

अथ संधानविधि:

भारनाल	१२९०	वरुणादि, गण	१३०१
कांजिक	”	वीरतर्ज्वादि गण	”
सांडाकी	”	सालसारादि गण	१३०२
घान्याम्ब	”	रोघ्रादि गण	”
कांजिक साधन	”	अक्षौदि गण	”

भूमिप्रविज्ञागविज्ञानीयाध्यायः

सामान्य भूमिप्रभागका वर्णन	१२९१	सुरसादि गण	१३०३
स्वगुणभूयिष्ठ पृथ्वीके गुण	१२९२	मुष्ककादि गण	”
जलगुण भूयिष्ठ पृथ्वी	१२९३	पिप्पल्यादि गण....	१३०४
अग्निगुण भूयिष्ठ पृथ्वी	”	एलादि गण	”
पवन गुणभूयिष्ठ पृथ्वी	”	वचाहरिद्रादि गण....	१३०५
आकाशगुण भूयिष्ठ पृथ्वी	”	श्यामादि गण	”
औषध ग्रहणमें मतभेद	१२९४	बृहत्यादि गण	१३०६
विरेचनादि द्रव्याक्सि पृथ्वीकी लेनी	”	पटोलादि गण	”
नवीन और प्राचीन औषध	”	कांकोल्यादि गण	”
लेनेकी आज्ञा	१२९५	उपकादि गण	”
औषध जाननेका उपाय	”	सारिवादि गण	१३०७
सर्वकाल ग्रहण	१२९६	अंजनादि गण	”
छः रसयुक्त पृथ्वीके अनुसार वृत्त वर्णन	”	परूपकादि गण	”
अप्रकट रस पृथ्वीके गुणसे जाना जायहै	”	प्रियंगु और अंबछादि गण	१३०८
भूमिद्रव्यका कारण कहतेहै....	”	न्यग्रोघादि गण	”
नवीन वा पुरानी कैसी द्रव्य लेनी	१२९७	गुडूच्यादि गण	१३०९
विडंगादि प्राचीन लेनेकी आज्ञा	”	उत्पलादि गण	”
औषध रखनेका उपाय	”	मुस्तादि गण	”
		त्रिफलादि गण	१३१०
		त्रिकटु गण	”
		आमलक्यादि गण....	”
		त्र्यम्बादि गण	”
		लासादि गण	१३११
		लघुपंचमूल गण	”
		बृहत्पंचमूल गण	”
		दशमूल	१३१२

द्रव्य संग्रहणीयाध्यायः

अध्यायका विडार्य	१२९९		
विदार्यी गंधादि गण	”		
आरम्बधादिगण	१३००		

वह्नीपंचक तथा कंटक पंचक १३१२	उत्कर्ष उपाधि भेदको दिखाना १३२०
तृणपंचक	जल द्रव्यकी उत्कर्ष उपाधि १३२१
पांचोके गुण एक श्लोकमें	नेजस द्रव्यके गुण और स्वभाव
संक्षेपत्वदिखाना १३१३	वायुवाय द्रव्यके गुण स्वभाव १३२२
इनगणोंका क्याकरे इस वास्ते कहतेहै	..	आकाशीय द्रव्यके गुणस्वभाव
औषध रक्षणकी विधि	सब औषधोंको पांचभौतिकत्व
इस द्रव्य गणकी कैसी योजना करे सो	..	औषधोंका काल कर्म-वीर्यादि १३२३
कहतेहै....	औषधज्ञानमें अनुमानकी योजना

संशोधन संशमनीयाध्यायः

वमन द्रव्यगण १३१४	संशमनादि औषधोंको आकाशादि गुण १३२४
विरेचन द्रव्य १३१५	भूयिष्ठ १३२४
वमन विरेचन कर्त्ता द्रव्यगण	भूआदि गुण भूयिष्ठसे वातादि दोषों १३२५
शिरोविरेचन १३१६	का शमन १३२५
वातसंशमनोवर्गः १३१७	आकाशादि गुण भूयिष्ठसे वातादि
पित्तसंशमनो वर्ग	दोषोंकी वृद्धी
कफसंशमन वर्ग १३१८	शीतोष्णादि गुणोंको अग्नि संबन्धादि
संशमन और संशोधन द्रव्योंकी मात्रा	..	कथन
व्याधिमें नलाधिक्य औषधके अवगुण	..	लघुगुरु विपाकादि
संशोधनके दोष १३१९	द्रव्योंके वीस गुण इस प्राणीकी
औषधकी हीनमात्रा देनेमें दोष	..	देहमें कथन.... १३२६
सिद्धि हेतु उपाधियोंकोदिखाना		
दुर्बलको तीक्ष्ण वमन विरेचन देना निषेध	..		
अवस्था विशेष कर्के व्याधि दुर्बलको भी	..		
शोधन करे		
मध्यमली तथा मध्य अग्निवालकोकितनी	..		
मात्रादे यह कहतेहै १३२०		
शोधनको व्याधिनाशकत्व		

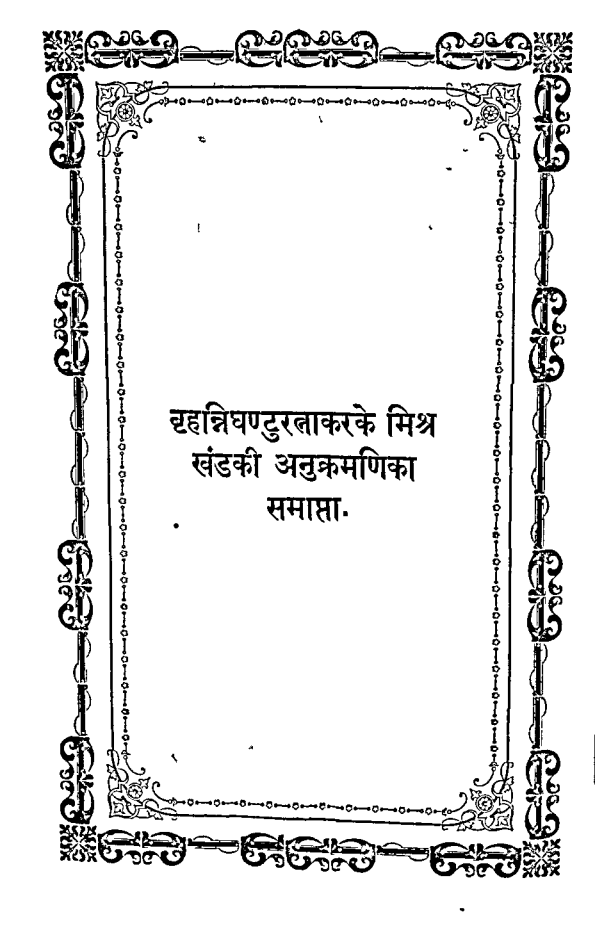
द्रव्यविशेषविज्ञानीयाध्यायः

दृष्यादिसे द्रव्योंकी उत्पत्ति	हिताहितीयाध्याय और भाषा	
		यज्ञ पुरुषीयाध्यायः	
		प्रथम औरोंका मत १३२७
		अपना मत कथन
		प्रथम एकांत हित १३२८
		एकांत अहित १३२९
		एकांत हिताहित १३३०
		रक्त शाली आदि धान्यवर्ग १३३१
		मांसवर्ग १३३२
		फलीके धान्य और शाकवर्ग १३३३
		घृतनिमकादि हितकारी १३३४

संयोग विरुद्ध १३३६	विरुद्ध पदार्थ प्रक्षणके अवगुण ,,
कृषिद्विरुद्धकामी प्रयोग दिखातेहै १३३७	विकार कर्त्ता पदार्थ १३४४
हिताहितत्वका खंडन १३३८	विरुद्ध भोजन जनित रोगोंकी चिकित्सा ,,
पूर्वोक्त अर्थको स्पष्ट करके दिखाना १३३९	विरुद्ध भोजन करनेपरभी किसीको रोग
उक्त विधानसे अन्य द्रव्योंमें हिताहितत्व,, नहींहो यह कहतेहै ,,	पूर्वकी पवनके गुण १३४५
अन्य संयोग विरुद्धोंको कथन ,,	दक्षिणकी पवनके गुण १३४६
कर्मविरुद्ध १३४०	पश्चिमकी पवनके गुण ,,
मानविरुद्ध १३४१	उत्तरकी पवनके गुण ,,
दोदौरस रसवीर्य और विपाकसे विरुद्ध १३४२	✽ इति हिताहितीयाध्यायः ✽
अतिस्निग्धादिपदार्थोंका सेवननिषेध १३४३	
पूर्वोक्तको स्पष्ट करतेहै ,,	

मिश्रखंडकी समाप्ति ।





बृहन्निघण्टुरत्नाकरके मिश्र
खंडकी अनुक्रमणिका
समाप्ता.

अथ मूत्रपरीक्षा

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

येन विज्ञानमात्रेण रोगचिह्नं प्रकाशते ॥ १ ॥

अर्थ—अब नाडीदर्पण कहनेके अनंतर हम मूत्रपरीक्षण कहतेहै, जिसके जाननेसे. रोगके चिन्ह प्रतीतहोतेहै. ।

मूत्रपरीक्षाका समय ।

निशांतयामे घटिकाचतुष्टये उत्थाप्यवैद्यः किल रोगिणां च ॥ मूत्रं धृतं काचमये च पात्रे सूर्योदये तत्सततं परीक्षेत् ॥ २ ॥

अर्थ—रात्रिके चौथेप्रहरकी जब ४ घड़ी रात्रि बाकीरहै तब वैद्य रोगीको उठायां कांचके पात्रमें मूत्रकराकर धररक्त्वे जब सूर्योदयहोवे तब उसमूत्रकी परीक्षाकरे ।

तस्याद्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं तत्परिंधारयित्वा ॥

सम्यक् परिज्ञाय गदस्य हेतुं कुथ्याच्चिकित्सां सततं हिताय ॥ ३ ॥

अर्थ—रोगीके मूत्र लेतेसमय प्रथम और अंतकी धाराको त्यागकर बीचकी धारको लेवे तथा उसमूत्रसे रोगका कारण जानकर रोगीके हितार्थ औषधि करे ।

वातेच पांडुरं मूत्रं सफेनं कफरोगिणां । रक्तवर्णं भवेत्पित्ते द्वंद्वजे मिश्रितं भवेत् ॥ सन्निपाते च कृष्णं स्यादेतन्मूत्रस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—रोगीका मूत्र वातविकारसे पांडुरवर्णहोताहै कफविकारसे आगयुक्त पित्तविकारसे रक्तवर्ण और द्वंद्वजव्याधिसे मूत्र मिश्रवर्णका होताहै और सन्निपातसे कृष्णवर्ण होताहै । ये मूत्रके सामान्य लक्षण जानने ।

१ वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलं च पित्ततः । रक्तमेव ममेद्रकाद्धवलं केनित्रं कफात् ॥ इति पुस्तकान्तरे.

नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च पित्ते ॥

स्निग्धं कफे पल्वलवारितुल्यं स्निग्धोष्णरक्तं रुधिरप्रकोपे ॥५॥

अर्थ—मतांतर कहतेहै. कि वातके कोपसैं रोगीका मूत्र नील और रूक्ष होताहै । पित्तके कोपसैं पीला और लाल तथा तेलके समान होताहै । कफके विकारसैं रोगीका मूत्र चिकना और पोखराके जलके समान गदला होताहै ।

मातुलुंगरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् ॥ प्रपाकर-

हितानां च मूत्रं चन्दनसन्निभम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसके अन्न भलेप्रकार पाचन नहीं होताहै उसका मूत्र विजोरके रसके समान अथवा कांजीके समान अथवा जलके समान किंवा चन्दनके समान उतरताहै ।

अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तंदुलतोयवत् ॥

नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ७ ॥

अर्थ—अजीर्णसैं जो विकारहुआहो उसमें मूत्र चावलके घोवनके समान होताहै । और नवीन ज्वरमें मूत्र धूँके समान तथा बहुतहोताहै ।

पित्तानिले धूम्रजलाभमुष्णं श्वेतं मरुच्छेष्मणि तु-

द्बुदाभम् ॥ सश्लेष्मपित्ते कल्पं सरक्तं जीर्णज्वरे सू-

क् सद्दृशं च पीतम् । स्यात्सन्निपातादपि मिश्रवर्णं

तूर्णं विधिज्ञेन विचारणीयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मूत्रवातपित्तके कोपसैं धूम्रवर्ण, गरम, और जलके समानहोताहै । वातकफके विकारसैं सपेद तथा वबूलेदार होताहै । कफपित्तके विकारसैं लाल तथा दूपितहोता है । जीर्णज्वरहोनेसैं पीला तथा रुधिरके समान होय । और सन्निपातहोनेसैं मूत्र अनेकप्रकारके मिश्रितवर्णका होताहै । इसप्रकार वैद्यको मूत्रके वर्ण जानने चाहिये ।

परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य तत्त्वतः

तृणेन दापयेत्तैलविन्दुं तत्रातिलाघवात् ॥ ९ ॥

अर्थ—रोगीके मूत्रकीयथाविधिसैं उत्तमपरीक्षा करनी चाहिये । वह इसप्रकारिक पूर्वोक्त धरेहुए मूत्रमें तिनकासैं लेकर वैद्य शीघ्रतेलकी बूँदडाले फिर उसकी इसप्रकार परीक्षाकरे ।

विकासिचेतैलमथासु मूत्रे साध्यः स रोगी न विका-
सितं चेत् ॥ स्यात्कष्टसाध्यस्तलगेत्वसाध्यो नागा-
र्जुनेनैव कृता परीक्षा ॥ १० ॥

मूत्रमें डालीहुई तेलकीबिंदु यदि सवमूत्रके ऊपर फैलजावे तो जाने रोगी साध्यहै। और यदि न फैलेतो जाने कि रोगकष्टसाध्यहै। तथा वहतेलकी बूंद मूत्रके नीचे बैठ जावे तो असाध्यजानना यह नागार्जुन सिद्धकी करी हुई परीक्षाहै

पूर्वाशां वर्द्धते विन्दुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत् ॥

दक्षिणाशां ज्वरो ज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमान्द्रवेत् ॥ ११ ॥

अर्थ— मूत्रमें डालीहुई तेलकी बूंद यदि पूरवकीतरफ फैले तो रोगी शीघ्र अच्छाहो और दक्षिणादिशाकी तरफ फैले तो ज्वरजानना। वह रोगी औपधदेनेसे अच्छा होय।

उत्तरस्यां यदा विन्दोः प्रसरः संप्रजायते ॥

अरोगिता तदा नूनं पुरुषस्य न संशयः ॥ १२ ॥

अर्थ—यदि तैलकी बिंदु उत्तरदिशाकी तरफ फैले तो रोगी रोगरहितहै इसमेंसंदेहनहीहै।

वारुण्यां प्रसरे द्विन्दुः सुसध्योऽपि न जीवति ॥ १३ ॥

अर्थ—यदि पश्चिमदिशामें तेलकी बिंदु फैलेतो उसरोगीको सुख तथा आ-
रोग्यहोय।

विकाशितं हलं कूर्मं सैरभाकारसंयुतं ॥ करण्डमण्डलं वापि

नरं मूर्धविर्वाजितं ॥ १४ ॥ गात्रखण्डं च शस्त्रं च खड्गं मु-

शलपट्टिशम् ॥ शरं च लगुडं चैव तथैव त्रिचतुःपथम् ॥ १५ ॥

विन्दुरूपं नरो दृष्ट्वा न कुर्वति क्रियांकचित् ॥

अर्थ—यदि तेलकी बिंदु हल, कटुआ, भैसा, तथा करंड (पिटारी) मंडल, अथवा मनुष्यके धडके समान अथवा तोड़ेहुए हाथपरके समान अथवा शस्त्र, त-
लवार, मूसल, पटा, बाण, दंड, किंवा तिराहे—चौराहेके आकार अथवा बिंदुरूप
होयतो उमरोगीकी विक्रित्ता न करे।

हंसकारंडताडागं कमलं गजचामरम् ॥ छत्रं वा तो

रणं हर्म्यं सुपूर्णं दृश्यते यदि ॥ आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया
तदा कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—यदि तेलकी बिंदु हंसपक्षीके समान, खंजन, तलाव, कमल, हाथी, चमर, छत्र, तोरण, किंवा मेहेल, इनके आकार होय तो उस रोगीको आरोग्यहोय अतएव उसका यत्न करना चाहिये ॥

तैलविन्दुर्धदा मूत्रे चालनीसदृशी भवेत् ॥
कुले दोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ॥ १८ ॥

अर्थ—यदि तैलकी बिंदु मूत्रमें चालनीके छिद्र सदृश होय तो उसरोगीको कुलदेवका दोष अथवा प्रेतदोष जानना चाहिये ॥

नराकारं प्रजायेत किम्वा स्यान्मस्तकद्वयम् ॥

भूतदोषं विजानीयान्भूतविद्यां तदाचरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—तैलबिंदु मूत्रमें मनुष्याकार अथवा दो मस्तकके आकार होयतो उस रोगीको भूतदोषहै इसप्रकार विचार उसका यत्र मंत्रादि भूतविद्याका प्रयोग करना चाहिये ।

मांजिष्ठाभं धूम्रवर्णं च नीलं स्निग्धं मूत्रं वारितुल्यं
च शीतम् ॥ ज्ञात्वा चित्ते बुद्धिमान्मानुषाणां कुर्यात्त्वं
तर्भेपजं रोगिणां च ॥ २० ॥

अर्थ—यदि मूत्र मजीठके रंगके समान अथवा धूम्रवर्ण, नीला, चिकना, पानीके समान शीतल होयतो बुद्धिमान वैद्यको उसरोगकी औपद्य करना चाहिये ।

सर्पाकारं भवेद्वाताच्छत्राकारं तु पित्ततः ॥

श्लेष्मणा मौक्तिकाकारमित्येतन्मूत्रलक्षणम् ॥ २१ ॥

अर्थ—तैलबिंदु मूत्रमें वातविकारसँ सर्पके समान तथा पित्तकोपसँ छत्रके समान तथा कफकोप करकेँ मोतीके समान होयहै इसप्रकार मूत्रलक्षण जानना ।

प्रकारांतरेण परीक्षा

अहोरात्रेण विसृजेत्स्वस्थो मूत्रमनाविलम् ॥ अपाण्डुरं च
तरलं पलानामष्ट सन्मितं ॥ २२ ॥ वाङ्मुख्येन जलं तत्र कठिनं
स्वल्पमेव हि ॥ दृश्यते पलमूत्रे तु चतुर्गुणाऽद्रवस्थितिः ॥ २३ ॥

अर्थ—स्वस्थ मनुष्य दिनरात्रमें ८ पल निर्मल कुछ पांडुवर्ण तरल मूत्र परित्याग करताहै उसमें बहुधा जलभागहै, और कठिन भाग अल्पहै, परीक्षा-द्वारा निश्चय हुआहै कि १ पल मूत्रमें ४ रत्ती कठोर पदार्थहै ।

वस्तिदेशे समुद्विग्रे मलेष्वन्त्रे चित्तेषु च ॥ तस्मिन् कृमिगणा
कीर्णे दाहैर्वापि सुदारुणैः ॥ २४ ॥ नार्थाश्रापन्नसत्वाया
अश्मर्या वापिनिःस्त्रवेत् ॥ सुकृच्छ्रं विन्दुशस्तद्वानस्त्रवेद्वापि
किञ्चन ॥ २५ ॥ वस्तौविस्तीर्णतां याते तद्वािकुञ्चनात्
था ॥ मस्तुलुंगरुजामूत्रं संचितं वापि न स्त्रवेत् ॥ २६ ॥ वि-
द्रधिर्मूत्रपिण्डे चेद्विसूचीवापि दारुणा ॥ नोत्पद्यते ततो मूत्रतं
द्रंथावपि कञ्चन । वस्तेः प्रदाहतो मूत्रं तद्रंथावपि किञ्चन
॥ २८ ॥ वस्तिः प्रदाहतो मूत्रं विन्दुशस्तु स्त्रवेत्सदा ॥
द्रवानियोगाच्छैत्येन संयोगाच्चाति वर्द्धते ॥

अर्थ—वस्तिदेशका उत्तेजन, अंत्रोंमें कृमि तथा मलसंचय एवं दाह पथरी
इन सब कारणोंसे तथा गर्भवती स्त्रीआदिके मूत्र बड़े ऋष्टसे बूंद बूंद होकर
निकले, अथवा एकसाथही मूत्र उतरना बंद होजाये, एवं मूत्राशयकी विस्ती-
र्णता उसके ग्रीवादेशका संकोचहोना मस्तिष्कमें पीडा और संचितमूत्रका न-
उतरना । मूत्रग्रन्थिकी विद्रधि तथा विसूचिकारोगमें उक्तग्रंथिसँ एकसाथ मूत्र
उत्तरे नहीं । वस्ती अर्थात् मूत्राशयमें दाहकेसाथ विद्विंदु होकर मूत्र निकले
अधिक पतले पदार्थपीनेसे और देहको शरदीलगनेसे मूत्र अधिक उतरताहै ।

व्याधिक्षीणशरीरस्य नष्टसंज्ञस्य देहिनः ॥ तस्य स्वे
दस्य वात्यर्थं वृद्धिः स्यान्मृत्यवेमता ॥ ३० ॥ वि-
रत्या द्रवपानाच्च स्वेदाधिक्यात्सृतेऽसृजि ॥ जलो
दरेऽतिसारे च मूत्रं स्तोके स्त्रवेन्नृणाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—व्याधिद्वारा क्षीणदेह तथा चेतनाविहीन रोगीके मूत्रकी घट्टी और पमी-
ने अधिक आवेतो वह रोगी निश्चयमरे द्रवपानकी अल्पता तथा द्रवपानमें वै,
राग्य, रक्तसाव, जलोदर और अतिसाररोगमें मूत्र अत्यंतथोडा उतरताहै ॥

यूनानी मतानुसार मूत्रपरीक्षा.



दोषैराक्रान्तदेहस्य प्रतिकर्तुं रुजां चयम् ॥ मूत्रनाडी
परीक्षा तु प्रथमं परिभाव्यते ॥ ३२ ॥ मरीज्वीमार
रोगी स्यात्तत्परीक्षा द्विधैव हि ॥ शनाशी नब्जकारू
रा नाडीमूत्रस्य सा स्मृता ॥ ३३ ॥

अर्थ—दोषोंकरके आक्रान्त देहकी रोगोंसें यत्नकरनेके लिये प्रथम हम मूत्र और नाडीकी परीक्षा कहतेहै तहां रोगीको यूनानीभाषामें मरीज और विमार कहतेहै उसकी परीक्षा दो प्रकारकीहै प्रथम शनाशी जिसमें नब्ज और कारूरा अर्थात् नाडी और मूत्रकी परीक्षाहै तहां प्रथम मूत्रपरीक्षा कहतेहै ।

मूत्रकेवर्ण

सुपेद अवियज स्वेतं स्याह अस्वद मेचकम् ॥ जर्द अ
स्कर पीतं स्यात् सुर्ष अहमर रक्तकम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—मूत्रके वर्ण चार प्रकारकेहै जैसें सफेद, अवियज, ए दोनों श्वेतवर्णके नामहै स्याह और असवद एकालेवर्णके नामहै जर्द और अस्कर ए पीतरंग के नामहै एवं सुर्ष और अहमर लालरंगको कहतेहै ।

सितमच्छं च बहुलं मूत्रं शैत्यविशेषतः ॥ शुभ्रं सान्द्रं
कफोद्रेकादसान्द्रं दोषपाकतः ॥ ३५ ॥ अवदातं घनं चापि
विच्छिन्नं श्लेष्मदोषतः ॥ उपायोगदितो वैद्यैस्तत्रमूत्र
विरेचनं ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिसरोगीका मूत्र सपेद, स्वच्छ, और बहुतहो उसके शीतकी विशेषता जाननी और जिसकामूत्र सपेद और गाढाहो उसके कफकी आधिक्यता जाननी एवं पतलामूत्र दोषपाकहोनेसें होताहै उसीप्रकार सपेद गाढा और लहसदार कफके विकारसें होताहै इसका उपाय वैद्योंने मूत्र विरेचन अर्थात् इन्द्री छुलाब देना कहाहै ।

असितं मलिनं वातकोपवैकृत्यसूचकम् ॥ सौदा विकृतिजं चा
पि परिज्ञातं भिषग्वरैः ॥ ३७ ॥ श्यामलं घनविच्छिन्नं सौदां

कोपेन संभवेत् ॥ सञ्ज अरज्वर पालाशं भवेन्मूत्रं विपाशी
नः ॥ ३८ ॥ श्यामं सान्द्रं च यन्मूत्रमूप्मणा दग्धदोपता
म् ॥ प्रकटी कुरुते दोषविचारे भिषजं प्रति ॥ ३९ ॥

अर्थ— जो मूत्र काला और मलिनहो वो वातकोपको सूचित करताहै तथा यही सौदाकी विकृतताको भी सूचना करताहै एवं श्यामरंग और गाढा यह सौदाके कोपसँ होताहै सञ्ज और अरज्वर पलासीरंग अर्थात् हरितवर्णहोताहै ऐंसा मूत्र जिसरोगीनें विषभक्षण कराहो उसका होताहै और जिस रोगीका मूत्र काला और गाढाहोय वह गरमीसँ दोषोको दग्धहोना सूचित करताहै ।

शुष्कस्यपवसस्येव नीरं यद्भावनाद्भवं ॥ ईपत्पीतं हि मन्दाग्ने
रंगतिन्नी उदाहृतः ॥ ४० ॥ फलपूरत्वगाभासं तीक्ष्णाऽग्ने
रुपजायते ॥ तुरंजी उन्नजी चेति नाम्नावर्णः प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥
ज्वलनज्वालभं यत्तूरक्तं पीतं च मेचकं ॥ संवर्णं आतशीनारी
प्रोक्तस्तस्य परीक्षकैः ॥ ४२ ॥

अर्थ— सूखे जो के भूसेको रात्रीमें भिगोनेसँ प्रातः काल पानीकारंग होजाता है उस ईपत्पीतरंगको तिन्नीरंग कहते हैं ऐंसा मूत्र मंदाग्निवालेका होता है और विजोरे नींबूकेरंगको तुरंजीरंग और उन्नजीरंग कहते हैं यह तीक्ष्णाग्निवालेका होता है एवं अग्निकी ज्वालाका जैसा लाल और पीलारंग होता है ऐंसा हो या मोरकी चंद्रकाके आकार स्यामभिश्चितरंग हो उसवर्णको आतसी और नारीरंग मूत्र परीक्षकोंमें कहाहै.

तत्रोष्मणाखरत्वंतुदोषाणांजातमुच्यते ॥ इहत एकस
विज्ञेयः सोरुतगी हिकृतस्मृताः ॥ ४३ ॥ मुहतरिक् दग्ध-
कर्त्ता स्यादेपशब्दास्थितोर्वेधि । जाफरानी कुंकुमाभमत्यु
ष्णज्वरिणोर्भवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ— ऐंसा उक्तरंग दोषोंके अत्यंत गरमीकी प्रसरतासँ होताहै उसमें भी एक सोरुतगी और हिकृत कहाताहै और दोष दग्धकर्त्ताको मुहतरिक् कहते हैं और जिस मूत्रकावर्ण केशरिया हो उसको जाफरानीरंग कहते हैं यह अत्यंत उष्ण ज्वरवालेका होताहै ।

ऐरावतफलाभासो नारंजीवर्ण उच्यते ॥ तत्सादृशं भवे

मूत्रं रक्तपित्तविकारिणः ॥ ४५ ॥ वर्दी गुलाबी पर्यायौ पा
टलं वदतो गुणम् ॥ असह्य किंचिदेतस्मादवदातः स्मृतो
बुधैः ॥ ४६ ॥ वर्णद्वयानुगंमूत्रंजायतेरक्तवेगतः ॥

अर्थ— जो मूत्रनारंगीके रंगका हो उसको नारंगीवर्ण कहते हैं ऐसा मूत्र रक्तपित्त रोगीका होता है जो मूत्र पाटलहो उसको वर्दी और गुलाबीरंग कहते हैं यदि इसगुलाबीमें जो मूत्र कुछ सपेदहो उसको असह्य कहते हैं ये दोनो प्रकारका मूत्र रक्तवेगके कारणसे होता है ।

कानी त्वत्यन्तशोणःस्याद्वाडिमीकुसुमादपि ॥ तत्रास्त्रप्राज्य-
भावेतु शोधनं शस्तमीरितम् ॥ अक्तं यावकवर्णस्याद्गधासृ
ग्लक्षणं वदेत् ॥ ४८ ॥ अप्करी रंगगुलाला रक्तकोपज्वरेभवे
त् ॥ समास्तन्मुख्यवर्णानां व्यंजनं समुदाहृतम् ॥ ४९ ॥

अर्थ— जोमूत्र अनारकेफूलसेंभी लालहोवे उसको फारसीमें कानी रंग क-
हतेहैं यह अत्यंतखूनके बढनेसें होताहै इसका शोधन करना उत्तम कहाहै जो मूत्र
गुलालारंगकाहोवे उसको फारसीमें अपकरी रंग कहतेहैं यह रक्तकुपित ज्वरमें
होताहै यह हमने संक्षेपसें मूत्रके वर्णोंका वर्णनकराहै विशेष भाषामेंदेखो

मूत्रकी परीक्षा तीनप्रकारसें करी जाती हैं जैसे प्रथम आरोग्यावस्थाका
मूत्र देखना फिर रोगावस्थाका और तीसरे मूत्रकी दशाका निश्चय करना फा-
रसीमें मूत्रको बोलू कहते हैं परंतु लौकिकमें कारूरः कहते हैं इसका यहकारण
है कि कारूरः एक शीशीका नाम है, जिसमें वैद्यजन मूत्रकरके देखते हैं अब
कहते हैं कि यह प्राणी जो जल पीता है वह प्रथम भेदामें आहारके साथ मिं-
लकर उस आहारको द्रवीभावमेंकर कैलूस निर्माण करताहै फिर रुधिरवाहि-
नीमें भ्रमण करताहुआ हृदयमें परिपक्वहो फिर गुरदेमें हो मूत्राशयमें संचित
होताहै और जो कुछ रुधिरमें मिलाहुआ हृदयमें रहजाता है, वह धमनि ना-
डियोंके द्वारा सर्वदेहमें पहुचकर कुछ पसीने से निकल जाता है और कुछ फिर
गुरदेमें हो मूत्राशयमें गिरता है इसी कारण मूत्र रंगीन हो जाताहै जिस मनुष्यके
पसीना अधिक आता होगा उसके मूत्रभी थोडा उतरेगा और जिसके पसीने
थोडे आते होंगे उसके मूत्र अधिक उतरताहै जब मूत्र मूत्राशयमें संचित होजा-
ताहै तब इस प्राणीको मूत्रकरनेकी कांक्षा होती है अतएव सर्वदेहकी चेष्टा इसमू-
त्रसें उत्तमप्रकार निश्चय हो सकती हैं अब कहते हैं कि मूत्रदेखनेको इतना बडा

शीशी लेवे कि समग्रमूत्र आये जावे और कुछ खालीरहे कि हिलाने चलानेमें अडचल न होवे, वैद्यको यहभी स्मरणरहे कि मूत्र दोघडीपीछे परीक्षाके योग्य नहीं रहता और यहतो अवश्य थाद रखे कि शरदीमें मूत्र स्वतःस्वभावसँ ही गाढा रहताहै और गरमीकी ऋतुमें पतलाहोताहै. । मेंहदीके लगानेसँ एवं रंगदार वस्तुके खानेसँ मूत्र रंगीन उतरता है बहुत हरितशाक खानेसँ मूत्र हरितरंगका उतरताहै. एवं केशर, सनाय, अथवा अमलतासके पीनेसँ मूत्र पीला उतरताहै बहुत भूस्वारहनेसँ क्रोधसँ. रात्रिमें जगनेसँ मूत्र लालरंगका उतरताहै। वैद्यको उचितहैकि ऐसे मूत्रकी परीक्षा रोगी या रोगीके वांधवोंसँ प्रथमही करलेवे नहींतो परीक्षामें विपरीतता हो जावेगी। मूत्रके देखते समय किसीप्रकारकी छायां तथा किसीवस्तुका प्रतिबिंब उसपर न पडताहो औरकिसीसमय मूत्रके समान और वस्तु दृष्टिमें आजातीहै तो अपक्ववैद्य धोका खाजातेहै जैसे सिकंजवी, जल मिला सहत, और मूत्र समीपके देखनेसँ गाढा प्रतीतहोताहै और दूरसँ स्वच्छ प्रतीत होताहै परंतु सिकंजवीआदिमें इस्सें विपरीत ज्ञान होताहै अतएव इसप्रकारकी परीक्षा वैद्य प्रथमकरलेवे.

प्रसंगवस पशुमूत्रकी परीक्षाकहतेहै जैसे गद्धेका मूत्र सपेद और गाढा होताहै. घोडेका पतला और सपेद होताहै. परंतु ऊपरका आधास्वत और नीचेका आधागाढा होताहै ऊँटका मूत्र पीला और मनुष्यमूत्रके समान होताहै परंतु मनुष्यके मूत्रसँ नहीं मिलता

मूत्रकी आठप्रकारसँ परीक्षा करतेहै जैसेकि रंग, पक्कता, स्वच्छता, समल, गंध, फैन, रमूत्र, और प्रमाण,

तहां प्रथम रंगका ज्ञान कहतेहै

पीलेरंगके छः भेदहै.						
केशरी.	रक्तवर्ण.	अग्निवर्ण.	पीतरक्तता- विशिष्ट.	नारंजी.	तृणप्रक्षालन. सदृश.	संस्कृतनाम
जाफ- रानी.	अहमर.	नारी.	अशकर.	उत्तरजी.	तत्रनी.	फारसी नाम
केशरीवर्णका मूत्रज्वर-पां- डुरींग आदिसँ होताहै.	लालवर्णमूत्र रुधिरकोपसँ होताहै.	जैसे अग्निज्वाला पीली और चम- कदार होताहै ऐसा मूत्र अत्यंत गरमीके कारण होताहै.	पीत और रक्तता मिश्रित वर्णभी पिता.षे.यसँ होताहै.	समतराके समान अथवा नारं- जिकिसमान मूत्रका वर्ण रक्तपि- तके कोपसँ होताहै	तृणशोधनके समान मूत्रकावर्ण कफप्रतिक्षुब्धितके कार- ण होताहै.	व्यवस्था

हरितवर्णके भेद.			कुष्णवर्णके भेद			
अतिहरित.	हरित.	नीलवर्ण.	श्वेतकुष्ण.	हरितकु-	रक्तकुष्ण.	केशरी.
कुरांनी.	अंगाली.	नील	स्याह.	सवज- स्याह.	अहमरी.	जाफरानी.
गंदनेकासा रंग अथवा वृक्षपत्रकाजल जैसा ऐसा मूत्र गरमी और पि- चके जलनेसे होताहै.		मूत्रजंगारके रंगका होतो वातापित्त मिश्रितजानना		सर दीसे मूत्र नीलवर्णका होताहै यदि- वालकका मूत्र नीलाहो तो पसाघात आदिवातका विकारजाने.		जो मूत्र प्रथम सपेद फिर काला प्रतीत हो तो कफ जलकर वात हुआजाने.
				जो प्रथम हरित और पीछे कुष्णवर्ण हो तो कफ जलकर सौदा वात हुआहै.		
				जो प्रथम रक्त फिरकुष्ण हो जावे तो जानेकि रुधिरविगंडकर वात बनगयाहै इसमेंदुर्गंध बहुत होताहै.		
				प्रथमपीला और पीछे काला होजावेतोपि- चजलकर वात होगया ऐसानिश्रयकरना.		

रक्तवर्णके भेद.			श्वेतवर्णके भेद.		
पिकवर्ण.	रक्तकुष्ण.	पाटलवर्ण.	पाटलवर्ण.	कृत्रिम.	स्वाभाविक.
अकरम.	अहमर- कानी.	बरदी.	असहव.	मिजाजी.	हकीकी
निसमें रक्तता अधिक और कुष्णता स्वल्प हो तो रुधिर कोप और गरमी कुछ न्यून जाने.		निसमूत्रमें रक्तता हो परंतु कुष्णवर्ण अधिक हो तो रुधिरकोप जाने परंतु गरमी अधिकहै.		जो मूत्र गुलाब पुष्पके समान रंगमें हो तो रुधि- रकी आधिक्यता और गर्मी जाने.	
				जो मूत्र प्याजके पत्तेकेसमान रक्तमिश्रित श्वेत होतो रुधिरकी स्वल्पता जाने.	
				जो मूत्र सच्छ जलके समान प्रतीत होतो शरदी अथवा दुर्बलताको सूचितकरे है.	
				दूधके समान सपेदी होनेसे मूत्र कफाधिक्यको सूचित करताहै. अथवा चरबी निकलती है. ऐसा जाने.	

अब पक्कता (किवाम) के जाननेका प्रकार लिखतेहै । वह तीनप्रकारकाहै इसके लिखनेसें यह प्रयोजनहै कि वैद्यको यह परीक्षा करनी चाहिये कि इसरोगीका मूत्र पक्कहुआ निकलहै या कच्चा ॥

मूत्रकी पक्कापक्कदशा दर्शक कोष्टक		
मध्यम	घन	द्रव
मोतदिल	गलीज	रकीक
नैरोग्य अवस्था वाले प्राणीका मूत्र मध्य अवस्थाका अर्थात् न बहुत पतला और न बहुत गाढा ऐसा उतरताहै ।	वातादि दोषोके अत्यंत बढ़नेसें मूत्र बहुत गाढा उरताहै यदि अंतर्वर्णके फटनेसें आँतोंकी गाँठ खुलनेसें अथवा जीर्णज्वरमें गाढामूत्र होवेतो बुरा है ।	यदि देहमें शरदी अधिकहो या मंदाग्नि तथा बहुत जलपीनेसें मूत्राशय और बस्तीमें दुर्बलताके कारण इस प्राणीका मूत्र पतला उतरता है

स्वच्छता

अब कहतेहै कि निर्मलता (सफाई) और अनिर्मलता (गदलाहट) सें रोग ज्ञातहोताहै । यदि रोगीका मूत्र स्वच्छ उतरेतो जानेकि पाक होकर उतरा-गा । यदि गदला प्रतीत होवे तोजाननाकि अपक्क मूत्र उतराहै । अर्थात् पानी हजम नहीं हुआ ॥ देहकी कुब्जत घटनेसें मूत्राशयमे मूत्रशुद्ध नहीं होता, एवं अंतर्वर्णकी रूजनसें मूत्र गदलासा प्रतीत होताहै ॥

इनमें गाढा और गदलेकी पृथक २ परीक्षा इसप्रकारहै कि जोमूत्र गाढाहोताहै वह ऊपर नीचे समानरहताहै । और जो गदला होताहै वह बीचमें अथवा नीचे गाढा और ऊपर पतला प्रतीतहोताहै ॥

रसूव (ऊर्द्धमध्य अधोभागस्थ)

रसूव तीनप्रकारकाहै जैसे १ असफल, २ औसत, ३ फक, १ असफल अर्थात् प्रधोभागस्थित, २ औसत मध्यभागस्थित, ३ फक नाम ऊर्द्धभागस्थित—फिर ऊपर रसूवके दो भेदहै । एकस्वेत, दूसरारक्तवर्ण, तहां सपेदरंगका रसूव उससमय होताहै जब जठराग्नि (पाकदशा) शुद्धहोतीहै । और रक्तवर्णकारसूव पाकदशाके गडबड होनेमें दृष्टिगोचर होताहै ॥

पूर्वाक्तपाकदशाकाचक्र		
ऊर्ध्वस्थ	मध्यस्थ	अधस्थ
फौक	औसत	असफल
और जिसप्राणीके मूत्रमें वायुके अंश अधिक होवे तथा पुरुषार्थभी अधिक होवे तो उसके परमाणु मूत्रके ऊपर आजाति है	मूत्रमें वायु मध्यमदशामें रहे और पुरुषार्थभी देहमें मध्यम होता है तो उसके परमाणु मध्यमें रहते हैं।	जब मूत्रमें वात न्यूनहो तबदिहमें निर्मलता अधिकहो तो उस मूत्रके परमाणुनीचे बैठ जावेगे

डाक्टरीमतानुसारमूत्रपरीक्षा

इदानीं कथयिष्यामि चमत्कृतिकरं परं।

डाक्टरीमतमालोक्य मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

अर्थ—अब हम परमचमत्कृति कारक डाक्टरी मतके अनुसार मूत्रपरीक्षा कहतेहैं। डाक्टरीमें मूत्रको (यूरन) Uran कहतेहैं उसकी तीनप्रकारसँ परीक्षा कहीहै। अर्थात् आरोग्यावस्थाकामूत्र, रोगीकामूत्र, और मूत्रकी दशा निर्णयकरनेकी विधि. ॥

आरोग्यावस्थामें मूत्रकी परीक्षा

रोग रहित प्राणीका मूत्र निर्मल और कहरवाई (हलके) रंगका होताहै। जिसका स्पिसिफिकग्रेवेट्रीतोल (वजनमुतनासिवह) १००३ से लेकर १०३० पर्यंत होताहै। परंतु कभी २ आहार, विहारके कारणसँ न्यूनाधिक होजाताहै। अर्थात् जेसा भोजन और चेष्टाकरताहै उसीके अनुसार होताहै. ॥

जेसै यूरिनापोटास (Urina Potas) अर्थात् द्रव (पतली) वस्तुके पीनेसँ पीछे जो फीकेरंगका मूत्रहोताहै उसका स्पिसिफिकग्रेवेट्री (तोल) १००३ सँ १००९ तकहोतीहै ॥

यूरिनाकाईलाई (Urina Chyli) अर्थात् भारीपदार्थके पचनेके पश्चात् जो मूत्रहो उसका स्पिसिफिकग्रेवेट्री १०३० होतीहै ॥

यूरिनासैं ग्यूनिस *Urina Segunis* अर्थात् अत्यंतसोनेके पश्चात् प्रातःकालके मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०१५ सैं १०२५ तक होवाहै । इसीकारण पडताफे-लानेसैं मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०२० पर्यंत गिना गयाहै ॥

२४ घंटे अर्थात् आठमहरके करेहुए मूत्रका प्रमाण ४० औन्स अर्थात् सेरसैं कुछ अधिक होताहै । कि जिसमें १॥ अंशके लगभग भारीवस्तु पाईजातीहै ॥

मूत्र निकलतेही उसमें देहकी गरमीके अनुसार गरमीहोतीहै । तथा एकप्रका रकी गंधहोतीहै । परंतु कुछसमयके पश्चात् यह दोनो बात जाती रहतीहै ॥

तत्कालके मूत्रका खारीस्वादहोताहै, यदि थोड़ीदेर रखादेया जावेतो लैक्टिकए सिड वो एसिटिकएसिड उत्पन्न होनेसैं खट्टा होजाताहै । तथा अधिक देरीतक रखेरहनेसैं उसका घनभाग (म्युकस) नीचे पैदेमें बैठजाताहै । जिमें यूरिकएसि डकीकलमें अलग दिखाई देतीहै । यदि उसके पश्चात् देरीतक धरारहनेसैं सड-जाताहै । और कारबोनेट आफएमोनियामें यूरियाके बदलनेसैं खारी दुर्गंधितहो-जाताहै तथा उसके ऊपरके भागमें झाग प्रतीत होतेहै । जिसमें फास्फेट निमक मिलताहै । उसके पीछेभी मूत्रको रखनेसैं नीलेरंगके कालापनलिये झाग होजा-तेहै औरकाई पैदा होजातीहै ॥

मूत्रमें दोप्रकारकी वस्तुरहतीहै । एक आरगेनिक, दूसरी इनआरगेनिक, आरगेनिक वो वस्तुहै जो जरायुज और उद्भिजके स्वरूपमें मिलतीहै । उन-मेंसैं इतनीवस्तु मुख्यहै यूरिकएसिड-हिप्पूरिकएसिड-लेक्टिकएसिड-एमोनिया-कानमक और कुछक्रियेटेन-कीएटिनैन-इत्यादि ॥

इनआरगेनिक (धातुरूप पदार्थों) मेंसैं वह निमकहै जो सोडापोटास-ला-इम-मेग्नेशिया-केसाथ कार्बोनिक्एसिड-हैड्रोक्लोरिकएसिड-सल्फयूरिकएसिड-स्फास्फोरिकएसिड केसंयोगसैंबनतेहैं । और अतिसूक्ष्म प्रमाणमें सिलीका फौ-लाद क्लोरिन भीमिलताहै ॥

पूर्वोक्त दोप्रकारके अतिरिक्त मूत्राशयकी म्युकस और एपिथी लियलसैक्स-भी मूत्रमें मिलतेहै ॥

मूत्रमें जो वस्तुहै उनका प्रमाण निम्न लिखित चक्रसैं जानो ।

नकसा					
पानी	१५०		हिप्पूरिक एसिड	०	२५
यूरिया	२४	७	फास्फेटनमक	९	००
यूरिकएसिड(पापाणभाग)	००	३०	सैल्फेट नमक	६	००
क्रियेटन	१	२५	हैड्रोक्लोरेटनमक	८	००
क्रियेटिनैन	१	२०	सवामिलकर	१०००	

मूत्रपरीक्षामें इतनी बातोंका जानना मुख्यहै। मूत्रनिकलनेकीरीति, प्रमाण, स्पेसिफिकग्रावटी, रंगत, गंधी, स्वाद, तथा नीचेवैठने वाली वस्तुए तहां ॥

मूत्रनिकलनेकीरीति

जब मूत्र कष्ट और कठिनताकेसाथ निकले तथा पेसावके स्थानपर दाहहोय जैसे—सूजाक, मूत्राघात, और मूत्राशयकी सूजनमें, तो उसे(डिसयूरिया)कहतेहै ॥

यदि मूत्रनिकलनेमें अत्यंत कष्टहो और बूंद २ टपके तथा सीवनके स्थानपर दाहपीडा, और मरोडाहो जैसे—तारपीन या मक्खी केखाने अथवा उक्तरोगोंकी अधिकताहोनेसे तो उसे (संग्यूरिकहते) है।

मूत्रका विलकुल बंद होजाना इस्चुरियाकहाताहै ॥ यह दो प्रकारसे होताहै। एकतो यह कि मूत्रोत्पत्तीही न होना। दूसरे मूत्रके मार्ग रुकनेसे होताहै ॥

मूत्राशयकी सूजनके कारणसे मूत्र वेअस्तियार या उसकीहाजतवारंवारहो, या मूत्राशयकी गर्दनमें फालिजहोनेके कारण बूंद २ मूत्रटपके तो उसको(एन्युरेसिस) या (इन्कांटीनेन्शआफयूरेन्) कहते है ॥

पतलीचीजोके पीनेसे—पसीनेकमनिकलेसे जैसे गरमीकी अपेक्षा सरदीमें गरमहवाकीअपेक्षा शरदहवामें—सायंकालकी अपेक्षा प्रातःकाल दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अथवा मूत्राशयके फैलनेसे मूत्र अधिक उतरताहै ॥

अत्यंत फिरक, सट्टीसें ज्वरहोना, इत्यादि कारणभी मूत्रअधिक करनेवालेहै। तथा पूर्वाक्त नियमके विरुद्ध अर्थात् गाढीवस्तुओंके पीनेसें, त्वचा और फुफ्फुसकाकार्य अधिकहोनेसें, तथा हैजा, पित्तज्वर, जलंधर, और मूत्राशयमें सूजन होनेके कारण इस प्राणीके मूत्र कम उतरताहै ॥

मूत्रकाप्रमाण

चिन्हभेद, अवस्था, ऋतु, आहार, देहकीदशापलटना, और विमारीआदिके, कारणसें मूत्रकी तोलमें कुछ २ भेद होजाताहै। जैसे—पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके, बालककी अपेक्षाजवानी, और वृद्धस्थामें फरक होजाताहै ॥

कमरत करनेमें, बहुतपसीना निकलनेसें, सूरेपदार्थस्थानेसें निद्राके पश्चात् मूत्रकरनेसेंभी वजन मुतनामिवह अधिकहोताहै। एवं सट्टों, आलस्य, पतली और सट्टी वस्तुकेभोजनसें तथा पुराने रोगोंमें वजनमुतनासब मूत्रका कम होजाताहै ॥

यदि मूत्रकी तोल एकहजार पांचमांमें कम हो या १०३०में ऊपर होय तो अवश्य कोई रोग होनेकी संभावना जाननी कभी वजनमुतनासवामें जलभाग की अधिक्यता और कठोरभागोंकी न्यूनता प्रतीतहोतीहै प्राय एसेमूत्रोंमें अल-

व्युपनामिलनाहै । और वजनमुतनासिवा अधिक होनेसें दृढभागोंमें जैसे गूरिया- और शक्कर आदि होनेका संदेह होताहै ॥

कदाचित् मूत्रमें गुरुपदार्थके भारीपनेकी परीक्षा करनी होवेतो उसकी यह रीतिहै कि २४ घंटेका जितना मूत्रहो इकट्ठाकरे, अथवा सब समयका न मिले तो प्रातःकाल केमूत्रकी स्पेसिफिक ग्रावटी मालूमकरके, उसके अंत्यके दो अंको- सें । २-३३ को गुणनकरे फिर जितना गुणन फलहोय उतनैही ग्रेन भारीवस्तु हजार ग्रेन मूत्रमें समझे ॥

उदाहरण—जैसे मूत्रका वजनमुतनासिवः १२२३ है तो उसके अंतके दोअक्ष- र अर्थात् २३ तेईस को २०३३ सें गुणा करा तो ५३२५९ हुआ अतएव इसी- हितावके अनुसार एकहजारग्रेनमें (ग्रेन १ मासेका $\frac{1}{3}$) ५३१- ५९ ग्रेन समझे जातेहै ॥

मूत्रकारंग

रंगतदार वस्तुके विना खानेसें भी मूत्रकी रंगतफीकी कहरवाई-भूरी, लाल आदि होसक्तीहै । एवं जब मूत्र पीला होताहै तब फीकेरंगका या साफ या बेरं गहोताहै । जैसे पानीपीनेके पश्चात् रुधिरकी न्यूनतामें तथा पानी न पीने-पसी- ने निकलने इस अवस्थामें मूत्रमें रुधिरके माफिक कालेरंगका रुधिर निकलता है। और यदि खून ही निकले तो मूत्रका रंग अधिक काला होजाता है । गठियामे नारंगी रंगका पीव मिलनेसें या फास्फेटके मिलापसें मूत्रका रंगदूधके समान हो- ताहै । कमलवायुमें मूत्र पीला कुछ कालौच लिये उतरताहै । इसीप्रकार पतंगकी वस्तु अथवा चुकंदर आदिके साग खानेसें मूत्र लालरंगका होताहै।इसीप्रकार जिस रंगतके पदार्थ या औषधी यह मनुष्य खाताहै तो मूत्रभी उसी रंगका निकलताहै॥

मूत्रकीगंध

यह प्रथम लिख आएहै किमूत्रमें एकप्रकारकी गंध होतीहै परंतु कुछकाल- के बाद सीतल होतेही वह गंध नहीं रहती ॥

मूत्रको अधिक देरतक रखनेसें तेजावके सदृश होजाताहै, ओर सडनेके स- चव उसमें दुर्गंध आने लगतीहै । परंतु मसानेकी सृजनमें सडनेके प्रथमही मूत्र- में दुर्गंध आने लगती है । धातुक्षीण आदि रोगके मूत्रमें मरी मछलीकी या मु- र्देकीसीदुर्गंध मारने लगतीहै ॥

तथा बहुतसी अंसी अंसी वस्तुहै जिनके भक्षणसे उनकीसी दुर्गंध आने ल- गेहै जैसे-प्याज, लहसन, तारवीन, और होंगआदि॥

मूत्रकास्वादु

स्वस्थमनुष्यके मूत्रका स्वाद नमकी न और बहुमूत्रके रोगमें मीठा होता है ॥

तलस्थद्रव्य

मूत्रमें नीचे बैठनेवाली वस्तु कितनेई प्रकारकी होती है । एकतो वह जो स्वाभाविक गरमीके कारण उसमें मिली रहती है । और वाद सर्दीके जमजाती है । जैसे यूरेटस-और क्लोरायडनमक-आदि- । दूसरी नहीं मिलने वाली वस्तु जैसे-भ्यूक्स और पीव आदि मूत्रके मार्गसे निकलकर जमजाते हैं । इत्यादि और भी जानने ॥

यूरिया प्रायः अमिश्रित रहता है । यदि किसी वस्तुके साथ मिला होयतो सहजही पृथक् होसक्ता है । यह एक कठोर कलम दार वस्तु है । इसका स्वाद कुछ कहुआ नमकीन सोरेसा शीतल तेजावके समान होता है । यदि इसमूत्रमें २४८ दर्जेकी गर्मी पहुचाईजायतो इसका स्वरूप पलट जाता है, और उसकी कलम बन जाती है । जिसका चित्र हमने इसवृहन् निघण्टुरत्नाकरकी दूसरी जिल्दमें देना है ॥ यदि फिर उन कलमोंमें कुछ पानी मिलाकर औंठाओ और कुछ जियादा कार्बोनेट आफ् वरायटा डालो और वाटर वाथसें उसको सुखाओ फिर एक क्रेटल डालोकि । यूरिया उसमें मिलजाय पीछे उसको छानकर सुखानेसें यूरिया की कलमें प्रगटहोगी । इसकी भी तसवीर प्रथम हम लिख आए है । इसीप्रकार डाक्टरलोगे यूरिक एसिड अर्थात् जो मूत्रमें पथरीला भाग मिलारहता है उसकीभी कलम बनाते है । विशेष देखनाहो तो डाक्टरकी पुस्तकोंमें देखो ॥

मूत्रपरीक्षाकीतरकीव

वैद्यको उचित है कि मूत्रकी रंगत, स्वच्छता, दुपितता (भैलापन) गंध, तोल, और गर्मी सर्दी आदि सब जाहिरी अवस्थाओंका निश्चयकरना चाहिये ॥

तहां रोगीके मूत्रकरतेही (टेस्पपर) अर्थात् परीक्षाकरनेके कागदसें (जो हल्दी और बनास्पतीके नीले रंगसे रंगा हुआ होता है) परीक्षा करे । यदि मूत्रमें तेजवाची भाग अधिक होगातो उसमें हरा कागज डालनेसें सुखे होजायगा । और मूत्रमें सारका भाग अधिक होगा तो हल्दीके रंगे कागदका रंग भूरा और सुर्गिलिये हो जायगा और तेजावसें सुर्भ हुआ कागज उममें फिर पहलो दशा-में आय जावेगा ॥

यदि परीक्षाके समय सार प्रतीत होयतो यह निश्चय करना कि यह विकार अमोनियाके कारण है या और किसी कारणसें । यदि अमोनियाके कारण होगा तो उस कागजको सुगानेमें । रंग उदजावेगा और अकलीया हो-

गा तो रंगज्योका ल्यो बनारहेगा ॥ यदि बनसकेतो २४ घंटेका समग्र मूत्र लेकर नापे और (यूरेनामेटर) मूत्रमापक यंत्रद्वारा उसकी स्पेसिफिकग्रावटी मालूम करनी चाहिये :

(यूरेनामेटर) मूत्रमापकयंत्र.

एकछोटासा यंत्र शीशेका या पीतलका बनाहुआ होताहै जिसका अंग्रजीमे यूरेनामेटरकहतेहै जिसका चित्र इस खंडके आदिमें देखो उसके साथ एक ग्लास होताहै, जिसमें नंबर की रेखा खिचीहुई होतीहै । उसमें स्पेसिफिकग्रावटीके निश्चयकरनेके समय पूर्वोक्त ग्लास अथवा किसी पात्रको समानभूमिमें रखकर यूरेनामेटरको उसमें डालके देखो तोयूरेनामेटरकी डंडी जिस नंबरके साहनेठहरीहो उसपर हजार और मिलायदेनेसै स्पेसिफिकग्रावटी मालूम होजातीहै । जैसे १५ के नंबर पर यूरेनामेटरकी डंडी ठहरी है तो मूत्रकी स्पेसिफिकग्रावटी (भारीपना) १०१५ हुई ॥

यदि यूरेनामेटर यंत्र न मिलसके तो यह रीतिकरे कि कांचके ढाटवाली बोटलका घडाकर उसमे साफजल भरके तोले फिर उसीके हिसाव माफिक मूत्रको भरके तोले तो मूत्रके भारीपनेका ज्ञान होजायगा ॥

जैसे कल्पनाकरो कि साफपानी बोटलमें ४०० ग्रैन आया फिर उसपानीको निकाल मूत्रभरके तोलातो ४०६ग्रैन हुआ तो ४०० ग्रैन पानीका भारीपना १००० हुआ तो ४०६ ग्रैन मूत्रका गुरुत्व १०१५ होगा एकग्रैन १५ मासेका होताहै ॥

खुर्दवीनयंत्रकावर्णन

मूत्र परीक्षा आदिमें खुर्दवीनका अधिक काम पडताहै अतएव प्रसंगवस उसका वर्णनभी इसी स्थानपर होना ठीकहै ॥

आज कल इस खुर्दवीनका वैद्यकमें अधिक काम पडताहै । परंतु उसका मौल्य अधिकहोनेके कारण असंत प्रचार नहींहै ॥

खुर्दवीनदो प्रकारकी होतीहै १ सादा कांच जो केवल शीशाही होताहै । इसमें किसीचीजको देखोतो उसका बडा अक्स होकर नेत्रोंपर गिरताहै ॥

दूसरा मिश्रित जिसमें अनेक टुकडे होतेहै असलमें इसीको खुर्दवीन कहनाचा हिये यद्यपि खुर्दवीन अनेक प्रकारकी है, परंतु यहां वैद्यके वर्त्तनेयोग्यकहतेहै । असे खुर्दवीनमें पीतलकी एक टिकट्टी लकडीपर जडी हुई होतीहै । एक लंबी डंडी ऊपर और एकडंडी नीचे लगीहुई होतीहै ॥ तथा उसडंडीमें नलीलगीहुई होतीहै । नलीके नीचे तीन इंचकी लंबी और दो ढाई इंच चौडी एक रकेयी होतीहै जिसके बीचमें छेदहोताहै और छेदके दोनोतरफ लोहेकी कमानी या और

कोई ऐसी वस्तुहोतीहै जिसमें ग्लास आदि कोईवस्तु छेदके ऊपर रखी जायतो रखीरहे । इसीप्रकार इसके कितनेही टुकड़े होतेहै देखनेसें मालूम होजावेगा ।

सुर्दवीनकोकाममेलानेकीविधि

प्रथमसुर्दवीनके सब टुकड़े साफहो यदि मैले होतो सावरसें पोछढाले कपड़ेसें न पौछे क्यौकि कपड़ेके पौछनेसें शीशेमें लकीर होजातीहै ॥

देखनेके समय सुर्दवीनको कुछ तिरछीकरलेवे, और एक आंख बंदकरके देखे और सुर्दवीनके पेचको इतना घुमावे कि देखनेकी वस्तु दृष्टिके साझने आयजावे तथा सूर्यके प्रकाशमें परीक्षाकरे यदि रात्रिहोतो दीपकके उज्जलेमें परीक्षाकरे ॥

जब देखने की वस्तु ठीक २ दीखने लगे तब पैन्सिलसै उसकी तसवीर खींचले कि जिससै याद रहे, पूरा चित्र खिचजानेके बाद बंद करदे—इस प्रकार पूरी २ परीक्षाकरे इस जगे मूत्र देखनेके सब नियम ठीक २ नहीकहे यदि अधिक देखना होतो डाक्टरी पुस्तक सै देखो ॥

इति मूत्रपरीक्षासमाप्ता

आर्तवपरीक्षा

द्वादशाद्धत्सरादूर्द्धमापंचाशत्समाःस्त्रियः

मांसिमासिभगद्वाराप्रकृत्यैवार्तवंस्रवेत् ॥ १ ॥

अर्थ—बारहवर्षकेउपरांत पंचासवर्षकी अवस्थापर्यंत स्त्रियोंकेमहिनेकी महिने रजोदर्शका रुधिर भगद्वारा सदैव निकला कर्त्ताहै ॥

शुद्धआर्तवकेलक्षण

शशामृक्प्रतिमंयच्चयद्दालाक्षारसोपमम्

तदार्तवंप्रशंसंतियच्चाप्सुचविरज्यते ॥ २ ॥

अर्थ—शशेके रुधिरके रंगका अथवा लारके रसके समानहो और जिस रुधिरकं रंगेहुए वस्त्रको जलमें धोनेसें दाग जाय नही वो आर्तव उत्तम जानना

मासान्निप्पिच्छदाहार्त्नीपंचरात्रानुबद्धिच

नैवातिवहुलात्यल्पमार्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—जो महिनेके महिने पिच्छलता—दाह—और पीडारहित पंचरात्रिपर्यंत गिरने वाला—एवं न बहुत अधिक न बहुत थोडा परिमाणका निकलनेवाला आर्तव शुद्ध होता है. ॥

आर्तवकेयथार्थप्रवृत्तिकेदोष

तस्यायथाप्रवृत्त्याहिंसा रिरामनसास्तथा

व्याधयोवहवःस्त्रीणांजायंतेकच्छसाधनाः ॥ ४ ॥

अर्थ—यथा नियम रजोदर्शकी प्रवृत्ती न होनेसे स्त्रियोंके शारीरिक और मानसिक विविध कष्टसाध्य पीडाओंकी उत्पत्ती होती है ॥

रूनायूनारक्तयंत्राणांपाचकाम्नेश्वजायते

व्याहृतिव्याहृतेतस्मिन्सुस्थितिर्नियतेभवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—नियम पूर्वक रजोदर्शहोनेसे त्वाणु-रुधिरयंत्र-और पाचकाम्नि ये सब क्रिया उत्तम प्रकारसे निर्वाहित होती है। रक्तसावके रुकनेसे पूर्वोक्त क्रियानों में विपरीतता होती है अतएव स्त्रीजातिकी संपूर्ण पीडा और विषयका ज्ञान करना अत्यंत आवश्यक है ॥

ऋतौकंठूयनंयोनौक्वचिदंगेचवेदना

बाहुल्यंस्वल्पतोवापिचानुबंधित्वमस्यवा ॥ ६ ॥

संरोधःसर्वथावापिवेद्यान्येतानियत्ततः

आमयेष्वखिलेष्वेवाभिपग्भिर्योपितांसदा ॥ ७ ॥

अर्थ—ऋतुके समय योनिमें खुजलीचले-कमर-तलपट अथवा अन्य किसी-स्थानमें पीडा-रुधिरसावकी आधिक्यता-वा अल्पता-अथवा अधिक कालपर्यंत रुधिरका जाना और रुधिरका सर्वथा बंद होजाना इत्यादि विषयको वैद्यजानेइसी प्रकार सर्व समुदाय विशेषकी परीक्षा करके फिरस्त्रियोंकी चिकित्साकरनी चाहिये

इतिआर्तवपरीक्षा

मलपरीक्षा

शुद्धितं फेनिलं रूक्षं धूमलं वातकोपतः ।

वातश्लेष्म विकारे च जायते कपिशं मलम् ॥

अर्थ—वातके कोपसे रोगीका मल (दस्त) दृढाहुआ, झागदार, रूखा, और धूएके रंगका होता है। वातकफकेविकारमें मल कालालालमिले रंगकाहोताहै॥

१ मलका प्रमाण—अवस्था और प्रकृतिके अनुसारहै। जैसे अधिक भोजन वाले बालकोंके दिनमें कई बार दस्तहोताहै युवा पुरुषोंके १ बार,

बद्धं सुत्रुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् ।

पीतश्यामं श्लेष्मपित्तादीषदाद्रं च पिच्छलम् ॥

अर्थ—वातपित्तके रोगमें वैधाहुआ, दूटा, पीला, श्यामवर्णका मल होता है ।
कफपित्तके रोगमें पीला, श्याम और कुछगीला एवं मलाईदार दस्त होता है ॥

श्यामं त्रुटितपीताभं बद्धं श्वेतं त्रिदोषतः ॥

अर्थ—त्रिदोषकेकोपसै. काला, दूटा, पीला, वैधाहुआ, औरसपेददस्तहोताहै ॥

दुर्गंधः शिथिलश्चैवविष्टोत्सर्गो यदा भवेत् ।

तदा जीर्णं मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिभाष्यते ॥

अर्थ—जिस रोगीका मल दुर्गंधयुक्त, शिथिल, उतरे उसको दोषज्ञ वैद्य जीर्णमल कहते है. ॥

कपिलं गुंठियुक्तं च यदि वर्चो वलोक्यते ।

प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥

सितं महत्पूतिगंधं मलं ज्ञेयं जलोदरे ॥

अर्थ—जिसरोगीका अग्नि केसदृशवर्णवान् और गांठदारमलहो वो क्षीणमलदोषसँ दूषितजानना और जलंधररोगीका मल सपेद बहुतसा, दुर्गंधयुक्तहोताहै ॥

श्यामं क्षयेत्वामवाते पीतं सकटिवेदनं ।

अतिरूष्णं चातिशुभ्र मतिपीतं तथारुणं ।

मरणाय मलं किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवं ॥

अर्थ—क्षयरोगमें मल काला होताहै, आमवातसँ कमरमें पीडा करता हुआ पीलेरंगका दस्तहोताहै, और अत्यंत काला, अत्यंत सपेद, अत्यंत पीला, अत्यंत लाल रंगका और अत्यंत गरम दस्त होय तो उस रोगीकी अवश्य मृत्युहोय ॥

बृद्ध पुरुषोंके और जिनको अधिक बैठे रहनेकाअभ्यासहै उनको एक वारसँ भी कम दस्तहोताहै । अब कहतेहै कि जिनरोगोंमें दस्तअधिक आतेहै वह येहै । जैसे—आंतोंमें गांठ और सूजन होनेसँ, दुग्धभोजन अथवा अपाचक भोजन करनेसँ, अथवा जुड़ाव लेनेसँ अधिक दस्त होतेहै । एवं आंतोंमें धाव होनेके कारण, देहमें अधिकगर्माके कारण, तथा व्याव हवा के पलट जानेसँ, एवं भीतरी चोट लगनेसँ, शोक, चिंता, और भय आदिकारणोंसँ इस मनुष्यके अधिक दस्त होते है ॥

मिली हुई लोह भस्म आदि काली वस्तु खानेसँ दस्त काले रंगका होताहै पतंग आदि

वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविट् ।

रक्तवर्णमलं किञ्चिन्मलंश्वेतं कफोद्भवम् ॥

अर्थ—वादीसै काला, पित्तसै पीला, और किञ्चित् लाल, कफसै सपेदरंगका मलहोताहै ॥

आमं वा श्वेतजं प्राहु मिश्रितं द्वंद्वजं वदेत् ।

अपक्वं स्यादजीर्णं तु पक्वं स्वस्थमलं भवेत् ॥

अर्थ—सपेदरंगका मल आमका होताहै, और जिसमें मिश्रितरंगहो वह द्वंद्वज जानना, अजीर्ण रोगीका मल कच्चा और स्वस्थ मनुष्यका मल पक्काहोताहै ।

अत्यग्नौ पीडिते शुष्कं मन्दाग्नौ तु द्रवीकृतम् ।

दुर्गंधं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥

अर्थ—तीक्ष्णाग्निवाले पुरुषकामल गांठदार होताहै । और दुर्गंध तथा चंद्रकायुक्त मलहोनेसै रोगीअसाध्यवेसाजानना ॥

वद्धं श्यामं मरुति कुपिते पित्तकोपे तु पीतं ।

पानीयामं सफेनं कफरूपि च मले सान्द्रपांडुरवर्णं ॥

रक्ते क्रुद्धे सरक्तं जलनिभमथ तत् द्वंद्वकोपेद्विलिंगं ।

सर्वदोषै सरोपै भवतिकिलमलं रोगिणः सर्वलिंगम् ॥

अर्थ—बंधाहुआ, कालामल, वादीकेकोपसैहोताहै । पित्तकोपसै पीलावर्ण, कफकोपसै पानीकेममान, श्लेष्मयुक्त, सघन, औरसपेदहोताहै । और रुधिरके कोपकरके रक्तवर्ण, पानीके समान मल होताहै । द्वंद्वजदोषोंके कोपसै दो दोषोंके चिन्हमिलाहोताहै । और त्रिदोषके कोपसै तीनो दोषोंके चिन्ह मिला रोगीका मल उतरताहै ॥

दुर्गंधि श्यामवर्णं मलमरुणनिभं पांडुराभं विचित्रं ।

मांसाभं मेचकं तत्प्रभवति मरणायैव रोगान्वितस्य ॥

विस्रं शैथिल्ययुक्तं मुहुरिति निपतत्स्यादजीर्णाच्च वर्च्चो ।

दिङ्मात्रं चैतदेवं निगदितमगदै रक्षणं वर्चसोऽपि ॥

औषधसै लाल रंगका, हरासाग आदिमें हरे रंगका, रेवतचीनी आदिमें पीले रंगका दस्त होताहै इसी प्रकार अनेक कारणोंसै अनेक रंगका दस्त होताहै ॥

अर्थ—दुर्गंधयुक्त, काला, किंचित्लाल, सपेद, अनेकवर्णयुक्त, मांसकेसमान, सुरमईरंगका अंसा मलहोनेसैरोगीभरे । औरअजीर्णसै दूटाहुआ, शिथिल, वारंवार अंसा मल होताहै । ये वैद्योंको किंचित् दिङ्मात्र लक्षण मलके कहेहै । बाकी कुशलवैद्य अपनी बुद्धिसै विचारलेवे ॥

॥ इति मलपरीक्षासमाप्ता ॥

मुखपरीक्षा

वाते च मधुरास्यत्वं पित्ते च कटुकं तथा
मधुराम्लं कफे चैव सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे
अजीर्णे घृतपूर्णस्यात्कषायं वाग्निमांशके

अर्थ—अब मुखपरीक्षा कहतेहै जैसेकि वादीके रोगसै रोगीका मुख मीठाहोताहै पित्तके रोगसै कहुआ और कफके रोगसै मुख मीठा और खट्टा होताहै एवं सन्निपात वालेरोगीकेमुखका सवाद मीठा, कहुआ और खट्टा होताहै अजीर्ण रोगमें मुखका सवाद घृतपूर्णके सदृश होताहै और मंदाग्निमें मुखकासवाद कपेला होताहै इसप्रकार वैद्य मुखकी परीक्षा करे

अजीर्णावस्थामें मल कटोर बडे लंबे २ अथवा ऊँटके मैंगनेके समान गोल २ उतरता-है । हैंजामें पतला और चाबलके घोमनकासा दस्त होताहै । आमचात' वचासीर, पथरी मूत्रगर्भ, इत्यादि रोगोंमें वारंवार दस्त की हाजत होतीहै इत्यादि ॥

डाक्टरीमतानुसार मुखपरीक्षा.

सब लक्षणोंमें प्रथम मुखके लक्षण जानना वैद्यको अत्यावश्यक है । क्योंकि जब रोगी आता है तो प्रथम वैद्यकी दृष्टि मुखपरही जातीहै और मुखपरीक्षा द्वारा अनेक रोगोंका ज्ञान होता है ॥

जैसें पीडाके पश्चात् मुखपर प्रसन्नता और उम्मेद प्रगट होय तो उत्तमहै परंतु अकस्मात् किमी घोर रोगकी तत्काल निवृत्ति होजाय और मुखपर प्रसन्नता और देदीप्यमानता दीखे तो यह बुराहै ॥

यदि मुखसै किसीप्रकारका कोई चिन्ह-जैसे रोगके बिना होठ न हिले न नेत्र अच्छीतरह खुले तो यह निर्वलताका धर्म है । पुराने रोगोंमें मुखचमकीला होताहै । प्राय मुजाक-गरमी-या भीतरी अन्य २ रोगोंमें मुखसै फिकर और पीडा प्रतीत

जिह्वापरीक्षा

जिह्वा शीताखरस्पर्शा स्फुटिता मारुताऽधिके । रक्तश्यामा
भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छला ॥ कृष्णासकण्टका शुष्का-

होतीहै । अच्छीरीतिके विचार करनेसें मानसिक विमारियोंमें तथा अन्यघोर विमारियोंमें मुखपर चिंता और जीनेसें निरासता प्रगट होतीहै ॥

वावरेपनेमें भोलापन बिनाकारण हंसी-आती है । मृगीरोगमें निर्वृद्धीपना-और सुस्ती प्रतीत होतीहै दिवानेका मुख भयंकर प्रतीत होताहै । नामर्दोंका मुख सरमिंदगी लिये होताहै ऐसा मनुष्य किसीसें आंख नहीं मिलाता ॥

मृत्युके समय मुखपतला-दुर्बल-नाककीआगेकीहड्डी निकली हुई कनपटी वैठी हुई होठ लटकते गालपिचके त्वचा सिमटी हुई-और काली तथा नाकके वाल और पलकोंपर सपेद पिलास लगाहुआ प्रतीत होताहै इत्यादि अनेक चिन्ह होते है ये लक्षण अशुभहै. ॥

रुधिरके पतले होनेके कारण रोगोंमें मुखफीका और कुछ मूजनलिये होताहै पित्तज्वरमे मुख लालरंगका सरतानमें चिंत्तायुक्त और नीलतालिये सीसेके रंगका होताहै गरमीके रोगमें मट्टीके रंगका पांडुरोगमें पीला तिछीके बडीहोनेमें मैलयुक्त और फीका होताहै ॥

हैजा तथा श्वासके अवरोधमें नीलेरंगका मृगीकी वारीकेपूर्व वैंगनी रंगका मुख होजाताहै । इत्यादि और भी अनेक चिन्ह होतेहै ॥

इति मुखपरीक्षा समाप्ता

शिह्वाके देखनेसें बहूया रोगोंकी परीक्षा होतीहै-जैसे रुधिरका भ्रमण दोषोंकी कमी बसीकाहाल आदि और प्राय आमाशयकी अवस्था उत्तमरातिसें जानाजाती है । इसका यह कारणहै कि लुआनदार भिछीकेद्वारा इन रोगोंका विशेष मबंध रहताहै ।

प्राय रोगोंकी आद्य अत्यावस्था जाननेमें जिह्वामें बहुत सहायता मिलतीहै । और आरोग्यावस्थामेंभी सर्भ्राणियोंकी जिह्वाका स्वरूप एकसा नहीं होता जैसे-किसीकिमी. की लाल किमीकी सपेद, किमीकी स्वच्छ, और किसीकी मलिन एवं किमीकी नम्र, और किसीकी कठोर होती है । किमीकी जिह्वा बाहर निकालनेके समय सिथिल और किसीकी नौदार आदि चिन्होंमें चिन्हित होतीहै ।

जब मनुष्य सोकर उठताहै तो जिह्वापर मैलकी पतली पपड़ीपी जम जाती है । जां

सन्निपाताधिके तु सा॥मिश्रिते मिश्रिता ज्ञेया सर्वलक्षणवर्जिता

अर्थ—जिस जीभका शीतल कठोरस्पर्शहो तथा फटीहुई प्रतीत होतो वाताधिक्य जानना । पित्ताधिक्यमें लाल और कालेरंगकी, एवं कफाधिक्यमें सपेद और अंत्यत कफसें ल्हिही हुई होतीहै । संनिपातमें जीभ कांटेदार, सूखी, और काली होतीहै । और मिश्रित दोषोंसे जीभकाभी रंग मिश्रत होताहै ।

**शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटिता रसनानिलात् । रक्ताश्मामा
भवेत्पित्ताह्निपाद्रा धवला कफात् ॥ परिदग्धा खरस्पर्शकृ-**

मनुष्य मुख खोलकर सोते है उनकी जीभ सोकर उठनेके बाद सुखीसी प्रतीत होती है । बहुतसें रोगोंकी अवस्था जिब्हाके द्वारा प्रतीत होती है । परंतु हिंदुस्थानी मनुष्योंको पान तमाखू खानेके कारण जिब्हा परीक्षा करना कठिन है । तथापि थोडासा वर्णन हम करते है ।

जैसें जिब्हाका आकार, सूखी, गीली, रंग, धकावट, आदि वस्तुहै॥

प्रथम वैद्यको जिब्हा निकालनेकी व्यवस्था देखनी आवश्यकहै क्योंकि अनेक रोगोंमें अनेक प्रकारकी अवस्था होतीहै जैसें ज्वरमें निर्बलता या मस्तकके रोगोंमें रोगी जिब्हाको बाहर नहीं निकालसकता । वातके बहुतसे रोगोंमें जिब्हा थरथरातीहै और रोगी मलेप्रकार वात्सीलाप नहीं करसक्ता । उसीप्रकार संनिपातावस्थामें भी जिब्हा थरथराती है । उन्मत्तावस्थामें रोगी जिब्हा निकालेहै और फिर तत्क्षण भीतर करलेताहै । अर्द्धांगवातमें जिब्हा एकओर दबीसी प्रतीतहोतीहै ॥

रोगके निमित्त कर्के जिब्हाका आकार न्यूनाधिक होताहै । परंतु न्यूनता बहुत कम्प होनाहै जिब्हाका आकार न्यूनहोना केवल रुशावस्था आदिके कारणसें होताहै ॥

जिब्हाका बढना इन कारणोंसें होताहै जैसें—जीभमें सूजन, शीतला, लालज्वर, गरमी, पारद आदि दुष्ट धातुके प्रक्षणसें, तथा मुखकाआना आदि ॥

आरोग्यावस्थामें मुख खोलकर सोनेके कारण जिब्हा सूखी रहतीहै परंतु किसी रोगके कारण धूक थोडा प्रगटहोताहै जैसें—ज्वर, देहकेभीतरकादाह, और रूपवान्निड्डीकेदाहमें जिब्हापर सूखापन कालैच कठोरता और मलिनता होतो मालूम होताहै कि रतूवत्वे न प्रगट होनेसें रुधिरमें संमीयत होजानेके कारण अतिनिर्बलता आगईहै ॥

जिब्हाके शुष्क और मलिनावस्थाके पश्चात् गीलापन होजावेतो उत्तम चिन्है अतएव जैसे २ ज्वर उतरताहै उसीप्रकार कमसें धीरे २ जीभके किनारोपर आर्द्रतातीहै फिर धीरे २ सब पर आतीहै ॥

आरोग्यताकी अपेक्षा रोगमें जीभका वर्ण पलट जाताहै जैसें—रुधिरकी न्यूनतामें ध्रं

ष्णा दोषत्रयाधिके ॥ सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषाद्वितयलक्षणा ॥

अर्थ—वादीसैं जीभ शाकपत्रके समान रूखी, और फटीहुई होतीहै। पित्तसैं लाल और काली एवं कफसैं ल्हिसीहुई गीली और सपेद होतीहै। त्रिदोषकी अधिकतासैं जीभ जलीहुईसी, खरदरी, और कालीहोतीहै। एवं द्विदोषकी आधिक्यतासैं दोदोषोंके मिले लक्षण होतेहै।

शब्दपरीक्षा

गुरुस्वरो भवेत् श्लेष्मीस्फुटवक्त्रा च पित्तलः ।

उभाभ्यां रहितोवातः स्वरतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ—अब शब्द परीक्षा कहतेहै—भारीस्वर कफरोगीका और पित्तरोगीका स्प-

हको सूजनतामें जिब्हाका रंग फीका होताहै श्वास रुकनेकी दशमें नीला या वैजनी, तालु अथवा हलकआदिकी सूजन तथा पित्तज्वरमें जीभ संपूर्ण लाल होतीहै मद्यजन्य ज्वरमें तथा अजीर्णमें केवल नौक और किनारे लाल होतेहै ॥

मूर्च्छा—हैजा—और श्वासरोधमें जिब्हाका कार्य मंद होजाताहै और जिब्हाकी सूजनमें अधिक ॥

जिस समय जिब्हा सपेद—देदीप्यमान और मैलसैं एकसी आच्छदितहो तो घोरज्वर जानना यदि मैल पीलेरंगका होतो हृदयकारोग तथा रुधिरमें पित्तका मिलापहै अंसा जानना यदि जिब्हाका मैल भूरा अथवा श्याम होवे तो मिलाप रुधिरके कारण आत्मशक्तिका नष्ट होना सिद्ध होताहै ॥

रक्तज्वर (लालज्वर) में जीभपर सपेदरंगकामैल जमाहुआ होताहै और उसमें लालरंगके कांटे उठे हुए प्रतीत होतेहै और जैसे २ वह मैल दूर होतानाताहै—दाने उठे हुए सहतूतके समान प्रतीत होतेहै जिब्हाकी नौक और किनारोंसैं धीरे २ मैल दूर होने लगे तो यह चिन्ह शुभहै परंतु जिब्हाके मध्य गत उच्च विभागमें बड़े २ भाग पृथक् २ हो तथा जीभ लाल नहो और चमकदार हो जाय तो चिरकालमें पूर्ण, आरोग्यता होतीहै किंतु रोगके फिर उलटनेका संदेह रहताहै और जब द्वितीय वार रोग प्रगट होताहै तब पूर्वोक्त जिब्हाका मैल भी पूर्व नियमानुसार जमजाताहै ॥

यदि जिब्हाका एकही वार मैल दूर हो जाय और जीभ तत्काल घावके समान दरारदार काली और चमकदार होजाय तो यह चिन्ह रोगीके विषयमें अनुमहै। गरमीके रोगमें जिब्हाके नीचे और किनारों पर छोटे २ घाव और फटी हुई होतीहै। बालकों के मुत्त आनेमें जिब्हापर सपेद रंगके दाग पड़ जातेहै ॥

ए उच्चार होता है, और वात रोगीका इनदोनोंके लक्षणों करके रहित उच्चार (आवाज) होती है इसप्रकार स्वरस्रै रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये ।

नेत्रपरीक्षा

अथातः संप्रवक्ष्यामिनेत्रस्यचपरीक्षणम् ।

येषांविज्ञानमात्रेणरोगचिन्हंप्रकाशते ॥

अर्थ—अब हम नेत्रपरीक्षाको कहते हैं जिसको जाननेमात्रसे ही रोगोके चिन्हप्रकाशितहोते हैं ॥

वातजन्यनेत्र.

रूक्षाधूम्रातथारौद्राचलाचांतज्वलत्यपि ।

दृष्टिर्यदातदावातरोगरोगविदोजगुः ॥ १ ॥

अर्थ—रूक्ष धूँआकरंगके भयंकर और भीतरसे जाज्वल्यमान ऐसी दृष्टि-वात रोगीकी वैद्योंने कही है ॥

पित्तकफजन्यनेत्र.

दीपद्वेषितसन्तसंवीतंपित्तेनलोचनम् ।

जलाद्र्ज्योतिपाहीनंस्निग्धमंदं कफेनतत् ॥ २ ॥

डाक्टरीमतसँ शब्दपरीक्षा.

बहुतसे रोगोंमें रोगीसँ बोला नहीं जाय । जैसे संनिपातकी वेहोसी—बहुतसे रोगमें रोगी समझसके परंतु बोल नहीं सके जैसे रोगको अंगरेजीमें एफेसीया कहते हैं कथावांचनेवाले—चकील—पादरी—और जो अत्यंत पुकारके बोले हैं उनकी आवाज ऐसी बैठजाती है किप्रतीत नहींहोती गरमके रोगमें सीटीदेनेका शब्द निकलने लगता है निर्वलताके कारण शब्द अत्यंत मंद होजाता है स्वप्नगीमें या शूल आदि पीढाके कारण रोगी चिल्लाने लगता है इत्यादि जानने ॥

डाक्टरीमतानुसारनेत्रपरीक्षा

हृदय यंत्र और मूत्रापिंडकी क्रियामें जब कुछ विगाड होता है अथवा उदरका कोई रोग उत्पन्न होनेसे प्रथम नेत्रके पलक सूजते हैं । प्रमरोगमें नेत्रोंके पलक मीचनेमें अत्यंत कष्ट होता है । मृगीरोगकी पालीके समय नेत्रके पलक वारंवार कंपित होते हैं फुफ्फुस मस्तिष्क और हृदययंत्रमें रुधिरके रुकनेसे तथा उस रुधिरकी गरमके वेगसे नेत्रका आकार पूर्वापेक्षा बड़ा होता है

अर्थ—जिसप्राणीको दीपक अच्छा नलगे तथा गरम पीले अंसे पित्तरोग-वाले रोगीके नेत्र होतेहै, तथा जलसँ आर्द्र ज्योतिहीन क्षिग्धऔर मंद अँसी-दृष्टी कफरोग वालेकी होतीहै तथा नेत्रसपेद होतेहै

द्वंद्वजऔरसंनिपातजन्य

द्वंद्वदोषेभवेन्मिश्रतूर्णतूर्णविलोचनम् । श्यामवर्णचनिर्भुगं
तन्द्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥ रौद्रं चरक्तवर्णं च भवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः

अर्थ—दोदोषके मिलनेसँ दृष्टिभी मिश्रित होतीहै । अर्थात् वात पित्तसँ धूम्र और पीले, कफपित्तसँ पीले और कीचडसँ परिपूर्ण, इत्यादि त्रिदोषके कोपसँ नेत्रकाले विकराल तन्द्राऔर मोहयुक्त वीभत्स और लाललाल होतेहै ॥

असाध्यलक्षण.

एकचक्षुर्यदाभीमं द्वितीयं मीलितं भवेत् ॥ ४ ॥

त्रिभिर्दिनैस्तथारोगी सयातियममंदिरम् ।

अर्थ—जिसरोगीका एक नेत्र भयंकर और दूसरा मिचाहुआहो वो तीनदिनमें यममंदिर अर्थात् मृत्युके मुखमें जाताहै ॥

ज्योतिर्विहीनं सहस्रारोगिणो यस्य लोचनम् ॥ ५ ॥

इषत्कृष्णं सनियतं प्रयातियमसादनम् ।

अर्थ—जिस रोगीके नेत्र अकस्मात् ज्योतिहीन और कुछकुछ कालेहो वह निश्चय यमालयको जायगा अँसाजाने ॥

सरक्तं कृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रेक्षते यदा ॥ ६ ॥

इतिलिङ्गैर्विजानीयान्मृत्युरेव न संशयः ।

अर्थ—जो रोगी लाल और काले तथा भयानक नेत्रसँ देखे इनलक्षणोंसँ वैद्य जाने किं इसरोगीकी मृत्युहोवेगी ॥

अत्यंत रुधिरके निकलनेसँ अत्यंत जुझाव होनेसँ राज यक्ष्मादि क्षयरोग और निराहारव्रत इत्यादि कारणोंसँ नेत्र अत्यंत भीतरको बैठ जातेहै यदि एकनेत्र बैठनावे और दूसरानेत्र यथावस्थित रहेतो उसकी दर्शन संपाद कर्रीं स्नायूका पक्षाघात हुआहै अथवा किसी प्रकारके शिरारोगके कारण यह दशाहुई है ऐसा जाने

यदि दौनेनेत्र अत्यंत लाल होवेतो मस्तिष्कमें रुधिरका संचय हुआ जानना पांडुरोगमें नेत्र पीले रंगके होतेहै सरकमां मेनेत्रके सपेद भागमें दाह होताहै मस्तिष्कके उद्वेगन अथवा मस्तिष्कमें रुधिरके रुकनेमें- मृगी- सन्वासरोग और अफाँवके लानेमें

एकदृष्टिरचैतन्योभ्रमन्स्फुरिततारकः ॥ ७ ॥

एकरात्रेणनियतंपरलोकपथंब्रजेत् ।

अर्थ—जो एकदृष्टिसँ देखे होस होयनहीं तथाजिसकीदृष्टी चारचोतरफभ्रम
णकरे और तारे फडके वह एकरात्रिमें निश्चय परलोककोपधारे ॥

यामलेऽपि.

शुष्कास्यःश्यामकोष्ठोऽप्यसितरदततिःशीतनासाप्रदेशः ।

शोणाक्षश्चैकनेत्रोलुलितकरपदःश्रोत्रपातित्ययुक्तः ॥

शीतश्वासोऽथचोष्णश्वसनसमुदयःशीतगात्रप्रकंपः

सोद्वेगोनिःप्रपञ्चःप्रभवतिमनुजःसर्वथामृत्युकाले ॥

यामलग्रंथमें भीलिखाहै कि जिसका मुखसूखजाये कोष्ठकाला तथादांतकाले
नाकजिसकी शीतल एक नेत्रलाल हाथ पैर गिरेपडे कानोंसँ सुनेनही कभीशीत
और कभी गरमी लगे-गरमश्वास निकले-सरदीसँ देह काँपे-तथा वह रोगी
उद्वेग युक्त और प्रपंच रहितहो एलक्षण प्राणीकी मृत्युके समय जानने ॥

॥ इति नेत्रपरीक्षा समाप्त ॥

स्पर्शपरीक्षा

पित्तरोगी भवेदुष्णो वातरोगी च शीतलः ।

पिच्छलः श्लेष्मरोगीस्यात्रिलिंगात्संनिपातवान् ।

आर्द्रकः स भवेच्छ्लेष्मा स्पर्शतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ—अब स्पर्शपरीक्षाकहतेहै-जैसैकिपित्त रोगवालेमनुष्यका देह गरम हो-
ताहै । वातरोगीका शीतल और कफरोगीका देह पसीनोसँ लिहसाहुआसा होता-
है । और संनिपातवाले रोगीका देह तीनोदोषोंके लक्षणयुक्त होता है । अथवा
कफरोगीका देह गीलाहोताहै । इसप्रकार वैद्यको स्पर्शसँ परीक्षाकरनी चाहिये

नेत्रके तारे संदुचित होनातेहै मस्तिष्कसँ रुधिरके निकलनेमें तथा सन्यास और मूर्च्छा
आदिरोगके अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होनेसँ तारे फटे और फैले हुएमै दीखतेहै

धतूराखानेसँ या नेत्रके चास्योत्तरफलगानेसँ कनीनिका फैल जातीहै घोर उन्माद
रोगमें नेत्र अत्यंत चमकीले तथा स्नायुकी दुष्टतामेंनेत्र प्रभारहित हांतेहै ।

त्वचा वा स्पर्श

त्वचासै देहकी उष्मा (भाफ) निकलती, रहती है इसीकारणसै देहमें समान गरमी रहेहै

युवावस्थावाले प्राणियोंके देहसै २४ घंटेमें ३० औन्सके लगभग भाफ निकलतीहै यदि इससै न्यून निकलेतो देह सूखी रहतीहै और अधिक निकलेतो देह गीली रहतीहै

हैजा- ज्वर आदि रोगोंमें त्वचा शुष्क रहतीहै और दाह रोगमेंभी ऐसाही होताहै। देहमें गीलापना पसीनेके कारण होताहै परंतु पसीने आनेके कारण पृथक्है जैसे साधारण ज्वरमें पसीना प्रसिद्धहै परंतु विषमज्वरमें पसीने बोट आतेहै क्योंकि उसमें निर्वलता अधिक होजातीहै मरनेके थोड़ी देर पहले पसीना शीतल निकलताहै

यह प्रसिद्ध नियमहै कि दुर्बलताके कारण देहका परिश्रम न्यूनहोजाताहै तब देह शीतल होजाताहै और शीतल पसीने निकलने लगतेहै जैसे कि प्राय विश्वाचिका (हैजा) में होयहै अथवा हायपैर अत्यंत शीतलहो और देहकेभीतर दाह हो तथा बेचैन चिंतायुक्त दीसै तो जानना अवशीघ्रही यह रोगी मरेगा

बहुतसे रोगोंकी परीक्षा देहकी गरमीके द्वारा होतीहै परंतु स्पर्शसँ ठीक २ निश्चय नही होता अतएव बुद्धिमानोंने इसके वास्ते यंत्र बनायाहै जिसको थर्मामिटर (Thermameter) कहतेहै इसके द्वारा गरमीकी न्यूनाधिक्यता ठीक २ होजातीहै

थर्मामिटर यंत्र अनेक प्रकारकाहै परंतु सैल्फरैजिस्ट्रिंग सवमें उत्तम होताहै इसकी तसवीर इस जिल्दके प्रथमही दीनीहै सो देखलेना

थर्मामिटर लगानेकीविधि

थर्मामिटर लगानेका मुख्यस्थान बगलहै परंतु आवश्यकता के समय अन्य अन्य मुखादि स्थानमेंभी लगातेहै। यदि होसकेतो थर्मामिटर लगानेके पूर्व एकघंटे रोगीको लिटाए रखले यदि शरदीकी ऋतु अथवा काबुल कस्मीर आदि शरदेश होवे तो थर्मामिटरको हायसँ मलकर गरम करले कि पारा ९४ चौरानचे अंशपर्यंत चढ़जावे और गर्मऋतु वा गर्मदेश जैसे द्रविड आफ्रिका आदि हो तो शीतल जलमें डुबायकर नीचे उतारलेवे फिर जहां लगाना होवे उसजगह लगावे

कमसँ कम ५ मिनट और बढसँ बढ २४ मिनट तक लगावे परंतु चौबीस

मिनट लगानेका बहुत थोडा कामपडताहै फिर उसको उजेलेमें लेजाकर देखे कि पारा कितने अंश चढाहै

और यहभी निश्चयकरेकि थर्मामिटर लगानेसैं पारा शीघ्र चढगया या धीरे? चढाहै प्राय ज्वरवाले रोगोंमें जवतक रोगकी गरमीकी ठीक अवस्था नहीं निश्चय करी जाय उससमयतक रोगीके रोग का निश्चय होंनाभी सहज बात नहींहै और यहभी ठीक नहींहै कि एकवारके थर्मामिटर लगानेसैं ही रोगका निश्चय होजावे किंतु वैद्यको उचित है कि प्रातःकाल और सायंकालमें लगावे तथा संभव हो तो दिनमे कईवार देहकी गरमी का निश्चय करे

आरोग्यके समय ९७- ३ सैं लेकर ९९ - ५ अथवा १०० सैं और औंसत ९८-४ पर्यंत होतीहै इससे कम या अधिक हों कर उसीजगे रहते समझना कि कुल न कुछ दोष है

परंतु यहभी यादरहै कि देहके प्रत्येक स्थान-प्रत्येकदेश प्रत्येक समय प्रत्येक अवस्थामें गरमी एकसी नहीं रहती जैसे-मुह आदिमें गरमी अधिक रहतीहै. ढके हुएकी अपेक्षा खुलेमें. छातीकी अपेक्षा हाथ पैरमे वालकोंकी अपेक्षा जवानोंके एवं जवानकी अपेक्षा बुढापेमें गरमीअधिकरहतीहै.

प्रातःकालसैं सायंकालतक गरमी अधिक होजातीहै एवं सायंकालसैं प्रातःकालतक न्यून अर्थात् २४ घंटेमें अनुमान १ $\frac{1}{2}$ डिगरी के चढाव उतारहोताहै. शरद मुल्ककी अपेक्षा गरम मुल्कमें गरमी अधिकहोतीहैं अर्थात् १०० अंश पर्यंत गरमी पहुच जातीहै

गरम जलके स्नानकरनेसैं गरमी बढजातीहै एवं शीतल जलमें न्हानेसैं अथवा किसीस्थानपर शरदीं पहुचानेसैं अधिक मानसिक परिश्रमसैं गरमी न्यून होजातीहै ॥

ज्वरमें अधिक गरमीका होना एक साधारण धर्महै इसीसैं १०१ दर्जेपर्यंत पारा चढनेसैं ज्वर हलका जानना १०५ दर्जेपर्यंत हो तो सामान्य-और १०६ सैं १०७ दर्जेपर्यंत होनेसैं भयानक ज्वर जानना-यदि इससैं भी अधिक अर्थात् ११० सैं ११२ दर्जेपर्यंत होनेसैं रोगीके बचनेकी आशा नहींरहे ! अर्थात् मृत्यु उसकी समीपही जाननी॥

बहुतसैं रोग देखनेमें थोडे होतेहै परंतु थर्मामिटरके लगानेसैं रोगअधिक होताहै तो मालूम होजाताहै बहुतसैं रोगी अपना रोग नहीं बतासकते जैसे पागलमनुष्य तो उनकी गरमीका हाल थर्मामिटरलगानेसैं प्रत्यक्ष होजाताहै

वालकोंमें प्राय अैसे भयानक चिन्ह दृष्टि आतेहै कि जिसे उनको मातापिता शोकवस होजातेहै परंतु थर्मामिटरलगानेसैं ठीक २ वृत्तांत मालूम होजाताहै

यदि वास्तवमें किसीप्रकारका अधिक रोग न होवे तो चाहे जैसे दुष्टलक्षण क्यों नहो परंतु चिंता नहीं होती

जब ९८ दर्जासँ एकभी दर्जागरमी बढेतो नाडीभी प्रत्येक मिनटमें १० गुनी बढ जातीहै जैसे ९८ दर्जेपर नाडी ६० होतो ९९ पर ७० एवं १०० दर्जेपर ८०० एवं १०६ दर्जेपर १४० होजातीहै इसीप्रकार और भेदकी बुद्धिमानोंको डाक्टरके ग्रंथोंसँ जानने चाहिये

प्लैक्समी मेटरयंत्र

पेट छातीके देखनेके निमित्त इन्हलैडके डाक्टरोंने एक यंत्र बनायाहै उसको प्लैक्समीमेटर कहतेहै इसयंत्रमें हाथीदांतकी एक तरुती दो इंच लंबी और १ इंच चौड़ी होतीहै उसके दोनोतरफ दस्ते लगे रहतेहै जिस्से पकडतेहै । दूसरीवस्तु एकपीतलकी हतौडीहोतीहै उसपर रवडलगी रहतीहै उसका दस्ता लकडीका होताहै वस जहां ठोकनाहो वहां प्लैक्समीमेटरके दस्तेको बाएहाथमें हतौडीको पकडकर एकसीचोटलगातेहै कि जो न अत्यंत धीरेसँ न बहुत जोरसँ जहां ठोकनाहो वहांपर मर्दोंमें कपडा हटाकर और औरतोमें एकमहिन कपडा बराबर एक सा फेलाकर और उसकी सिलवट दूरकरके बाएहाथकी मध्यमांगुली और तर्जनी खूब जमाकर रखते है और दाहिने हाथकी उक्त दों उंगलियोंसँ इसप्रकार ठोकेतेहै कि हाथ न हिले केवल पहुचेको हरकत हो जिससँ चोट एकसी लगे और ऊंगलिया चोट देनेके समय सीधी रखतेहै तिरछीनहीं रखे और ध्यानसँ पर कशनकी आवाजसुने इत्यादि इसका चित्रभी इस पुस्तककी आदिमें है सो देखना ॥

स्टिथसकोपयंत्र

यह यंत्र अनेक प्रकारकाहै । परंतु मचलित यंत्रहलकी लकडीकी नली चार इंचसँ आठ इंच पर्यंत लंबी होतीहै एकतरफका शिरा बडा और चपटा होताहै जिसपर कान लगाकर सुनते है और दूसरा छोटा होताहै जिसको रोगीके देहपर रखतेहै-इसके द्वारा आवाज सुननेमें बहुत सुगमता पडती है इसकामी चित्र इसजिल्दके आदिमें लिखीहै एक स्टैथिसकोप ऐसाभी बनातेहै जिस्से छातीके दोनो बगलका शब्द सुनाजापहै उसकानाम फ्लैजिविल स्टैथिसकोपहै ॥

अवस्था

रोगज्ञानमें अवस्थाका परीक्षणभी एकमुख्यकारण क्योंकि प्रत्येक अवस्थामें इसमाणीके देहके विभागोंमें कुछकुछफरक पडजाताहै अतएव रोगभी प्रत्येकउत्पन्न

होतेहै तहाँ मुख्य अवस्थातीनहै प्रथमवालक—दूसरीयुवा—और तीसरी वृद्धावस्था॥

तहाँ वालक अवस्थामें थोड़ीभी सरदी लगनेसँ वालकबीमारहोजातेहै । दांतनि-कलनेके समय प्रायज्वर, खांसी, फोडा, फुंसी—नेत्रदूखनेके रोग होतेहै ॥

दूसरीयुवावस्थामें २५ वर्षतक शरीरके बढनेका कार्य परिपूर्णहोजाताहै अतए-व प्रायइसी अवस्थामें दोढ धूपके कारणशरीरके दूटनेफूटनेसँ मृत्युकाभयरहताहै॥

परंतु पच्चीससँ उपरांत पचास वर्षतक पथ्यपूर्वक आहार विहारसै रहेतो कोई रोगनही होते ॥

परंतु स्त्रियोंके यथासमय रजोदर्श नहोनेसै रोगप्रगटहोतेहै पचासवर्षके उपरांत तीसरी वृद्धावस्थाका अमल आताहै जिसमें क्रम २ सँ

हाथ-पैरआदिकमेंन्द्री और नेत्र नासिका आदिज्ञानेंद्री तथा मनइनका न्हास (घटती) होनेलगता है आखिरअत्यंत बुद्धाहोनेसै मरजाताहै इसप्रकारवैद्यको अवस्थाके सर्व कारणविचारके रोगीका यत्नकरना—

जाति

जातिके तीनभेदहै स्त्री पुरुष और नपुंसक परंतु नपुंसक इन्द्री दोनोंके बीचमें मानाहै उसका यत्न पृथक् कहींनहीलिखा—

जैसे प्रत्यक्ष पुरुषस्त्रीके बीचमें बहुत अंतरहै उसीप्रकार उनके रोगोंमेंभी अंतर जानना। पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अतिबली और दृढहोतेहै कारणकि उसके सबकार्य कठोर और परिश्रमके है। तथा प्राय पुरुष मादकवस्तु (भांग-अफीम-पोस्त आदि) के खानेवाले होतेहै इसी कारण उनको अनेकप्रकारके कष्टउठाने पढतेहै तथा तंदुरुस्तीके कारणोंको व सबव अपने रुजगारके नहीकरसके अतएव उनको महामारी आदि द्रूतके रोग असंत दुखदेतेहै ॥

स्त्रियोंका स्वभावकोमल और निर्बल होताहै और प्राय घरमें ही बैठीहुई स-बघरके कामोंको कराकर्ती है बाहर डोलना फिरना कमहोता है अतएव इन-को द्रूतके रोगभीकम बाधाकरे है

स्त्रियोंके निर्बलतासै रोगहोते है वो पुरुषोंकी अपेक्षा असाध्यकम् होते है उसका प्रत्यक्ष दृष्टांत यहीहै कि मनुष्य संख्या (मर्दुम सुमारी) के अनुसार पुरुषोंसै स्त्रीअधिकहै तथा स्त्रियोंके महिने की महिने रजोदर्शहोनेके कारण संचित दुष्टदोषानिकलजातेहै परंतु गर्भजन्य रोग प्रगटहोते है इसप्रकार वैद्यको जाति विचारकरके यत्नकरना चाहिये.

अथ कालज्ञानमाह ॥

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शंभुना स्वयम् ।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम कालज्ञानको कहते हैं । जो साक्षात् श्रीशिवने कहा है । जिसके जाननेमात्रसे ही यह मनुष्य त्रिकालज्ञ (अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमानका जाननेवाला) होता है

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः ।

कालेन पाल्यते विष्णुस्तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—अब कालको मुख्यत्व दिखाते हैं—जैसे कि ब्रह्मा कालकरके सृष्टीको रचे है, श्रीहृद्र संहारकरे है, और विष्णु उसीकाल करके जगत्को पालनकरते है अतएव वैद्य कालको चिंतयन करे ॥

कालज्ञानं कलायुक्तं शंभुना यच्च भाषितम् ।

येन पण्मासतो मृत्युः पूर्वं ज्ञायेत रोगिणाम् ॥

अर्थ—श्रीशिवका कहा कलायुक्त (शक्ति सहित अथवा छलयुक्त) काल-ज्ञान जिसके जाननेसे छःमाहिने पहिले रोगियोंकी मृत्युको वैद्य जान सकता है [उसको कहते है]

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।

कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—कालही प्राणियोंको उत्पन्न और संहार करता है । तथा प्राणियोंके सोनेपरभी काल जागता रहता है । अतएव कालको चिंतयन करे ॥

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः ।

विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वे नश्यन्ति कालतः ॥

अर्थ—कालमें, देव, नाग, यक्ष, असुर, पन्नग, विद्याधर, और मनुष्य सर्व नष्ट होते है ॥

विरंचिदिनमध्ये तु पतन्तीन्द्राश्चतुर्दशः ।

सोऽपि चाब्दशतांते तु स्वयं कालेन नश्यति ॥

अर्थ—जिसके १ दिनमें चौदह इन्द्र पतन होतेहैं, अंसाभी ब्रह्मदेव सौवर्षके अं-
तमें काल करके स्वयं नष्टहोताहै ॥

मानुषस्तु शतंजीवी पुरावेदेषु भाषितं ।

सोपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः ॥

अर्थ—वेदमें यह लिखाहै कि मनुष्य सौवर्षजीताहै परंतु वोभी सौवर्षके उ-
परांत कालके प्रभावकरके नष्टहोताहै ॥

वर्षाशीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम् ।

अपराह्णं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते ॥

अर्थ—वर्षा, शीत, गरमी, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्ण, तथा रात्रि ए काल
केही रूपहैं । अर्थात् इन्हींमें यह जीव मरताहै ॥

काले फलंति तरवः काले बीजं प्ररोहति ।

काले पुष्पवती नारी सर्वं कालेन जायते ॥

अर्थ—कालमें वृक्ष फलतेहैं, कालमें बीज उपजताहै । कालमें स्त्री रजोदर्शवती
होतीहै एवं यावन्मात्र वस्तुहै । सबकालकरके होतीहै ।

कालेशनं च तोयं च काले मेघः प्रवर्षति ।

काले कर्मसमुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम् ॥

अर्थ—कालमें भोजन पान होताहै । मेघवर्षताहै । और जिस कालमें जो कर्म
करना कहाहे उसमें करनेसें शुभ होताहै और विपरीतकरनेसें शुभ नहीं है ॥

कालाग्निर्जठरे जातस्तस्य वांछा चतुर्विधा ।

आहारमुदकं निद्रा कामश्चैव चतुर्थकः ॥

अर्थ—जब कालाग्नि उदरमें होतीहै तब उसमाणीकी इच्छा चार प्रकारकी
होतीहै भोजन, जल, निद्रा, और चांथा कामदेव ॥

पट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपंचकम् ।

स्वदेहे यो न जानाति कथं वैद्यः स उच्यते ॥

अर्थ—जो वैद्य अपनीदेहमें स्थित छःचक्र, सोलहआधार, और तीनलक्ष
व्योमपंचकको नहीं जाने उसको वैद्य किसमकार कहना चाहिये ।

तत्रादौ पट्चक्राण्याह

प्रथमं ब्रह्मचक्रं तु लिङ्गचक्रं द्वितीयकम् ।

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥

पंचमं कंठचक्रं तु भ्रुवोर्मध्ये तु षष्ठकं ।

एतानि षट्चक्राणि यो जानाति स वैद्यराट् ॥

अर्थ—अब छः चक्रोंको कहतेहै—ग्रहारंभ अर्थात् कपाल प्रथमचक्रहै, दूसरा लिङ्गचक्र, तीसरा नाभिचक्र, चतुर्थ हृदयचक्र, पंचम कंठचक्र, और भोंहोंके बीचमें छटाचक्रहै, इन छःचक्रोंको जो जानताहै वो वैद्योंका राजाहै ।

मत्तान्तर

प्रथमं कपाटचक्रं ज्योतिश्चक्रं द्वितीयकं ।

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकं ॥

पंचमं नासिकाचक्रं गुदचक्रं तु षष्ठकम् ।

एतानि षट्चक्राणि यो वेत्ति सतु वैद्यभाक् ॥

अर्थ—मत्तान्तरसें कहतेहै—प्रथम कपाट (बलस्थल) चक्रहै, दूसरा ज्योतिः(प्राण) चक्रहै, तृतीय नाभिचक्र, हृदयचक्र चौथा, पांचवा नासिकाचक्र, और गुदाचक्र छटाहै इन छः चक्रोंको जो जानताहै वह वैद्यशब्दका भागी है ॥

अथ षोडशाधाराण्याह

अहंकारो मनो बुद्धिश्चित्तं कारणमेव च ।

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यानएव च ॥

पृथ्वी आपश्च तेजश्च वायुराकाशएव च ।

ज्योतीरूपं च तत्रैव षोडशाधारउच्यते ॥

अर्थ—सोलह आधारयेहै—जैसे १ अहंकार, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त, ५ कारण, ६ प्राण, ७ अपान, ८ समान, ९ उदान, १० व्यान, ११ पृथ्वी, १२ जल. १३ तेज, १४ वायु, १५ आकाश, और १६ ज्योतिरूपजैव, ए इसदेहमें सोलह आधारहै ॥

त्रिलक्षाण्याह

ऊर्ध्वलक्षं भवेत्तालौ मध्यलक्षं भवेद्धृदि ।

अधोलक्षं भवेन्नाभ्यां लक्षातीतं निरंजनम् ॥

अर्थ—तालुएमे ऊर्ध्वलक्ष (जाननेयोग्य) है । हृदयमें मध्यलक्षहै और

नाभिमें अधोलक्ष्यै परंतु जो लक्षमें न आवे अंसां निरंजन (परमात्मा) हैं ॥

एकस्तंभं नवद्वारं त्रिशून्यं पंचदेवता ।

पञ्चेन्द्रियकुटुंबेषु यत्रात्मा तत्र मे गृहम् ॥

अर्थ—एकस्तंभ (अहंकाररूपखंभ) नवद्वार (नेत्रनासिकाआदि नो दरवाजे) तीनमून्य, (रजसत्वतम) पंचदेव (पंचतत्त्वदेवरूप) और पंचइन्द्री सोई हुआ कुटुंब इनमें जहां आत्माहै वही मेरा घरहै, ये व्योमपंचक हुए ॥

कुविंशतिसहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च ।

निशाह्ने चलते प्राणः सोऽपि स्तंभोऽत्र कथ्यते ॥

अर्थ—२१६०० इकीस हजार छःसौं श्वास इसप्राणीकी दिनरातमें चलती इसकोभी स्तंभ कहतेहै ॥

आत्माशरीरमित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः ।

परमात्मा भवेत्प्राणः पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ॥

अर्थ—शरीरको आत्मा, मनको अंतरात्मा और प्राणोंको परमात्मा कहते है, येही पंचतत्त्वोंको धारण करतेहै ॥

कायानगरमध्ये तु प्रतोली शून्यवद् भवेत् ।

नरेन्द्रो गच्छते तेन तत्पुरं शून्यकं भवेत् ॥

अर्थ—देहरूप नगरमें नस नाडी और इन्द्री आदि जो गलीहै एं शून्यहोजातीहै अर्थात् इनके कार्य बंद होजातेहै तब प्राणरूप राजा उस गलीमें होकर निकल जाताहै । तब यह देहरूप पुर शून्य होजाताहै ।

स्वरोदयमतात्

कायानगरमध्येतु मारुतो रक्षपालकः ।

प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः ॥

अर्थ—अब स्वरोदयके मतसैं कालज्ञानको कहतेहै कि इस देहरूप नगरमें श्वासरूप पवनही रखवाली बालाहै उसका १० अंगुल करके प्रवेश और वारह अंगुलनिर्गमकहाहै इससै न्यूनाधिक अरिष्टहोनेका चिन्हहै ॥

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि ।

ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत् ॥

अर्थ—स्वर्का उदय नासिकाके दहने मार्गसैं हो. और याममार्गसैं अस्त होवै

तो अत्यंत गुणदाताहै इससे विपरीतहो अर्थात् वामस्वरसै उदय और दहनेस्वरसै अस्तहोवेतो विनाश कर्त्ताहे. ॥

संपूर्ण वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते ।

पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थ—यदि सदेव दहना स्वर चले, वाम स्वर कभी चले नही उस प्राणीकी १५ दिनमें मृत्युहो यह कालज्ञानने कहाहै ॥

मासश्चैव तु षण्मासः पक्षश्चैव त्रिमासकः ।

पंचरात्रिर्वहेश्चैको तस्य मृत्युर्न संशयः ॥

अर्थ—जिस प्राणीका एकही स्वर एकमाहिने. या छ' महिने या एकपक्ष तथा तीनमाहिने. या पाचरात बराबर चले उसकी निस्सदेह मृत्युहो ॥

शुक्लपक्षे वहेद्रामं कृष्णपक्षे च दक्षिणम् ।

उभयोस्त्रीणि दिवसं दृश्यते चंद्रसूर्ययोः ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमे प्रथम वामस्वर चलताहै, ओर कृष्णपक्षमें दहनास्वर एवं शुक्लकृष्णपक्षोमे चंद्र और सूर्य दोनो स्वर तीन २ दिन चलतेहै ॥

पंचभूतात्मकं दीपं चन्द्रस्नेहेन पूरितम् ।

रक्षेच्च सूर्यवातेन तेन जीवस्थिरो भवेत् ॥

अर्थ—यह पंचभूतात्मक देह रूप दीपक चंद्रस्वररूप तैलसै मराहुआहै, इस को सूर्यस्वररूप पवनसै रक्षा करनी चाहिये तो यह जीव स्थिर रहे ॥

आत्मादीपः सूर्यज्योतिरायुस्नेहकलात्मकः ।

कायाकज्जलसंसारे वृत्तिरेखा तनोर्मता ॥

अर्थ—आत्मारूप दीपक सूर्यस्वररूपज्योति आयुरूपी तैल भराहै, इसमें का या रूपी कज्जलहै और इस संसारमे इसप्राणीकी वृत्तिहै वोही इस देहकी रेखा कही है

अरुंधती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।

आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥

अर्थ—अरुंधती, ध्रुव, और विष्णुकेत्रिपद (श्रवणनक्षत्रकेतीनतारे) एव चतुर्थ मातृमंडल (कृत्तिकाके छःतारे) इनको हीनायु मनुष्य नही देखे ॥

अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।

विष्णुस्तु भ्रूद्रयोर्मध्ये भ्रूद्रयं मातृमंडलम् ॥

अर्थ—इस कालज्ञानमें अरुंधती जीभको कहते हैं। और नासाका अग्रभाग है वोही ध्रुवका ताराहै। दोनो भोहका बीचहै वोही विष्णुपदहै। और दोनोंभोहको मातृमंडल कहतेहैं। अर्थात् मरणासन्न मनुष्य इनको नहीं देखसकता ॥

अक्षैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णेन्दुना भानुना ।
पूर्वाक्षिणपश्चिमोत्तरदिशां पट्टत्रिद्विमासैककं ॥
छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूम्राकृतिं पश्चिमे ।
ज्वालां पश्यति सद्य एव मरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥

अर्थ—जो रोगी जलमें सूर्य अथवा चंद्र इनके प्रतिबिंबमें पूर्वकी और या दक्षिणकीयापश्चिम अथवा उत्तरकी तरफ छिद्र देखे तो क्रमसैं छः—तीन—दो—और एक इतने महिने बचे और सूर्यचंद्रका धूम्रवर्णदेखे तो दशदिन और उसप्रतिबिंबके पश्चिमकी तरफज्वाला देखे तो तत्काल मरणहो यह कालज्ञान के जानने वालोंने कहाहै. ॥

मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व.

पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।
तथा लिंगमरिष्टारव्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥
अप्येवतु भवेत्पुष्पं फलेनाननुबंधि यत् ।
फलं चापिभवेत्किञ्चिद्यस्य पुष्पं नपूर्वजम् ॥

अर्थ—जैसे पुष्प होनेवाले फलका बोधक अर्थात् वृक्षमें फूलके आतेही अनुमानद्वारा निश्चय होताहै कि अब इसमेंफलभी आवेगा उसीप्रकार अरिष्टलक्षण (निश्चयमरणसूचक चिन्ह) द्वाराभावी (होनहार) मृत्युका निश्चय होताहै। अनेक पुष्पोंमें फलनहीं आताहै इसीप्रकार कोई २ पुष्पकेविनाभी होतेहैं (जैसे गूलर-पीपरमें) परंतु

नत्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।
मरणं चापितन्नास्ति यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥
मिथ्यादृष्टमरिष्टामभनरिष्टमजानता ।
अरिष्टं चाप्यसंबुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥

अर्थ—परंतु अरिष्ट चिन्हके होनेसैं अवश्य मृत्युहोवे। वह मृत्युही नहीं जिसमें प्रथम अरिष्ट लक्षण उपस्थित नहो। अनेकजगोअंसा बोधहोताहै कि अरिष्ट-

लक्षणहुएहै और रोगीकी मृत्युनहीं हुई औरकहीं २ मृत्युहो गई परंतु मृत्युके पूर्व कोई अरिष्ट चिन्ह दृष्टनही आए । परंतु असावोध भ्रमात्मकहै इसमें कोई-संदेह नहींहै । जिसको वैद्य अरिष्टजानताहै वह प्रकृति अरिष्ट चिन्हनहींथा अज्ञानसे उसको असाभ्रमहोगया ॥

तानिसौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वातथैवाशुव्यतिक्रमात् ।

गृह्यन्तेनोद्धतान्यज्ञैर्मुर्मूर्णत्वसंभवात् ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।

अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—किसी २ मृत्युके पूर्व अरिष्टलक्षण सपूर्ण जानेनहीं जाते इसका यह कारणहै किये उत्कलक्षण समस्त जो है वो अत्यंत सूक्ष्म (बारीक) रूपसे उठते है अथवा जल्दी २ एकलक्षणके होनेपर दूसरालक्षण होनेलगताहै उसका अनुमान मरनेवाले रोगीको नहींहोता । अथवा जैसेये अरिष्टकाज्ञानहो असाविशेष मनको नहींलगाता इसीसे यथार्थज्ञान नहींहोता । इससे यह निश्चयहुआ कि मृत्युके पूर्व ये अरिष्टलक्षण अवश्य उत्पन्नतो होतेहै, परंतु उससमय यह निश्चय नहीं करता । इसमें निश्चय नहीं होनेका कारण अज्ञानता अथवा यथार्थ निश्चयात्मक मनका न लगाना मात्रहै ॥

गतायुमनुष्यकीचिकित्साकरनेसे अवश्य व्यर्थ परिश्रम होताहै [अर्थात् उसको यश और धन इनमेंसे किसीवस्तुकी प्राप्तिनहीं होती] अत एव वैद्यको समस्त अरिष्ट लक्षणोका जानना अति आवश्यकहै ॥

अथातः पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अब पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्याकरेंगे ॥

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।

तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥

अर्थ—जिस प्राणीके शरीर मानसिक स्वभाव और प्रकृति ए तीनों पलटजावे वो मरणकेलक्षणहै । यह मैंने संक्षेपसे कहा अब इनको हेवत्स ! तू विस्तारसे सुन ॥

कर्णेन्द्रीकीविकृति

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानामभावतः ।

समुद्रपुरमेधानामसंपत्तौ च निःस्वनम् ॥

तान् स्वनाम्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।
 ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोत्यपि ॥
 द्विपच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।
 न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य विविधशब्द (वोलना, पाठ, गीत, बाजे, आदि) और दिव्य (सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, आदिके) तथा समुद्र, पुरमेघ, आदिके न होनेपर इनका शब्द सुने, अथवा इन समुद्रादिके होने परभी इनका शब्द न सुने, अथवा इनके शब्दको औरही शब्दके समानसुने, तथा गामके शब्दोंको वनके शब्द समान सुने और वनके शब्दोंको गामके शब्द समान सुने, एवं शत्रुके वाक्यमें भीतिकरे, और माता. पिता. भाई. मित्रादिके शब्दको सुनकर कुपितहो, अथवा सुनते २ अकस्मात् न सुने उत्सप्राणीको गतायु (मरणासन्न) जानना । ये कर्णेन्द्रिके चिन्ह कहे ॥

त्वचाकी विकृति

यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ।
 संजातशीतपिडको यश्च दाहेन पीड्यते ॥
 उष्णगात्रोऽतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ।
 प्रहारान्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥
 पांशुनेवावकीर्णानि यश्चगात्राणि मन्यते ।
 वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवंति हि ॥
 स्नातानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः ।
 सुगंधिर्वाति योऽकस्मात्तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ—अब रोगीके स्पर्शकी विप्रतिपत्ति (विपरीतता) दिखाते. है । कि जो मनुष्य शीतलवस्तुको गरमके समान ग्रहणकरे, और गरमवस्तुको शीतलके समान, एवं शीतपिडकादेहमें होनेपरभी दाहके मारे पीडितहो । जिसका देह गरमहो परंतु मरिशीतके धरंशरकापि । और लकड़ी तलवार आदिकी चोट लगने को तथा अंगकटजानेकोभी नजाने, एवं जो अंगोंको धूलसँ आच्छादितमाने, तथा देहका वर्ण पलट जावे अथवा जिसके देहमें काली, लाल, रेखा होजावे । एवं तत्काल स्नानकराहो और चंदनादि लेपभी कर रक्खाहो इसप्रकार सुगंधितदे-

हवालेके देहमें नीलीमक्खी चारोतरफसें आनकर बैठे, तथा जिसकीदेहमें अकस्मात् सुगंधआनेलगे वो १ वर्षमें अवश्यमरे. ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।

उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥

यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिता ।

यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ—जो मनुष्य खट्टेरसको मीठा और मीठेरसको खट्टा इसी प्रकार सर्व, रसोंको विपरीतजाने और क्रमपूर्वक सेवनकरेहुएमी मधुरादिरस दोषोंको बढ़ावे-और जो वैपरीत्यसै सेवनकरे हुए रस दोष और अग्निको समानता करे [अर्थात् हितकारी पदार्थ उपद्रव करे । और उपद्रवकारी पदार्थ जिसको हितहो] तथा जो अन्नके रसको न जाने उसको गतआयु जानना यह एकमहिनेमें मरे ॥

सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधिताम् ।

यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जो मनुष्य सुगंधको दुर्गंध और दुर्गंधको सुगंध समझे अथवा जो सुगंध और दुर्गंध किसिको न जाने उसे गतप्राण जानना ये भी एकमहिनेमें मरताहै ॥

द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्थादिशस्तथा । विपरीतेन

गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥ दिवाज्योतींषि यश्चापि

ज्वलितानीव पश्यति ॥ रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवावा

चन्द्रवर्चसम् ॥ अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गान् ॥

तडित्वतोऽसि नान्यो वा निर्मले गगने घनान् ॥

विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलनवरं ॥ यश्चानिलंमूर्तिमंत

मन्तरीक्षं च पश्यति ॥ धूमनीहारवासेभिरावृतामिव

मेदिनीम् ॥ प्रदीप्तमिव लोकं च यो वा झुतमिवाम्भसा ॥

भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्चपश्यति ॥ न पश्यति

सनक्षत्रां यश्च देवीमरुंधतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगंगां वा तं

वदंति गतायुपम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य गरमी, सरदी काल की अवस्था (प्रघातनिर्वात और वर्षादि,

और दिशा इनको तथा अन्यभाव कहिये द्रव्य गुण कर्मादिकोको विपरीततासँ ग्रह-
णकरेवो १ मासमें मरे ॥ अब रूपग्रहणको दिखते हैं । कि जो मनुष्य दिनमें ज्योतिवा-
ले पदार्थ (सूर्यचंद्रआदिको) अग्निके समान जलते सँ देखे और रात्रिमें सूर्यको प्र-
ज्वलित देखे अथवा दिनमें सूर्यको चंद्रमाके समान शीतल तेजवाला देखे ॥ एवं
विनाबदलके जो इन्द्रधनुष और विजली चमकती देखे, तथा विजलीवाले बद-
लोंको काले पीले देखे और निर्मलआकाशको बदलोंसँ व्याप्त देखे, तो दो या तीन-
महिनेमें मरे, जो मनुष्य आकाशको विमान. यान (रथघोडा हाथीआदि) और मे-
हलोंसँ व्याप्त देखे तथा चलती हुई पवनको मूर्त्तमान (देवताके आकार अथवा
अन्यपुरुषाकार) देखे तथा विनानेत्ररोगके जो मनुष्य पृथ्वीको धूँआ, कुहल-
और वस्त्रोंसँ आछादित देखें तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फुकताहुआ देखे,
तथा जलमें डूबाहुआ देखे, तथा पृथ्वीको रेसवारचित चतुष्पथके आकारदेखे ।
और जो मनुष्य नक्षत्र सहित अरुंधती. ध्रुवकातारा और शिशुमारचक्रको न देखे
वो मरणके समीप जानना ॥

ज्योत्स्ना दर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ॥

पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वा ऽन्यसत्त्वजाम् ॥

श्वकाककंकगृघ्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसां ॥

पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥

योवा मयूरकंठाभं विधूमं वन्हिमीक्षते ॥

आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो मनुष्य धूप चांदनी आदिप्रकाशमें दर्पण, पसीने और जलमें अ-
पनीछायाको न देखेयदि देखेतो (हाथ, पैर, भस्तक आदि) एक अंगरहित देखे,
अथवा विकृत तथा अन्यसत्त्व(और प्राणी गधा कुत्ते आदि.)कीसी देखे, तथा कुत्ता
काक, कंक, गीध, प्रेत, यक्ष, राक्षस पिशाच, सर्प, नाग, और मनुष्य इनकी छा-
याको विकृतदेखे ॥ तथा जो मनुष्य धूँआं रहित अग्निका वर्ण मोरकंठके समान नील
देखे तो आतुर (रोगी) की मृत्युहोवे और नैरोग्य पुरुष देखेतो रोगी होय—इति ॥

अथात्छायाविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अब छायाविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेगे. इस जगे छायाशब्दके
पश्चात् द्वी-श्री-नुष्ट्यादिकीभी विपरीतता जाननी अर्थात् इनकीभी व्याख्या करेंगे

श्यावा लोहितका नीला पीतिका वापि मानवम्

अभिद्रवन्ति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ—अब छायाकी विपरीतता दिखातेहै जैसेकि जिस पुरुषके साथ काली, लोहित (लाल) नीलीऔरपीली छाया दीखे वो गतप्राण जानना अर्थात् मरेगा ॥

ह्रीश्रियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा ॥

अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ—अब प्रभाकी विपरीतता दिखातेहै । जिसरोगीकी लज्जा, लक्ष्मी, ओज, स्मरणशक्ति, और फांति, ए अकस्मात् जातीरहे । अथवा जो लज्जाआदिसँ रहितहो वह अकस्मात् लज्जाआदि युक्तहोजावे तो वहमनुष्य अवश्य मरे ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः

उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ—जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरपडे और ऊपरका होठ ऊपरको चिपटजावे, अथवा दोनोहोठ जामुनके समान काले होजाय उस मनुष्यका जीना कठिनहै ॥

आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति च ॥

खञ्जनप्रतिमावापि तं गतायुषमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके दांत लाल अथवा काले होजावे, अथवा गिरपडे या खंजन पक्षीके समान सपेद और काले होजावे उसे गतायु अर्थात् मरेगा ऐसा जाने।

कृष्णा स्तब्धावलिता वा जिह्वा शूना च यस्य वै

कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसूनु ॥

अर्थ—जिसकी जीभ—काली, लठर, कफसँ लिहसी, सूजी, और कठोर होजावे वह थोडे समयमें मरेगा ऐसा वैद्य जाने । यह एकमाहिनेमेंमरे है ॥

कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका

अवस्फूर्जति मग्ना वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ—जिसकी नाक टेढ़ी, फटीसी, सूखीसी और शब्दयुक्तहो, अथवा भीतरको बैठ जावे वह मनुष्य नहीं जीवे । यह मनुष्य सातरात्रिमें मरेहै ॥

संक्षिप्ते विपमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने

स्यातां वा प्रस्युते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥

अर्थ—जिसके नेत्र संकुचित, ऊचेनीचे, निश्चेष्ट, लाल, और नीचेको गिरजा वे, अथवा जलवहे वो मनुष्य निश्चय, गतायु जानना ॥

केशा सीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ
लुनंति चाक्षि पक्ष्माणि सो चिराद्याति मृत्यवे ॥

अर्थ—जिसके वालोंकी वैनीसी गुथजावे, और दोनो भोह संकुचित और नीचेको गिरजावे, और जो पलकोके वालोंको चारं वारखोले, मूँदे वो थोडेकालमे यमराजकेगृहको पधारे । यदि ये लक्षण नैरोग्यपुरुषके होतो वो छः माहिने में मरे । और रोगी तीनदिनमें मरे ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ।

एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥

अर्थ—अव देहकेअवयवक्रियाकी विपरीतताको कहतेहै, जैसेकि जोमनुष्य मुखमें धरेहुए अन्नको न निगले और जो मस्तकको धारण न करे अर्थात् गेरगेर देवे, एकही स्थानमें दृष्टी लगायदे, शीलताजातीरहे वह तत्कालमार्णोंको परित्यागकरे ॥

बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।

चत्थाप्यमानो बहुशस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—बलवान्हो या दुर्बलहो जिसको बहुतसा उठाने परभी वारंवार मूँच्छाभावे उसको धीरपुरुष त्यागदे ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः ॥

विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ—जो सदैव चित्त सोवे और पैरोंको कभी उठावे कभीधरे कभीमोडे इत्यादि विकृतिकरे. अपवा मुकडेही रक्ते वो रोगी नहीं जीवे. ॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो भवेत् ।

काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तंधीरःपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसके हायपेर और श्वास शीतलहो तथा श्वास टूट २ जावे, अपवा काककेसमान श्वासलेवे उसंधीरवैद्य सागदेवे ए सद्यमरणके चिन्हहै ॥

निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ।

मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥

अर्थ—जो सोयाही करे जागे नहीं, अथवा जो सदैव जागाकर सोवे नहीं और जब बोलाचाहे तभी मूर्च्छितहोजावे उसै वैद्य त्यागदेवे ॥

उत्तरोष्ठश्च यो लिह्यादुद्गारांश्च करोति यः ।

प्रेतैर्वा भापते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जो ऊपर के होठको चाटाकरे, और जो वारंवार ढकारलेवे, तथा मृतपुरुषोंके साथ जो भाषणकरे, उसको प्रेतरूपही जानना ।

स्वेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ।

पुरुषस्य विषार्त्तस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥

अर्थ—अब शरीर देश विशेषाश्रितन्याधिविशेषअरिष्टकृतोकों दिखातेहै—जैसै जिसके रोमांचोंमेंसै रुधिरवहनेलगे वो विषार्त्त पुरुष तत्काल जीवनको परित्याग करे ॥

वातघ्नीला तु हृदये यस्योर्ध्वमनुयायिनी ।

रुजान्नविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ—जिसके वातघ्नीला हृदयमें प्रगटहो ऊपरको चढे, और उसमें पीडाहो तथा अन्नमें प्रीत न होवे, वह रोगी मरेगा ऐसा जाने ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ।

पुरुषं हन्ति नारी तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥

अर्थ—वैरोमेंसूजनहो और उसमें शोफकेही उपद्रव श्वास प्यास आदिहोवे । वो पुरुषको नाशकरे । और मुखसै उठी सूजन उक्तउपद्रवोकरकेयुक्तहो वह स्त्री को नाश करे, और गुदाकी सूजन स्त्रीपुरुष दोनोको नष्ट करती है ॥

अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः श्लेर्नाडमेद्रता ।

श्वासिनो कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—खांसी श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी, और वमन ए उ-पद्रव होतेहो तथा अंडकोश और लिंग भग परसूजनहो उसैवैद्य त्यागदेवे ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।

बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यंति न संग्रयः ॥

अर्थ—जिसके पसीने और दाह अत्यंतहों अंसे बलवान् पुरुषको हिचकी और श्वासरोग प्राणरहित करतेहै इसमें संदेह नहीं है ॥

श्यावा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ।
मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसकी जीभ कालीहो और दहना नेत्र बैठजावे, तथा मुखमेंसँ दुर्ग-
घमावे उसको वैद्य त्याग देवे ॥

वक्रमापूर्यतेश्रूणां स्विद्यतश्चरणवुभौ ।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥

अर्थ—जिसका मुख आंशुओंसेँ भरजावे, और दोनोपैर पसीजैँ तथा नेत्र जि-
सके व्याकुल होजाय वह यमराजके जायगा अँसा जाने । यह रोगी प्रहरभ-
यवा दोघडीमे मरेहै ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ।
यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गंता वैवस्वतालयम् ॥

अर्थ—जिस रोगीका भारी देह अकस्मात् अत्यंत हलका होजावे वह रोगी
यमराजके घरजाने वालहै ॥

पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगंधांश्च ये नराः ।
मृष्टगंधांश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयं ॥

अर्थ—जिन रोगियोंकी देहमेंसँ कीच, मछली, वसा तेल, और घृतकीसी
वास आवे, तथा जो दिव्य मुगंधवान् वमनकरे वो यमालयको जायगे । यह
एकवर्षमें मरताहै ॥

यूकाललाटमायांति बलिं नाश्रन्ति वायसाः ।
येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥
ज्वरातीसारशोकाः स्युर्यस्यान्धोऽन्यावसादिनः ।
प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ—जिनके मस्तकपर जूँआ आवे और कौआ काक बालिको न स्वांय तथा
जिनको कहीं मुखनहो वो यमालयजाने वाले हैं । अँसाजानना यह अरिष्टएकवर्ष
काहै जिसके परस्पर उपद्रव करता ज्वर अतिसार और मूजन हो । तथाबल मांस
ए क्षीण होजाय वह रोगी चिकित्साके योग्य नहीं है ॥

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णो दृष्टैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।

न शाम्यतोऽन्नपानैश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ—जिस क्षीणपुरुषकी भूख प्यास हृद्य मिष्ट और हितकारी अन्नजलसँ भी शांति न हो उसकी मृत्यु खड़ीहुई है अँसा जाने ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ।

पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ—जिस रोगीकेप्रवाहिका, मस्तकशूल, घोर उदरशूल, प्यास, और बलहानीहो उसकी मौत खड़ीहै अँसा जानो ॥

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः।

अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥

अर्थ—अब यह कहते हैकि इस मनुष्यके अरिष्ट किस तरह उत्पन्न होतेहै जिनसँ यह निश्चय मरताहै । तहां विषम चिकित्सा करनेसे और पूर्वजन्मके कर्मोंकरके, तथा प्राणीमात्रोंको अनित्य होनेसँ, जीवोका जीवन विनाशको प्राप्तहोतहै

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥ मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पति मानवम् ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नति जिघांसया ॥ तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवत्येव गतायुषः ॥

अर्थ—मरणके समय सब क्रिया निष्फल क्यों होजातीहै इसवास्ते कहतेहै कि इसमनुष्यके मरण समय प्रेत, भूत, पिशाच, अनेक प्रकारके ब्रह्मराक्षसमादि नित्यइसके मारनेको समीप आतेहै, इसीसँ गतायु मनुष्यके सर्वक्रिया निष्फल होजातीहै ॥

इति.

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अब स्वभाव (प्रकृति) विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्याकरेंगे । यहां स्वभाव शब्दके अनंतर आदिशब्द लुप्तहै अर्थात् स्वभावादि विप्रतिपत्ती अध्यायकी व्याख्या करेंगे । ॥

स्वभावप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय तद्यथा शुक्लानां कृष्णाता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वं स्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनां स्थिरता चलानामचलत्वमचलानां चलता पशूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुता दीर्घाणां ह्रस्व

त्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं पतनधर्मि
णामपतनधर्मित्वमकस्माच्चशैत्यौष्ण्यस्त्रैग्ध्यरौक्ष्यप्रस्तम्भवै
वर्ण्यविसदनाश्चाङ्गानाम् ॥

अर्थ—जो देहमें स्वभाव सिद्धपदार्थ है उनका शरीरके एकदेशमें विपरीतहो-
जाना मरणके अर्थ है । जैसे अकस्मात् सपेदपदार्थोंका कालाहोजाना, और का-
लोंका सपेद होजाना, लालतदार्थ (होठ, तालुआदि) का सपेद काला पीला
होजाना, स्थिरपदार्थों अस्थिर होना और (केश, श्मश्रु आदि कठोर पदार्थों-
का) नम्र होजाना (और नम्रपदार्थ (मांस, रुधिरादिकोंका) कठोर होजाना)
इसी प्रकार चलपदार्थोंका स्थिरहोजाना, और अचलपदार्थोंका चलायमान होना
मोटेन्को सुकडजाना, सुकडेहुओंका मोटाहोना, दीर्घोंका ह्रस्वहोना और ह्र-
स्वोंका दीर्घहोना, विनागिरने वालोंका गिरजाना और गिरनेवालोंका स्थिरहोना
तथा शीतलता, गरमी, चिकनाई, रुखाई, स्तब्धता, विवर्णता, और विकलता
ए अंगोंके विपरीत होना मरणके अर्थ जानने ॥

स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोत्क्षिप्तभ्रंतावक्षि
त्पतितविमुक्तनिर्गतांतर्गतगुरुलघुत्वानि ॥

अर्थ—शरीरके एकदेशोंका अपनेस्थानसे सिथिलहोना, उनको ऊपरकोजा-
ना नेत्रादिकोंका भ्रमणहोना, तिरछागिरना, शिरग्रीवादिकोंका गिरना, संधी-
आदिकाद्युटना, जिब्हाआदिकानिकलना, जिब्हानेत्रादिकोंका भीतरप्रवेशहोना
बाहुशिरआदि भारीहलकोंका विपरीतहोना, ये लक्षण अरिष्टकरताहै ॥

प्रवालवर्णव्यङ्गप्रादुर्भावोऽप्यकस्मात् । सिराणां च दर्शनं ल
लाटे नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः । गोमयचूर्णप्रकाशस्य वा
रजसो दर्शनमुत्तमांगे निलयनं वा कपोतकङ्कप्रभृतीनां मूत्र-
पुरीषवृद्धिरभुंजानानां तत्प्रणाशो भुंजानानां । स्तनमूलहृ
दयोरःसु च शूलोत्पत्तयः मध्ये शूनत्वमन्तेषु परिम्लायित्वं
विपर्ययो वा तथाद्वाङ्गे श्वयथुः ॥

अर्थ—अकस्मात् लालवर्णका व्यङ्गरोग प्रगटहो लालवर्णकी नस दीखने ल-
गे, मस्तकमें और नासिकाकी हड्डीमें पिडकाकी उत्पत्तिहो, मस्तकमें गोवरकी
धूलसमान रजदीसे, तथा सन्नतर कंकआदि पक्षियोंका मस्तकपरवैठना, बिना

भोजनके मल मूत्रकी वृद्धिहोना, अर्थात् अधिकउतरना, और भोजन करेहुओंको मलमूत्रका नाशहोना, स्तनमूल, हृदय, छाती, इनमें शूलकी उत्पत्तिहो । और जिसका देहका मध्यभाग सूजजाय और अंतकेभाग मुरझाए हुएसे होजावे अथवा अंतकेभाग (हाथपैरआदि) सूजजाय, और बीचकाभाग मुरझायासाहो अथवा अर्द्धाङ्गमें मूजनहो उसको अरिष्टै अँसा जानना यह एकमहिनेका है ॥

शोषोद्गपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतिस्वरता । विवर्णपुष्प प्रादुर्भावो वा दन्तनखशरीरेषु । यस्य वाप्सु कफपुरीषरेतांसि निमज्जन्ति । यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि रूपाण्यालो क्यन्ते । स्नेहाभ्यक्तकेशांगइव यो भाति यश्च दुर्बलो भक्तद्वेषा तिसाराभ्यां पीड्यते । कासमानश्च तृष्णाभिभूतः । क्षीणच्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः सफेनपूयरुधिरोद्दामीहतस्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—अंगोंका सूखना अथवा आधे देहका शोषहोना, एवं स्वर अत्यंत क्षीण होजाय वा विकलस्वरहोजाय । (गदगदादि स्वर होजाय) वां विकृत अर्थात् स्वभावसे विपरीतहोजावे तथा दांत नख और शरीरमें विवर्णपुष्प अर्थात् दुष्टरंगकीविंदु प्रगटहोजावे जिसके जलमें कफ, मल, और धीर्य द्रवजावे । और नेत्रोंके सामने भयानक अनेकप्रकार (तीनशिर, शिररहित) रूपदीप्ते । तेल लगाएहुए बाल रूखेसेदीप्ते, और जो दुर्बलपुरुष अन्नसँद्वेष और अतिसारकरके पीडितहो । जव सासै तभी तृपासै पीडितहो, क्षीणरोगी वमन, अन्नद्वेषयुक्तहो । तथा ज्ञागयुक्त राध रुधिरकी वमन करै । स्वर वैटजावे और शूलसे पीडितहो उसको अरिष्ट जानना ॥

शूनकरचरणवदनःक्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तपिंडिकांसपाणिपादो ज्वरकासाभिभूतः यस्तु पूर्वाण्हे भुक्तमपराण्हे छर्दयत्यविदग्धमतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्घ्रियते । वस्तवन् विलपन् यश्च भूमौ पतति स्रस्तमुष्कस्तव्वमेदो भग्नग्रीवः प्रनष्टमेहनश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—जिसके हाथ, पैर मुक्त सूजेहुए हो, अन्य अंग क्षीण होगएहो, अन्नमें अरुचि, सिथिल, है थोटू-कंधे हाथ और पैर जिसके ज्वर सांसीकरके युक्त एवं

जो प्रातः कालमें भोजनकरेहु एको अपराह्णमें वमनकरदेवे, और जिसके विनपचा अन्न दस्तके मार्गहोके निकले और ज्वर खाँसीसँ व्याप्तहो वो श्वासरोगसँ परे । एवं बकरेको शब्द समान विलापकरताहुआ पृथ्वीमें गिरपडे। अंडकोशस्थान धू-टजावे लिंगस्तंभितहोजाय नारगिरपडे तथा लिंगभीतरको चलाजाय । उसको अरिष्टजानना ॥

प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरोयश्चलोष्टंलोष्टेनाभिहन्ति
काष्ठंकाष्ठेनतृणानिवाछिनन्तिअधरोष्टंदशत्युत्तरोष्टंवालेढि ॥
आलुंचतिवाकणौकेशांश्च देवद्रिजगुरुसुहृद्द्वैद्यांश्चद्वेष्टि

अर्थ— जिस पुरुषका सब देह गीला रहते प्रथम हृदय ही सूखजावे उसको पक्षभरका अरिष्टहै और मिट्टीके डेलेसँ डेलेको तोडे लकडीसँ लकडीको और तिनकोको तोडे. नीचेके होठको दांतोसँ बसे और ऊपरके होठको चाटे. और कान माथेके वालोको तोडे। एव देव. ब्राह्मण. गुरु. सुहृद. और वैद्य इनसँ द्रो हकरे तो उसको १ वर्षका अरिष्ट जानना.

यस्यवक्रानुवक्रगाग्रहागर्हितस्थानगताःपीडयंतिजन्मक्षं
वायस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यतेहोरावागृहदारशयना
सनयानवाहममणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादु
र्भावोवेति ॥

अर्थ— जिसके वक्राग्रह जोग्रह उपस्थितराशको छोडकरपूर्व भुक्तराशपर आजावे और मंगीग्रह ए दुष्टस्थानपर आनकर जन्म नक्षत्रको पिडितकरे तथा जिसका जन्म नक्षत्र और होरा उल्का (जिसे तारा दूया कहते है) और विजली करके हतहो एवं. घर. स्त्री. शय्या. आसन. सवारी. वाहन. मणि. रत्न. और सामग्री आदिमें दुष्ट लक्षण इनके निमित्त करके अरिष्टकी उत्पत्ति होती है.

चिकित्स्यमानःसम्यक्चविकारोयोऽभिवर्द्धते

प्रक्षीणबलमांसस्यलक्षणंतद्गतायुषः ॥

निवर्त्ततेमहाव्याधिःसहसायस्यदेहिनः

नचाहारफलंयस्यदृश्यतेसविनश्यति ॥

अर्थ— जिस रोगीका उत्तम रीतिसँ चिकित्सा करते २ परभी रोगबढे और बलमांस जिसके क्षीण हो जावे वो गतायु जानना । जिस रोगीका घोररोग अ

कस्मात् जातारहे और जो भोजनकरे उसका कुछ देहमें (पुष्टाई क्षुधा शांति आदि) फल न दीखे वो रोगी अवश्यपरें.

ज्ञानसंबोधनार्थतुलिङ्गैर्मरणपूर्वकैः ॥

पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधानबहून् ॥

नानापुष्पोपमोगंधोयस्यवातिदिवानिशम् ॥

पुष्पितस्यवनस्येवनानाद्भुमलतावतः ॥

तमाहुःपुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ॥

स वै संवत्सराद्देहंजहातीतिविनिश्चयः ॥

अर्थ— मरणपूर्वक लक्षणों करके कालज्ञानके जाननेके लिये अनेक प्रकारके बहुतसे पुष्पित मनुष्योंको कहताहूं। अनेक वृक्ष लतावान् फूले हुए वनकीसी जिसके देहमें दिनरात्रि फूलोकीसी गंधआवे उसको धीर वैद्य पुष्पित कहते हैं. वो १ वर्षके भीतरनिश्चय मरणको प्राप्तहो

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगंधःसमोभवेत् ॥इष्टैर्वायदिवानिष्टैः

सचपुष्पितउच्यते ॥तद्यथाचन्दनंकुष्ठंतगरागुरुणीमधु ॥मा

ल्यमूत्रपुरीषेवामृतानिकुणपानिवा ॥येचान्येविविधात्मानो

गंधाविविधयोनयः ॥तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगते ॥

अर्थ— उसीप्रकार एक एक फूलकी पृथक् २ सुगंध या दुर्गंध आवेतो उस को पुष्पित कहतेहै जैसे- चंदन- कूठ- तगर- अगर- सहत- माला- मूत्र मल मुरदे के समान दुर्गंध तथा और अनेक प्रकारकी आपको दुर्गंध आवे वो भी इसी अनुमानसे अरिष्ट गत मनुष्यके देहमे जाननी चाहिये

इदंचाप्यतिदेशार्थलक्षणंगंधसंश्रयं ॥

वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिषक् मरणमादिशेत् ॥

इस प्रकार वैद्यके जाननेके लिये गंधसे श्रयलक्षणोंको कहंगा जिन लक्षणोंको वैद्य जानकर रोगी का मरणकहे (अर्थात् ये रोगी इतने दिनमे मरेगा)

वियोनिविज्वरोयस्यगन्धोगत्रेषुदृश्यते ॥इष्टोवायदिवानिष्टो

नसजीवतितांसमाम् ॥एतावद्गंधविज्ञानंरसज्ञानमतःपरम् ॥

जिस मनुष्यको देहमे पशु पक्षी आदिकीसी और अनेक प्रकारके रोगोंकीसी गंधआवे चहियेवोअच्छोहो वो मनुष्य, वर्ष नहीं जीवे यह हमने गंध विज्ञान कहा अब रसज्ञानको कहते है.

आतुरेषुशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम्॥योरसःप्रकृतिस्था
नांनराणांदेहसंभवः॥सएपांचरमेकालेविकारान्भजतेद्वयान्
कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थमुपपद्यते ॥ स्वादुत्वमपरंचापि
विपुलंभजतेरसः॥तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमागतम् ॥

अब रोगीके शरीरमें रसज्ञानको विधि पूर्वक कहेगे नैरोग्य पुरुषोके देहका रस जो स्वस्थावस्थामें होताहै वही मरणके समय दो प्रकारके भावको जाताहै किसिके तो मुखमें विरसता हो जाती है और किसीके मुखमें अत्यंत स्वादुता आयजातीहै उसको वैद्य अनुमान द्वारा जानेकि विकृति आन पहुची है

मनुष्योहिमनुष्यस्यकथंरसमवाप्नुयात्॥मक्षिकाश्चैवयक्षा
श्चदंशाश्चमशकैःसह॥विरसादपसर्पंतिजन्तोःकायान्मुमु
र्षतः॥अत्यर्थरसकंकायंकालपक्वस्यमक्षिकाः॥अपिस्नाता
नुलितस्यभृशमायांतिसर्वशः॥यान्येतानिमयोक्तानिलिंगा
निरसगंधयोः ॥ पुष्पितस्यनरस्यैतैःफलंमरणमादिशेत्॥

कदाचित् कोई प्रश्नकरेकि मनुष्य मनुष्यके देहका रसकैसे जान सकता है इस लिये धन्वन्तरीकहते है कि जिस समय यहमनुष्य मरणोन्मुख होता है तब इसमनुष्यकी देह विरस हो जाती है अतएव उस गंधके प्रभावसें मरुस्त्री यक्ष मच्छर ढास इत्यादि इसके ऊपर बहुत बैठते है और जब कालकरके अत्यंत देह पक्वहोजाताहै तब इसप्राणीके स्नानकरनेके पश्चात् और चंदनआदि लगाने परभी मस्त्री पीच्छा नहीं छोडतीं तब वैद्य जानलेवे कि इसमनुष्यके देहका रस पलटगया है यह हमने पुष्पित मनुष्यके रस, और गंधके लक्षण कहे इससे वैद्य रोगीका मरण कहे.

दंतपंक्त्युत्तरे न्यस्तं न विशेदंगुलित्रयम् ।

स याति सप्तरात्रेण निश्चितं यमसादनम् ॥

जिसके दांतोके भीतर देनेसे तीन उंगली न जावे, वो निश्चय सातदिनमेंमरे

छायां विधोर्न ध्रुवमृक्षमालामालोक्येद्यो न च मातृचक्रम् ।

खंडंपदं यस्य च कर्दमादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुंधी ॥

जो मनुष्य चंद्रमाके कलंकको, ध्रुवको, नक्षत्रोंको और मातृमंडलको न देखे और कीचआदिमें पैर रसनेसें बाधा पैरकौही चिन्ह दीखे, और जलमें कफ

गेरनेसैं जलके लेकर नीचे बैठजावे, उसे अरिष्ट जानना चाहिये ॥

उरः पुरः शुष्यति यस्य चार्द्रं न मांति तिस्रोद्गुलयश्च वक्त्रे ।

स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रिक्तमुखः खगो वा ॥

जिसकादेह चंदन अथवा जलआदिसैं गीलाहोकर प्रथम छातीसूखे, और जिसके मुखमें तीन उंगली न मावे और जलमें स्नानकरेहुएके मस्तकमें धूम (धूआं) कीशिखाउठे एवं जिसके मस्तकपर फ़लधान्यादिसैं रितो चोचवाले पक्षीबैठे, उसको अरिष्टहै ऐंसा जानना

‘नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वा सुभुक्तोऽपि घृतिं न घृते ।

निःश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीः कृशः स्थवीयानपि योप्यकस्मात्

जो मनुष्य उंगलियोंसैं कात्तोंके बंदकर कानोंके भीतरका स्वाभाविक शब्द-को न सुने, और जो बहुत भोजन करनेपर भी वृत्त न होवे, तथा अशोभित अकस्मात् शोभावान् होजाय, और शोभावान् अशोभित होजाय, एवं जो कृ शहै घो -मोटाहोजावे और मोटा मनुष्य अकस्मात् पतलाहोजावे तो उसको अरिष्टजानना, ॥

अतीवतुच्छं बहुचालपहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ ।

अप्यंगुलिक्रांतविलोचनांतो न भेचकं चान्द्रकमीक्षते यः ॥

जो ज्वरादे रोगके विना अत्यंतथोडा भोजन करनेलगे, और भस्मकादिरो-गके विना बहुत भोजन करनेलगे, और जो उत्तमविषय तथा दुष्टविषयोंमें अ-पने सात्म्यको छोड देवे, अर्थात् जो उत्तमकर्मकर्ता वो दुष्ट कर्म करने लगे और दुष्टकर्म वाला अच्छेकर्म करने लगे, एवं उंगलियोंसैं नेत्रोंको ढकनें पर मोरचंद्रिके समान तिलभिले अनुभवसिद्धको न देखे उसको अरिष्ट जानना

मध्येललाटं मणिवंधवारी न चाल्पिकां पश्यति यः कलावीं ।

अहेतुकं यः शवगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमंतितमूर्धजो वा ॥

जो ललाटपर पहुचेको धरकर थोडाभी पहुचेको (कलाईकी) न देखे, और विनाकारण जिसमें मुरदेकीवास अनेलगे, और जिसके समस्त मस्तक लावोंकी वेनीसी गुथजावे उसको अरिष्ट जानना

अपिक्षरद्रोमनखः शरीरात्सद्यः स्रवद्दामविलोचनो वा ।

निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥

जिसके शरीरसे रोमांच और नख स्वयं उसढकर गिरने लगे, और जिसका

वामनेत्रसे आंशु वहनेलगे और जो भूतपिशाचादि प्राणियोंको देखे, एवं जिसके नाक, नेत्र और कान ए सिथिलहोजावे, उसको अरिष्ट जानना चाहिये

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधुमाम्बुदा यथा ॥

ख्यापयन्ति भविष्यत्वं तथा रिष्टानि पंचताम् ॥

अर्थ—जैसे—पुष्प, धूआ, और बदल, ए फल, अग्नि, और जलके भविष्यको प्रगटकरतेहै, उसीप्रकार अरिष्ट मरणको सूचना करताहै। अर्थात् फूलफलको और धूआहोनेसे अग्नि, एवं बदल होनेसे पानीवर्षने का भविष्यसूचनाहोताहै। उसी प्रकार अरिष्टद्वारा मरणका बोध होताहै। अरिष्ट दोप्रकारकारकाहै एक नियत (निश्चित) और दूसरा अनियत (अनिश्चित) है। ॥

तानि सूक्ष्मात्प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।

गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्भुमुर्धोर्नत्वसम्भवात् ॥

अर्थ—उन प्रगटहुए अरिष्टोंको मरणेच्छू मूढमनुष्य अत्यंत सूक्ष्महोनेसे और शीघ्रनष्टहोजानेसे नहीं जानसक्ता अर्थात् वो परमाणुके समान अत्यंत सूक्ष्म होतेहै। और रोगी मतवालासा होताहै इसकारण तथा जिस समय अरिष्टहुआ उसी समय रोगी मरगया इन सबकारणोंसे भूख नहीं जानते किंतु यह नहींहै कि वो अरिष्ट उनके न होतेहो इसकारणको नहींजाने ॥

नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालाद्विपच्यते ।

तथैवारिष्टपाकं च ब्रुवते बहुधा जनाः ॥

अर्थ—अब यह कहतेहैकि। ये अरिष्ट पीडा पच्चीसवर्षादिमें क्यो होतीहै। इसवास्तेहैकि जैसे नक्षत्रजनित पीडा प्राय कालांतरमें पचतीहै उसीप्रकार अरिष्टफलको बहुतसे मनुष्य कहते है ॥

असिद्धिमाशुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ।

अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिपक् ॥

अर्थ—जो वैद्य गतायु अर्थात् मरणोन्मुखकी चिकित्सा करताहै वो इसलोकमें सिद्धि (चिकित्साफलधनयशादि)को नहींप्राप्तहोता, अतएव कुशलवैद्य यत्नपूर्वक अरिष्टोंको देखे ॥

अधसंप्रहीतश्लोकः व्यस्ताङ्गादिस्वमावा भुवि च पददलं भाविकारोऽशुपूर्वे स्वस्थोऽब्नाकं न पश्येत्तनुमितरदृशि स्वासि वा पीडयतेजः । ध्रौवादीन्वाथ पश्येद्गमहनि च तद्धिचापपूर्वं निरत्रे मूर्धेन्द्रोश्छिद्रपूर्वं मृत्किरुदिह च मृत्युञ्जयाज्ञाप्यहोमौ १

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत्किलामलैः ।
रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥

अर्थ—अब दोषज अरिष्टो करके मरण निश्चयको दिखातेहै कि अरिष्टहोनेसै इसप्राणीका अवश्य मरणहोताहै । वो अरिष्ट जन्ममरण रागादिदोषरहितब्राह्मणोकीसेवा, रसायन औषधोंका सेवन, तपश्चरण और गायत्र्यादिमंत्रोंके जपकरनेसै निवारणहोतेहै । यहकेवल अनियत अरिष्ट भिषकमे उपायहै और नियतहै वो दानपुण्यआदिकिसी उपायसै दूरनही होते ॥

अथछायापुरुषलक्षणम्

अथातः संप्रक्ष्याभिछायापुरुषलक्षणम् ।
येनविज्ञानमात्रेणत्रिकालज्ञोभवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम छायापुरुषके लक्षण कहतेहै जिसके जाननेसै यह प्राणी त्रिकालज्ञ (भूत-भविष्यत् वत्तमानका जाननेवाला) होताहै ॥

कालोदूरस्थितस्यापियेनोपायेनलक्ष्यते ।
तंवक्ष्याभिसमासेनयथोक्तंशंभुनापुरा ॥

अर्थ—दूरस्थितभी काल जिसउपायकरके दृष्टिगोचरहो उसको में सक्षेप करके कहू जैसे पहिले शिवजीने कहे है ॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षेतनिजांछायांकंठदेशेसमाहितः ॥

अर्थ—कालज्ञानकी परीक्षक मनुष्य निर्जन एकांतवनमे जाय समानभूमिमें सूर्यको पिछाडीकरके सीधा खडाहो फिर अपनी छायाके कंठदेशमें देखताहुआ सावधानीमे परीक्षाकरे ॥

ततश्चाकाशमक्षितततःपश्यतिशंकरम् ।

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेनमः इतिमंत्रःअधोत्तरशतवारंजपेत् ॥

अर्थ—धरावर [दोषही पर्यंत छायाको देखाकरे] फिरउसछायापरसँ दृष्टिको उठाकर आकाशकी तरफदेखेतो साक्षात् शिवको देखेगा जिससमयछाया देखनेको खडाहो तब १०८ बार इसमंत्रको पढे “ ॐ ह्रीं परब्रह्मणेनमः ” ॥

शुद्धस्फटिसंकाशं नानारूपधरंहरम् ॥

पण्मासाभ्यासयोगेनभूचराणांपतिर्भवेत् ॥

अर्थ—इसप्रकारकरनेसै शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेकरूपधारण कर्ताशिवको देखे इसप्रकार छःमाहिने करनेसै सपूर्ण प्राणीमात्रका अधिपतिहो ॥

वर्षद्वयेन हेनाथ कर्ताहर्ता स्वयंप्रभुः ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च ॥

अर्थ—दोवर्ष इसक्रियाके साधनकरने से स्वयं कर्त्ता हर्त्ता और त्रिकालका जाननेवाला परमआनन्दयुक्तहोवे ॥

सतताभ्यासयोगेननास्तिकिंचनदुर्लभम् ॥

अर्थ—इसीप्रकार बराबर नित्यप्रति साधनकर्त्ता रहेतो इससंसारमें अंसीकोई वस्तुनहीं है जो इससाधकको प्राप्ति नहो ॥

तद्रूपं कृष्णवर्णयः पश्यतिव्योम्निनिर्मले ॥

षण्मासान्मृत्युमाप्नोतिसयोगिनात्रसंशयः ॥

अर्थ—यदि यहयोगी आकाशमें उसछायापुरुषका वर्ण कालेरंगका देखेतो छःमहिनेमें निसंदेहमृत्युहो ॥

पीतेव्याधिभयंरक्ते नीलेहत्यांविनिर्दिशेत् ।

नानावर्णस्वरूपोस्मिन्नुद्वेगोजायतेमहान् ॥

अर्थ—यदि पीलावर्ण देखेतो इसको रोगही लालदेखेतो भयही और नीलेवर्ण की छायादेखेतो हत्यालगे—एव अनेक प्रकारके रंगकी छायादेखेतो इसके चित्तमें घोर उद्वेगहोवे ॥

पादेगुल्फेचजठरे विनष्टेमृत्युमादिशेत् ।

अर्धवर्षेणवर्षेणक्रमाद्धर्षद्वयेन च ॥

अर्थ—छायापुरुषके पैर—ठकना—और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छःमहिने, वर्षादिन और दोवर्ष में मृत्युहो अर्थात् पैर नदीखने से छःमहिनेमें ठकना न दीखनेसे वर्षादिनमें और पेटनदीखनेसे दोवर्षमें मरे ॥

विनष्टेदक्षिणेबाहौस्वबंधुर्भ्रियतेध्रुवम् ।

वामे वाहौ तथा भार्या विनश्यतिनसंशयः ॥

अर्थ—छाया पुरुषका दहना हाथ न दीखनेसे अपना भाई मरे और बाया हाथ न दीखनेसे अपनी स्त्रीमरे इसमें संदेह नहीं है ॥

शिरोदक्षिणवाव्होस्तुविनाशेमृत्युमादिशेत् ।

अशिरामासिमरणंविनाजघेदिनेनवा ।

अष्टभिःकंधरानाशे छायालुप्तेचतत्क्षणात् ॥

अर्थ—छायापुरुषकेगिर—और दहनो हाथन दीखनेसे मृत्युहो, यदि कंधादीखे तो महिनेमें मरे और विना पांढरीके दीखेतो एकदिनमें मरे कंधानदीखनेसे आठदिनमें और सर्व छाया न दीखेतो तत्कालमृत्युहो, परंतु यह ज्ञान के बल योगियों को होताहै अन्यको नहीं ॥

इति कालज्ञान समाप्ता.

वृत्तिभेद (पेसा)

वृत्ति अर्थात् पेसाभी एक रोगका कारण है जैसे जो अत्यंत कष्टकी मेहनत करते हैं जैसे बोझा उठानेवाले उनको वातकी विमारी होती है

और जो आनंदसे वैठे रहते हैं उनको अरुचि मंदाग्नि-बवासर आदि रोग होय है जैसे-सेठसाहूकार-लेखक-चितेरेआदिको

लुहार-घड़ीसाज-सुनार-रसोय्या और चूड़ी बनानेवाले नेत्रहीन और अन्य २ नेत्रके रोगोंसे ग्रसित होते हैं

धुनिया, बुहारी (झाड़ू) देनेवाले-चून-मैदाछानने वाले प्राय श्वास रोगी होते हैं

ससिके कामकरनेवाले प्राय पतले हाथके या झुकेहुए पहुंचके होते हैं

दिया सलाईके बनाने वाले हनुस्तंभ आदि रोगमें ग्रसित होते हैं

परंतु जंगली मनुष्य खेती करनेवाले गैया-भेड़ बकरीके चराने वाले प्रायः स्वच्छ पवनके सेवन करनेसे रोगहीन होते हैं

इत्यादि पेसेका विचार भी वैद्य अवश्य करकेपश्चात् चिकित्साकरे ॥

रीतिभांतिके भेदसे जातिभी रोग होनेका कारण है जैसे कि मुसलमान ए कही कुलमें विवाह करलेते इसकारण भावापके रोग पीढीदरपीढीचले जाते हैं और हिंदुजो बहुत छोटी अवस्थामें विवाह करते हैं इसीसे उनकी संतान अत्यंत दुर्बल होती जाती है जैसाकि हिन्दूकी संतान प्रथमकी छोते ही मरजाती है कदाचित् बचजावे तो बहुतही कमजोर होते हैं कि उसकी संपूर्ण अवस्था दुःख और अनेक प्रकारके रोग भोगनेमें कटती है तथा जो जवानीमें विवाह करते हैं उनकी संतान हृष्ट पुष्ट और रोगरहित होती है ॥

स्वरूपपरीक्षा

वातादीनांस्वरूपंतुप्राङ्मयाकथितं प्रिये

दूपणं पुनरुक्तिस्त्यात्तस्मान्नात्र प्रकाशितम् ॥

अर्थ—वातपित्तादिकोका स्वरूप प्रथमशारीरस्थानमें कहआए है फिरकहनेसे पुनरुक्ति दूपण आता है इसकारणयहां परनहीं कहा. ॥

जठरस्थरोगोंकीपरीक्षा

तातास्माभिः श्रुतंपूर्वनेत्रादीनांपरीक्षणम् ।

अधुनोदररोत्राणांपरीक्षावक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाप्रियशिष्यस्यधीमतः

आत्रेयोवक्तुमोरभेतत्सर्वशिष्यवत्सलः ॥ २ ॥

अर्थ—हारीतऋषि—परम कारुणिक सर्वशास्त्रविशारद अपने गुरु श्रीम-
हर्षि आत्रेयके चरणकमलमें प्रणामकर बोले कि हेतात ! अपने प्रथम नेत्रआदि
परीक्षा कही की जिसै हमको उसविषयमें बहुत कुछ लाभहुआ अब आप रुपा
करके उदरयंत्रोंकी परीक्षा कहनेको योग्यहो । इसप्रकार शिष्यवत्सल आ-
त्रेय भगवान् प्रियशिष्य हारीतके वचन सुन इसप्रकार कहनेका प्रारंभ करतेहुए

यकृदामाशयस्त्रीहाग्रहण्यान्त्राणिवृक्कौ

मलमूत्राशयोयंत्राण्यौदराण्यपराणिच ॥ ३ ॥

तेपांविद्यतितोयानिलक्षणानिभवंतिहि ।

शृणुतावहितावत्सावत्सिंसोऽहंसमासतः ॥ ४ ॥

अर्थ—यकृत—आमाशय—प्लीहा—संग्रहणी—संपूर्णआंत—वृक्क दोनो—मलाश-
य—औरमूत्राशय येसब इसीप्रकार औरभी अनेक उदरयंत्र विद्यमान होकर अ-
पने २ कार्यको करते हुए प्राणियोंकी जीवनरक्षा करते है । इनमें किसी प्रकारका
विकार होने सैं जोलक्षण होते है उनको में संक्षेपसैं वर्णन करताहूं उनको तू
सावधान होकर सुन

उदरेसर्वहस्तस्यस्थापयेन्मध्यमाङ्गुलीम् ।

तामन्यस्यकरस्याग्रैरङ्गुलीनांविधानतः ॥ ५ ॥

अभिहृत्याभिघातोत्थैर्ध्वनिभिर्विविधैर्भिषक् ।

क्रियाविशेषानयंत्राणांविद्यादुदरवर्तिनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—तहांप्रथम अभिघात परीक्षा कहते है जैसे—परीक्षाकरनेवाले रोगीके
पेटपर वैद्य अपना बायाँ हाथकी बीचकी उंगली धरके उसके ऊपर दहने
हाथकी सब उंगलियों को एक त्रितकर ताडनाकरे । करनेसैं पृथक् २ शब्दद्वारा
उदर यंत्रोंकी पृथक् २ अवस्थाका ज्ञानहोता है सो आगे लीखते है ॥

यकृद्देशान्मन्दतरःशब्दःप्रकृतितोभवेत् ।

शून्यामाशयतःशब्दोजायतेशून्यगर्भिकः ॥ ७ ॥

वातैर्वायदिवावाष्पैःपूर्णश्चामाशयोभवेत् ।

ततःप्रादुर्भवेच्छब्दोवाताध्मातोद्वतेर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—यकृतके ऊपर स्थितउदरके भागमें ताडना (करनेसे अस्फुट) धीरा शब्दप्रतीतहोवे । शून्य आमाशय के ऊपर ताडना करनेसे जैसाशून्य(रीते) पात्रकी आवाजहो अंसी फ्वनि निकलती है । यदि अमाशयवायु अथवा वाष्प द्वारा पूर्ण होनेसे. हवाभरी हुई धौकनीके शब्दसदृश आवाजनिकलती है ॥

वायुनास्फीतिमापन्नेप्रहतेचमलाशये ।

प्रतिध्वनिर्भवेच्छब्दोमन्दःस्यान्मलपूरिते ॥ ९ ॥

उदकोदरिणंकृत्वासर्वथापार्श्वशायिनं ।

तस्योर्ध्वपार्श्वविधिनापरीक्षेताभिघाततः ॥ १० ॥

अर्थ—वायु पूर्ण मलाशयके ऊपर आघात (चोटदेने) से प्रतिध्वनि अर्थात् जैसी चोटदेने से आवाजहोती है (उसीके माफिक) आवाजहो—यदिमलाऽशय मल पूरितहोवेतो मंद २ शब्दनिकले । जलंघर रोगीको किसी एककरवटसुलायकर उपरके पार्श्वमें आघात (चोट) से परीक्षाकरे ॥

स्वभारात्संचितंतोयंमध्येव्रजतिनिश्चितम् ।

तदूर्ध्वमुपतिष्ठतेक्षिप्रमंत्राणिवत्सकाः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वगतेभ्यश्चांत्रेभ्यःशब्दश्चाध्मानिकोभवेत् ।

अभिघातपरीक्षेयंमयाप्रोक्तासमासतः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार सेते हुए जलंघररोगीका पेटका संचित जलसमूह अपने भारीपने के बससे नीचेको उतर बीचमें रहता है और आंतहे सबउपरहीके पसवाडेमे रहजाते है इसऊपरके पसवाडेमें आघात करनेसे आध्मानिक शब्दहोता है यह मेने अभिघातपरीक्षा संक्षेप से कही है ॥

भोजनादुदरस्योर्ध्वगौरवंजायतेमहत् ।

शिरोरुग्वक्त्रैरस्यंहृद्दाहोवमथुस्तथा ॥ १३ ॥

रसनामलसंपूर्णाक्लान्तिर्हृदयवेपनम् ।

निद्रानाशोग्रिमान्द्येस्याज्जाड्यंदुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—आमाशयकी विकृति से मंदाग्रिका रोग होता है भोजनके उपरांत पेट अत्यंत भारीहो मस्तकपीडा-मुखमें विरसता-हृदयमें दाह-चपन-जीभपरभिड-

का अमना-क्लांति-हृदयका फडकना-निद्रानाश-तथा निद्रा आवेतो वुरे २ स्वप्न
दीखे-और इसमंदाग्नि रोगमें प्राणी जकड़ासाहो जाता है ये सबलक्षण होते है ॥

आमाशयव्रणेनृणांजायतेपरिकर्तिका
वांत्यातदाशयेशून्येवेदनासाप्रशाम्यति ॥ १५ ॥

भोजनाद्वांतिरेवस्याच्छेष्मशोणितसंयुता
रुधिरस्यापिवमनंरक्तपित्तस्यवाभवेत् ॥ १६ ॥

पुरीषैर्मलिनंरक्तानिर्यायाद्भुदतोऽपिच
प्रायशोयोषितामेवव्याधिःस्यादतुरोधतः ॥ १७ ॥

अर्थ—आमाशय में घावहोने से उसमें कतरने कीसी पीडा होवे. जब वमन होने से आमाशय खाली हो जावे तबपीडा भी शांति होजावे । तथा भोजनके पश्चात् कफ अथवा रुधिर मिली वमन (रद) वा केवल रुधिरकी रद अथवा रक्तपित्तकी वमनहो एवं मल (विष्टा) के साथ रुधिर निकले येसंपूर्ण लक्षण होते है । यहव्याधि प्रायःस्त्रियोंकें होतीहै स्त्रियोंके ऋतुके न होनेसे यहरोग होताहै ॥

पर्शुकाधोयकृत्स्त्रीहानाविकृत्योऽनुभूयते
दक्षिणाच्चूचुकान्निम्नेद्रचंगुलाद्यकृतःस्थितिः ॥ १८ ॥

अतीत्यैकांगुलिस्थानंपर्शुकाभ्यश्वनिश्चितम्
उरःप्राचीरसंकोचाद्विवृद्ध्याहृदयस्यच ॥ १९ ॥

वायुनाफुफ्फुसस्फीत्यक्षोभणैरपरैरपि
यकृत्स्थानात्प्रच्यवतेनतद्वृद्धंविधारयेत् ॥ २० ॥

अर्थ—रोगरहित प्राणिके यकृत (कलेजा) घृहीदा (तिळी) पसली के नीचे टटोरने से प्रतीत नहीं होती । दक्षिण स्तनके दोअंगुलनीचेसे पसलीके नीचे एकअंगुलपर्यंत स्थानमें व्याप्त यकृत को जानना । वक्षस्थल प्राचीका संकोच-हृदयकी संवृद्धि-वायुके फुफ्फुसकापरिपूर्ण होना-तथा अन्य २ क्षोभकारक कारण द्वारा यकृत.हठकर नीचेको आजाती है-इसप्रकार नीचेको आई हुई यकृतको वढीहुई कहने से भ्रमनहीं होता ॥

दक्षिणेशकलेप्रायोविद्राधिर्यकृतोभवेत् ।
हिक्काश्वासोवमिःकासो जायतेतीव्रवेदना ॥ २१ ॥
नशक्तिःशयनेतस्यसव्येपार्श्वेभवेच्चतु

इतिप्रोक्तंसमासेनयकृद्विद्रधिद्विलक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ—यकृतमें विद्रधि रोगहोनेसे हिचकी-श्वास-वमन-स्वासी-इत्यादिसै तीव्रपीडा हो तयारोगी सै वाई करवट नही सोया जावे इत्यादि संपूर्ण लक्षण होते है । इसप्रकार यकृत विद्रधि के लक्षण में कहे है यकृतके प्रायदहने संढमें विद्रधि होती है ॥

अनुभूयेतहस्तेनष्ठीहाचयदिकस्यचित्

तदातंव्याधितंविद्यात्तेनरक्तक्षयोभवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ—ष्ठीहा (तिळ्ही) यदि हाथोंसे प्रतीत होनेलगे अर्थात् टटोरने सैं मालूमहोनेलगे तो जानेकि इसके रोग है. ष्ठीहके बढनेसैं मनुष्यका रुधिर क्षीण होता है

पश्चान्मलाशयाद्वृक्कौवर्ततेचोदुरान्तरे ।

तत्ररक्तावरोधेनमूत्रंस्तोकंत्यजेन्नरः ॥ २४ ॥

मूत्रंसशोणितंवापिवेदनातत्रदारुणा ।

तथास्पर्शासहत्वंचवृक्कविकृतिलक्षणम् ॥ २५ ॥

अर्थ—मलाशयको पिछाडी दोवृक्कहै उसवृक्कमें रुधिर रुकनेसैं मूत्र थोडाउतरताहै अथवा रुधिरयुक्त मूत्रउतरे तथा उसमें दारुणपीडाहो । इसपीडाके कारण स्थानकेइस छूनेसै रोगो नसहाजाय । ये वृक्कमें विकार होनेसैं लक्षण होते है

विकृतेतिलकेनृणांमलमेदोयुतंभवेत् ।

अग्निमांद्यंभवेच्चापिदौर्बल्यंचाप्यजीर्णता ॥ २६ ॥

अंत्रावरोधाद्भ्रान्तिःस्यादवसादश्चचेतसः ।

विट्संगो वेदनात्युग्रा पुरीपवमनं तथा ॥ २७ ॥

अर्थ—तिलक (क्लोम) की विकृति होनेसै समेदमल-मंदाग्नि-दुर्बलता-और अजीर्ण रोग होते है तथा अंत्रावरोधरोग-वमन-चित्तकी असावधानता कोष्ठ रोग-उग्रपीडा और मलकीरह-ए सबलक्षण होते है

रोगस्थानादधश्वांत्रेशून्यतोपरिपूर्णता ।

रोगेणानेनचाक्रांतोनरः प्रायस्त्यजत्यसूत्रं ॥ २८ ॥

मलमूत्राशयौदुष्टौमेहानाहादिकान्बहून् ।

व्याधीन्जनयतोदुष्टायहणीविन्हिमन्दताम् ॥

अर्थ—रोगस्थानके नीचे अंत्राशमें शून्यता और ऊपरके भागमें पूर्णता प्रती-
तहोती है। इससे व्याप्त रोगीके जीनेकी आशा नकरे। इसजगे संक्षेपसे उदरयंत्र
आदिकी विकृति लक्षण लिखते है। मलमूत्राशयोकी दुष्टीहोना अनेक प्रमेह-
अफाराआदिरोगोंको—तथा संग्रहणी और मंदाग्नि आदि दुष्टरोगोंको प्रगटकरेहै

इत्यौदराणांयंत्राणांविक्रियायांसमासतः
यान्युद्भवन्तिचिह्नानिमयाप्रोक्तानिवत्सकाः ॥ २९ ॥
प्रतिरोगंप्रवक्ष्यामिकृत्स्नशश्वपराणि च ।
तानिसर्वाणिवेद्यानिभिषजासिद्धिमिच्छता ॥ ३० ॥

अर्थ—यें उदरयंत्रोंकी विकृतिसै होनेवाले जों चिह्न है वों मेंने हेवत्स संक्षे-
पसे तेरे आगे कहे है। बाकौ संपूर्ण लक्षण रोग २ के प्रतिपृथक् २ कहंगा उनको
सिद्धीकी इच्छाकरनेवाले वैद्यकों अवश्य जानना चाहिये ॥

इतिजठरस्थरोगोंकीपरीक्षा

बालकोंके रोगकी परीक्षा

नकिंचिदंस्तिकर्मदुःखहतरंयथाशिशूनांरोगपरीक्षणम्
परंधैर्यशीलगांभीर्यशान्त्यादिभिस्तेपांप्रियदर्शनप्रदा
नाभ्यां तथान्यैस्तोपणकर्मभिश्चतदपिसुकरंभवति ॥

अर्थ—बालकके रोगपरीक्षाके समान और कोई विषय कठिन नहीं है। अ-
तएव वैद्य धीरज—शीलता—और गांभीर्यके आश्रयसे सांत्वनवादद्वारा [पुचका-
री देकर] तथा बालकका प्रिय खिलाने आदि दिस्वाके वा देकर एवं अन्य प्र-
कारो करके बालकको फुसलाकर रोगोंकी परीक्षाकर सकता है [अन्यथा नहीं]॥

बालाह्यात्मवेदनानिवेदनेसर्वथैवासमर्थारोदनमात्रस-
हायां आत्मशुभाशुभवृद्धिपरिहीनाः सर्वथान्येषुसम-
र्पितप्राणाभृशंपरावलम्बिनःपरदयाभाजनानि ॥

अर्थ—बालक अपने दुःखके कहनेमें सर्वथा असमर्थ होता है केवल रुदन
मात्र सहाय अर्थात् रुदनके सिवाय वो कुछ नहीं करसक्ता तथा आपके लिये

हित और अहित बुद्धि करके रहित होता है एवं सर्वथा औरोंके हाथमें समर्पित प्राण होते हैं अतएव इनके समान दयाका पात्र दूसरा नहीं है ॥

जगतिनतस्मात्कश्चिदपरः पापीयान्नयः सर्वथासर्व
प्रयत्नेनसमाहितचेताः सम्यग्विचार्यतान्भेपजैरुप-
पादयेत् । भिपजासर्वेषुवातुराअविशेषेणपुत्रवद्वष्ट-
व्याविशेषतःशिशवः।तेनात्यर्थमवधानपरेणावश्यंभा-
वयितव्यम् । यथातेनतस्माद्भीतिमापादयन् ॥

अर्थ—उस प्राणीके समान दूसरा घोर पापी कोई नहीं है जो सर्वथा सर्व यत्र करके सावधानीके साथ विचार पूर्वक बालकोंकी चिकित्सा नहीं करता । वैद्यको उचित है कि संपूर्ण रोगियोंको प्रायः पुत्रके समान देखे [जैसे अपने पुत्रकोकिं चिन्मात्रभी पीढा युक्त नहीं देख सके इसी प्रकार सब रोगियोंको देखे] इनमेंभी बालकोके ऊपर परमकृपादृष्टिसँ देखे । वैद्यको इसप्रकार सावधान होना असंत आवश्यक कहै कि जिसप्रकार बालक डरपे नहीं ॥

भिपजापरीक्षार्थं गृहं प्रविश्य प्रथमं शिशोर्धात्रीतः एता
न्यवश्यं वेद्यानि । यथा । वर्तमानरोगोत्पत्तेः प्राकृत
स्य दैहिको वस्या विशेषः अतीता पूर्व रूपप्रकृतिर्जात
रोगसंपृक्ता विविधाश्च पराविकृतयः शिशुः पुमान् स्त्री
वात्यक्तस्तनोवानवासयदाहारप्रियस्तस्य वयः परिमा
णं मलमूत्रादीनां प्रकृतिरित्याद्यानि ।

अर्थ—वैद्य बालकके देखको उसके घरमें प्राप्त होतेही उसकी घाय [अथवा मातासँ] इतनी चार्त्ता प्रथमही अवश्य जान लेवे । जैसे वर्तमान रोगके उत्पन्न होनेके पूर्व उसकी कैसी दशा थी । किसप्रकार पूर्वलक्षण हुए थे । उपस्थित रोग संपृक्त और और विकृति स्वरूपका जानना एवं बालक पुरुष है या स्त्री है स्तनको पीता है या नहीं पीवे । यदि बाल भोजन मिय होवे तो उसकी अवस्थाका परिमाण पूछना तथा मलमूत्रादिकी प्रकृति इत्यादि ॥

शिशुर्यदि स्वपितिनतं प्रयोषयेत्सुप्तस्यैव तस्या कृत्यंग
संस्थितिप्रभृतीनि विशेषेण क्षणीयानि । स उत्तानशायी
पार्श्वशायी वा विस्तीर्णजंघः कुंचितजंघो वा इत्यादि-

भिस्तस्यांगसंस्थितिविशेषैर्व्याधेः कृच्छ्रत्वमकृच्छ्रत्वं
वावगम्येत ।

अर्थ—यदि बालक सोता होवे तो उसको जगाने नहीं सोते हीकी आकृति अंगोंकी स्थिति आदिकी परीक्षा करलेवे बालक सीधा सोताहै या करवटसँ सोताहै पैरपसारके या पैरोंको सिकडकर सोताहै इत्यादि उसको अंगसंस्थिती विशेष करके लक्षकरे । इत्यादि संपूर्ण अवस्था विशेषों करके कृच्छ्रसाध्य-और सुखसाध्य व्याधि जानना ॥

ज्वरेसान्निपातिकेफुफ्फुसेच व्यथाकुलेगण्डौलोहितौ
स्याताम् । कुंजनात्सहसानिद्राछेदादकस्मादाक्षेपाद् ।
विक्रोशनाद्धस्तग्रहाच्चतस्यमस्तिष्कविकृतिरनुमेया ।
आमाशयेऔग्रतामापन्नेऽकस्मान्मुखविवरमाक्षिप्य
ते । नयनयोरसम्यनिमीलनान्मस्तिष्कविक्रियारोग
स्यकृच्छ्रसाध्यत्वंचावगम्यम् ।

अर्थ—संनिपातज्वरमें-और फुफ्फुसकी पीडामें बालकके गंड दोनों लालरंगके होते है । कुंजना-सहसा निद्रा जाती रहना-अकस्मात् आक्षेपकीक मारना-और हाथोंका जकडना ये संपूर्ण लक्षण मस्तिष्क विकारके सूचक है अर्थात् इन लक्षोंसँ बालकके मस्तिष्क संबंधी रोग जानना । आमाशयमें उपद्रव होनेसँ अकस्मात् मुखमिच जाताहै।दोनों नेत्रोंके आधे आधे मूंदनेसँ उस बालकके पीडाकी आधिक्यता तथा मस्तिष्कविकृति ज्ञापक है ॥

॥ इति बालरोग परीक्षाविधि समाप्त ॥

अथवस्त्रपरीक्षा

ज्वरव्याप्तशरीरस्य ऊष्मा भवति दारुणः
सऊष्मावहिरामोति वस्त्रेतिष्ठतिनिश्चितम् ॥

अर्थ—ज्वरयुक्तदेहमें दारुणगरमी रहती है वह गरमीदेहसँ निकलवस्त्रमें उदरतीहै अतएव इसप्राणीके वस्त्रोंकी परीक्षा करनी चाहिये ॥

वातपित्तकफानांचद्विन्निदोषस्यलक्षणम् ।

परीक्षेज्ज्वरिणोवस्त्रं वैद्यो वै शुद्धवंशजः ॥

अर्थ—ज्वरवाले प्राणीके वात-पित्त-कफ-द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षण शुद्ध वंशोत्पन्नवैद्य वस्त्रद्वारा परीक्षाकरे सो इसप्रकार ॥

वातेवस्त्रंसौरभंघ्राणतःस्यात् ।

पौष्पंपैत्तेमत्स्यतुल्यंविगंधम् ॥

पाकास्थोणंश्लेष्मणः संप्रकोपात् ।

द्वंद्वैर्द्वंद्वोत्पुल्वणैरुद्येकताच ॥

अर्थ—वादीसँ रोगीके वस्त्रमें फूलकीसी गंध आतीहै पित्तसँ मछलीकीसी और कफके कोपसँ पकेहुए फोडे कीसी और द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षणमिलने-सँ त्रिदोषके लक्षणजानने ॥

यदावस्त्रेभवेद्गंधः सटिताजालकर्दमः ।

तदादीर्घाभवेद्गोम्रियतेशवगंधकः ॥

अर्थ—जिसके वस्त्रमें सड़ीहुईजाल और कीचकीसी दुर्गंध आवे उसके बहुत दिनोंका रोगजानना और जिसके वस्त्रमें मुरदेकीसी दुर्गंधआवे उसकीमृत्युहो ॥

इतिवस्त्रपरीक्षा

अथ देशाः

भूमिदेशस्त्रिधाऽनूपोजाङ्गलोमिश्रलक्षणः ॥

अर्थ—भूमिदेश तीनप्रकारका है एक अनूप दूसरा जांगल और तीसरा मिश्र संज्ञक (मिलाभुला) है तहां प्रथम अनूप देशके लक्षण कहते है.

अनूपलक्षणम्

नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः ।

हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः ॥

शशोवराहमहिपरुरुरोहिकुलाकुलः ॥

प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्योनीलसस्यफलान्वितः ॥

अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः ॥

अर्थ—जिसमें नदीनाले-तलैया-पर्यंत-फूलेहुए कमल-हंस-सारस चनेके-

चकवा आदि पक्षी शशा-सूकर-भैसा-रू (हरिणकाभेद) और रोहिस इत्यादि चतुष्पद समूहयुक्त-तथा अत्यंत वृक्ष-फूलकेवृक्ष-नीलवर्णपुष्प-हरी २ घास और फलयुक्तहो-तथा अनेक प्रकारके चावल-खेती केलाकेवृक्ष और अनेक प्रकार धान्यादिको करके जो देश युक्त हो उसको अनूपदेश कहते हैं-जैसे कश्मीर का बूल तिब्बत, आदिदेश है.

अनूपदेशकेभेद

तच्चोक्तकृत्स्ननिजलक्षणधारिभूरिच्छायावृतांतरवहद्वहुवारि
मुख्यं।ईषत्प्रकाशसलिलंयदिमध्यमंतदेतच्चनातिबहुलांबुभवे
त्कनीयः ॥

अर्थ—जिसदेशमें अनूपदेशके उक्तलक्षणसमग्र पाएजावे और अत्यंत छाया युक्तहो तथा अत्यंत जलयुक्त होवो उत्तम अनूपदेश जानना। और जिसमें थोड़ी छाया और थोड़ा जलहो तथा उक्तलक्षण कुछ २ मिलते हो वहमध्यम अनूपदेश है—और जिसमें बहुतही थोड़ा जलहो उसको कनिष्ठ अनूपदेश जानना ॥

जांगललक्षणम्

आकाशशुभ्रउच्चश्चस्वल्पपानीयपादपः ।
शमीकरीरविल्वार्कपीलूककैधुसंकुलः ॥
हरिणैणर्क्षपृषतगोकर्णस्वरसंकुलः
सुस्वादुफलवानदेशोवातलोजांगलः स्मृतः ॥

अर्थ—जोदेश आकाशके समान शुभ्र और ऊंचाहो, थोड़े जलाशय (कूआवावडीआदि) और थोड़े जहां तहां वृक्षहो तथा छोकरा—करील—बेल आक पीलू—और बेर इत्यादि वृक्षजहां हो—तथा हरिण—एण (कालाहरिण) रीछ-चीता—रोज—और गधा ए अधिकहो. तथा जिसदेशमें स्वादु फलप्रगट होते हो वह वातकारक जांगल देशजानना ॥

यत्रानूपविपर्ययस्तनुत्तृणास्तीर्णाधराघूसरा ।
मुद्गव्रीहियवादिधान्यफलदातीत्रोष्मवत्युत्तमा ॥
प्रायःपित्तविवृद्धिरुद्धतबलाः स्युर्नीरुजःप्राणिनो ।
गावोजाश्च पयः क्षरंतिबहुतत्कूपेजलंजांगलम् ॥

अर्थ—अब ग्रथान्तर सै जांगल देशके लक्षण कहते है कि जिसमे अनूप देश सै विपरीत लक्षण मिलते हो तथा थोडे तिनकाओंसे पृथ्वी आच्छादितहो और धूसरे रंगकी हो तथा मूंग-मोठ-मक्का यवआदि धान्य अत्यंत होते हो. तीव्र गरमी करके युक्त और पित्तके बढानेवाली एवंजिसमें बलवान् और रजोगुण रहित प्राणी होते हो और गौओंके थनोमें दूध बहुतहो तथा कूआसें जल-प्राय प्राप्त हो उसें जांगल देशकहते है जैसे मारवाडके देश आफ्रिकाकामुल्क और अरब आदिकी विलायत जाननी

**एतच्चमुख्यमुदितंस्वगुणैःसमग्रमल्पाल्पभूरुहयुतंयदिमध्यमंतत्ता
तच्चापिकूपखननेसुलभांतुयत्तज्ज्ञेयंकनीयइतिजांगलकंत्रिरूपम्**

अर्थ—जिस जांगल देशमें सर्व लक्षण मिलतेहो वह उत्तम है। और जिसमें बहुत थोडे वृक्ष और थोडे दूरपर पानी मिले तथा जांगल देशके कुछ लक्षण मिलते हो और कुछ न मिलतेहो वह जांगलदेश मध्यमहै। और जिसमें कूआखोदनेसें पासही जल निकल आवे वह कनिष्ठ जांगल देशहै ॥

साधारणलक्षणम्

संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणोमतः

समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ॥

समतातेनदोषाणांतस्मात्साधारणोवरः ॥

अर्थ—जो अनूपदेश और जांगलदेशके मिले हुए लक्षण युक्तहो उसे साधारण देशकहतेहै इससाधारणदेशमें शीत-वर्षा-गरमी-और पवन समान रहती है इसीसे दोष भी समान रहते है अतएव यह साधारणदेश उत्तमकहहै. साधारणदेश जैसे मधुरा अमरत इहली काशी पटना आदिजानने ॥

**लक्ष्मोन्मीलितियत्रकिंचिदुभयोस्तज्जांगलानूपयोगोधूमोल्बण-
यावनालविलसन्मापादिधान्योद्भवः। नानावर्णमशेषजंतुसुखदं
शंबुधामध्यमदोषोद्भूतिविकोपशांतिसहितंसाधारणंतंविदुः ॥**

अर्थ—जिसदेशमें जांगल और अनूप ए दोनोदेशोंके लक्षणमिलतेहों और गेहू जो उहद आदि धान्य प्रगट होतेहो-तथा अनेक वर्णके पशुपक्षी आदि सबको सुखकारी उसको पंडितजन मध्यमदेशकहते है इसमें विकारोका कोप और शांति स्वयं होती रहती है इसीको साधारण देशजानना चाहिये ॥

तच्च साधारणं द्वेषाऽनूपजांगलयोः परम् ।

अतःप्रयोगकार्यार्थमानमत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ—बिना मान (परिमाणज्ञान) के सर्व द्रव्यप्रयोग की युक्तिनहीं हो सकती इसी हेतुसँ प्रथम हम परिमाणज्ञानको प्रयोगकार्यके अर्थ लिखते हैं। मानपरिभाषाअनेक देशमें अनेकप्रकारकी है और मानभेदभी भिन्नाभिन्न है इससँ हम प्रथम मार्गधपरिभाषा जो मध्येदेशमें प्राचीन आचार्योंनि बांधी है उसै लिखते हैं॥

त्रसरेणुवैःप्रोक्तस्त्रिंशद्भिःपरमाणुभिः ।

त्रसरेणुस्तुपर्यायनाम्नावंशीनिगद्यते ॥

अर्थ—तीस परमाणुका १ त्रसरेणु वैद्योंने कहा है वंशी इस त्रसरेणुका पर्यायवाचक नाम है अर्थात् उसीत्रसरेणुको वंशीभी कहते हैं ॥

परमाणुकेलक्षण

जालांतरगतेभानौयत्सूक्ष्मंदृश्यतेरजः ।

तस्यत्रिंशत्तमोभागः परमाणुःसुच्यते ॥

अर्थ—अवपरमाणुके लक्षण कहते हैं कि घरमें जाली झरोखा आदिमें सूयकी किरण पड़ती है उनकिरणोंमें जो बहुत सूक्ष्म धूलके किनके उड़ते दीखते उस किनकेका तीसवा जो भाग है उसको परमाणु अंसा कहते हैं ॥

वंश्यादिकोंकेपरिमाण

पट्टंशीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःपट्टभिस्तुराजिका ।

तिसृभीराजिकाभिश्चसर्पपः प्रोच्यतेतुवैः ।

यवोष्टसर्पपैःप्रोक्तोगुंजास्यात्तच्चतुष्टयम् ।

अर्थ—अबफिरउसी त्रसरेणुसँ प्रमाण कहते हैंकि ५ वंशी (त्रसरेणु) की १ मरीची होती है। छःमरीची की १ राई, ३ राई की १ सरसो, आठसरसोका १ यव (जौ), चार जौ की १ रत्ती (धूँघची) होती है ॥

मासेकापरिमाण

पट्टभिस्तुरक्तिकाभिःस्यान्मापकोहेमघान्यकौ ।

अर्थ—छःरत्तीका एक मासा इस मासेको हेम और घान्यक भी कहते ॥

शाणकाऔरकोलकापरिमाण

भाषैश्वतुर्भिःशाणःस्याद्धरणःसनिगद्यते ।

टंकःसएवकथितस्तद्द्वयंकोलउच्यते ॥

क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रंक्षणःसनिगद्यते ।

अर्थ—चारमासेका १ शाण होता है, इसशाणको धरण और टंकभी कहते हैं, दोशाणका १ कोलकहाता है इसै क्षुद्रभ, वटक, और द्रंक्षण भी कहते हैं [कोल-नाम भाषामें बेरका है अतएव तोलमे बेरके प्रमाण होने से इसकी कोल संज्ञा वैद्योंने कही है]

कर्पकापरिमाण

कोलद्वयंतुकर्पःस्यात्सप्रोक्तः पाणिमानिका ।

अक्षः पिचुः पाणितलंकिंचित्पाणिश्वत्तिंदुकम् ॥

विडालपदकंचैवंतथापोडशिकामता ।

करमध्यहंसपदंसुवर्णकवलग्रहंम्

उदुंबरंचपर्यायैःकर्प एवनिगद्यते ॥

अर्थ—दोकोलका १ कर्पहोताहै इसकर्पको पाणिमानिक-अक्ष-पिचु-पाणि-तल-किंचित्पाणि-तिंदुक-विडालपदक-पोडशिका-करमध्य-हंसपद-सुवर्ण-क-वलग्रह-और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ए तेरह नामभी उसीकर्पके हैं। कर्पकोलौ-किकमें तोलाकहते हैं [तोलेभर वस्तुका प्रमाण गूलरके समान होताहै इसीसे इसकी उदुंबरभी संज्ञाकही है]

अर्द्धपलतथापलकापरिमाण

स्यात्कर्पाभ्यामर्धपलंशुक्तिरष्टमिका तथा ।

शुक्तिभ्यांचपलंज्ञेयंमुष्टिराम्रचतुर्थिका

प्रकुंचः पोडशीविल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥

अर्थ—दोकर्पका १ अर्धपल इसको शुक्ति (सीप) और अष्टमिकाभी कहते हैं दोशुक्तिका १ पलहोताहै उसको मुष्टी (मुठोभर) आम्र चतुर्थिका-प्रकुंच-शो-डशी और विल्वभी कहते हैं [आम्र और वेलकी बराबर वस्तुकापरिमाण होनेसे पलकी आम्र और विल्वसंज्ञाहै]

प्रसृतिसैआदिलेकेमानिकापर्यंतकापरिमाण

पलाभ्यांप्रसृतिर्ज्ञेयाप्रसृतश्चनिगद्यते ॥
 प्रसृतिभ्यामंजलिःस्यात्कुडवोर्धशरावकः ॥
 अष्टमानंचसंज्ञेयंकुडवाभ्यांचमानिका ॥
 शरावोष्टपलंतद्वज्ज्ञेयमत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ—दोपलका १ प्रसृति इसै प्रसृतभी कहते है-दोप्रसृतिकी १ अंजली इस-
 को कुडव-अर्ध शरावक और अष्टमान-भी कहते है. [कुडवको लौकिकमें पावभर
 कहते है]दोकुडवकी मानिका होती है उसे शराव, और अष्टपल भी कहते है.[मा-
 निकाकी लौकिकमें आधसेरसंज्ञाहै-शरावके भरजानेसें इसतौलका नामशराव है]

प्रस्थकाऔरआढककापरिमाण

शरावाभ्यांभवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।
 भाजनंकंसपात्रंचचतुर्षष्टिपलंचतत् ॥

अर्थ—दोशरावका १ प्रस्थ अर्थात् सेर होताहै और चार प्रस्थका १ आढक
 आढकको भाजन और कंसमात्रभी कहतेहै इसके ६४ पल और २५६ तोले, होते है.

द्रोणसैलेकरद्रोणीपर्यंतपरिमाण

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशोनल्वणोन्मनौ ॥
 उन्मानश्चघटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥
 द्रोणाभ्यांशूर्पकुंभौचचतुषष्टिशरावकाः ॥
 शूर्पाभ्यांचभवेद्द्रोणीवाहोगोणीचसास्मृता ॥

अर्थ—चार आढकका १ द्रोणहोताहै उसको कलश-नल्वण-उन्मन-उन्मान
 घट-और राशि-कहते है [एकघडेभर वस्तुकी आढकसंज्ञाहै] दो द्रोणका एकशूर्प
 और कुंभहोताहै. उसशूर्पके ६४ शराव अर्थात् ५१२ पल और १०४८ तोले होते
 है-दोशूर्पकी १ द्रोणी उसको गोणीभी कहते है. ॥

खारीकापरिमाण

द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासूक्ष्मवृद्धिभिः ॥
 चतुःसहस्रपलिकापणवत्यधिकाचसा ॥

अर्थ—चार द्रोणकी १ खारी होती है. उसखारीके ४०९ पल तथा १६३८४
 तोले होतेहै. ॥

भारका और तुलाका परिमाण
 पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः ॥
 तुलापलशतं ज्ञेया सर्वत्रैपविनिश्चयः ॥

अर्थ—दो हजार पलका एक भार होता है. और सौ पलकी १ तुला होती है
 अंसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥

सुखबोधार्थ उक्तमानको एक श्लोकमें कहते हैं ॥
 मापटंकाक्षविल्वानिकुडवः प्रस्थमाढकम् ॥
 राशिर्गोणीस्वारिकेतियथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

अर्थ—मासेसँ लेकर स्वारी पर्यंत एकसँ दूसरीतोल चौगुनी जाननी जैसे चार
 मासेका १ शाण-चारशाणका १ कर्प-चारकर्पका १ विल्व-चारविल्वकी १ अंजली-
 चारअंजलीका १ प्रस्थ-चारप्रस्थका १ आढक-चारआढककी १ राशि-चार-
 राशिकी १ गोणी-चारगोणीकी १ स्वारी इसप्रकार समझनी चाहिये ॥

परिभाषाके मतभेदकी ऐक्यता
 द्वात्रिंशन्मापकैर्मापश्चरकस्य तु तैः पलम् ।
 अष्टचत्वारिंशत्ता स्यात्

अर्थ—रत्तीके आधीन मापेका-मापेके आधीन कर्पपलादिकका ज्ञान है अर्थात्
 [जवतक यह निश्चय न करलेवे कि रत्ती कितने वजनको कहते हैं तथा कितने
 रत्तीका मापा और कितने मापेका कर्प होता है तब तक किसी तोलका प्रमाण
 नहीं होता] अतएव मापकादि मानके स्थापनके अर्थ परिभाषा कहते हैं—
 ३२ धान्य मापकोंका (मापकलायोंका) चरकके मतसँ मापा होता है और
 उन्हीं ४८ मासेका चरकके मतसँ पल होता है इसीकारण कर्पकी लौकिकमें
 तोला संज्ञा कही है ॥

मुश्रुतस्य तु मापकः

द्वादशभिर्धान्यमापैश्च तु पष्टचा तु तैः पलम् ॥

अर्थ—मुश्रुतके मतसँ १२ ग्रीही मासक चावलोका एकमासा होता और
 ६४ मासेका पल होता है ॥

एतच्च तुलितं पञ्चरक्तिमापात्मकं पलं ।

चरकार्द्धपलोन्मानं

अर्थ—अब चरक मुश्रुत इन दोनोंके मतसँ जितनी रत्तियोंका मापा होता है

उसको कहते हैं—वारह धान्यमापक कर्के करे हुए ६४ मासोंका जो सुश्रुतने पल कहा है वो रत्तियोंके तोलनेसे ५ रत्तीका मापा होकर चरकके मतसे आधा पल होवे गा ॥

चरकेदशरत्तिकैः ॥

मापैः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तथेरितम् ॥

अर्थ—चरकके मतसे दश रत्तीका मापा होता है और ऐसे ६४ मासेका पल होता है अर्थात् ३२ मापकलाय कर्के करे हुए ४८ मासेका जो पलमान है वो दशरत्तीका मासा मानकर ६४ मासेसे तोले तो पूर्वोक्त मान होता है क्योंकि २४ मापकलाय (मटर) दशरत्तीके बराबर होती है ॥

तो अब दशरत्तीका मासा मानकर ऐसे ६४ मासोंको २४ से गुण दिया तो १५३६ मासकलाय हो गए ॥

इसी प्रकार चरकके मतसेभी ३२ मापकलायका मापा मानकर असे ४८ मासोंको ३२ से गुण दिया तो १५३६ मापकलाय होते है ॥

तो अब दशरत्तीके मासेवाले पलको ३२ मापकलाय प्रमाण मासेवाले पलके साथ मिलान करनेसे समानता प्रत्यक्ष मिलती है सुश्रुतके मतसे वारह मापकलाय वाले ६४ मासेका पल होता है ॥

उनको ६४ मासोंको १२ मापकलाय से गुणातो ७६८ ये चरकके मतसे आधामान सुश्रुतका हुआ

तस्मात्पलं चतुःपष्ट्यामापकैर्दशरत्तिकैः ।

चरकानुमतं वैथैथिकित्सासूपयुज्यते ॥

अर्थ—अब चरक सुश्रुत दोनोंके मानमें चरककाही मान व्यवहारोपयोगी है यह कहते है पूर्वोक्त कारण कर्के दशरत्ती मासेके हिसाबसे ६४ मासेकाही पल चरकके मतका वैद्योंको चिकित्सामें लेना चाहिये सुश्रुतका नहीं ॥

अब हमने लौकिकोदाहरणमें १ पलकी छटकी मानी है तो इसकोभी विचारकर देखा जावे कुछ थोड़ाही फरक पड़ेगा जैसे चरकके मतमें १० रत्ती वाले मासोंसे ६४ मास का पलकहा है यदि चामटको दससे गुणोतो ६४० छ. सो चालीस रत्ती होवेगी ॥

परंतु आजकल इंग्रजी राज्यमें ८ रत्तीका मासा मानने है तो इस हिसाब पांचतोले और पांचमासे की छटकी हुई—और दिनारमें बड़ा फरक पड़ता है

पतलीगीलीऔरशुष्कऔषधइनकेयोगकामान ।
 गुंजादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥
 द्रवाद्रशुष्कद्रव्याणांतावन्मानंसमंमतं ॥
 प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणंतद्वाद्रीयोः ॥
 मानंतथातुलायास्तुद्विगुणंनक्वचित्स्मृतम् ॥

अर्थ—जलआदि पतले पदार्थ गीलीऔषध और सूखी औषध ये रत्तीसँ लेकर कुडव पर्यंत बराबरलेवे तथा जलआदि पतले पदार्थ और गीली औषध येलेनी होयतो प्रस्थसँ लेकर तुलापर्यंत दुगनीलेवे अंसाकही नहीलिखा अतएव इनकामान सूखी औषधके समान ही लेनाचाहिये ॥

दूधआदिपतलीवस्तुनापनेकी युक्ति
 मृदुस्तुवेणुलोहादेर्भाण्डयच्चतुरंगुलम् ।
 विस्तीर्णंचतथोच्चंचतन्मानंकुडवंवदेत् ॥

अर्थ—नम्रवांसा लोह आदिका चौम्बूटा बरतन लंबा चौडा और ऊचाई ति-चाईमें चारही अंगुलका हो उसको कुडव नाम कहते है कुडव नाम पावसेरका है परंतु व्यवहारका पीआ कुछ अधिक बजनवाला होता है इस कुडवपात्र द्वारा घी-दूध-तेल-आदि पतली वस्तु नापी जाती है ॥

कालिंग्यःपंचगुंजाभिर्मागधाःसप्तभिस्तथा ।
 माषकंदशभिर्गौडामानज्ञाःकीर्तयंतिच ॥

अर्थ—कालिंग परिभाषामें पांचरत्तीकामापाहोता है [यही भास्कराचार्य-नेभी माना है.] और मागध परिभाषाके मतसँ सातरत्ती का मापा होता है और गौडदेशवासी १० रत्तीका मासा मानते है ॥

कालिंग्यंसौश्रुतमानंमागधंचरकादिषु ॥
 गौडादिदेशेगौडंच मानं मानविदोविदुः ॥

अर्थ—सुश्रुत कालिंग परिभाषाको कहता है और चरकादि ग्रंथमागध परिभाषा को एवं गौडदेशवासी गौड परिभाषाको मानते है परंतु “कालिगान्मागधं श्रेष्ठं” इसवाक्यसँ मागध परिभाषा उत्तम है. मध्वे देशमें इसका प्रचारहुआ इसी सँ मागध परिभाषा कहलाती है

औषध तौलनेके विषयमें मागधि परिभाषाका वजन

- ३ परमाणुका १ त्रसरेणु इसे वंशीभी कहते है
- ६ वंशीकी १ मरीची
- ६ मरीचीकी १ राई
- ३ राईकी १ सरसो
- ८ सरसोका १ यव
- ४ यव (जो) की १ रत्ती (घुंघची) होती है इसे कुंचभी कहते है
- ६ रत्तीका १ मासा इसको हेम और धान्यकभी कहते है
- ४ मासेका १ शाण इसके व्यवहारिक मासे ३ होते है।
उस शाणको निष्क, धरण, और टंकभी कहते है
- दो टंकका १ कोल होता है उसके व्यवहारिक मासे ६
उसकोलको क्षुद्रम, वटक और द्रंक्षणमी कहते है
- दो कोलका १ कर्ष होता है जिसके व्यवहारिक तोला १
उसकर्षको पाणिमानिका-अक्ष-पिचु-पाणितल-किंचित्पाणि-
तिंदुक-विडालपदक-पोडशिका-हंसपद-सुवर्ण-कवलग्रह और उदुंबर
भी कहते है
- दो कर्षका अर्धपल होता है उसके व्यवहारिक तोले २
इसअर्धपलको शक्ति और अष्टमिका भी कहते है
- दो अर्ध पलका १ पल होता है जिसके व्यवहारिक तोले ४
इसपलको मुष्टि-आम्र-चतुर्थिका-प्रकुंच-पोडशी-और विख्वभी कहते है
- दोपलकी प्रसृति होती है जिसके व्यवहारिक तोले ८
इसप्रसृतीको प्रसृत भी कहते है,
- दो प्रसृती की १ अंजली होती है जिसके व्यवहारिक तोले १६
इसअंजलीको कुडव-अर्धशराव और अष्टमानमी कहते है
- दो अंजलीकी १ मानिका जिसके व्यवहारिक तोले ३२
उसअंजलीको शराव और अष्टमिकाभी कहते है
- दो मानिकाका १ प्रस्थ जिसके व्यवहारिक तोले ६४
- चारप्रस्थका १ आढक जिसके व्यवहारिक तोले २५६
उस आढकको भाजन और कंसपात्रभी कहते है
- चारआढकका १ द्रोण जिसके व्यवहारिक तोले १०२४

उसद्रोणको कलश—नल्वण—उन्मान-घट—और राशि भी कहते हैं	
दो द्रोणकाशूर्प जिसके शराव ६४ और व्यवहारिक तोले	२०४८
इसगूर्पको कुंभभी कहते हैं	
दोशूर्पकी १ द्रोणी जिसके व्यवहारिक तोले	४०९६
इसद्रोणीको वाह और गोणीभी कहते हैं	
चारद्रोणीकी १ स्वारी जिसके व्यवहारिक तोले	१६३८४
दोहजार पलका १ भार जिसके व्यवहारिक तोले	८०००
सौ पलकी १ तुला जिसके व्यवहारिक तोले	४००

यदौषधंतुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते ।

तन्नाम्रैवसयोगोहिकथ्यतेऽत्रविनिश्चयः ॥

अर्थ—जिसप्रयोगमें जो प्रथम औषध हो उसी औषधके नामसे वह प्रयोग जानना जैसे-पीपरपाक-पेठापाक-शुंठ्यादिकाढा-प्रसारणीतैल—इनमें पीपरपाकमें प्रथम पीपरलीपी है इसीसे पीपरपाक कहता है-शुंठ्यादिकाढेमें प्रथम सोंठहै अत एव शुंठ्यादिकाढाकहाताहै इसीप्रकार प्रसारणीतैलमें प्रथम प्रसारणी औषधक-हीहै इसीसे उसकानाम प्रसारणीतैलहै इसीप्रकार औरभी उदाहरण-जानने ॥

नाल्पं हंत्यौषधं व्याधिं यथा लपांशुमहानलम् ।

दोषवच्चातिमात्रं स्यात्तस्य मृत्युदकं यथा ॥

अर्थ—थोड़ी औषध रोगको दूरनहीं करती जैसे थोड़ाजल बहुतसी अग्नि-को शांति नहींकरता उसीप्रकार बहुत औषधभी रोगको नहीं दूरकरे जैसे बहुत सा जल नवीन वृक्षादिकको नष्टकरदेताहै. ॥

मात्रयाहीनयाद्रव्यं विकारं न निवर्तयेत् ।

द्रव्याणामतियोगाच्च व्यापत्संजायते ध्रुवम् ॥

अर्थ—थोड़ी मात्रासे विकार दूरनहींहोता उसीप्रकार बहुतमात्राके स्वानेसे अनेकप्रकारकी व्याधि होतीहै अतएव दोष-काल-अवस्था आदिके अनुसार औषधिखाना चाहिये ॥

भक्षणरूपमात्राका अनियम

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाः कालमग्निं वयोवल्गम् ।

प्रकृतिदोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥

अर्थ—औषधिकी मात्राके प्रमाणकी स्थिति नहीं जयात् निश्चय नहीं है अतएव वैद्य काल-अग्नि-अवस्था-बल-प्रकृति-दोष और देश इनकाविचार करके अपनी बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पनाकरे ॥

औषधसेवनकाप्रमाणकलिंगपरिभाषाकरकेकहतेहै

यतोमन्दाग्रयोद्गस्वाहीनसत्वानराःकलौ ।

अतस्तुमात्रातद्योग्याप्रोच्यतेसुज्ञसंमता ॥

अर्थ—कलियुगमे मनुष्य मंदाग्निवाले—छोटे और बलहीनहै अत एव उनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य अंसीऔषधीका प्रमाणकहताहू ॥

कलिंगपरिभाषाका वजन

यवोद्गादशभिर्गौरसर्पपैः प्रोच्यतेवुधैः॥यवद्वयेनगुंजास्या

त्रिगुंजोवल्लउच्यते ॥ माषोगुजांभिरष्टाभिःसप्तभिर्वाभवे

त्कचित्॥स्याञ्चतुर्मापकैःशाणःसनिष्कष्टंकपुवच॥ गद्या

णोमापकैःपड्भिःकर्पःस्याद्दशमापकः॥चतुःकर्पैःपलंप्रोक्तं

दशशाणमितंवुधैः॥चतुःपलैश्चकुडवंप्रस्थाद्याःपूर्ववन्मताः॥

अर्थ—चारहसपेद सरसोका १ यव होताहै—दोयवकी १ रत्ती ३ रत्तीका १ बल्ल आठरत्तीका अथवा कहीं सातरत्तीका मासाहोताहै. चार मासेका १ शाण उसको निष्क और टंकभी कहते है छःमासेका १ गद्याणक—दशमासेका १ कर्प च्यारकर्पका १ पल कि जिसके दशशाण अर्थात् ४० मासे होते है. चार पलका १ कुडव होताहै. और प्रस्थ आढक आदिका प्रमाण पूर्वोक्त मागधिपरिभाषाके समानजानने अर्थात् ४ कुडवका १ प्रस्थ चार प्रस्थका एक आढक इसीप्रकार औरभीजानो यह कलिंगपरिभाषा कही है ॥

अथ कृष्णात्रेयात्

रजांसित्रीणिसिकताताभि पोडशभिस्तथा ।

सर्पपश्वभवेद्गौरस्तेचाष्टौतण्डुलंविडु. ॥

तद्वयंधान्यकमापंत ह्वयंरक्तिकामता ।

रक्तिकाद्वितयेनापिवल्ल प्रोक्तोविशारदैः ॥

चतुर्भिश्चंडिकातैःस्यादेवंमानपरंपरा ॥

अर्थ—तीनरजकी १ सिकता १६ सिरुता औंकी १ सपेदसरसो ८ सपेदसर-
सोका १ चावल २ चावलका १ धान्यक और माप— २ धान्यककी १ रत्ती २
रत्तीका १ बल्ल ४ बल्लकी १ चांडिका होती है—इसमकार मानपरंपरा जाननी य-
ह कृष्णात्रेय ऋषिका मतहै ॥

औषधोकायुक्तायुक्तविचार

नवान्येवहियोज्यानिद्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥

विनाविडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥

अर्थ—संपूर्ण कार्यमें नवीन औषधोकी योजनाकरनी चाहिये परंतु वायविडंग
पीपर-गुड-चावल-घी और सहत ए छः पदार्थ पुराने ही लेने चाहिये.

गीलीऔषधग्रहणीय

वासानिवपटोलकेतकबलाकूष्मांडकैद्रीवरी ॥

वर्षाभूकुटजाश्वकंदसहिताः सापूतिगंधाः स्मृताः ॥

मांसीनागवलाकुरंतकपुरोहिं ग्वार्द्रकंचैक्षवं ॥

गृण्हीयात्सरसान्यमूननपुनः कुर्याद्विभागानिच ॥

अर्थ—अहूसा-नीमकीछाल-परवल-केतक-पेंटा-इंद्रायन-सतावर-पुनर्नवा
कूडा-असकद-गंधमसारणी-छड-गुलसकरी-कटसरैया-गूगल-हींग-अदरक-
और ईख इतनी वस्तु सरस लेय परतु गीली जानके दूनी न लेवे जितनी लिखीहो
उतनीलेवे

साधारणऔषधोकीयोजना

जीर्णमेवप्रशस्तं स्यात्तांबूलकांजिकंतथा ॥

शुष्कं नवीनद्रव्यंचयोज्यंसकलकर्मसु ॥

आर्द्रंचद्विगुण्युंज्यादिषसर्वत्रनिश्चयः ॥

अर्थ—पान सुपारी और कांजीये पुरानेही उत्तम होते है । सर्वकार्यमेंउक्त
विडंग और पानसुपारी आदिको त्यागकर सबवस्तु नवीन और सूखी लेनावा
हीये. यदी वह औषध गीली होयतो वांसे आदिको त्यागकर वाकी की औ-
षध दुनी लेवे यह सर्वत्र निश्चय है ॥

अनुक्तकालादिकोकीयोजना

अनुक्तेऽनुक्तेप्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्तेजटाभवेत् ।

भागेनुक्तेतुसात्म्यंस्यात्पात्रेनुक्तेचमृन्मयम् ॥

अर्थ—जिसप्रयोगमें कालनही कहाहो उसजगेमातःकाल लेना चाहिये और जहां औषधीका अंग न कहा हो तहां औषधीकी जडलेवे और जिसप्रयोगमें माग न कहा हो तहां समान भागलेगे. जिसजगे पात्रनकहाहो वहां पर मिट्टीका पात्रलेना चाहिये. ॥

**पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।
मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनेरितः ॥**

अर्थ—सामान्यता करके पात्र शब्द करके मिट्टीका पात्रलेवे उत्पल शब्दकरके। नीलकमलले—मूत्रशब्द सै गोमूत्रलेना चाहिये यह जहां विशेष नाम न कहां हो तहांकरे ॥

**पयःसर्पिःप्रयोगेषुगवामेवप्रशस्यते ।
स्त्रियंचतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेषुच ॥
जांगलानां वयस्थानांचर्मरोमनखादिकम् ॥ .
हित्वाग्राह्यंपूतमांसंसास्थिकंखंडशः कृतम् ॥**

अर्थ—जहां केवल दूध घी लिखा हो तहां गौका घी दूध लेवे। चौपाए जानवरोंमें स्त्रीग्राह्य है. जैसे गौभैस और परखेरुओंमें पुरुपलेना जैसे बबूतर चिडा. जंगली जीवोंमें जवान जीवले. उसके चर्म. नख रोम आदिको त्यागकरके हड्डी सहितटुकड़े २ करके मांसलेना चाहिये ॥

**पक्तव्यमाजमासंचविधिनाघृततैलयोः ॥
हित्वास्त्रींपुरुषंचापिक्लीबंतत्रापिदापयेत् ॥**

अर्थ—स्त्री पुरुषको त्याग नपुंसक बकरालेके उसके मांसको घी तेलमें भूने यदि नपुंसक बकरा न मिलेतो बंध्या बकरी लेवे. ॥

**शृगालबर्हिणोः पाके पुमांसंतत्रदापयेत् ॥
मयूरी जम्बुकीलागीवीर्यहीनास्वभावतः ॥**

अर्थ—स्यार और मोरके पाकमें पुरुपलेवे--क्योकि मोरनी—स्यारनी और बकरी ये स्वभावसैं ही वीर्यहीन होती है ॥

**स्त्रीणांतीक्ष्णंगवांमूत्रंनतुपुंसांविधीयते ॥
पित्तात्मिकाः स्त्रियोयस्मात्सौम्यास्तुपुरुषामताः ॥**

क्षीरमूत्रपुरीपाणिजीर्णाहारेत्संहरेत ॥

अर्थ—यदि गौजातिकामूत्रलेना होयतो स्त्रीजातिकालेवे इसका कारण यह है कि स्त्रीगोजातिका मूत्र तीक्ष्ण और पितात्मक होता है, एवं पुरुषजातिका मूत्र शीतल और तीक्ष्णता रहित होता है। यदिदूध, मूत्रऔर गोबर लेना हीवे तो जब पशुका आहार पचजावे तब लेय अजीर्ण वालेका न लेय. ॥

विशेषकथन

एकमप्यौषधयोगेयस्मिन्यत्पुनरुच्यते ।

मानतोद्विगुणंप्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥

अर्थ—प्रयोगमें एक औषध दोवार आवे तो वह औषध वैद्यको दुगनी डालनी चाहिये. ॥

औषधोंकेहीनवीर्यहोनेमेंप्रमाण

गुणहीनं भवेद्दर्पाद्भ्रूतद्रूपमौषधं ॥ मासद्वयात्तथाचूर्णं हीन
वीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ हीनत्वं गुटिकालेहौलभते वत्सरात्परम् ।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ औषध्यौल
घुपाकाः स्युर्निर्वीर्यावत्सरात्परं ॥ पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आ
सवाधात्तवोरसाः ॥

अर्थ—एक वर्षके पश्चात् औषधोंका तेज और उनके गुणहीन हो जाते हैं उनमेंभी दोमाहिनेके बाद चूर्ण हीनवीर्य होता है- तथागुटिका और अवलेह ये एक वर्षके उपरांत हीनवीर्य होते हैं तथा घृत और तैलादिक ए चारमाहिनेसै हीन वीर्य होता है, तथा औषधी हलके पाकवाली वर्षके पश्चात् हो जाती है, एव भासव (कुमारीसव द्राक्षासवभादि) धातु (सोने चादि, रागा लोहा आदि की भस्म) और रस (चद्रोदयादि) एजितने पुराने होवे उतनेही गुणमें उत्तम होते हैं ॥

व्याधेरनुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपित्त्यजेत् ।

अनुक्तं मपियुक्तं यद्युज्यते तत्र तद्द्रव्यैः ॥

अर्थ—रोगमें चूर्ण और काढे आदि की योजना गणकरके करते समय यदि उसगणमें एक दो औषध रोगके विरुद्धहीवे तो वैद्य त्यागदेवे और जिसजगे गुणदायक औषध गणमें नहीं कही हो तो उसको वैद्य स्वयुद्धिसै मिलाय देवे.

देशभेदकेऔषधोंकेभेद

आग्नेयाविंध्यशैलाद्याः सौम्येहिमगिरिर्मतः ॥

अतस्तदौषधानिस्युरनुरूपानिहेतुभिः ॥

अन्येष्वपिप्ररोहंतिवनेषूपवनेषुच ॥

अर्थ—विंध्याचलपर्वत आदिकी औषध उष्णवीर्य होती है. और हिमालय पर्वत आदिकी सौम्य (शीतल) औषधी होती है । आतएव जैसी २ पृथ्वी हीती है उसी २ प्रकारकी औषधी और २ वनोंमें तथाउपवनोमें होती है. उनको विचारकर वैद्यग्रहण करे ॥

औषधीलानेकाप्रकार

गृण्णीयात्तानिसुमनाः शुचिःप्रातःसुवासरे ॥

आदित्यसन्मुखोमौनीनमस्कृत्यशिवंहृदि ॥

साधारणधराद्रव्यंगृह्णीयादुत्तराश्रितं ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजा ॥

जंतुवह्निहिमव्याप्तानौषधीकार्यसिद्धिदा ॥

अर्थ—औषधी लानेके समय प्रातःकालउठकर स्वस्थचित्त करके पवित्रहो उत्तमदिन और सुहूर्तमें सूर्यके सन्मुख खडाहोके नमस्कारकरे और हृदयमें शिवकाध्यानकरके और मौनधारणकरके जो औषधलानीहो उसके समीप जायकर औषधी के उत्तर के तरफकी छाल अथवा जड सोदकेलावे.

जो औषध सर्पकी बांकीके ऊपरहो, दुष्टपृथ्वीमेंहो, जलमयपृथ्वीमें हो, श्मसान-ऊसर-और मार्ग (रास्ते) में हो, तथा जिसको कीड़े खाएहो-अग्निसै या धूपसँ झूलसगईहो-तथा जाड़ेकी मारीहो-ऐसी औषधको नलेवे क्योंकि ऐसी औषध कार्यकर्त्तानही होती (परंतु यहां हिंदुस्तानमें वैद्य अहेरिया वा पंसारि आदिसँ औषधलेतेहै-भला वो इसबातको क्याजाने के ऐसी जगें औषध लेनी और ऐसीजगें नलेनी-दूसरेदेशो शास्त्रवैद्यकोही आज्ञादेताहै कि आप जायकर औषधलावे परंतु पश्चात्तापहै यहांके वैद्य औषधके जाननेमें सर्वथा मूढहै.) ॥

ऋतुविशेषकरकेरोगविशेषोंपरऔषधलेनेकाकाल

शरद्यखिलकार्यार्थग्राह्यंसरसमौषधम् ।

विरिकवमनार्थंचवसंतांतेसमाहरेत् ॥

अर्थ—आश्विन और कार्तिक इनदोमहिनोंमें सर्व औषधी रससँ भरीहोतीहैं अतएव सर्व कार्यके वास्ते इन्ही दो महिनोमें औषधी लेनी चाहिये, और दस्त करानेको तथा वमनकेलिये वसंतांत (वैशाख और ज्येष्ठ) इनदोमहिनोंमें औषधी बनसँ लावे ॥

औषधविशेषकाअंगग्रहण

अतिस्थूलजटायाः स्युस्तासांग्राह्यास्त्वचोबुधैः ।

गृणीयात्सूक्ष्ममूलानिसकलान्यपिवुद्धिमान् ॥

अर्थ—जिसवृक्षकी जड़ अत्यंत स्थूलहो उसवृक्षकी छाल लेय, जैसे—नीम—बड़-जामनआदि जानने—और जिस वनस्पति कीजड़छोटीहो उसरूखडीकी जड़लेय— तथासर्व अंग (जड़ फल—पत्तेआदि) लेवे जैसे—कटेरी—गोखरू—धमासो—अहूसा— आदि जानना तथा कितने वैद्योंका यहमतहै कि ऐसी२छोटी वनास्पतियोंकीजड़हीलेना ॥

न्यग्रोधादेस्त्वचोग्राह्याः सारंस्याद्धीजकादितः ।

तालीसादेश्वपत्राणिफलंस्यात्त्रिफलादितः

घातक्यादेश्वपुष्पाणिस्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥

अर्थ—बड़ आदिशब्दकरके पापरी—जामुन—आम—और पीपर इत्यादिकोकी छाललेनी चाहिये, वीजकवृक्ष आदिशब्दसँ खैर—महुआ—इनकासारलेना जैसे विजे सार, खैरसारलेवे—तालीस आदि शब्दकरके तमालपत्र ग्वारपाठा नागरवेल इत्यादिकोके पत्ते लेने चाहिये—त्रिफलाआदि शब्दसँ सुपारी आम—वेर इत्यादि कोके फललेने चाहिये घाय आदिशब्दसँ गुलाब—केवडा आदिके फूललेवे—थूहर आदिकरके आक—तिधाराथूहर इत्यादिकोका दूधलेय इसप्रकार औषधीलेनी चाहिये ॥

क्वचिन्मूलंक्वचित्कंदः क्वचित्पत्रंक्वचित्फलम् ।

क्वचित्पुष्पंक्वचित्सर्वंक्वचित्सारः क्वचित्त्रचः ॥

अर्थ—किसीकीजड़ किसीकाकंद—किसीके फल किसीके पत्ते—किसीके फूल—किसीका सर्वअंग और किसीका सार अथवा गोद वैद्यको यथायोग्य लेनाचाहिये ॥

चित्रकःसूरणोनिंबोवासाचत्रिफलाक्रमात् ।

घातकीकंटकारीचखदिरः क्षीरपादपः ॥

अर्थ—चित्रकली छाल—जमीकंद—नीम—अहृमेके पत्ते—हरडवहेडा आमला इनके फल धायकेफूल, कटेरीका सर्वांग, खैरकासार, इसप्रकारलेना चाहिये ॥

क्वचिन्निवस्यगृण्णीयात्पत्राभावेत्वचामपि ।
बालफलंतुविल्वस्यपक्वमारग्वधस्यतु ॥

अर्थ—कहीं नीमके पत्ते नमिलनेमें छाललेनी चाहिये—बेलका कोमलफल लेवे और अमलतासकी पकी फलीलेनी चाहिये ॥

पक्वपदार्थोंकोफिरपक्वकरनेमेंदोष
घृततेलंचपानीयंकषायंव्यंजनादिकम् ।
पक्त्वाशीतीकृतंतप्तंतत्सर्वस्याद्विषोपमम् ॥

अर्थ—घृत—तेल—पानी—काढ़ा—भोजनके पदार्थ (दालभात रोटी आदि) को एकवार सिजायकर जब शीतल होजायतो फिर गरम नकरे पुनः गरमकरनेसे येविपके समानहोजाते है ॥

द्रव्योंकीपरीक्षा

सूक्ष्मास्थिमांसलापथ्यासर्वकर्मणिपूजिता ।
क्षिप्तांभसिनिमज्जेद्याभल्लातक्यभयोत्तमा ॥

अर्थ—जितनी बारीक तथा ऊपरकी त्वचामोटीहो वो छोटीहरड सर्वकार्यमें अतिउत्तमहै. ओर जो जलमें गेरनेसें डूबजावे वो हरड और भिलाया उत्तमहै—ऐसा जानना ॥

वाराहीकंदसंचरऔरसैंधवइनकीपरीक्षा
वराहमूर्ध्वत्कंदोवाराहीकंदसंज्ञितः ।
सौवर्चलंतुकाचाभंसैंधवंस्फटिकप्रभम् ॥

अर्थ—सूकरके मस्तक समानजो कंद होयवोवाराहकंद, जो कांचके समान चमके वो संचरनोन, और स्फटिकमणिके समानचमके वो सैंधानोन उत्तम होताहै

सुवर्णमाक्षिकतथारौप्यमाक्षिककीपरीक्षा
सुवर्णलविकंज्ञेयंस्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् ।
उडुपुष्पप्रतीकाशामनोह्वाचोत्तमोत्तमा ॥

अर्थ—सौनेके रंगका सुवर्णमाक्षिक उत्तमहोताहै, और जो चंद्रमाके समान स्वच्छ और सपेद होय वो रौप्यमाक्षिक उत्तम जानना ॥

शिलाजीतपरीक्षा

श्रेष्ठशिलाजतुज्ञेयंयत्क्षिप्तंनविशीर्यते ।

तौयपूर्णेकांस्यपात्रेप्रतानेनविवर्द्धते ॥

अर्थ—वो शिलाजीत उत्तमजाने जो जलमें गेरनेसे फूटे नहीं. किंतुकासेके पात्रमें जलभरके शिलाजीत डालेतो तारसे छूटने लगे वो उत्तम है. ॥

कपूर इलायची औरचंदनकीपरीक्षा
कर्पूरस्तुवरास्निग्धएलासूक्ष्मफलावराः।
श्वेतचंदनमत्यंतसुगंधिगुरुपूजितम् ॥

अर्थ—कपूर कपेला और चिकना उत्तम होताहै इलायची छोटी सुगंधदा-
र उत्तम होतीहै सपेदचंदन अत्यंत सुगंधदार और भारी उत्तमहोताहै. ॥

रक्तचंदनपरीक्षा

रक्तचंदनमत्यंतलोहितंप्रवरंमतम् ।
काकतुंडनिभःस्निग्धोगुरुःश्रेष्ठोगुरुर्मतः ॥

अर्थ—जो रक्तचंदनअत्यंत काला तथा कौएके मुखमांस समान लालहो और
चिकना तथा भारीहो वह उत्तमहै. ॥

देवदारुऔरसरलकीपरीक्षा
सुगंधिलघुसूक्ष्मंचसुरदारुवरंमतम् ।
सरलंस्निग्धमत्यर्थसुगंधिचगुणावहम् ॥

अर्थ—सुगंध, हलका, सूक्ष्म, अंसादेवदारु । और चिकना तथासुगंध वाला
सरल बहुत उत्तम गुणकारी जानना ॥

दारहल्दीऔरजायफलकीपरीक्षा
अतिपीताप्रशस्तातुज्ञेयादारुनिशातुधैः ।
जातीफलंगुरुस्निग्धंसमंशुभ्रेतरद्वयम् ।

अर्थ—अत्यंत पीली एसी दारहल्दी उत्तमहोती है. और जायफलभारि
चिकना-गोल-और काला उत्तम होय है ॥

दाखकीपरीक्षा

मृद्धीकासोत्तमाज्ञेयायास्याद्गोस्तनसन्निभा ।
करमर्दफलाकारामध्यमासाप्रकीर्तिता ॥

अर्थ—गौके थनो के समान जो दाखहोवो उत्तम जाननी और करोदे फल-के समान हो वह मध्यमजाननी

खांडऔर सहतकीपरीक्षा

खंडंतुविमलंश्रेष्ठचन्द्रकांतसमप्रभम् ॥

गवाज्यसदृशंरुच्यंगंधमधुवरंमतम् ॥

अर्थ—मिश्री चंद्रमाके कांतिके समानसपेदवो उत्तमहोती है (यह जोधपुरमें होती है) और गौके घृतके समान रुचिकारी-गंधवाला अंसा सहत उत्तम जानना

स्वभावसै हितकरद्रव्य

शालीनालोहितःशालिःपाष्टिकेषुचपष्टिका ।

शूकधान्येष्वपियवोगोधूमःप्रवरोमतः ॥

अर्थ—सर्वशालीनमें लालशाली (धान्य विशेष) और सांठीनमें सांठीचावल उत्तम होतेहै. सूकधान्योंमें गेहूँ और जो उत्तम होते है. ॥

शिंवीधान्योंमेंउत्तमधान्य

शिंवीधान्येवरोमुद्गोमसूराश्चाढकीतथा ।

रसेपुमधुरःश्रेष्ठोलवणेपुचसैधवम् ।

अर्थ—फलीके धान्योंमें मूंग-मसूर और अरहर उत्तम होतीहै. रसोंमें मधुर रस श्रेष्ठहै. नोनमें सैधानिमक उत्तम जानना ॥

उत्तमफल

दाडिमामलकंद्राक्षाखर्जूरंचपरूपकम् ।

राजादनंमातुलुंगफलवर्गेप्रशस्यते ॥

अर्थ—अनार-आमले. दाख-दुहारे- फालसे-खित्री-और विजोरा ए फल-वर्गोंमें उत्तम जानने ॥

पत्रफल औरकंद इन शाक्योंमेंउत्तम

पत्रशाकेपुवास्तूकंजीवंतीपोतिकावरा ॥

पटोलफलशाकेपुकंदशाकेपुसूरणम् ॥

अर्थ—पत्तेके शाक्योंमें बयुएका साग, डोडीकासाग, और पौईकामाग, उत्तम है । फलके सागोंमें परवलका साग उत्तम होती है । कंदोंमें जमी कंदका माग उत्तम होता है. ॥

मृग पक्षीऔरमछलीइनमेंउत्तम
एणः कुरंगो हरिणो जंघालेपु च शस्यते ।
पक्षिणांतिरिर्लावोवरोमत्स्येपुरोहितः ॥

अर्थ—जंघाल (दौडनवाले) पशुओंमें एण. कुरंग और हरिण ए उत्तमहोतेहैं
पक्षियोंमें तीतर और लवा उत्तम होतेहैं एवं मछलियोंमें रोहूमछली उत्तम होतीहै

हरिणोंकेभेद

हरिणस्ताम्रवर्णःस्यादेणःकृष्णस्तथामतः ।
कुरंगस्ताम्रउद्दिष्टो हरिणाकृतिकोमहान् ॥

अर्थ—लालवर्णके मृगको हरिणकहतेहैं. काले रंगकेको एण तथा कुछलाल
और शरीरमें भारी हो उसको कुरंग कहतेहैं येहरिणोंके भेद जानने. ॥

जल, दूध, घृत, तेल, इक्षुविकारइनमेंउत्तम
जलेपुदिव्यं दुग्धेपुगव्यमाज्येपुगोद्धवम् ।
तैलेपुतिलजंतैलमैक्षवेपुसिताहिता ।

अर्थ—जलोंमें मेघकाजल-दूध और घृतोंमें गौकादूध घी-तेलोंमें तिलका
तेल-तथा ईसके सर्व पदार्थों में मिश्रीउत्तम होती है. ॥

स्वभावसैंअहितकारीद्रव्य
शिंवीपुमापान्ग्रीष्मतौलवणेष्वौखरंत्यजेत् ।
फलेपुलकुचंशाकेसार्पपंनहितंमतम् ॥

अर्थ—श्री दलके अन्नोंमें उडद त्याज्य है, निमकोंमें रेहका निमक और फ.
लोंमें छोटा बढेर. और सागोंमें सरसोका साग त्याज्य है ॥

गोमांसंग्राम्यमांसेषुनहितामहिषीवसा॥मेषोपयःकुसुंभस्यतै
लंत्याज्यंचफाणितं।इक्षुरसःपरिपक्वोयोर्धघनःफाणितंतद्धि ॥

अर्थ—मांसोंमें गौका मांसत्याज्य है, भैसकी वसात्याज्य है, दूधोंमें मेढीका दूध
तेलोंमें कसूमका तेल त्याज्य है, ईसका रसनिकाले जब पकानेसैं आधारहजावे
उसको फाणितकहते हैं. यों राव अपथ्य है. ॥

संयोगविरुद्धद्रव्य
मत्स्यमानूपमांसंचदुग्धयुक्तंविर्वर्जयेत् ।

कापोतंसार्षपस्त्रेहभर्जितंपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—मछली और जलसमीप जीवोकामांसदूध मिलायके नखावे क्वत्तरकामांस सरसोंके तेलमें भूनके नखाय क्योकिये संयोग विरुद्ध है ॥

मत्स्यानिक्षोर्विकारेणतथाक्षौद्रेणवर्जयेत् ।

सत्तून्मांसपययुक्तानुष्णैर्दधिविवर्जयेत् ॥

अर्थ—ईसके पदार्थसँ मछलीका खाना अथवा सहत के साथ खाना निषेध है सत्तू मांस और दूध इनके साथभी मछली नखाय तथा गरम पदार्थके साथ-दही नखावे ॥

उष्णैर्दध्यंनुनाक्षौद्रंपायसंक्रसरान्वितम् ।

रंभाफलंत्यजेत्क्रंदधिविल्वफलान्वितम् ॥

अर्थ—उष्णपदार्थ दही के साथ, तथा दूध सीचडीके साथ, सहतजलके साथ, केलेकी फली छाछके साथ और बेलका फल दहीके साथ नभक्षणकरे ॥

दशाहमुपितंसर्पिःकांस्येमधुघृतेसमं ।

कृतान्नंचकपायंचपुनरुष्णिकृतंत्यजेत् ॥

अर्थ—घी कांसेके वासनमें दसदिन धरारहने सँ त्याज्य है, सहत और घी वरावरका मिलाहुआत्याज्य है भोजनका अन्न और काढा दूसरे गरमकरा हुआ त्याज्य है ॥

एकत्रयहुमांसानिविरुध्यंतेपरस्परम् ।

मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि यथा तथा ॥

अर्थ—एकत्रकरे हुए अनेक पशुपक्षि यों के मांस त्याज्य है—और सहत—घृत वसा—तेल—आर जल एकत्रकरके हुए अपथ्य होते है अतएव इनको नखाय ॥

औपघ्नहर्षणमें संकेत

लवणंसैधवंप्रोक्तंचंदनंरक्तचंदनं ॥ चूर्णलेहासवस्नेहाः
साध्याधवलचंदनैः ॥ कपायलेपयोः प्रायोयुज्यतेरक्तचं
दनं ॥ अंतःसंमार्जने ज्ञेयाह्यजमोदायवानिका ॥ वृद्धिःसैव
चविद्रभिर्विज्ञातव्याजमोदिका ॥ पयःसर्पिःप्रयोगेपुग
व्यमेवहिगृह्यते ॥ सलद्रसोगोमयजोमूत्रंगोमूत्रमुच्यते ॥

अर्थ—औषधि ग्रहणमें जहां सामान्यकरके लवण कहाहो तहाँ सैधानिम-
क लेना और चंदन कहने सैं काढेमें लालचंदन लेना तथा चूर्ण घृततैलादि—अव-
लेह— और आसवमें सपेदचंदन डालना—परंतु लेपमें लाल चंदनडालना—भीत-
रकीशुद्धि करनेवाली औषधोंमें जहां अजमोद लिखा हो तहां अजमायन डालनी
और वाहरकी शुद्धिमें अजमोदके स्थानमें अजमोदही लेना—दूध घृतके प्रयो-
गमें गौका दूधही लेना—गोवरकारस और मूत्रके स्थानमें गोमूत्र लेनाचाहिये ॥

अंतःसंमार्जनेयोज्यंवचास्थानेकुलिंजनम् ।

बहिःसंमार्जनेसैवप्रयोक्तव्यामनीषिभिः ॥

अर्थ—अंतर्गतकी शुद्धिमें वचके स्थानमें कुलिंजन डाले और वाहर लेपा-
दिकोंमें वचके स्थानमें वचही लेनी चाहिये ॥

औषधभक्षणमेंकाल

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभातेप्रायशोबुधः ।

कषायांश्चविशेषेण तत्रभेदस्तुदर्शितः ॥

अर्थ—वैद्य रोगीको बहुधाकरके औषध प्रातःकालमें भक्षण करावे. तथा
स्वरस—कल्क—काढे—फांट—हिम होयतो विशेषकरके प्रातःकालमें पिवावे. इसमेंभी
कालका भेद वक्ष्यमाणप्रकार करके कहते है ॥

औषधभक्षणकेपांचकाल

ज्ञेयःपंचविधःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम्

किंचित्सूर्योदयेजातेतथादिवसभोजने ।

सायंतनेभोजनेचमुहुश्चापितथानिशि ॥

अर्थ—मनुष्योंको औषध भक्षणके विषयमें पांचकाल है उनको कहते है,
किंचित्सूर्योदयहोने पर औषध लेना वह प्रथमकाल है, तथादिनमें भोजनके
समय औषधलेना द्वितीयकाल, सायंकाल में व्याहृके समय औषधलेना तृती-
यकाल, वारंवार औषधलेना वहचतुर्थ काल है, और रात्रिमें औषधलेना वो पंच-
मकाल है इसप्रकार औषधसेवनके पांचकालकहे है अइन्को क्रमसँ कहते है ॥

प्रथमकाल.

प्रायःपित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ।

लेखनार्थेच भैषज्यं प्रभाते नान्नमाहरेत् ॥

एवंस्यात्प्रथमःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम् ॥

अर्थ—पित्त और कफ इनका प्रकोप होनेसे पित्तको विरेचन और कफको वमन—तथा लेखन कहिये पतलीकरण इनविषयोंमें प्रातःकाल औषध लेवे । परंतु प्रातःकाल रोगीको अन्नदेवे यह औषधग्रहणमें प्रथमकाल कहा ॥

द्वितीयकाल

भैषज्यंविगुणेपानेभोजनाग्रेप्रशस्यते ॥ अरुचौचित्र-
भोज्यैश्चमिश्रंरुचिरमाहरेत् ॥ समानवातेविगुणमंदेग्रा
वग्निदीपनं ॥ दद्याद्भोजनमध्येचभैषज्यंकुशलोभिपक्व ॥
व्यानकोपेचभैषज्यंभोजनान्तेसमाहरेत् ॥ हिक्काक्षेप
कंकपेषुपूर्वमंतेचभोजनात् ॥ एवंद्वितीयकालश्चप्रो-
क्तोभैषज्यकर्मणि ॥

अर्थ—गुदासंबंधी वायुके कुपित होनेमें भोजनके कुछ थोड़ी देरपहले औषध खायाऔर अरुचिहोनेसे अनेक प्रकारके अन्न तथा अनेक प्रकारके रुचिकारी पदार्थोंके साथमिलायके वैद्य रोगीको औषध देवे । और नाभि संबंधी वायुके कुपित होनेसे तथा मंदाग्निहोनेमें जैसे अग्निप्रदीप्त होवे ऐसी औषधभोजनके मध्यमें वैद्यरोगीको देवे । तथा सकल देह व्यापी व्यानवायुके कुपित होनेमें भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे । और हिककी—तथा आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनका कोप होनेसे भोजनके प्रथम और अंतमें वैद्य रोगीको औषधी भक्षण करावे इसप्रकार औषध भक्षणमें दूसरा कालकहा ॥

तृतीयकाल

उदानेकुपितेवातेस्वरभंगादिकारिणि ॥
ग्रासेग्रासांतरेदेयंभैषज्यंसांध्यभोजने ॥
प्राणेप्रदृष्टेसांध्यस्यमक्षस्यान्तेचदीयते ॥
औषधंप्रायशोर्धरैःकालोऽयंस्यात्तृतीयकः ॥

अर्थ—कंठ संबंधी उदान वातके कोपहोनेसे जो प्रगट्टुएस्वरभंगादिरोग उनमें सायंकालमें भोजनके समय—ग्रामके साय औषध देवे अथवा दोग्रासोंके बीच-

१ वातादि दोषोंको स्नेहादिक योगकरके पतले करना उसीप्रकार स्थूल मनुष्योंको सहतपानी इत्यादिक देकर छुश करना ॥

में देय और हृदय स्थित प्राण पवनके कुपित होनेसे माय सायंकालके भोजनके अंतमें वैद्य औषधी देवे । इसप्रकार औषधिभक्षणका तीसरा कालकहा ॥

चतुर्थकाल

मुहुर्मुहुश्चतृच्छर्दिहिकाश्वासगरेषुच ।

सान्नचभेषजंदद्यादितिकालश्चतुर्थकः ॥

अर्थ—प्यास-वमन-और हिचकी-श्वास-विपदोप येरोग होनेसे वारंवारअन्न-के साथ औषध भक्षण करावे—श्लोकमें जो चकारहै इसै अन्न रहितभी भक्षण करे असा जानना—यह औषध भक्षणका चतुर्थ कालकहा ॥

पंचमकाल

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषुलेखनेवृंहणे तथा ॥

पाचनं शमनं देयमन्नं भेषजं निशि ॥

इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भेषज्यकर्मणि ॥

अर्थ—नाडके ऊपरके भागोके विकार (कर्ण-नेत्र-मुख-नासिका आदि रोगों) में तथा प्रवृद्धवातादिदोषोंके घटानेमें और अति क्षीण दोषोंके बढानेके वास्ते रात्रिमें पाचन रूप और शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षणकरे इसप्रकार औषध भक्षणका पांचवाकालकहा ॥

औषधिप्रतिनिधि

कदाचिद्भव्यमेकं वा योगे यत्र न लभ्यते ।

तत्तद्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्तनं गृह्यते ॥

अर्थ—कदाचित् किसी योगमें एक औषध न मिले तो उसी उसीके समान गुणकारी दूसरी औषध तत् प्रयोगमें लेनी चाहिये ॥

वज्राभावे तु वैक्रान्तं स्वर्णाऽभावे तु माक्षिकम् ।

हेममाक्षिकजंसत्त्वं मत्तं हेमसमंगुणैः ॥

अर्थ—हीराके अभावमें वैक्रान्त (कांसुला) लेवे- सुवर्णके अभावमें सुवर्ण माक्षिकले और जहां चांदीनही मिल सकतीहो वहां पर रूपामास्त्री लेवे ॥

विमलामाक्षिकं ज्ञेयं ध्रुवं रजतवहुणैः ।

मुक्ताऽभावे क्षिपेन्नूनं मुक्ताशुक्तिचतद्गुणाम् ॥

अर्थ—तथा माक्षिकका भेद विमला है उसको रूपेकी प्रतिनिधिमें लेवे—जहां

मोती न मिलता होतो उसकी एवजमें मोतीकी सीपडाले तो मोतीके तुल्यगुणकरे
अभावेऽभ्रकसत्वस्यकान्तलोहंप्रयोजयेत् ।

कान्ताभावेतीक्ष्णलोहमित्युक्तरसदर्पणे ॥

अर्थ—जहां अभ्रकसत्व नामिले तहां कांतलोहकी भस्मलेवे, यदि कांतलोहकी
भस्मभी न मिले तो खेरीलोहकी वा गजवेललोहकी भस्म लेवे असा रसदर्पण
ग्रंथमें लिखाहै. ॥

चित्रकाभावतोदंतीक्षारःशिखिरिजोथवा ॥

अभावेधन्वयासस्यप्रक्षेप्तव्यादुरालभा ॥

अर्थ—चित्रकके अभावमें दंतीलेवे अथवा ओंगाका क्षारलेवे जवासेके अभा-
वमें धमासालेना चाहिये ॥

यदिनस्यादारुनिशातदादेयानिशावुत्रैः ॥

रसांजनस्याभावेतुसम्यक्दावीप्रयुज्यते ॥

अर्थ—यदि दारहलदीनमिले तो उसके पलटेमें हलदी ही डालनी और रसो
त नामिले तो उसके पलटेमें दारहलदी लेनी चाहिये ॥

चविकागजपिप्पल्यौपिप्पलीमूलवत्स्मृते ।

अभावेसोमराज्यास्तुप्रपुंनाटफलंस्मृतम् ॥

अर्थ—पीपरामूलके अभावमें चव्य अथवा गजपीपर लेवे—और वावचीके
अभावमें पवाढके बीजलेने चाहिये ॥

पौष्कराभावतः कुष्ठंतथालांगल्यभावतः ।

स्थौणैयकस्यचाभावेभिपग्भिर्दायितेगदे ॥

अर्थ—पुहकर मूलके कलिमारीके और ग्रंथिपर्णी इनके अभावमें वैद्य कृष्टलेवे

जातीपुष्पंनयत्रास्तिलवंगंतत्रदीयते ।

अर्कपर्णादिपयसोह्यभावेतद्रसोमतः ॥

अर्थ—जहाँ जायफल न मिले उसके स्थानमें लौगढाले—जहाँ आंककेपत्तेका
दूधकरा है यदि वहनमिले तो उममें आकके पत्तोंका रस काममें लाना चाहिये ॥

वकुलाभावतोदेयंकल्हारोत्पलपंकजं ।

नीलोत्पलस्याभावेतुकुमुदंदेयमिप्यते ॥

अर्थ—भौरमरी के अभावमें कल्हार (लालकमठ) अथवा नीलकमठ—

और नीलकमलके अभावमें—कुमुद (रात्रिमें फुलनेवाला कमल) लेवे ॥

अहिंसायाअभावेतुमानकंदः प्रकीर्तितः ।

लक्ष्मणायामभावेतुनीलकंठशिखामता ॥

अर्थ—अहिंसा (धूहरकाभेद) इसके अभावमें मानकंदलेना—और लक्ष्मण रूखडी के नमिलनेपर मोरशिखा (बूटी) वैद्यकोलेनी चाहिये ॥

तगरस्याप्यभावेतुकुष्ठंदद्याद्भिषग्वरः ।

मूर्वाभावेत्वचोग्राह्याजिगिनीप्रभवानुधैः ॥

अर्थ—तगरके अभावमें कूठ औषध लेवे—और मूर्वाऔषधके नमिलनेमें प-जीठलेनी चाहिये ॥

भार्ग्यभावेतुतालीसंकटकारिजटाथवा ।

रुचकाभावतोदद्याल्लवणंपांशुपूर्वकम् ॥

अर्थ—भारंगीके अभावमें तालीसपत्र लेवे—अथवा कटेरीकी जड़लेवे—और काले निमकके अभावमें खारी निमकलेना चाहिये ॥

सौराष्ट्रचभावतोदेयास्फटिकातद्गुणाजनैः ।

तालीसपत्रकाभावेस्वर्णतालीप्रशस्यते ॥

अर्थ—सौराष्ट्री माठीके अभावमें फिटकरी लेवे—और तालीसपत्रके अभावमें स्वर्णतालीस पत्र लेनाचाहिये ॥

अभावेमधुयष्ट्यास्तुधातर्कितुप्रयोजयेत् ।

अम्लवेतसकाभावेचुकंदातव्यमिष्यते ॥

अर्थ—मूलहठीके अभावमें धायके फूललेवे—जहां अमलवेत नमिले उसजो चूकालेना चाहिये ॥

लवंगकुशुमंदद्यान्नखस्याभावतः पुमान् ।

कस्तूर्यभावेकंकोलंक्षेपणीयंविदुर्बुधाः ॥

अर्थ—नख (सुगंधद्रव्य) के अभावमें लौंगलेनी—और कस्तूरीके अभावमें कंकोल लेना अंसा बुद्धिमान् वैद्योंने कहा है ॥

द्राक्षायदिनलभ्येतप्रदेयंकाश्मरीफलम् ।

तयोरभावेकुसुमंमधूकस्यमतंबुधैः ॥

अर्थ—जहाँ दाख न मिले उसजगे कंभारीके फललेने चाहिये, यदिदास और कंभारीकेफल दोनों नमिले उसजगे महुआके फूललेने ॥

कंकोलस्याप्यभावेतुजातीपुष्पंप्रदीयते ।

सुगंधमुस्तकंदेयंकर्पूराभावतोबुधैः ॥

अर्थ—कंकोलके अभावमें—जावित्रीलेनी—जहाँकपूर नमिलती हो वहाँसुगंध मुस्तक अर्थात् नागर मोथा लेना वैद्योंने कहा है ॥

कर्पूराभावतोदेयंग्रंथिपर्णीविशेषतः ।

कुंकुमाभावतो दद्यात्कुसुंभकुसुमंनवम् ॥

अर्थ—कचूरके अभावमें ग्रंथिपर्णीलेवे जहाँकेशर न मिलती होवे उसजगे नवीन कसूमका फूललेवे ॥

श्रीखंडचन्दनाभावेकर्पूरंदेयमिष्यते ।

अभावेत्वेतयोर्वैद्यः प्राक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥

अर्थ—सपेदचंदनके अभावमें कपूर लेनी चाहिये और जहाँ चंदन और कपूर दोनों नमिले उसजगे लालचंदन लेना चाहिये ॥

रक्तचंदनकाभावेनवोशरिंविदुर्बुधाः ।

मुस्ताचातिविपाभावेशिवाभावेशिवामता ॥

अर्थ—लालचंदनके नमिलनेमें नवीन ससलेनी चाहिये अतीसके अभावमें मोथालेवे और छोटीहरदके अभावमें आमलेलेने चाहिये ॥

अभावेनागपुष्पस्यपद्मकेशरमिष्यते

मेदाजीवककांकोलीऋद्धिद्वंद्वेपिचासति

वरीविदार्यश्वगंधावाराहीश्वक्रमात्क्षिपेत् ॥

अर्थ—नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर लेवे और मेदा, जीवक, काकोली, ऋद्धि वृद्धि, इनके अभावमें क्रमसँ शतावर—विदारीकंद—असगंध और वाराही कंद ए चार औषध पृथक् २ लेवे ॥

वाराह्याश्वत्थामावेचर्मकारालुकोमत ॥ वाराहीकंदसं

ज्ञस्तुपश्चिमेश्वरिंसंज्ञकः ॥ वाराहीकंदएवान्यैश्चर्मका

रालुकोमत ॥ अनूपसंभवेदेशवाराहइवलाभवान् ॥

अर्थ—मपेद विदारी कंदके अभावमें—वाराही कट लेवे उमको पछेया च-

मकारालु औरगृष्टीभी कहते है यहकंदजलप्रायभूममें होता है और इसके ऊपर सूअरकेसँ करडे २ बाल होते है ॥

भल्लातकासहत्वेतुरक्तचन्दनमिष्यते ।

भल्लाताभावतश्चित्रंनलश्वेक्षोरभावतः ॥

अर्थ—भिलाएके अभावमें लालचंदन अथवा चित्रकलेवे और ईखके अभावमें नरसललेवे ॥

माक्षिकस्याप्यभावेतुप्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् ।

सुवर्णमथवारौप्यमृतंयत्रनलभ्यते ॥

तत्रलोहेनकर्माणिभिषक्कुर्याद्विचक्षणः ।

कांताभावेतीक्षणलोहंयोजयेद्वैद्यसत्तमः ॥

अर्थ—सुवर्ण माक्षिकके अभावमें सुवर्णगेरूलेवे—और सुवर्ण तथा चांदी की भस्मके अभावमें लोहभस्मडालके कर्मकरे—और कांतलोहके अभावमें गज-वेल लोहकी भस्मले ॥

मधुयत्रनविद्येततत्रजीर्णो गुडोमतः ॥ पुरातनगुडाभा

वरौद्रेयामचतुष्टयं॥संशोष्यनूतनंग्राह्यंपुरातनगुणैषिणा ॥

अर्थ—जहां सहस्र नमिले उसजगे पुराणा गुडलेना—जहांपुराणा गुडन-मिलता हो वहां नएगुडको ४ प्रहर धूपमें सुखायके लेवे तो पुराने के समान गुणकरे ॥

क्षीराभावेभवेन्मौद्गोयूषोमासूरसंभवः ।

सिताभावेचखंडंस्यात्शाल्यभावेचपाष्टिकः ॥

अर्थ—जहां दूधनमिलताहो वहां पर मूंगकायूपले अथवा मसूरका यूप लेवे मिश्रीके अभावमें खांडलेनी—और शाली चांवलोके अभावमें साठी चावललेने चाहिये ॥

नभवेदाडिमोयत्रवृक्षाम्लंतत्रदापयेत् ॥

सौराष्ट्रमृदभावेचग्राह्यापंकस्यपर्पटी ॥

अर्थ—जहां अनारदाना नमिलता होय वहां तंतडीककी खटाई डाले और जहां फिटकरी नमिलती होय वहां पर कीचकी जमीहुई पपडीलेनी ॥

नतंतगरमूलंस्यादभावेसिंहलीजटा ।

प्रयोगेयत्रलोहःस्यादभावेतन्मलंस्मृतम् ॥

अर्थ—छडके और तगरकी जडके अभावमें कटेरीकी जडलेवे—जहां प्रयोग में लोहलिखा है यदि न मिले तो उस लोहकी कीटीलेवे ॥

सर्षपःशुक्लवर्णोयःसहिसिद्धार्थकोमतः ।

तत्रसिद्धार्थकाभावेसामान्यःसर्षपोमतः ॥

अर्थ—सपेदरंगकी सरसों को सिद्धार्थककहा है जहां यह सिद्धार्थक नमिले उसजगे सामान्यसरतो डालनी चाहिये ॥

अभावेप्रणपण्यार्थसिंहपुच्छीविधीयते ।

कुंकुमस्याप्यभावेतुनिशाग्राह्याभिपग्वरैः ॥

अर्थ—प्रणपर्णोंके अभावमें पिठवनलेनी चाहिये—केशरके अभावमें वैद्य हलदी योजनाकरे ॥

धान्यकाभावतोदद्यात्शतपुष्पाभिपग्वरः ॥

सामुद्रसैधवाभावेविडंवागृह्यतेबुधैः ॥

अर्थ—धानियेके अभावमें शोफलेवे—सामुद्र और सैधेनिमकके अभावमें विड निमकलेना चाहिये ॥

पुष्पाभावेफलंचामंविड्भेदेविल्वतःफलम् ।

कर्पूरस्याप्यभावेऽपिसुगंधंमुस्तमिष्यते ॥

अर्थ—जहां जिसद्रव्यका पुष्पलिखा है उमके अभाव उसका कच्चाफललेवे उदरके रोगमें वेलकी गीरी ही डाले ॥

राष्णाभावेचरंदाकोजीराभावेचधान्यकम् ।

रसांजनस्यचाभावेदार्वाक्काथंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—राम्नाके अभावमें वंदाकलेवे—जीरेके अभावमें धनिया रसोतके अभावमें दारुहलकीका काढा लेके कार्य साधनकरे ॥

मेदाभावेश्वगंधास्यान्महामेदेतुसारिवा ।

जीवकर्पभकाभावेगड्डीचिविदारिका ॥

अर्थ—मेदाके अभावमें असगंधलेवे. महामेदाके अभाव सारिवाले जीवक और ऋषभकके नमिलनेपर गिलोय—और विदारी कंद लेने चाहिये.

ऋद्धयभावेबलाग्राह्यावृद्धयभावेमहाबला ।

कांकोलीयुगलाभावेनिक्षिपेच्चशतावरीम् ॥

अर्थ—ऋद्धिके अभावमें वलालेवे-वृद्धिके अभावमें महावला लेय दोनोकां-
कोलीके अभावमें शतावरीलेनी चाहिये ॥

देयोमृगमदाभावे पूतिकातद्गुणाबुधैः ॥

रोहीतकत्वचोऽभावेपिचुमर्दस्यगृह्यते ॥

अर्थ—कस्तूरीके अभावमें गंधमार्जार (मुष्कविलाई) लेनाचाहिये-रोहेडेकी
छालके अभावमें नीमकी छाललेवे ॥

कापोतंसर्वमांसानां तुल्यंगुणकरंस्मृतम् ॥

मांसकाथापरिप्राप्तौयूषोमौद्गः प्रदीयते ॥

अर्थ—सब मांसोंमें कवूतरका मांसतुल्य गुणकारी इसवास्ते यही देवे-और
जहां मांसकाथनमिले वहांपर मूंगकायूप देना चाहिये ॥

धेन्वाःप्रकटवत्सायाः क्षीरं कृत्स्नपयोगुणम् ॥

वेतसाम्लस्यचाभावेहरिमन्थाम्लमादिशेत् ॥

अर्थ—संपूर्णदुग्धके अभावमें-वछरेवाली गौकादूध लेना चाहिये-और अम
वेतके अभावमें-चनाका खारलेना चाहिये. ॥

अभावेचंदनस्यापिमेलयेद्रक्तचंदनम् ।

तुगाभावेप्रदातव्यात्वक्क्षीरीतद्गुणाबुधैः ॥

अर्थ—सपेद चंदनके अभावमें लालचंदन लेवे-तवाखारके अभावमें वंशली-
चन लेनाचाहिये ॥

अभावेसतिपत्राणां रसादेर्भावनाविधौ ।

विपमुष्टि कपायेणपद्मगुणाभावनाभवेत् ॥

अर्थ—जहां रसकी भावनालिखी है यदि उसजगे वो पत्ते नमिले तो कुचले-
के रुहेडी छःगुनी भावनादेनेसें पूर्ववत् गुणकरे ॥

फलमाममपुष्टंचत्यजेद्विल्वाहृतेसदा ।

द्राक्षाविल्वाशिवादीनांफलंशुष्कंगुणोत्तरम् ॥

अर्थ—जितनेफलहैं उनमें वेलफलके सिवाय सबफल कच्चे और पुष्टि रहित
त्याज्यहै-और सूखेफलभी त्याज्यहै परंतु-द्राक्ष-वेलगिरी-और आमले ये मूले-
ही गुणकारी होतेहैं. ॥

यत्रयद्द्रव्यमप्राप्तंभेषजेपरपूर्वतः ।

ग्राह्यंतद्गुणसाम्यात्तुनतत्रकापिदूषणम् ॥

अर्थ—जिस औषधके बनानेमें यदि एक औषध न मिलेतो वैद्यको उचितहै किउसके समान गुणकारी दूसरी औषध लेनेमें किसी प्रकारका दूषण नहींहै ॥

अत्रप्रोक्तानिवस्तूनिनियानितेपुचतेपुच ।

योज्यमेकतराभावे परंवैद्येनजानता ॥

अर्थ—इसमें जो जो औषधादि कहीं है उनके नमिलनेपर बुद्धिवान् ज्ञाता वैद्य उक्त प्रमाण उसी २ की प्रतिनिधि ग्रहणकरे ॥

रसवीर्यविपाकाद्यैः समंद्रव्यंविचिंत्यच ।

युज्यात्तद्विधमन्यच्चद्रव्याणांचरसादिवत् ॥

अर्थ—जो द्रव्य न मिले उसके रस वीर्य और विपाकके सदृश औषधी चिंतवन करके मिलावे—जैसे द्रव्योंमें रसादिविचारके मिलाए जाते है ॥

योगेयदप्रधानंस्यात्तस्यप्रतिनिधिर्मतः ।

यत्तुप्रधानंतस्यापिसदृशनैवगृह्यते ॥

अर्थ—जो द्रव्य काय-चूर्ण-गुटी आदिमें मुख्य करके कही है [जैसे योग-राजगूगलमें गूगलमुख्यहै] तो इस गूगलकी प्रतिनिधीनहीं लेनी जावेगी बाकी अम्रधान और २ औषधोंकी प्रतिनिधि लेनी चाहिये ॥

अथातोरसविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अब मधुरादि रस विशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करते है तहां संपूर्ण रसोंका प्रथम कारण संभवदिज्ञाते है । यह मृश्रुतकी अध्याय है ॥

आकाशपवनदहनंतोयभूमिपुयथासंख्यमेकोत्तरवृ

द्धांशब्दस्पर्शरूपरसगंधाः । तस्मादाप्योरसःपरस्प

रसंसर्गात्परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्चसर्वेषु

र्वेषांसान्निध्यमस्त्युत्कर्पापकर्पात्तुग्रहणम् ॥

अर्थ—आकाश-पवन-अग्नि-जल-और पृथ्वी इनमें क्रमसे एक २ दृष्टिके हिसावसे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-और गंध ए रहते है [जैसे शब्दगुण आकाश, शब्द

स्पर्श गुणवान् वायु, शब्द-स्पर्श-रूपगुणविशिष्ट अग्नि, शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणवान् जलहै, एवं शब्द-स्पर्श रूप-रस-गंधगुणवान् पृथ्वी है ।

इसी कारण रसहै सों जलका गुणहोनेसैं आप्यकहलाताहै । परंतु यें संपूर्ण पंचभूत आपसमें परस्पर संयोगहोनेसैं परस्पर एक दूसरेके सहायक होनेसैं और परस्पर आपसमें एकात्मी भावहोनेसैं सबभूतोमें सबभूतोकी सान्निध्यताहै [अर्थात् जितने आकाशादि भूतहै ए पंचीकरणकी रीतिसैं एकमेक हो रहे हैं] परंतु वृद्धि और हासके होनेसैं ग्रहण करे जाते है. इन्हीके अंश सैं पंचविधद्रव्यहै तहां आकाश अंश अधिक द्रव्यमें शब्दाधिक्य जानना, वाताधिक्यमें स्पर्शाधिक्य है-इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमे जानो

सखलवाप्योरसःशेषभूतसंसर्गाद्विदग्धःपोढाविभज्यते

अर्थ—वहीं आप्यरस अन्यभूत (आकाश-अग्नि-पवन और पृथ्वी)के मिलाप-सैं अप्रकटभी है परंतु कालकी सहायतासैं पृथ्वी-आकाश-पवन-अग्नि इनके संसर्ग सैं परिपाकको प्राप्तहो कर छ. प्रकारकाहो जाताहै ॥

तद्यथा-मधुरोऽम्लोलवणःकटुकस्तिक्तःकषायइति ॥

अर्थ—तहां मधुर (मीठा) अम्ल (खट्टा) लवण (खारी) कटुक (चर-परा) तिक्त (कडुआ) और कषायकहिये कसेला ए छः रसहैं ॥

तेचभूयःपरस्परसंसर्गात्रिपट्टिधाभिद्यंते ॥

अर्थ—वो छःरस अपसमें मिलकर ६३ भेदवाले होते है ए भेद आगे कह्यो

तत्रभूम्यम्युगुणबाहुल्यान्मधुरः। भूम्यग्निगुणबाहुल्या

दम्लः। तोयाग्निगुणबाहुल्यालवणः। वाय्वग्निगुणबा

हुल्यात्कटुकः। वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः।

पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात्कषायइति ॥

अर्थ—तहां पृथ्वी-जल-गुण बाहुल्य मधुररसहै । पृथ्वी-अग्नि गुण बाहु-ल्य अम्ल रसहै । जल अग्नि गुण बाहुल्य लवण रसहै । वायु अग्निगुणबाहुल्य कटुक (तीक्ष्ण) रस है । वायुआकाश गुणबाहुल्य तिक्त (कडुआ) रस है । एवं पृथ्वी और पवनगुण बाहुल्य कषाय (कसेला) रसजानना ॥

तत्रमधुराम्ललवणावातघ्नाः ॥

मधुरतिक्तकषायाःपित्तघ्नाः ॥

कटुतिक्तकषायाःश्लेष्मघ्नाः ॥

अर्थ—तहां मधुर अम्ल और लवण ए तीन रसवादीके नाशक है । मधुर-
तिक्त और कषाय ए तीन पित्तनाशक । एवं कटु तिक्त और कषायरस कफ
नाशक जानने ॥

तत्रवायुरात्मनैवात्मापित्तमाग्नेयं श्लेष्मासौम्यइति ।

तएवरसाः स्वयोनिवर्द्धना अन्ययोनिप्रशमनाश्च ॥

अर्थ—तहां वायु-आत्मककेही अपनी आत्मा है-पित्त आग्नेय है अर्थात् इसकी
अग्नि आत्मा है । और कफसौम्य है अर्थात् इस का शीतलता आत्मा है । येषू-
र्वोक्तछःहो रस अपनी योनिके (जिससै जो भगट है) बढ़ानेवाले है और दुसरे
कीयोनिको नाशकरते है

केचिदाहुरग्नीषोमीयत्वाज्जगतोरसाद्विविधाः सौम्या-

आग्नेयाश्च । तत्रमधुरतिक्तकषायाः सौम्याः कटुम्लल-

वणाआग्नेयाः ॥ मधुराम्ललवणाः स्निग्धागरवश्च ॥

कटुतिक्तकषाया रूक्षालघवश्च । सौम्याः शीताआग्नेयाश्चोष्णाः

अर्थ—कोई आचार्य ऐसाकहते है कि जगत अग्नि और सोमीयत्वहोने सैं
रस दोहीप्रकारके है जैसे-सौम्यरस और आग्नेयरस इनमेंभी मधुर-तिक्त-औ-
र कपेले एतीनरस सौम्य (शीतल) है । और कटु-अम्ल-औरलवण रसआग्नेय
(गरम) है । तहां मधुर-अम्ल-और लवण एरस स्निग्ध और भारी है । कटु
तिक्त और कषाय एतीनोरस रूखे और हलके है । इनमें सौम्यरस शीतल है
और आग्नेय रस सब गरम है ॥

तत्रशैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टम्भ्यगुणलक्षणोवायुस्त

स्यसमानयोनिः कषायोरसः सोऽस्यशैत्यात्शैत्यवर्द्ध-

यति रौक्ष्याद्रौक्ष्यलाघवालाघवं वैशद्याद्वैशद्यवैष्ट

म्भ्याद्वैष्टम्भ्यमिति ॥

अर्थ—तहां-शीतल-रूक्ष-हलका-विशद और विष्टम्भ लक्षणवान् वायु उस
की समान योनि कपेला रस है वहस्वयंशीतल होनेसैं वायुको बढ़ाताहै रूक्षहोने
सैं वायुमें रूक्षताको बढ़ाता है उसीप्रकार हलकाहोने सैं हलके पनेको और वि-
शद (फैलने) वाला होनेसैं इसवायुको फैलाता है, विष्टम्भगुणहोने कपेला रस
इसवायुमें विष्टम्भताको भगटकरे है-तात्पर्य ये है कि वायुके और कपेले रसके
(तुल्ययोनिके) कारण जो कपेले रसमें गुण है वही वायुमें जानने ॥

ओष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणंपित्तं ॥
 तस्यसमानयोनिःकटुकोरसःसोऽस्यौष्ण्यादौष्ण्यवर्द्ध-
 यतितैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यंरौक्ष्याद्द्रौक्ष्यंलाघवात्लाघवंवैशद्या
 द्वैशद्यमिति ।

अर्थ—उष्ण—तीक्ष्ण—रूक्ष—हलका—और विशदगुण इत्यादि लक्षणवाला पि-
 त्त है उसके समानयोनि (तुल्यगुणवाला) कटुक (चरपरा) रस है वो इसपित्तको
 उष्णताके कारण गरमी—तीक्ष्णताके कारण तीखापना—रूक्षताके कारण रूखा-
 पना, हलकेके कारण हलकापना विशदताके कारण वैशद्यगुणको बढ़ाता है—क-
 टुरस सेवनसे इन गुणों की वृद्धिहोती है॥

माधुर्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणःश्लेष्मात्
 स्यसमानयोनिर्मधुरोरसःसोऽस्यमाधुर्यान्माधुर्यवर्द्ध-
 यति ॥ स्नेहात्स्नेहं, गौरवाद्गौरवं, शैत्यात्शैत्यं, पै-
 छिल्यात्पैच्छिल्यमिति ॥ तस्यपुनरन्ययोनिःकटुको-
 रसश्श्लेष्मणःप्रत्यनीकत्वाकटुत्वान्माधुर्यमभिभवति
 रौक्ष्यात्स्नेहंलाघवाद्गौरवमौष्ण्यात्शैत्यंवैशद्यात्पै-
 छिल्यमिति ॥ तदेतन्निर्दर्शनमात्रमुक्तम् ॥

अर्थ—मधुर—स्नेह (चिकनाई) गौरव (भारीपना) शीतल—पैच्छिल्य (लहसदार)
 इत्यादि लक्षणवाला कफ है उसकी समानयोनि (तुल्यगुणवाला) मधुर (मीठा)
 रस है वो इस कफको मधुरके कारण माधुर्यता चिकनेके कारण चिकनाई, भारिहो-
 नेके कारण भारीपना, शीतलताके कारण शीतलत्व, और लहसदार होनेके कारण
 कफमें लहसदारपना बढ़ावे है । अवकहते है कि उस कफकी अन्ययोनि (वि-
 परीतगुणवाला) कटुक (चरपरा) रस है यहकफके विरुद्ध होनेसे और चरप-
 रा होनेसे मिठासको नाशकर्ता है, रूक्षहोनेसे चिकनाईको नाशकर्ता है, हलके
 पनेसे कफके भारीपनेको, उष्णहोनेसे कफकी शीतलताको, और विशदगुणवान्
 होनेसे इसकफके लहसदार गुणको हरणकरे है । यहकेवल एकनिर्दर्शनमात्र
 (दृष्टान्तमात्र) कहा है इसी प्रकार बुद्धिमान् वैद्य सवरसोंमें उसके समानरस
 को पुष्टकर्ता और विपरीत रसको उसका नाशकर्ता जाने ॥

रसलक्षणमतोऽर्ध्ववक्ष्यामः ॥

अर्थ—अब उसके उपरांतरसोंके लक्षण कहते हैं ॥

तत्रयःपरितोषमुत्पादयतिप्रल्हादयतितर्पयतिजीवय
तिमुखावलेपंजनयति श्लेष्माणंचाभिवर्द्धयति स- मधुरः ।

अर्थ—तहां-जो संतोषको प्रगटकरे-सुखवढावे-वृष्ठीकरे-प्राणोंकोधारणकरे
मुखमें मैलको प्रगटकरे-और कफकोबढावे उसको मधुर (मीठा) रसजानना
अर्थात् इतने गुण भिष्टरस कर्त्ता है ॥

योदन्तहर्षमुत्पादयतिमुखस्त्रावंजनयतिश्रद्धाञ्चोत्पा
दयति सोऽम्लः ॥

अर्थ—जो दंतहर्ष (दांतोंकाखट्टापना) प्रगटकरे-मुखसैं पानी गिरावे और
श्रद्धाप्रगटकरे उसको अम्लरस जानना । अर्थात् अम्लरसमें इतने गुणहै ॥

योभक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकंजनयतिमार्दवंचा
पादयति सलवणः ॥

अर्थ—जोभोजनमें रुचिको प्रगटकरे-मुखसैं कफके स्रावको प्रगटकरे और
नम्रताको प्रगटकरे उसको लवण रस जानना । अर्थात् लवणरसमें इतने गुणहै ।

योजिह्वाग्रंवाधतेउद्वेगंजनयतिशिरोगृह्णीतिना
सिकांचस्त्रावयतिसकटुकः ॥

अर्थ—जो जिह्वाके अग्रभागमें वाधाकरे अर्थात् बुरालंगे-तथा उद्वेगको
प्रगटकरे-तथा उद्वेगके कारण मस्तकपकड़े-और नाकसैं पानीका स्रावकरे उस
कोकटुकरस (चरपरारस) जानना ॥

योगलेचोषमुत्पादयतिमुखवैशद्यंजनयतिभक्त
रुचिंचापादयतिहर्षंच स तिक्तः ॥

अर्थ—जो गलेका आकर्षणकरे अर्थात् खीचे-मुखमें विशदता प्रगटकरे
भोजनमें रुचि बढावे और जिस्केखानेसैं रोमांचखडे हो वो तिक्तरस (कटु आ-
रस) जानना ॥

योवक्त्रंपरिशोपयतिजिह्वांस्तंभयतिकंठंवध्नाति
हृदयंकर्षयति पीडयतिच सकपायः ॥

अर्थ—जो खानेसैं मुखकोमुखावे-जीभका स्तंभन (जकडीसी) करदेवे-कंठ-
वाधे हृदयका आकर्षणकरे और पीडाकरे उसको कपाय (कपेला) रस
जानना एरसोंके लक्षणकहै ॥

रसगुणानतऊर्ध्ववक्ष्यामः

अर्थ—अब इसके उपरांत रसोंके गुणोंको वर्णन करैगे—

तत्रमधुरोरसोरसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जाजः शुक्रस्त-
न्यवर्द्धनश्चक्षुष्यः केश्योवर्ण्योबलकृत्संधानः शोणि-
तरसप्रसादनो बालवृद्धक्षतक्षीणहितः षट्पदपिपी-
लिकानामिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः षडि-
न्द्रियप्रसादनः कृमिकफकरश्चेतिसएवंगुणोऽप्ये-
कएवात्यर्थमासेव्यमानः कासश्वासालसकवमथुवद-
नमाधुर्यस्वरोपघातकृमीगलगंडानापादयति तथा-
वृद्धश्लीपदवस्तिगुदोपलेपाभिस्त्यन्दप्रभृतीन्जनयति ॥

अर्थ—तहां मधुर (मीठा) रस, रम-रुधिर-मांस-मेदा-हृद्दी-मज्जा-ओज
शुक्र और स्त्रीके दूध इनको बढ़ाताहै तथा नेत्रोंको परम हितकारी है. बालोंको
बढ़ाताहै-वर्णको उजलाकर्ता है. बलकारी दृष्टे हाडको जोड़ता है-रुधिर-रसको
स्वच्छ कर्ता है बालक-वृद्ध-और क्षतक्षीण (घावोंसे दुर्बल) इनको हितकारी है
मरसी-चैदी-इनको म्लियहै-ये प्यास-मूर्च्छा-और दाह इनको नष्टकर्ता है-तथा मनको
प्रसन्न करेहै. एवं कफ और कृमिरोगको प्रगटकर्ता है वही मधुर रसएसे गुण-
वालाभी है-परंतु यदि केवल इसी मिष्टरसका अत्यंत सेवनकरेतो श्वास-स्वांसी-
अलसक-चमन-मुपका मीठा रहना-स्वरभंग (गलेका धैठजाना) कृमिरोग-गल-
गंड-आदि अनेक रोगोंको प्रगटकरेहै तथा अर्बुद-श्लीपद-चस्ती-गुदाका उपटप
और अभिष्येदी आदि रोगोंको उत्पन्न करताहै. ॥

अम्लोजरणः पाचनः पवननिग्रहणोऽनुलोमनः कोष्ठ-
विदाहीवहिःशीतः क्लेदनः प्रायशोहृद्यश्चेति सएवं-
गुणोप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसंर्मा-
लनरोमसंवेजनकफविलयनशरीरिज्ञैथिल्यान्यापाद-
यति तथाक्षताभिहतदग्दप्रभग्रशुलरुग्णप्रच्युताव-
मूत्रितविसर्पितच्छिन्नभिन्नविद्भोत्पिष्टादीनिपाचय-
त्याग्नेयस्वभावात् परिदहति कंठमुरो हृदयश्चेति ॥

अर्थ—अम्ल (खट्टा) रस आहारको जरानेवाला-पाचक वादीका नाशक-सूजन आदिका अनुलोम कर्ता (चढाने वाला) कोष्ठमें दाहकर्ता-बाहर शीतलकर्ता क्लेदन और प्राय हृदयको प्रिय है. एसा गुणवालाभी है परंतु केवल खट्टे रसकेही सेवन करनेसेँ दाँतोंका कुदहोना वा खट्टे होना. नेत्रोंका मुदना-रोमांचोंका खडा होना-कफविलीन कर्ता-शरीरको शिथिलकरे है तथा क्षताभिहत (घावसेँ पीडित) अग्निसैँ फुका-सर्पादिकसैँ काटा-चोटलगा सूजन-दृड्डीका टेढाहोना तथास्थानसैँ दृड्डीका हटना-जहरीजानवरकामूत्रलगना-तथाजहरी जानवरका स्पर्श होना-छिन्न भिन्न-विद्ध-उत्पिष्टादि भ्रमरोग इनसबको अम्लरस आग्नेय स्वभावहोनेसैँ पाचनकर्ता है और इसी कारणसैँ कंठछाती और हृदयमें दाहकर्ता है ए लक्षण अम्लरसके कहे ॥

**लवणः संशोधनः पाचनविश्लेषणः क्लेदनः शैथिल्य-
कृदुष्णः सर्वरसप्रत्यनीकोमार्गविशोधनः सर्वशरीराव-
यवमार्दवकरश्चेति सएवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्य-
मानो गात्रकंडूकोठशोफभैवर्ण्यपुंस्त्वोघातेन्द्रियोप-
तापान् तथासुखाक्षिपाकरक्तपित्वातशोणिताम्ली-
काप्रभृतीनापादयति ॥**

अर्थ—अब लवणरसके गुणकर्म कहते है । तहाँ लवणरस वमनविरेचन द्वारा व्रणका शोधनकरे है पाचनहै. प्रत्येक अवयवको न्यारे २ करे है-आर्द्र और शिथिलकरे है. तथागरमहै. सर्वरसमात्रकाविरोधी है मूत्र-नाडी-व्रणादिकके मार्गोंका शुद्धिकर्ता है शरीरके सर्व अवयवोंका नम्रकरने वालाहै । यदि केवल निमकही-निमक सेवनकरेतो देहमें खुजली-कोठ (चकते) सूजन-देहका विवर्ण-और पुरुपार्थ (शुक्र) का क्षयकरे है. तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंका घातकहै. तथा मुख-पाक नेत्र पाक. रक्त-और खट्टी डकार आदि रोगोंको करे है. ॥

**कटुकोदीपनः पाचनोरोचनः शोधनः स्थौल्यालस्यकफ-
कामिविपकुष्ठकंडूपशमनः संधिवंधविच्छेदनोऽवसादनः
स्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ताचेति सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थ-
मुपसेव्यमानोभ्रममदगलताल्वोष्ठशोपगात्रसंतापवलविघात
कम्पतोदभेदकृतकरचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषुचवातशूलानापादयति**
अर्थ—अब चरपरे रसकी प्रकृति और कर्मदिखाते है. कटुक (चरपरा) र-

स दीपन-पाचन-रोचन-शोधन है। स्थूलता आलस्य-कफ-कृमि-विष-कुष्ठ खुजली इनको नाशकरे। संधिवंधनको खोलनेवाला-अनुत्साहकर्ता-स्तन्य (स्तनसंबंधी दूध) शुक्र मेद इनको नष्टकरे है एसाभी है परंतु यदि केवल इसी रस-का अत्यंत सेवन करे तो भ्रमकरे मदकरे गला-तालु-होठ-इनका शोषकरे-देहमें संताप-बलको नष्टकरे कंफ-सुईकीसी चभक-तथा तोडने कीसी पीडा-तथा हाथ-पैर-दोनो बगल-पीठ इत्यादि अंगमें वात शूलोंको प्रगटकरे है ॥

तिक्त-श्लेदनीरोचनीदीपनः शोधनः कंडूकोठतृष्णा-
मूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनेविण्मूत्रक्लेदमेदो
वसापूयोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुप-
सेव्यमानोगात्रमन्यास्तंभाक्षेपकादितःशिरः शूलभ्र-
मतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति ॥

अर्थ—अब कडुआरस की प्रकृति और कर्म दिखाते हैं—कडुआरस छेदन रोचन (अन्यवस्तुओंका है किंतु स्वयं रोचन नहीं है) दीपन-शोधन है तथा खुजली-बकते-प्यास-मूर्च्छा और ज्वर इनको नाशकर्ता है। स्त्रीके स्तनसंबंधी दूधका शोधनकरे मलमूत्र-क्लेद-मेद-वसा-पूय (राध) इन इनको शोषणकर्ता है। इत्यादिगुणविशिष्टभी है परंतु यदि केवल यही रस अत्यंत सेवन करा जाय तो देहस्तंभ और मन्यास्तंभ-तथा आक्षेपकैसे आदिले मस्तकशूल-भ्रम-चभका-छेदने-कीसी पीडा और मुखमें विरसता इत्यादि रोगोंकोकरे है ॥

कपायःसंग्राहकोरोपणः स्तंभनशोधनोलेखनः शोष-
णःपीडनः क्लेदोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवा-
त्यर्थमुपसेव्यमानोहृत्पीडास्यशोपोदराध्मानवाक्य-
ग्रहमन्यास्तंभगात्रस्फुरणचुमचुमायनाकुंचनाक्षेप-
णप्रभृतीन्जनयति ॥

अर्थ—अब कपायरसके गुण-कर्म दिखाते हैं—कपेलारस संग्राही व्रणको रोपणकर्ता है देहको स्तंभनकारी है-अथवा सृदुको दृढकरे है-व्रणका शोधनकारी है। व्रणाच्छत्र मांसकालेखनकारी है। द्रवघातुका शोषणकर्ता है-अथवा व्रणप्रमेहका शोषणकर्ता है। तथा व्रणका वा हृदयका पीडनकर्ता और श्लेदका शोषणकर्ता है। इत्यादि गुणवालाभी है परंतु केवल इसहीरसका अत्यंत सेवन करे तो हृदयपीडा मुखका सूखना-उदररोग-अफरा-वाणीका रुकना-मन्यास्तंभ-अंगोंका फड़कना-रा-

ईलगानेके समान त्वचामें चुमचुमपीढाहो, देहसंकोच-देहका कापना प्रभृतिके कहने अन्यभीवातके विकार अर्द्धित आदिहोवे ॥

अतःसर्वेषामेवद्रव्याण्युपदेक्ष्यामः

तद्यथा । कांकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जाशालिषाष्टि-
कयवगोधूममाषशृंगाटककसेरुकत्रपुसैर्वारुककर्कारु-
कालांबुकालिंदकतकगिलोड्यपियालपुष्करबीज-
काश्मर्यमधुकद्राक्षाखर्जूरराजादनतालनालिकेरेक्षु-
विकारवलातिवलात्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरक-
क्षीरमोरटमधूलिकाकुष्मांडप्रभृतीनिसमासेन मधुरोवर्गः ।

अर्थ—अब संपूर्ण रसोंकी द्रव्योंको कहते हैं-तहां प्रथम मधुरवर्ग कहतेहैं-जैसैं कांकोल्यादिगण-दूध-धी-वसा-मज्जा शालि और सांठी चावल-जौ-गैहू-उडद-सिंघाडे-कसेरू-खीरा-आर्या-ककडी-धीया-तरबूज-कतकफल-गिलोड्य (गिलोठी) चिरोजी-कमलगटा-कंभारी-महुआ-दास-खजूर (छुहारा), खिरनी-तालफल-गिरी-ईसके विकारमात्र-वला-अतिवला-तालमखाने-विदारीकंद-क्षीरकांकोली-गोसू-दूधका मोरट (छाछकाभेद) मधूलिका और पेठा इनसैं आदिले औरभी यह मधुरवर्ग संक्षेपसैं कहाहै-

अम्लवर्गः

दाडिमामलकमातुलंगाग्रातककपित्थकरमर्दवदरको-
लप्राचीनामलकतिंतिडीककोशाग्रभव्यपारावतवेत्र-
फललकुचाम्लवेतसदन्तशठदधितक्रसुराशुक्तसौवी-
रकतुपोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लोवर्गः ॥

अर्थ—अनार-आमले-विजोरा-अंवाडे-कैय-करोदा-चेर-बडावेर-पानी आवला-नेतडीक-लाल धनकाआंव-कमरस-फालसा-वेतकाफल-बडहर-अम्लवेती-जभीरी-दही-छाछ-दारू सिरका-गैहूंकीकांजी-तुपोदक (जौकीकांजी) धान्याम्ल-इत्यादि संक्षेपसैं यह अम्लवर्ग कहा ॥

लवणवर्गः

सैधवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रकपक्तिमयवक्षा-
रोषप्रसूतसुवर्चिकाप्रभृतीनिसमासेनलवणोवर्गः ॥

अर्थ—सैधानिमक-कालानिमक-विड-खारी-साह्वर-समुद्रकानिमक-फुल्ल-
निमक-जवाखार-रेहकानिमक-सर्ज्जी-वा सोरा इत्यादिक यह संक्षेपसँ लवण
वर्गकहाहै ॥

कटुकवर्गः

पिप्यल्यादिः सुरसादिःशियुमधुशियुमूलकलशुनसु-
मुखशीतशिवकुष्टदेवदारुहरेणुकावल्गुजफलचंडागु-
ग्गुलुमुस्तलंगलकीशुकनाशापीलुप्रभृतीनि सालसा-
रादिश्च प्रायशः कटुकोवर्गः ॥

अर्थ—पिप्पल्यादिगण. सुरसादिगण-सहजना-सहत-सहजनेकीजड-लहस
न-वैजयंती-तुलसी-कपूर-कूठ-देवदारु-हरेणु-वावची-अजमोदकेआकारसु गं
धद्रव्य-शूगल-नागरमोथा-कलियारी-टेदू-पीलू-औरसालसारादिगण इत्या-
दियहसवसंक्षेपसँ कटुक वर्ग है ॥

तिक्तवर्गः

आरग्वधादिगुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णीवेत्रकरीरहरिद्राद्व-
येन्द्रयववरुणस्वादुकंटकसप्तपर्णवृहतीद्वयशंखनिद्रि-
वंतीत्रिवृत्कृतवेधनकर्कोटककारवेलकवार्ताककरीर-
करधीरसुमनःशंखपुण्यपामार्गत्रायमाणाऽशोकरो-
हिणीवैजयन्तीसुवर्चलापुनर्नवावृश्चिकालीज्योतिष्म-
तीप्रभृतीनिसमासेनतिक्तोवर्गः ॥

अर्थ—आरग्वधादिगण-गुडूच्यादिगण-गंडूकपर्णी (ब्राह्मीकाभेद) वेत क-
रीरके अंकुर, हरदी-दारुहलदी-इन्द्रजो-वरना-विकंकत-सतोना छोटीकटेरी बडी
कटेरी यवतिक्ता दंती-निसोथ-कटुईतोरई-ककोडा-करेल्या-वैगन-करीर-चमे
ली-संखपुष्पी-आंगा-त्रायमाण-कुटकी-अरनी-हुलहुल-मोंठ-वृश्चिकपत्री-
मालकागनी इत्यादि सववस्तु संक्षेपसँ तिक्तवर्ग है ॥

कपायवर्गः

न्यग्रोधादिरंवष्टादिःप्रियंग्वादि रोध्रादिस्त्रिफलाश्ल-
ककीजंवाभ्रवकुलतिन्दुक फलानि कतकशाकपापा-

णभेदकचनरूपतिफलानि सालसारादिश्वप्रायसः कुर
वककोविदारकजीवंतीचिह्नीपालकयासुनिपण्णकप्र-
भृतीनि निवारकादयोमुद्गादयश्चसमासेनकपायोवर्गः ॥

अर्थ—न्यग्रोधादिगण-अंबट्टादिगण-प्रियंग्वादिगण-रोध्रादिगण-त्रिफला
(हरह-बहेडा-आमला) सालवृक्ष-जामुन-आन्न- मौलसिरी-तेंदूकेफल-निर्मली-
खरशाक- पापानभेद-बहआदिवृक्षोंकेफल- सालसारादिगण-कुरवक-कोविदार
(कचनारकाभेद) जीवंतीकाशाक-चिह्नी (खेतकावयुआ) पालक-चौपतिया
आदिसाग-और समापसाई आदि तथा मूंगआदि ए संक्षेपसँ कपायवर्ग है ॥

तत्रैपारसानांसंयोगास्त्रिपट्तिर्भवन्तितद्यथा । पंचद-
शद्विका विंशतिस्त्रिकाः पंचदशचतुष्काःपट्पंचकाए
कशःपट्टरसाएकःपट्टकइतितेपांमन्यत्रप्रयोजनानिवक्ष्यामः

अर्थ—पूर्वोक्त रसोंके संयोगहोने सँ ६३ भेदहोते है जैसे दोदोरसके मिला-
पसँ १९ तीनके मिलापसँ २० चार २ केमिलापसँ १६ पांचपांचके मिलापसँ ६
छःरसोंके मिलापसे १ भेद और एक २ पृथक् होनेसे ६ भेद भँसँ कुलजोडनेसे
६३ भेद होते है इनका प्रयोजन अन्यत्रवर्णनकरेंगे ॥

इनके भेदपद्यमें लिखते है

पद्येनच सुरसस्मृत्यै रसभेदान् शृणुष्वमे । मधुरोम्लेन पंडुनातिक्तेन कटुके-
नच ॥ १ ॥ कपायेण पृथक् सार्धमम्लःसुलवणेनच । तिक्तेनकटुना सार्ध कपाये-
णपृथक् पृथक् ॥ २ ॥ पटुस्तिक्तेन कटुनाकपायेण पृथक् । तिक्तस्तुकटुनासार्ध क-
पायेण पृथक् पृथक् ॥३॥कटुकस्तु कपायेण द्विसंयोगे इतिस्मृताः। दशपंचच भेदा-
स्तुसंख्यात्वा विंशति स्त्रिके ॥४॥ मधुराम्लोत्तु पटुना तिक्तेन कटुना तथा । कपा-
येण तथा सार्द्ध तथा स्वादुपट्ट पृथक् ॥ ५ ॥ तिक्तेन कटुकेनापि कपायेण तथास
ह । स्वादुतिक्तौतु कटुनाकपायेण पृथक् सह ॥ ६ ॥ स्वादुपणौ कपायेण स्वादो-
रेवंदश त्रिके । भेदाश्चुरम्ललवणौ तिक्तेन कटुना पृथक् ॥७॥ कपायेण तथासार्ध
मम्लतिक्तौ पृथक्सह । कटुकेनकपायेण तथाम्लकटुको सह ॥ ८ ॥ कपायेणेत्यपट्ट
प्रोक्ता भेदा अम्लस्वतुत्रिके । पटुतिक्तौ तु कटुना कपायेण पृथक्सह ॥ ९ ॥ पट्ट
पणोकपायेण भेदाइति पट्टोम्यः॥तिक्तोपणौ कपायेण तिक्तस्यैवंसकृत्स्मृतः॥१०॥
त्रिकंभेदाइतिप्रोक्ता चतुष्के दशपंचच । ग्राह्यम्ल लवणा सार्द्ध तिक्तेन कटुकेनच
॥ ११ ॥ पृथक्कपायेण तथा मधुराम्लौ सतिक्तौ । कटुकेनतुसंपृक्तौ कपायेणपृ-
थक्तथा ॥ १२ ॥ स्वादुम्लकटुकाः सार्द्धकपायेणति पट्टस्मृताः । सप्तमश्चात्रमधु-

रो लवणोपणत्तिकैः ॥ १३ ॥ भेदोष्टमोमतः स्वादुकदुत्तिकपायकैः । नव
 मस्तत्र मधुरः पद्रूपणकपायकैः ॥ १४ ॥ दशमोऽत्रभवेत्स्वादुत्तिकोपणकपा
 कैः । दशभेदा भवंत्येवंमधुरेणचतुष्कके ॥ १५ ॥ कदुत्तिकाम्ललवणैर्भेदएवश्रुतुष
 के । द्वितीयस्त्वम्ल लवण कपायकदुकैःस्मृतः ॥ १६ ॥ तृतीयोऽत्रभवेदम्लकदु
 त्तिकपायकैः । चतुर्थोऽत्रभवेदम्लत्तिकोपणकपायकैः ॥ १७ ॥ एवमम्लेनभेदा
 स्युश्चत्वारोत्रतुष्कके । पट्टनैकोत्रलवणत्तिकोपणकपायकैः ॥ १८ ॥ एवंपंचदश
 ख्याताश्रुतुष्करससंख्यया । पट्टभेदान् पंचके प्राहुस्तान्वक्ष्यामि विभागशः ।
 ॥ १९ ॥ एकोभेदोम्ललवण त्तिकोपणकपायकैः । द्वितीयः स्वादुलवण ति
 क्तोपणकपायकैः ॥ २० ॥ तृतीयस्त्वम्लमधुरत्तिकोपणकपायकैः । चतुर्थस्त्व
 म्लमधुरपद्रूपणकपायकैः ॥ २१ ॥ पंचमस्त्वम्लमधुरपट्टत्तिकपायकैः । षष्ठोभेदो
 म्लमधुरलवणोपणत्तिकैः ॥ २२ ॥ पट्टभेदा इतिनिर्दिष्टाः पंचकेप्रविभागशः ।
 भेदःस्वादुम्ललवणत्तिकोपणकपायकैः ॥ २३ ॥ एकएवपट्टसेन पृथक्त्वेनतुपट
 स्मृताः । स्वादुरम्लोऽथलवणत्तिककश्चकदुस्तथा ॥ २६ ॥ कपायइतिभेदाःस्युः
 सर्वतोऽत्रत्रिपट्टिधा । क्षीरंसुराविडंनिवश्रव्यापत्रं रसाश्रयम् ॥ २५ ॥ द्रव्यंस्वादु
 रसादीनांपण्णाविद्वियथाक्रमम् । द्रव्यंद्रव्यांतरेणैवयोजयेद्विरसादिषु ॥ २६ ॥
 धात्रीफलं शर्करयालवणेनार्द्रकंतथा । एवमादीनि द्रव्याणियोजयेद्विपगुप्तमः ।
 ॥ २७ ॥ कानिचिद्विरसादीनिद्रव्याणिस्युः स्वभावतः । यथैण पट्टसः लृणो य
 थापंचरसा भया ॥ २८ ॥ मद्यंपंचरसंस्यद्रत्तिकोयद्बच्चतूरसः । एरंडतैलं त्रिरसंमा
 क्षिकंद्विरसंस्यथा ॥ २९ ॥ घृतमेकंस्वादुरसंमधुरादिविभागतः ॥ दिङ्मात्रादुदितादे
 वंशेषमूर्द्धमनीपिणा ॥ ३० ॥

उदाहरण

एकरसकेभेद

- १ स्वादु
- २ अम्ल
- ३ लवण
- ४ कदु
- ५ त्तिक
- ६ कपाय

दोरसकेभेद

- १ मधुर-अम्ल
- २ मधुर-लवण
- ३ मधुर-त्तिक
- ४ मधुर-कदुक
- ५ मधुर-कपाय
- ६ अम्ल-लवण
- ७ अम्ल-त्तिक

दोरसकेभेद

- ८ अम्ल-कदुक
- ९ अम्ल-कपाय
- १० लवण-त्तिक
- ११ लवण-कदुक
- १२ लवण-कपाय
- १३ त्तिक-कदुक
- १४ त्तिक-कपाय
- १५ कदु-कपाय

तीनरसकेभेद

१ मधुर-अम्ल-लवण	११ अम्ल-लवण-तिक्त
२ मधुर-अम्ल-तिक्त	१२ अम्ल-लवण-कटुक
३ मधुर-अम्ल-कटुक	१३ अम्ल-लवण-कपाय
४ मधुर-अम्ल-कपाय	१४ अम्ल-तिक्त-कटुक
५ मधुर-लवण-तिक्त	१५ अम्ल-तिक्त-कपाय
६ मधुर-लवण-कटुक	१६ अम्ल-कटु-कपाय
७ मधुर-लवण-कपाय	१७ लवण-तिक्त-कटुक
८ मधुर-तिक्त-कटुक	१८ लवण-तिक्त-कपाय
९ मधुर-तिक्त-कपाय	१९ लवण-कटु-कपाय
१० मधुर-कटु-कपाय	२० तिक्त-कटु-कपाय

चाररसके भेद.

१ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त	८ मधुर-लवण-तिक्त-कपाय
२ मधुर-अम्ल-लवण-कटुक	९ मधुर-लवण-कटु-कपाय
३ मधुर-अम्ल-लवण-कपाय	१० मधुर-तिक्त-कटु-कपाय
४ मधुर-अम्ल-तिक्त-कटुक	११ अम्ल-लवण-तिक्त-कटुक
५ मधुर-अम्ल-तिक्त-कपाय	१२ अम्ल-लवण-तिक्त-कपाय
६ मधुर-अम्ल-कटु-कपाय	१३ अम्ल-लवण-कटु-कपाय
७ मधुर-लवण-तिक्त-कटुक	१४ अम्ल-तिक्त-कटु-कपाय
	१५ लवण-तिक्त-कटु-कपाय

पांचरसोंकेभेद

१ मधुर-लवण-तिक्त-कटुक-कपाय	४ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त-कपाय
२ मधुर-अम्ल-तिक्त-कटु-कपाय	५ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त-कटुक
३ मधुर-अम्ल-लवण-कटु-कपाय	६ अम्ल-लवण-तिक्त-कटु-कपाय

छःरसका एकहीभेद है

१ मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कपाय.

यीमें केवल मिश्रसरहते हैं-सहतमें दोरसरहते हैं-अंशकेतलमें ३ रसहै-तिलमें-

चाररस है—हरड और मद्यमें पांचरस है—तथा काले हरिणकेमांसमें छःरसरहतेहै—
मिष्टरस दूधमें—अम्लरसदारूमें—निमकमें लवणरस—नीममें कहुआरस—चव्यमें
चरपरा—और पत्रमें कपेलारसरहता है.

जग्धाःपडधिगच्छन्तिवलिनीवशतारसाः ॥

यथाप्रकुपितादोपावशंयांतिवलीयसः ॥

अर्थ—भोजनकरेहु एछऔरसमेंजो बलवान् होताहै उसीके वशीभूतहोते है
अर्थात् उसीकासा फळदेतेहै—जैसेकुपित वातादिदोषोंमें जो दोष बलवान् होताहै
उसीके अनुगामी अन्यदोष होजातेहै अथवा अभ्यासकरेहुए एक २ रसवली-
पुरुपके आधीन होते है अर्थात् उसको अवगुणनही करते जैसे वलीदोष-

मधुरादिकोंकेअन्यविशेषगुणतहांमधुररसकेगुण

मधुरंश्लेष्मलंसर्वमृतेशालेःपुरातनात्।

मुद्गाद्रोधूमतःक्षौद्रात्सितायाजांगलामिपात् ॥

अर्थ—मधुर पदार्थमात्र सब कफकारी होतेहै. परंतु पुराने शाली चावल-मू-
ग-गेहू-सहत-सांड-और जंगली जीवोंका मांस ये पदार्थ त्यागकर अर्थात् ए
पदार्थ मधुरहोने परंभी कफकारी नहीं है ॥

अम्लरसकेविशेषगुण

अम्लंपित्तकरंप्रायोविनाधात्रींचदाडिमम् ।

अर्थ—प्रायकरके संपूर्ण सद्ये पदार्थ पित्तकर्त्ता है परंतु आवले और अनार
दानेके विनाअर्थात् आवले और अनार पित्तनही करते-

लवणरसकेविशेषगुण

लवणंप्रायशोद्रेपिनेत्रयोःसैधवंविना ॥

अर्थ—संपूर्ण लवण प्राय नेत्रोंको विगाडने वाले है. परंतु सैधनिमकके
विना अर्थात् सैधानिमकनेत्रोंको हितकारी है-

तीक्ष्णरसकेगुण

प्रायःकटुतयातिक्तमवृष्पंवातकोपनम् ।

शुंठीरुष्णारसोनानिपटोलममृतंविना ॥

अर्थ—प्राय तीक्ष्ण द्रव्य वातकोपकारी है परंतु सोठ-पीपर-लहसन-परवल-और गिलोय एवातकोपकर्ता नहीं है ॥

पिप्पलीनागरं मुस्तंकटुचावृष्यमुच्यते ।

प्रायशःस्तंभनंप्रोक्तंकषायमभयांविना ॥

अर्थ—पीपल-सोठ-नागरमोथा इनके विना प्राय संपूर्ण तीक्ष्ण पदार्थ धातु नाशकहै और हरडको त्यागके बाकी कपेलारस स्तंभनकारी है. ॥

सामान्येनात्रनिर्दिष्टागुणाः पद्मसंभवाः ।

रसानांयोगतस्तुस्यादन्यएवगुणोदयः ॥

अर्थ—ये-छः रसोंके सामान्य गुणकहे है. परंतु दूसरे रसोंके योगकरके अन्य गुणभी होते है ॥

संयोगीगुण

संयोगाद्विषतांयातिसममाज्येनमाक्षिकम् ।

अमृतत्वंविपंयातिसर्पदृष्टस्यवैयथा ॥

अर्थ— घी और सहतये संयोगमें समान होनेसे विपरूपहोतेहै जैसे सर्पके काटे हुएपुरुषको अमृत विपरूपहोताहै उसीप्रकारजानना

पृथिव्यादिभूतोंकेगुण

गुरुलघुस्तथास्निग्धोरूक्षस्तीक्ष्णइतिक्रमात् ।

भूतभोवारिवातानां वन्हेरेतेगुणाः स्मृताः ॥

अर्थ— गुरु- लघु- स्निग्ध- रूक्ष- तीक्ष्ण येक्रमसे आकाश- पृथ्वी- जल-पवन और अग्नि इनके गुणजानने ।

गुरुलघुइत्यादिपदार्थोंकेगुण

गुर्वादयोगुणाद्रव्येपृथिव्यादौरसाश्रये ॥

रसेषुव्यपदिश्यंतेसाहचर्योपचारतः ॥

अर्थ— गुरुआदि गुण पृथ्व्यादिके द्रव्यमें रहतेहै वो उन पृथिव्यादिके साहचर्यसे पृथिव्यादिके रसादिगुणोंमें रहतेहै ।

सुश्रुतोक्तविंशतिगुणाः

सुश्रुतेतुगुणाएतेविंशतिस्तानहं ब्रुवे । गुरुलघुस्निग्ध-

रूक्षौतीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ पिच्छलोविशदः

शीतउष्णश्चमृदुकर्कशौ । स्थूलसूक्ष्मौद्रवः शुष्कआशु
मंदः स्मृतागुणाः ॥

अर्थ— सुश्रुतमे ये वीसगुणकहेहै उनको हमकहतेहै १ गुरु- २ लघु- ३ स्निग्ध ४ रूक्ष ५ तीक्ष्ण ६ श्लक्ष्ण ७ स्थिर ८ सारक ९ पिच्छल १० विशद ११ शीत १२ उष्ण १३ मृदु १४ कर्कश १५ स्थूल १६ सूक्ष्म १७ द्रव १८ शुष्क १९ शीघ्र और २० मंद ये वीस गुणकहे

गुरुगुण

गुरुवातहरंपुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकिच ॥

अर्थ—गुरु(भारी)द्रव्य वातनाशक पुष्टता और कफको करेहै तथा देरमे पचतीहै

लघुगुण

लघुपथ्यंपरंप्रोक्तंकफघ्नंशीघ्रपाकिच ॥

अर्थ— लघु (हलकी) द्रव्य अत्यंतपथ्यकारकहै कफनाशक और जल्दी पचनेवालीहै ॥

स्निग्धगुण

स्निग्धंवातहरंश्लेष्मकारिवृष्यंबलावहम् ॥

अर्थ— स्निग्ध (चिकनी) द्रव्य वातहरणकरता कफकारी वृष्य और बल बढ़ानेवाली जाननी ॥

रूक्षगुण

रूक्षंसमीरणकरंपरंकफहरंमतम् ॥

अर्थ— रूक्षपदार्थ अत्यंत वादीकरे और कफको हरणकरनेवालाहै ।

तीक्ष्णगुण

तीक्ष्णंपित्तकरंप्रायोलेखनंकफवातनुत् ॥

अर्थ— तीक्ष्णपदार्थ प्राय पिचकारी लेखन कफ और वादीकोनाशकरे ।

श्लक्ष्णगुण

श्लक्ष्णःस्नेहंविनापिस्यात्कठिनोपिहिचिकणः ॥

अर्थ— श्लक्ष्णद्रव्य विनाचिकनाईकेभी कठिनऔर चिकना होताहै जैसे उर्दु पत्थरकीसिंहीआदि ॥

स्थिर औरसरगुण

स्थिरोवातमलस्तंभीसरस्तेपांप्रवर्तने ॥

अर्थ— स्थिरपदार्थ—वात और मलकारोकनेवाला है, और सर पदार्थ वात और मलको निकालने वाला है अर्थात् दस्तावर है ।

पिच्छलगुण

पिच्छलस्तंतुलोबल्यःसंधानःश्लेष्मलोगुरुः ॥

अर्थ— पिच्छलपदार्थ तंतुझटनेवाला-बल-भ्रमसंधानकर कफऔरभारी है ॥

विशदगुण

क्लेदच्छेदकरःख्यातोविशदोव्रणरोपणः ॥

अर्थ—विशद पदार्थ—क्लेदकनाशक-दस्तावर-और व्रणको भरने वाला भेसा है

शीतगुण

शीतस्तुल्हादनस्तंभीमूच्छांतृट्स्वेददाहनुत् ।

अर्थ—शीतपदार्थ—आनंदकारी-स्तंभक-और मूच्छा, तृपा, पसीना, दाह, इ-नका नाशक है ॥

उष्णगुण

उष्णोभवतिशीतस्यविपरीतश्रुपाचनः ॥

अर्थ—उष्णपदार्थ—आनंदनाशक-रेचक-मूच्छा-प्यास-पसीना-दाहको करनेवाला-तथा पाचक है ॥

स्थूलगुण

स्थूलःस्थौल्यकरोदेहस्रोतसामवरोधकृत् ॥

अर्थ—स्थूलपदार्थ देहकोस्थूलकरे, तथा देहके छिद्रोंकोरोकता है ॥

सूक्ष्मगुण

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेष्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥

अर्थ—जो देहके बहुत बारीक छिद्रोंमें प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म कहते हैं ॥

द्रवगुण

द्रवःक्लेदकरोव्यापी ॥

अर्थ—द्रवपदार्थ—देहकोभार्द्रकरे-और सर्व देहमें व्याप्तहोवे ॥

शुष्कगुण

शुष्कस्तद्विपरीतकः ॥

अर्थ—शुष्कपदार्थ—देहको शुष्ककरे और सर्वदेहमेंव्याप्तनहीं हो ॥

आशुकारीगुण

आशुराशुकारोदेहेधावत्यंभसितैलवत् ॥

अर्थ—आशुकारी पदार्थ देहमें—शीघ्रफैले है जैसे जलमेंतेलकी बिंदु—फैलती है

मंदगुण

मन्दःसकलकार्येषुशिथिलसोपिकथ्यते ॥

अर्थ—मंदद्रव्य संपूर्ण कार्यमें शिथिलरहताहै ॥

मृदुऔरकर्कश

प्रसिद्धौद्वाविमौलोकेगुणौचमृदुकर्कशौ ॥

अर्थ—इससंसारमें दोगुणप्रसिद्धहै एक मृदु (नम्र) दूसरा कर्कश (कठोर)

अथप्रस्तावाद्दीपनादयोगुणाःसलक्षणालिख्यन्ते ॥

पचेन्नामवन्हिरुच्च दीपनंतद्यथामिश्रः ॥

अर्थ—जो औषधी आमको नपचावे और अग्निको दीप्तकरे वो औषध दीपनसंज्ञकजाननी—उदाहरण—जैसे—सौंफ—

पाचनादिऔषध

पचत्यामंनवह्निचकुर्याद्यत्तद्विपाचनम् ।

नागकेशरवद्विद्याच्चित्रोदीपनपाचनः ॥

अर्थ—जो औषध आमको पचावे परंतु जठराग्निको दीप्तनकरे उस औषधको पाचन कहते है—जैसे—नागकेशर । औरजो आमकोभी पचावे तथा जठराग्निको दीप्तभी करे उस औषधकी दीपन पाचन संज्ञाहै जैसे चित्रक (चीता)

संशमनऔषध

नशोधयतिनद्वेष्टिसमान्दोपास्तथोद्धतान् ।

समीकरोतिविपमान्शमनंतद्यथामृता ॥

अर्थ—जो औषध वातादिसमान दोषोंको न शोधनकरे न बिगाड़े किंतु उद्धत (विपम) भाव स्थितोंको जो समान करदेवे उस औषधीको शमनसंज्ञा कही है जैसे—गिलोय ॥

अनुलोमनऔषध

कृत्वापाकंमलानांयद्वित्वाबंधमधोनयेत् ।

तच्चानुलोमनंज्ञेयंयथाप्रोक्ताहरीतकी ॥

अर्थ—जो औषध मल (वातादिदोषों) को पाककर तथा परस्पर मिलेहुए नको पृथक् २ कर अधोभाग (नीचे गुदा लिंग) में प्राप्तकरे अथवा अधोवात-मल-मूत्र इनके बंधनकों (अर्थात् बद्धकोष्ठताको) पृथक् २ करनीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उस औषधको अनुलोमन कहते है—जैसे हरड-

संसनऔषध

पक्तव्यं यदपक्त्वांश्चिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ।

नयत्यधः संसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकः ॥

अर्थ—पश्चात्पाक होनेवाले ऐसे वातादिदोष कोष्ठके आश्रितरहने वालोंको विनापाककरे ही उनकोनीचेलायगुदाके द्वाराबाहर पटके उस औषधको संसन संज्ञकज्ञाननी उदाहरण—जैसे—अमलतासकागूदा ॥

भेदनऔषध

मलादिकमबद्धं वायुद्वद्धं पिंडितं मलैः ।

भित्त्वाधः पातयति तद्भेदनं कुट्टकीयथा ॥

अर्थ—वातादिदोष कर्के अबद्ध अथवा बद्ध (बंधाहुआ) जो मलमूत्रादि बो ग्रथित (गांठदार) हुएनको भेदकरजो औषध अधोभागमें लाय'गुदाद्वाराबाहरगरे उसको भेदन कहते है उदाहरण जैसे—कुट्टकी ॥

रेचनऔषध

विपक्वं यदपक्वं वामलादिद्रवतां नयेत् ।

रेचयत्यपित्तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृतायथा ॥

अर्थ—पेटमें विशेषकरके अन्नादिकका उत्तमपाक होनेपर अथवा कुछकच्चा रहनेपर उस अन्नको तथा वातादिकको पतलाकरके जो औषध अधोभागमें लाकर गुदाके द्वारा दस्तकरावे उस औषधकी रेचनसंज्ञा है जैसे—निशोथ—जमाल गोटा—सनाय आदि-

वमनऔषध

अपक्वपित्तश्लेष्माण्वलाद्भूयै नयेत्तु यत् ।

वमनं तद्धिविज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥

अर्थ—पक्वदशामें नही प्राप्तहुए ऐसे पित्तकफको बल पूर्वक जो औषध मुखके

द्वारा वमन करावे उसको वमनसंज्ञक जाननी उदाहरण जैसे—मैनफल ॥

संशोधनऔषध

स्थानाद्ग्रहिर्नयेदूर्ध्वमधोवामलसंचयं ।

देहेसंशोधनंतत्स्याद्देवदालीफलंयथा ॥

अर्थ—अपने स्वस्थानमें वातादिकोंका हुआजो संचयउसको ऊपरके भाग-मेंलायकर मुखके द्वारा-अथवा नाकके द्वारा बाहरकाढे अथवा उससंचय-को अधोभागमें प्राप्तकर गुदाके द्वारा दस्तोंमें होकर यालिंगके द्वारा मूत्रमें होकर निकाले उस औषधको देहमें संशोधनजाननी जैसे—देवदाली (सोनैया-बंदाल)

छेदनऔषध

क्लिष्टान्कफादिकान्दोपानुन्मूलयतियद्दलात् ।

छेदनंतद्यवक्षारो मरिचानिशिलाजतु ॥

अर्थ—जो औषध परस्पर एकसै एकमिले एंसेजे कफादिदोष उनको अपनी शक्ति करके तोड़फोड़ न्यारे २ करे उस औषधको छेदन कहते है जैसे—जवासा-रादि तथा कालीमिरच-सोंठ-पीपल-और शिलाजीत इत्यादिक जानने-

लेखन

धातून्मलान्वादेहस्यविशोष्योल्लेखयेच्चयत् ।

लेखनंतद्यथाक्षौद्रंनिरमुष्णंवचायवाः ॥

अर्थ—जो औषध रसदिधातु और वातादि दोष इनका शोधनकर उनको पतलाकरे उसको लेखन जाननी—जैसे—सहत-गरमजल वच और जों ॥

ग्राहीऔषध

दीपनंपाचनंयत्स्यादुष्णत्वाद्वशोपकम् ।

ग्राहीतच्चयथाशुंठीजीरकंगजपिप्पली ॥

अर्थ—जो औषधअग्निको प्रदीप्तकरे तथा आम्रादिकोंका पाचनकरे तथा उष्णवीर्यहोकर जलस्वरूप जों कफादिदोष-धातु-और मलका शोषण करे उस औषध ग्राही जानना उदाहरण-सोंठ-जीरा-गजपीपल ॥

१ देवदालीको भाषामें बंदाल और सोनैयाकहते हैं इसके फलके काटिका आवदस्त घवासीरके ऊपरलेना लिखाहै. ॥

स्तंभनऔषधि

रौक्ष्याच्छैत्यात्कपायत्वाल्लघुपाकाच्चयद्भवेत् ॥

वातकृत्स्तंभनंतत्स्याद्यथावत्सकटुंदुकौ ॥

अर्थ—जो औषध रूक्षगुण करके-कपेले रसकरके युक्तहो और शीतलवीर्य करके तथा लघुपाकके कारण वादीकरे उसको स्तंभनसंज्ञककहते हैं—जैसे—कूडा-कीछाल—टैटू इसादि—

रसायनऔषध

रसायनंचतज्ज्ञेयंयज्जराव्याधिनाशनम् ।

यथामृतारुदंतीचगुग्गुलुश्वहरीतकी ॥

अर्थ—जो औषध शरीर का जरा (बुढापा) और रोगोंको दूरकरे उसको रसायनकहते हे जैसे गिलोय—रुदंती—गूगल—और हरड ॥

मैथुनशक्तिवर्द्धकऔषध

यस्माद्भव्याद्भवेत्स्त्रीपुहर्षोवाजीकरंचतत् ।

यथानागवलाद्यास्तुवीजंचकपिकच्छुजं ॥

अर्थ—जिस औषधसँ धातुवदकर स्त्रियोंके विषय हर्षयुक्त शक्तीवढे अर्थात् मैथुन करनेकी अधिक शक्तिहोवे उसको वाजीकरणसंज्ञक जाननी—जैसे नागवला आदि और कौश्लकेबीज ।

धातुवर्द्धकऔषधि

यस्माच्छुक्रस्यवृद्धिःस्याच्छुक्रलंचतदुच्यते ।

यथाश्वगंधामुशलीशर्कराचशतावरी ॥

अर्थ—जिस औषधसँ धातुकी वृद्धिहोय उस औषधको शुक्रलकहते हे उदाहरण—असगंध—मूसली—शतावर—पिश्री आदि ॥

वीर्योत्पादकतथावीर्यप्रवर्तकऔषधी ॥

दुग्धमापाश्वभल्लातफलमज्जामलानिच ।

प्रवर्तकानिकथ्येतेजनकानिचरेतसः ॥

अर्थ—शुक्रधातुको चेतन्य करनेवाली और शुक्रको उत्पन्न करने वाली औषध दूध—उडद—भिलाए—फलकी मज्जा (वीलकी गीरी) और जामले इत्यादिक जाननी ॥

मदकारीपदार्थ

बुद्धिलुंपतियद्भव्यमदकारितदुच्यते ।

तमोगुणप्रधानंच यथामद्यं सुरादिकम् ॥

अर्थ—जोपदार्थ तमोगुण प्रधानहोकर बुद्धिका आच्छादनकरे अर्थात् बुद्धि कानाशकरे उस औषध को मदकारी जाननी जैसे—मद्य—सुराआदि ॥

प्राणहारकद्रव्य

व्यवायिचविकाशिस्यात्सूक्ष्मछेदिमदावहं ।

आग्नेयंजीवितहरंयोगवाहिस्मृतंविषम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त व्यवायी—विकाशी—सूक्ष्म—छेदि—मदकारी अग्नेय औषध इनछ द्रव्योंके गुणकरके जो युक्तहोय उसद्रव्यको प्राणहारी जानना—उदाहरण—जैसे विषवच्छनागादेकये योगवाहीभी है—इसका यह कारण है कि कोईआचार्य “योगवाह्यमृतंविषं” ऐसा पाठकहते हैं उसका अर्थ वही है कि विषयोगवाही अर्थात् उसको किसी संस्कारविशेषकरके जिस २ अनुपानके साथदेउ उसी २ अनुपानके गुणवढायकर अमृतके तुल्यगुणकरे ॥

प्रमथीऔषध

निजवीर्येण्यद्भव्यंस्त्रोतेभ्योदोषसंचयम् ।

निरस्यंतिप्रमाथिस्यात्तद्यथामरिचंवचा ॥

अर्थ—जो औषध अपने वीर्यकरके कान—मुख—नासिका इत्यादि छिद्रोंमेंसे कफादि दोषसंचय हुएको दूरकरे उस औषधको प्रमथी कहते हैं उदाहरण जैसे वच—औरकाली मिरच इत्यादि ॥

अभिष्यंदिपदार्थ

पैठिल्याद्गौरवाद्भव्यंरुद्धारसंवहाःशिराः ।

धत्तेयद्गौरवंतत्स्यादभिष्यंदियथादाधि ॥

अर्थ—जोपदार्थ अपने पिच्छल गुणकरके रसवाहिनी शिराओंको रोकशरीरको जडके समान करदेवे उसपदार्थको अभिष्यंदी अर्थात् कफकारक जानना उदा०जैसे दही ॥

विदाहीपदार्थ

विदाहिद्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथातृपाम् ।

हृदिदाहंचञ्जनयेत्पाकंगच्छतितच्चिरात् ॥

अर्थ—जोसही हकार-तृपा-दाह-इनको उमन्न करके बहुत देरमें पचे उस द्रव्यको विदाही कहते हैं ॥

योगवाहीद्रव्य

गृहातियोगवाहिद्रव्यंसंसर्गवस्तुजांश्चगुणान् ।

पचमानवद्यथैतन्मधुजलतैलाज्यसूतलोहादि ॥

अर्थ—योगवाही द्रव्य जिस द्रव्यके साथ जिसद्रव्यका संयोग करों वह उसीकेसे गुणकरे है जैसे-जल-तेल-धी-पारा लोहये पदार्थ दूसरेके गुणके समान अपने गुणकरे है उसी प्रकार अन्ययोग वाही पदार्थ जानने ॥

अथवीर्यम्

उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैःवीर्यंद्विधास्मृतम् ।

तत्सर्वमग्निपोमीयंदृश्यतेभुवनत्रयम् ॥

अर्थ—उष्ण (गरम) और शीत (शीतल) इनगुणोंके वीर्य दोप्रकारका है अतएव सब त्रिलोकीमें संपूर्ण परतुमात्र अग्नि और जल स्वरूपकी दीसती है ॥

उष्णशीतवीर्योकेगुण

उष्णवातकफौहन्यात्पित्तंनुतनुततराम् ।

शीतं वातकफातंकाङ्कुरुतेपित्तहृत्परम् ॥

अर्थ—उष्णगुण—वात और कफको नष्टकरे है, और पित्तको बढ़ाताहै एवं शीतगुण वात और कफके रोगोंको प्रगटकरे है तथा पित्तका शमन करे है ॥

अन्यच्च

तत्रोष्णंभ्रमतृट्ठलानिस्वेदद्राहाशुपाकताः ॥

शमंचवातकफयोः करोतिशिशिरंपुनः ॥

ल्हादनंजीवनस्तंभंप्रसादं रक्तापिरयोः ॥

अर्थ—उष्ण गुण-भ्रम, प्यास, ग्लानि, पसीने, दाह, और शीघ्रपाकको करे है एवंवायु और कफ इनको शानिकरे । शीतगुण-आनंद, जीवन, और शंभनको करे है तथा शिथिल और विनम्रको मन्-उकरे है ॥

अथविपाकाः

जाठरेणाग्निनायोगाद्यदुदेतिरसान्तरम् ॥

रसानांपरिणामांतेसविपाकइतिस्मृतः ॥

मिष्टःपटुश्चमधुरमम्लोम्लंपच्यतेरसः ॥

कटुतिक्तकपायाणांपाकःस्यात्प्रायशःकटुः॥

त्रिधारसानांपाकः स्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥

अर्थ—जठराग्निके योगसँ रस उत्पन्न होकर उस रससँ जो रस उत्पन्नहोवे उसको विपाक अँसा कहते है, तहां मिष्ट और सारी पदार्थका पाक मीठा होता है और खट्टे पदार्थका पाक खट्टाही होताहै । एवं चरपरा-कटुआ-और कपेले पदार्थका पाक प्राय चरपराही होताहै इसप्रकार सब रसोंका मीठा-खट्टा-और चरपरा अँसँ तीन प्रकारहीं पाक होता है चतुर्थ प्रकारका नहीं ॥

विपाककेगुण

श्लेष्मकृन्मधुरः पाकोवातपित्तहरोमतः ॥ आम्लस्तु

कुरुतेपित्तंवातश्लेष्मगदापहः ॥ कटुकरोतिपवनंकफं

पित्तंचनाशयेत् ॥ विशेषएषरसतोविपाकानांनिर्दिशितः ॥

अर्थ—मीठा पाक कफकारक-और वात पित्तका नाशक, एवं खट्टापाक पित्तकारक और वायु तथा कफका नाशकारी है । एवं तिक्त (कटुआ) पाक वात कारी और कफ पित्त इनका नाशकहै । यह रसविपाकका विशेष गुण कहाहै ॥

प्रभाव

रसादिसाम्येयत्कर्मविशिष्टंत्प्रभावजं ॥ दंतीरसाद्यै-

स्तुल्यापिचित्रकस्यविरेचनी ॥ मधुकस्यचमृद्द्रुकि-

घृतंक्षीरस्यदीपनम् । प्रभावस्तुयथाघात्रीलकुचस्य

फलादिभिः ॥ समापिकुरुतेदोषत्रितयस्यविनाशनम् ।

क्वचित्तुकेवलंद्रव्यंकर्मकुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरंहांतीशि-

रोवद्दासहृदेवीजटायथा ॥

अर्थ—परस्पर औषधोंके रसादि साम्य होनेसँ जो विशिष्ट गुणहोताहै उसे प्रभाव कहते है । जैसे दंती रसादिकरके चीतेके समान होनेपरभी उसमें 'दस्त

कराना यह गुण अधिक है इसीको प्रभाव जानना । और दास्य-मुलहटी ये समान रस होने परभी दास्य दस्तलाती है मुलहटी नहीं तोयहां दास्यमें अधिक प्रभाव है । तथा घृत और दूधके समान गुण है परंतु घृतमें दीपन शक्ति अधिक है । एवं आवले और बडहर ये समान रसहैं तथापि आमला त्रिदोष नाशकहै बडहर नहीं । और कहीं-रकेवल एकही द्रव्य प्रभाव करके विलक्षण कर्मकरे है जैसे सहेईकी जडमस्तकमें बांधनेसे ज्वरको नाशकरे है इत्यादि प्रभावके उदाहरणजानते।

अमीमांस्यान्यचित्यानिप्रसिद्धानिस्वभावतः ।

आगमेनोपयोज्यानिभेषजानिविचक्षणैः ॥

अर्थ—जो औषध स्वभावकरके प्रसिद्ध है उसको जहां शास्त्रकहे उसी जगदेवे क्योंकि औषधियोंमें तर्क वितर्क नहीं करीजाय इनमें अचित्यवीर्य है अवएव विचारनको।

प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्चस्वभावतः ।

नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान्परीक्षेतकदाचन ॥

अर्थ—जो औषधी प्रत्यक्ष फलदेने वाली और लक्षण जिसके प्रसिद्ध है उसकी विद्वान्-हेतुओंकरके कदाचित् परीक्षा न करे [अर्थात् इस हेतुसे ये औषध शीतल होनी चाहिये इसने उष्णगुणकैसे करा] यह परीक्षा त्यागदेवे ॥

विरुद्धगुणसंयोगेभूयसाल्पंहिजायते ।

रसंविपाकस्तौवीर्यप्रभावस्तान्व्यपोहति ॥

अर्थ—विरुद्ध गुण औषधी बहुतसी एक ठिकाने पर होनेसे विपाक रसका नाशकरे है तथा रस और विपाक इनकावीर्य नाशकर्त्ता हैं और रस-विपाक और वीर्य इनका प्रभाव नाशकरे है ऐसा जानना ॥

॥ इति रसवीर्य विपाकनिर्णयसमाप्तम् ॥

अथपंचकपायाः

स्वरसश्चतथाकल्कःकाथश्चहिमफांटकौ ।

ज्ञेयाःकपायाःपञ्चैतेलघवःस्युर्यथोत्तरम् ॥

अर्थ—स्वरस—कल्क—काथ—हिम—फांट—येपांच कपाय है क्रमसें एककी अपेक्षा दूसरी हलकी है—अर्थात् स्वरसकी अपेक्षा—कल्क कल्ककी अपेक्षा काथ काथकी अपेक्षा हिमहलका है इसी प्रकार और भीजानो ॥

तत्रादौस्वरसविधिः

आहतात्तत्क्षणात्कृष्णद्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्धरेत् ।
वस्त्रनिष्पीडितोयःसरसःस्वरसउच्यते ॥ आहतात्
शीताग्निकीटादिभिरनुपहतात् । क्षुण्णात्संपिष्टात् ॥

अर्थ—कीटा-शीत-अग्नि इत्यादीकरके अदूषित अंसी वनस्पती को लाय-
कर उसको कूटपीस कपडेमें डालके निचोडनेसे जो रस निकलेउसको स्वरस अ-
थवा अंगरसकहते है ॥

दूसराप्रकार

कुडवंचूर्णितंद्रव्यंक्षितंचद्विगुणेजले ।

अहोरात्रंस्थितं तस्माद्भवेद्द्वारसउत्तमः ॥

अर्थ—पावभर सूखी औषधको कूट आधसेर जलमें भिगोय देवे उ-
सको एकदिन रात्रि धरा रहनेदे फिर दूसरे दिन उसपानीको कपडेमें छानलेवे
तो उसको भी रस वा स्वरस कहते है. यहमी एक प्रकार स्वरसका है ॥

तीसराप्रकार

आदायशुष्कद्रव्यंवास्वरसानामसंभवे ।

जलेष्टगुणितेसाध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ॥

अर्थ—जिस सूखी औषधका स्वरस न निकलता होय उसको लाय कूटकर
आठगुने पानीमें डालके मंदाग्निसै ओंठोवे जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब उतारके
छानलेवे तो इसको भी स्वरस कहते है—यह तीसरा प्रकार कहा ॥

स्वरसस्यगुरुत्वाच्चपलमर्द्धप्रयोजयेत् ।

निःशोषितंचाग्निसिद्धंपलमात्रंसंपिष्टेत् ॥

अर्थ—किसी औषधका स्वरसहो सब भारी अधिक होते है अतएव यदि उस
रसको किसी औषधमें डालना होवे तो अर्द्धपल (२ तोले) डाले । तथा सुसापकर
काढा हुआ अथवा अग्निपर काढाकरके काढा हुआ रस ४ तोले पीनाचाहिये ॥

कल्कविधिः

द्रव्यमार्द्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासज्जलंभवेत् ।

प्रक्षेपावापकल्कास्तेतन्मानं कर्षसंमितम् ॥

अर्थ—गीली औषधको लाय चटनीके समान वारीक पीसे यदि सूखी औषध होवे तो पानीढालके वारीक पिसावे उसको कल्क असाकहते है इसके लेनेका प्रमाण, कर्पकहा है—अर्थात् एक तोला है इसको प्रक्षेप और आवापभी कहते है॥

कल्केमधुघृततैलदेयं द्विगुणमात्रया ।

सितागुडौसमौदद्याद्भवादेयाश्चतुर्गुणाः ॥

अर्थ—कल्कमें सहत—घृत—और तेल ये ढालनाहोयतो कल्कसँ दुगना मिलावे तथा सांड और गुडये पदार्थ ढालने होयतो कल्कके समान मिलावे तथादूध—जल आदि शब्दकरके पतले पदार्थ मिलाने होयतो कल्कके चौगुने मिलाने चाहिये॥

क्वाथ (काढेकी) विधिः

पानीयंपोडशगुणं क्षुण्णेद्रव्येपलेक्षिपेत् । मृत्पात्रेक्वाथ-
येद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् । तज्जलंपाययेद्धीमान्को
ष्णमृद्भ्रिसाधितं । शृतःक्वाथःकपायश्चनिर्यूहःसनिगद्य
ते॥ आहाररसपाकेचजातेचद्विपलोन्मितम् । वृद्धवैद्योपदे
शेनपिबेत्क्वाथं सुपाचितम् ॥

अर्थ— १ पलप्रमाण औषधले जो कुटकर उस औषधका सोलहगुना जल ढाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके चूल्हैपर चढावे फिर नीचे मंद २ अग्नि देवे जलका आढवा भाग शेष रहे तब उस काढेको उतारलेवे और कपडेसँ छान कर कुछगरम २ रोगीको पिलावे तथा रोगीके उत्तमप्रकार अन्नका परिपाक होनेवादि इसको वृद्धवैद्यकी आज्ञासँदेवे—इमकाढेको शृत—क्वाथ—कपाय—और निर्यूहभी कहते है अर्थात् ए नाम पर्यायवाचक है ॥

कर्पादौतुपलं यावद्दद्यात्पोडशिकंजलम् ॥

ततस्तुकुडवं यावत्तोयमष्टगुणंक्षिपेत् ॥

चतुर्गुणमतश्चाद्धं यावत्प्रस्थादिकंजलम् ॥

अर्थ—कर्पसँ लेकर पल पर्यंत सोलह गुनाजल ढाले, पलसँ उपरांत कुडवं पर्यंत अष्टगुना जल ढाले, और कुडवंसँ लेकर प्रस्थ पर्यंत क्वाथमे चौगुना जल ढाले, यह क्वाथमें जल ढालनेकी क्रियाकही ॥

मात्रोत्तमापलेनस्यात्त्रिभिरक्षैस्तुमध्यमा । जघन्यात्

पलाद्धेनस्त्रेहक्वाथौपधेपुच॥ पानेक्वाथादिद्रव्यावस्था ।

अर्थ—घेह—काढा—और औषध इसकी उत्तम मात्रा १ पलकी है और तीन अक्षअर्थात् ३ तोलेकी मध्यम है—और पलार्थ (२ तोले) की मात्रा मध्यमद्वै ॥

क्वाथमेतोलकापरिमाण

दशरक्तिकमानेनगृहीत्वातोलकद्वयम् ।

दत्त्वाम्मःषोडशगुण्णग्राह्यपादावशेषितम् ॥

अर्थ—दशरक्तीका मासा इसप्रमाणसे २ तोले औषध लेकर उसमें ३२ तोले जल मिलायमंदाग्रिसँ काढाकरे जब चतुर्थाश रहे तब उतार छानके रोगीकोदेवे॥

क्वाथमेंमिश्रीसहतडालनेकाप्रमाण

क्वाथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमपोडशैः ।

वातपित्तकफातङ्कविपरीतंमधुस्मृतम् ॥

अर्थ—काढेमें खांडडालनीहोयतो वातरोगमें काढेकी चतुर्थाश डाले, पित्तरो-
गमें आठवाहिस्साडाले, औरकफरोगमें सोल्हवांहिस्साडाले और यदिसहत डालना-
होयतो खांडसँ विपरीत डाले अर्थात् कफरोगमें सहत चतुर्थाश. वातमें षोडशांश
और पित्तमें अष्टमांश. ॥

हिमविधिः

सुण्णद्रव्यपलंसम्यक्पड्भिर्नारिपलैःशुतम् । निःशोपितंहिमः

सस्यात्तथाशीतकपायकः।तस्यमानंमत्तंपानेपलद्वयमितंबुधैः ।

अर्थ—कुटीओषध १ पलको ६ पलजलमें भिगोयदेवे रात्रिभर घसीरहनेदे.
इसको हिम अथवा शीतकपाय कहतेहै । इसकी मात्रा ८ तोलेकाहै ॥ “तन्मानं-
फांटवद्द्रव्यं सर्वत्रैव विनिश्चय”अर्थात् इस हिमकी मात्रा फांटकेसमान जाननी
यह सर्वत्र निश्चयहै ॥

मंथ

मंथोपिफांटभेदःस्यात्तेनचात्रैवकथ्यते । जलेचतुःपलेशीतेषु

ण्णद्रव्यपलंक्षिपेत्।मृत्पत्रिमंथयेत्सम्यक्तस्माच्चद्विपलंपिबेत् ॥

अर्थ—मंथभी फांटकाभेदहै अतएवउसको भी इसीजगे कहतेहै । एकपल औ-
षध ले उसको कूटकैथपयशीतलजलमें भिगोयदेवे, फिरमिट्टीके पात्रमें उसको मं-
थन करे फिर उसपानीको छानके देवे उसको मंथकहतेहै इसकी मात्रा दोपलकीहै॥

अवान्तरभेदोतंडुलोदकमाह

तंडुलंजनशःकृत्यापलंग्राह्यंहितंडुलात् ।

चतुर्गुणंजलंदोयंतंडुलोदककर्मणि ॥

शीतकषायमानेनतंडुलोदककल्पना ॥

अर्थ—१ पल चावलोंको कूट किनकीकरले उसको ४ पलवा ६ पल जलमें भिगोयेदेवे. थोड़ीदेरकेबाद उसका नितराहुआ पानी लेलेवे तो तंडुलोदकवने. जहांकहींतंडुलोकाजल लिखाहोय वहां इसप्रकारवनाहुआजल लेवे ॥

फांटविधिः

क्षुण्णेद्रव्यपलेसम्यक्जलमुष्णंविनिक्षिपेत् ।

मृत्पात्रेकुडवोन्मानंततस्तुस्त्रावयेत्पटात् ॥

तन्मानंफांटवत्त्रेयंसर्वत्रैपसुनिश्चयः ।

मधुश्वेतागुडादींश्चक्वाथवत्त्रनिक्षिपेत् ॥

अर्थ—१ पलऔपधको कूटके मिट्टीकेपात्रमें एककुडवप्रमाण गरमजल डालें भिगोवे फिर थोड़ी देरके बादउसको छानके पीवे—इसे फांट—तथा चूर्णद्रव में कहतेहै. इसफांटकी मात्रा दोपलकीहै— तथा फांटमें सहत-मिश्री-तथा गुडआदिद्रवसँऔर जो वस्तु डालनीहो वो जिसप्रमाण काढेमेंडालनाकहाहैउसीप्रकारडाले।

यवागूकीविधिः

साध्यंचतुः पलंद्रव्यंचतुः षष्टिपलेजले ।

तत्क्वाथेनार्धशिष्टेनयवागूंसाधयेद्वनाम् ॥

अर्थ—चारपलप्रमाण औपधकोकूटके ६४ पलजलमें आधा रहनेपर्यंत आँटावे जबआधारहे तबउतारके उसको छानलेवे. उसछानेहुएजलमें चावल. मूंगआदिद्रव्यजो कहेहै डालके फिरकाढाकरे तो इसको यवागू कहतेहै ॥

विलेपीलक्षण

विलेपीचघनासिक्थासिद्धानिरेचतुर्गुणे ।

बृहणीतर्पणीहृद्यामधुरापित्तनाशिनी ॥

अर्थ—चौगुनेपानीमें डालके आँटायके लहापसीकेसमानगाढी और चिपकनेवाली बनावे उसको विलेपी ऐसा कहते है । यह विलेपी धातुवर्द्धक शरीरको पुष्टकारी—हृदयको हितकारी—तथामधुर होनेसँ पित्तकी नाशकर्त्ता है ॥

१ सस्याङ्गण्डवःफांटस्तन्मानद्विपशोन्मिनम् ।

पानादिकल्पना

क्षुण्णद्रव्यपलंसाध्यंचतुःषष्टिपलंबुनि ।

अर्द्धशिष्टंचतदेयंपानेभक्तादिसंविधौ ॥

अर्थ—कुटीहुई १ पलद्रव्य ६४ पलजलमें डालके आधापानी रहने पर्यंत ओटावे फिरउसको छानके प्यासलगनेमें पीनेको थोडा २ देवे—तथा भोजनके समय देनेका प्रकार आगे कहेगे ॥

मधुश्वेतगुडक्षारान्जीरकलवणंतथा ।

घृतंतैलंचूर्णादी न्कोलमात्रानरसोक्षिपेत् ॥

अर्थ—सपेद सहत—गुड—क्षार—जीरा—लवण—धी—तेल—और इतर चूर्णादिक ये रसमें डालने होयतो छःछःमासे डालने चाहिये ॥

प्रमथ्याकीविधिः

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताद्भृशम् ।

ततोष्टगुणितेतस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥

अर्थ—एकपल औषधको कूटकर कल्ककरे यदि सूखी औषधहोयतो पानीमें पीसके कल्ककरे उसमें अठगुनापानी डालके दोपलरहने पर्यंत उसको ओटावे इसको प्रमथ्या कहते है इसके सेवनकी मात्रा २ पलकी है ॥

यूपकीविधिः

कल्कद्रव्यपलंशुंठीपिप्पलीचार्द्धकार्षिकी ।

वारिप्रस्थेनविपचेत्सद्रवोयूपउच्यते ॥

अर्थ—कल्ककी औषध सामान्य १ पललेय तथा जिस प्रयोगमें सोंट—और पीपर होय वह प्रयोग तीक्ष्ण होनेसे आधा २ कर्पलेवे अथवा दोनोमिलायके आधे कर्पलेय फिर उनका कल्ककर उसमें पानी एक प्रस्थडालके ओटावे जब ओंठके कुछ गाढापेयाके समान होजावे तब उतारले इसको यूपपेया कहते है ॥

पेयालक्षण

द्रवाधिका स्वल्प सिक्था चतुर्दश गुणे जले ॥ सिद्ध पेया

बुधैर्ज्ञेया यूप किंचिद्धनःस्मृतः ॥ पेयालघुतराज्ञेयाग्राहि

णीधातुपुष्टिदा ॥ यूपोवल्यस्ततःकंठ्योलघुपाकःकफापहः ॥

अर्थ—द्रव्यसें चौगुना जलडालके पतली पेजके समान तथा कुछ गाढी हो

य त्वतंक ओटावे इसकोपेया असाकहते है । पेयाकी अपेक्षाजो कुछ अधिक गा-
दाहो उसको यूपकहते है । तहाँ वहपेया बहुत हलकी होनेसे मलादिकोंका स्त-
भन करती है, तथा धातु पुष्टकरे । और यूपवलेदेताहै, कंठको हितकारी-हलका
तथा कफको दूर करने वालाहै ॥

पुटपाककीविधिः

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः ।

अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ—पुटपाक और कल्क इन दोनोंका स्वरस लेते है इसी कारण पुटपा-
ककी युक्तिमें कहताहं ॥

पुटपाककीछाति

पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यांगारवर्णता ॥लेपंचद्वचंगुलं-
स्थूलंकुर्याद्वांगुष्ठमात्रया ॥काश्मरीवटजंवादिपत्रैर्वेष्ट
नमुत्तमम् ॥पलमात्ररसोग्राह्यःकर्ममात्रंमधुक्षिपेत ॥क-
ल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयास्वरसवहुधैः ॥

अर्थ—पुटपाककी मात्राका प्रमाण इसप्रकारकरे कि ऊपरकराहुआलेप अग्नि
में अंगारेके समान लालवर्ण होने पर्यंत उसको अग्निमें रासे-तथा जिसद्रव्य
रलेप देना होयतो दो अंगुल अथवा एक अंगुलमोटा देवे और लेपके ऊपरनी-
पत्ते लपेटनेके लिये-कंभारी-वट-जामुन इत्यादिके उत्तम होते है-तथा पुटपाक
रसढालना होयतो चारतोले तथा तौलेभर सहत और कल्कचूर्ण द्रवादिकपटा
स्वरसके मान प्रमाण उत्तम जाननेवाला वैद्य मिलावे ॥

पाठान्तरं

द्रव्यमापोथितंजंजूवटपत्रादिसंपुष्टैः ॥ वेष्टयित्वाततो
वद्वाट्टंरज्ज्वादिनातथा ॥मृष्टेपद्वचंगुलंकुर्यादथवांगु-
लिमात्रकं दहेत्पुटान्तरादग्नौयावलेपस्वरक्तता ॥

अर्थ—जिसद्रव्यका पुटपाक करनाहो उसको कूटके गोलायनावे उसको जा-
वट आदिके पत्तोंसे लपेट ऊपर रस्मी आदिमें कगदे फिर ऊपर दोदो अं-
गुल मोटा मिट्टीका लेपकरे अथवा एक अंगुल मोटालेपकरे उसको अग्निमें बीच
परके अग्निदेवे जबलाल होजावे तब निकाल रमनिचौटले-यह द्रव्यकीविधि व

चावलघोनेकीक्रिया
कंडितं तंडुलपलंजलेष्टगुणिते क्षिपेत् ।
भावयित्वाजलग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥

अर्थ—एक पल विने फटके हुए चावललेकर उसमें आठपल जलडालके हाथोंसे मीढकर घोबे फिर उसपानीको सर्व कर्ममें देवे ॥

अवलेहकल्पना

क्वाथादीनांपुनःपाकात्घनत्वंसारसक्रिया । सोवलेहश्च
लेहश्च प्राशइत्युच्यतेबुधैः । सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णा-
च्चद्विगुणोगुडः।द्रवंचतुर्गुणंदद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः।सु-
पकेतन्तुमत्त्वंस्यादवलेहेऽप्सुमज्जनं । स्थिरत्वंपीडिते-
मुद्रागंधवर्णरसोद्भवः॥दुग्धमिक्षुरसंग्रूपंचमूलकषा
यजं । वासाक्वाथंयथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ—औषधोके काढे तथा फांटादिकको फिर ओटाकर चासनीके समान गाढीकरे उसको रस क्रिया कहते है । उसरसक्रियाके पर्याय शब्द अवलेह-लेह-और प्राशये है । उस अवलेहके लेनेका प्रमाण एकपल कहा है । तथा उसमे खांड क्वाथचूर्ण से चौगुनी गुड चूर्ण से दुगुना-और पानी-दूध- मूत्र-और दूसरे पतले पदार्थ चूर्णसे चौगुने लेने चाहिये बेसा अवलेहमें सर्वत्र नियम है । उस अवलेहके उत्तम पाककी परीक्षा कहते है कि पाकहोनेपर अवलेहमें तार निकलने लगता है तथा उस अवलेहकी बूंदको पानीमें गेरनेसे डूब जाती है । तथा अवलेहको कढ़युलेमें लगानेसे चिपक जाती है तथा उस पाकका गंध वर्ण और रस ये अपूर्व होते है इसप्रकार क्वाथका उत्तम पाक होनेके लक्षण जानने । तथा उस अवलेहका अनुपान दूध ईखका रस-पंच मूलके काढेकापूप-अडूसेका काढा इत्यादिक है वो रोगका तारतम्य देखकर वैद्य अपनी बुद्धिके साथ योजनाकरे ॥

चूर्णविधिः

अत्यंतशुष्कंयद्रव्यंसुपिष्टंस्त्रगालितम् ।

तत्स्यात्चूर्णैरजःक्षोदस्तन्मात्राकर्पसंमिता ॥

अर्थ—उत्तम सूखी औषधको लायकर कूटपीस बारीककरे उसको कपडेमें

१ तन्मात्रास्यात्पलोन्मिना इति पाठान्तरम् । २ खरत्वमितिपाठांतरं ।

छानलेवे उसे चूर्ण अंसा कहते है तथा रज और क्षोद अंसाभी कहते है उसचूर्णके भक्षणकी मात्रा १ तोलेकी है ॥

चूर्णमेंगुडादिडालनेकानियम

चूर्णेगुडःसमोदेय शर्कराद्विगुणाभवेत् । चूर्णेपुभर्जितं हि
गुदेयंनोत्केदकारकम् । लिहेत्चूर्णद्रवैःसर्वैर्घृताद्यैर्द्वि-
गुणोन्मितैः । पिबेच्चतुर्गुणैरेवचूर्णमालोडितंद्रवैः । चूर्णा-
वलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् । पित्तवातकफात
ङ्गेत्रिद्वयैकपलंहरत् ॥

अर्थ—चूर्णमें गुडडालना होयतो चूर्णके बराबर डाले । सांडदूनी मिलावे । तथा हींग भुनीहुई डालनी तो वह विकार नहीकरे । घी-सहत-और अन्य विक-
नी वस्तुइसमें मिलानी होयतो वो चूर्णसैं दुगनी मिलावे । दूध गोमूत्र जल त-
था अन्य पतलीवस्तु चूर्णसैं चौगुनीले उसजलादिमें चूर्णको डाल मिलायके
पीवे । चूर्ण अवलेह गुटका तथा कल्क इनका अनुपान जो कहाहै वो पित्तरोग
होयतो ३ पललेवे—वातरोग होयतो २ पल और कफरोग होयतो एकपलले
इससैं औषध उत्तमरीतिसैं देहमें फैल जाती है ॥

यथातैलजलेप्राप्तंक्षणेनैवप्रसर्पति ।

अनुपानवलादङ्गेतथासर्पतिभेषजम् ॥

अर्थ—इसविषयमें दृष्टांतहै जैसे पानीमें तेलकी बूंदक्षणमात्रमे फैल जाती
है उसी प्रकार औषधी अनुपानके बलसैं अंगमें शीघ्र फैल जाती है ॥

भावनाविधिः

द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णं सर्वंभुतं भवेत् भावनायाः प्रमा-
णंतुचूर्णेप्रोक्तंभिषग्वरैः । भाव्यद्रव्यसमंक्वाथ्यंक्वाथ्या
दष्टगुणंजलं ॥ अष्टांशशोपितःक्वाथोभाव्यानांतेनभाव-
ना ॥ दिवादिवातपेशुष्करात्रौरात्रौनिवासयेत् ॥ शुष्कं-
चूर्णीकृतंद्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥

अर्थ—चूर्णमें नीबूके रसकी—अथवा अन्य विजोरे आदिके रसकी पुष्टेनी
होयतो इतनारस डाले किवो चूर्ण उसरसमें बूडजावे यह चूर्णमें भावनाका प्रमा-
ण वैद्योने कहाहै । जिस औषधीमें भावनादेनी है उसद्रव्यके समान क्वाथ द्रव्य-

ले और उसमें आठगुनाजल मिलावे फिर अग्निपर चढाय मंद २ आंचसें काढाकरे जबजलअष्टमांस रहे तबउतार छानके उसरसकी भावनादेवे दिनदिन भावनादेके धूपमें सुत्वायदे और रात्रिमें उठायके धरदेवे इसप्रकार उसभावनाका सब रससूख जावे तब चूर्णकर धररक्खे इसप्रकार सातदिन भावनादेनी चाहिये ।
॥ इति भावनाविधि ॥

उष्णोदकविधिः

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनाद्धिकेनवा । अथवाक्थनेनैव-
सिद्धमुष्णोदकंभवेत् । श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशो-
घनदीपनम् । कासश्वासज्वरान् हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि ।

अर्थ—जल अग्निपरगरमकरके अष्टमांश (अष्टावशेष) चतुर्थांश अथवा अर्धांशावशेषकरे अथवा केवल भतोवालकरे तो उसको उष्णोदक कहतेहै । गरमजल कफ-आमवात-और मेदोरोग (मोटापन) इनको नाशकरे तथा अग्निकोदीप्तकरे-रात्रिको सोते समय गरमजलपीवेतो खांसी-श्वास-और ज्वरको नाशकरे ॥

वटक (गोली)

वटकाश्वाथकथ्यन्ते तन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिका
पिंडीगुडोवर्तिस्तथोच्यते । लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवा-
शर्कराथवा । गुग्गुलुर्वाक्षिपेत्तत्रचूर्णं तन्निर्मितावटी ॥

अर्थ—अथ वटका कहते है कि जिसका नाम गुटिका-वटी-मोदक-वटिका पिंडी गुड और वत्ती है इसके बनानेकी विधि अबलेहके समान गुड अथवा खांडकापाककर उसमें गुगुलु वा चूर्ण मिलाय गोली बनावे ॥

कुर्यादवन्हिसिद्धेनक्वचिद्गुग्गुलुनावटीम् । द्रवणमधु-
नावापिगुटिकांकारयेद्बुधः । सिताचतुर्गुणादेयावटी-
पुद्दिगुणोगुडः । चूर्णेचूर्णसमःकार्योगुग्गुलुर्मधुसंयुतम् ।
द्रवंतुद्विगुणं देयं मोदकेपुभिपग्वैरः । कर्षप्रमाणातन्मा-
त्रावलंघट्टाप्रयुज्यते ॥

अर्थ—कही कही २ अग्निके पाकाविना शुद्ध गुगुलुवाल चूर्णमिलायके एक जीवकर गोली बनायलेवे-अथवा जल-महत-दूध इत्यादिक पतली वस्तुमिला

यके गोली बनायलेवे । यदि खांडसैं गोली बनानी होयतो चूर्णसैं चौगुनी खांड-
डालके गोली बनावे । और गुडके साथ बनानी होयतो दूना गुडडालके गोली
बनावे । गूगल अथवा सहत इनदोसैं गोली बनानी होवेतो ये चूर्णके समानभा-
ग लेकर गोलीकरे । पानी-सहत इत्यादि पतली वस्तुसैं गोली बनानी होयतो
यो चूर्णसैं दुगनालेकर उससैं गोलीकरे । गोलीकी मात्रा १ तोलेकी है अथवा
रोगीके शक्त्यनुसार वैद्य मात्राकी कल्पनाकरे ॥

चूर्णस्यपाकनिषेधमाह

प्रायोनपाकशूर्णानांभूरिचूर्णस्यतेनहि ।

आसन्नपाकेप्रक्षेपस्वल्पस्यपाकमागते ॥

अर्थ—चूर्ण औषधका पाककरना उचितनहीं है-इसका कारण यहहै कि पा-
क करनेसैं चूर्ण द्रव्यका वीर्यनष्टहो जाताहै । किंतु चूर्णद्रव्यका परिमाण अत्यंत
अधिक होयतो मोदकआदिके बनानेमें जबचासनी होनेपर आयजावे उस समय
इसको उसचासनीमें डालदेना उचितहै । अन्यथा समग्रचूर्णका उस पाकमेंमिल-
ना कठिन है । यदिचूर्ण थोडा होयतो जब चासनी लड्डूकी होकर उतारलीनी
जावे और थोडीगरम रहे उससमय मिलावे तो गुणकरे अन्धथा नहीं ॥

अथानुवटिकाविधिः

धात्वादीनामुद्भिदावा चूर्णमुक्तैर्द्रवैः श्लुतम् ॥

अनुक्तेतोययोगेनविमर्द्यविदधीतिच ॥

यवसर्पपगुंजादिप्रमाणां वटिकांभिषक् ॥

अनिर्दिष्टवटीसिद्धौप्रायोगुञ्जात्मिकामिति ॥

तत्सेवनंयथादोषमनुपानेनचेष्यते ॥

अर्थ—जडी बूटी अथवा धातु आदि संपूर्ण द्रव्यका वारीकचूर्ण यथोक्तद्रव पदा-
र्थके साथ अथवा जहां न कहाहो वहां जलके साथ सरसो-जो-अथवा रत्तीआ-
दिके प्रमाण गोली बनानी चाहिये । जहां गोलीके विषयमें विशेषकुछनहीं लि-
खाउसजगे रत्ती २ की गोली बनानी- इसप्रकार बनाई हुई गोलियोंको अ-
नुवटिका-अथवा सामान्यकरके वटिका कहते है । येदोष विशेषसैं अनुपानविशेष
करके सेवनकरनी चाहिये ॥

रसचूर्णम्

रसराजयुतं वलिहेममुखं विधिनापुटितं मनुशैत्यगतम् ॥

उपनीयततः परिमर्दयतां रसचूर्णमिदं कथितं मुनिभिः ॥

अर्थ—गंधक और स्वर्णादिक द्रव्यपारेकेसाथ सरलकर यथाविधिपुटपाक देकर जब स्वांगशीतलहो जावे तब चूर्णकर औषधार्थ प्रयोगोंमें बर्ते । इसप्रकार की औषधको रसचूर्ण कहते है ॥

घन्वंतरीकाभाग

अर्द्धसिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्यभागोऽष्टमः

संसिद्धाखिललोहचूर्णगुटिकादीनां तथा सप्तमः ॥

योदीयेतभिषग्वरायसरुजानिर्दिश्यघन्वंतरिम् ।

देहारोग्यसुखाप्तयेनिगदितो भागः सघन्वंतरिः ॥ ३ ॥

अर्थ—सिद्धरस (पारदकी भस्म -चंद्रोदयादि) वैद्यका आधाभाग—तेल घृत और अवलेह इनमें आठवाभाग तथा संपूर्ण लोहो की भस्म (सुवर्ण—चांदी तामा—रांगा लोहकी—भस्म) चूर्ण—गोली, आदिशब्दसै—पाक—अर्क इत्यादिकमें सप्तमभाग जो रोगी—घन्वंतरिके उद्देशकरके वैद्यके वास्ते देता है उसकी देहमें आरोग्यहो—और सुखकी प्राप्तिहोती है—येभागघन्वंतरिका कहलाता है इसवास्ते, अवश्य देना चाहिये ॥

क्रीतद्रव्यस्यभैषज्यभागश्चैकादशोहियः ॥

वणिग्भ्योगृह्यते वैद्यै रुद्रभागः सकथ्यते ॥ २ ॥

अर्थ—खरीदीदीर्घ औषधमें ग्यारवां भागजो दुकानदारसँ वैद्यलता है वह रुद्रभाग कहलाता है—तात्पर्य यह है कि विकती औषधमें वैद्यरोगीसँ कुछनलेवे किंतु बेचने वालेने जितनी औषध बेची है उसका ग्यारवाभाग वैद्यकों लेना चाहिये येउसका हक है ॥

गृहीत्वाधिकमीशांशद्योऽसमीचीनमौषधम्

दापयेत्तुवध्वैद्यः सस्याद्विश्वासघातकः ॥

अर्थ—जो वैद्य ग्यारवे भागसँ अधिकलेता है—अथवा उसबेचने वालेसँ मिलकर आपकुछ अपने लिये हिस्सा ठेरापकर विकवावे वोलोभी वैद्य विश्वास घाती जानना—उसका न इससंसारमें भला होवे नपरलोकमें । प्रसंगवसयहां एकवात और लिखते है कि जिस्तै मनुष्य जाली मनुष्यके फंदेमेंनपडे ॥

यहां मयुरा—दिल्ली—आगरमें सतिये लोग जो जातिके कायध होते है और अकमर जराहीका वा नेत्रोंका इलाज किया करते है ये बाजारमें एकांतमें बैठे

रहते है जहां कोई गामका गमेरु मनुष्य अथवा प्रदेशी मनुष्य दीखा उसको इ-
 सारेतै अपने पास बुलाकर कुछ न कुछ ऐसा रोग बतावे कि जिस्सै वो डरजा-
 वे, और उससे कहते है कि इस रोगसँ तुम्हारी वगलमें पसीने आते होंगे, और
 जब तुम सोंकर सुवहको उठते होंगे तब बड़े जोरसँ पेसाव उतरता होगा—य-
 दि गरमी देखे तो कहते है कि तुम्हारे पैरोंके तलवा बहुत पसीजते होंगे—प्यास
 अधिक लगती होगी और आलकस जियादह आता होगा—वस ऐसी २ बात
 कहनेसँ उसविचारे भोले भाले प्रदेशीको इनका विश्वास आजाता है—और उ-
 स्सै वीचवीचमें यहभी कहते जाते है कि भाई यह तुम्हारा बुरा रोग देखके हम
 को तरस आगया यदि इसका इलाज न करोगे तो महिने दो महिनेमे मरजाओ-
 गे इसवास्ते हम खुदाकी राहपर तुमारा इलाज घताते हैं सो तुमकरो अछाता
 लाके फजलसँ बहुत जल्द तुमको आराम होजावेगा । इस तरह उसको काबूमें
 कर जहां इसकी सट लगी हुई होती है उसी दुकानपर चटले पहुचते है—जाते
 खेम उससे कहत है कि फलां दवाई तेरेपास है वो कहे है अच्छानिकाल जब नि-
 काले तब ये खरल लेकर बैठ जातेहैं और कहे ये छःमासे डाल—दूसरी तोलेभर
 डाल, इसतरह पहले दमड़ी २ छदाम २ की दवाई बताए, फिर एक अनखट्टूरी
 नामलेकर दवाई मांगे वोपसारी कहे साहब वो बडे मोलकी दवाई है तब ए क-
 हे क्यामुजाका है निकालतो सही जब वो निकालकर लावे तो पिसा हुआ गो-
 द होता है उसको कुछ अपनी जीभपर डाले और एक चुकटी भरके अपने ग्राह
 कके मूमे डलवावे जब वो चिपकने लगे तब कहे कि देखो जैसी ये मूमे चपदेती
 है । ऐसी ही तुम्हारा धातको गाढीकर देंवेगी—फिर पसारीसँ पूछे ये क्या तोले
 देवेगा वो कहे ए रूपे तोले तब ए कहे नहींनही आठ आने तोले दे—आखिरको
 आठ आने दश आने पञ्जीकर तुलाते है तब यह देखते है इस आदमीके
 पास कितना पैसा है उसवखत पसारी सँ कहते है कि भाई इस दवाईको
 रुपा डालके तालो हम और तरहसँ नहीं माननेके पसारी सधा हुआ होताही
 है चट कहदेता है किमेरे पास अभी रुपानही आया नहीं तोमेंमें रुपसँ तोलदेता
 उसवखत ये हकीमसाहबअपने मवकिलसँ कहते की आपके पास रुपा होयतो
 तोलनेके वास्ते देदीजिये ज्योही उसने रुपानिकाला और हकीम साहब ताढगए
 कि इसके पास इतनी जमा है वसउसीके माफिक १रु०की—दोरुपेकी ८ आनेकी
 या वारह आने की दवाई कुटाई और दामादिलाए उसकी पुढिया बांधउमको
 सौपदेते है और उसकेमाथ २ चलकर सहरवाहर निकाल आने है कि जि-
 स्सैको ईसखस उसको भैकाए नही और उमको अपनी नेकी जताते है कि दे-

खोतुझारे इसकाममें हमने कौडीभी नहीं खाई ईश्वरकी राहपर आपको दवाई बनवायदीनी है—इसतरह उसको सहरवाहरकर चट उसपंसारीके पास आनकर जैसा उस्से ठहराव हो वैसा रूपमें वारहआने या दशआनेले कर फिर उसी मु-काम पर आनजमते है और दूसरी सिकारकी तलास करते है ॥

इसलिखनेसे हमारायही प्रयोजनहैकि सब भोले मनुष्यको जाहिर होजावे कि जैसे २ ठगिया—हकीम—जरीह—ज्योतिशी—और मंत्रशास्त्री या जादूगरीके जालसे बचे ओसाकोईसा सहर नहीं है जहाँये पामर(नीच) ठगियानहीं रहते इन की मुख्य पहचानयही है कि येविना जानपहचानके आनकर खुसामदकी और लोभ की बात सैआदमीके दिलको लुभाते है—वसउसी समय बुद्धिमान् जान ले कि ये विनाकारण यहपरदेशीहमारी क्यो खुसामद करताहै—यह शीक्षा इत्तराम चौबेकीयादरहे ॥

अथस्रेहपाकस्यसाधारणोविधिः

तत्रादौतैलतैलमूच्छा

कृत्वातैलंकटाहेदृढतरविमलेमन्दमन्दानलैस्तत् तैल
निष्फेनभावं गतमिहयदाशैत्ययुक्तंदैव ॥मंजिष्ठारा
त्रिलोघ्रैर्जलधरनलिकैः सामलैःसाक्षपथ्यैः ॥ सूचीप
त्रांघ्रिनीरैरुपहितमथितैः गंधयोगंजहाति ॥

अर्थ—तैलमूच्छाके नियम कहते है—लोहेके दृढकढावमें मद२अग्निसे तैलपाक करे—जब यहतेल झागरहित होय तब चूल्हेसे उतारलेवे कुठशीतल होनेपर—पिसी हलदीको जलमें घोरकरक्रमसे धीरे२ उसतेलमें डाले और ओटाता जाय इसी प्रकार कुटी मजीठको जलमें घोरके धीरे२क्रमसे डाले—फिर लोघ नागरमोथा—न लिका—आवला—वहेडा—हरढ—केतकीकीजड—बडकीकोपल और नेत्रवाला इ-न सबको पीस जलमें मिलाय पृथक् २ तेलमें क्रमसे डाले—तथा इसतेलमें चौगुना जलमिलाय फिर पाककरे जब कुठजल वाकीरहे तबउतारके ७ दिनधरा ररनेदे तो तैलकी दुर्गंध दूरहोय । इसी हलदी और मजीठ आदि द्रव्यको मूच्छा द्रव्य कहते है ॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपिमूच्छाविधौ ॥

येचान्येत्रिफलापयोदरजनीह्वैरलोघ्रान्विताः ॥

सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्वपादांशिका ॥

दुर्गंधविनिहंतितैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥

अर्थ—अवइनके परिमाणका नियम कहते हैं कि जितनातेल होवे उसके षोडशांश मजीठ लेनी चाहिये और बाकी सब द्रव्य मजीठकी चतुर्थांश लेनी-जैसे तेल १६ सेर तो मजीठ १ सेर एवं हरदी-लोध-हरड-बहेडा-आमला-नागरमोथा-नेत्रवाला-इत्यादि द्रव्य सब पाव २ भरलेनीचाहिये मूच्छाके करने-सैं तेलकी दुर्गंध दूरहोती है और उत्तम सुगंध आने लगें है तथा उस तेलका लालवर्ण उत्पन्न होताहै ॥

कटुतैलमूच्छा

वयस्थारजनीमुस्तविल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजीरक
हीवेरनलिकैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैप्रस्थेचकर्प
मात्रंप्रयोजयेत् । अरुणोद्विपलंतत्र तोयंचाढकसंमितं
कटुतैलंपचेत्तेन आमदोषोपशान्तये ॥

अर्थ—कटुतैलके मूच्छाकी औषधये है-आमला-हरदी-नागरमोथा-बेलकी-छाल अनारकी छाल-केशर-कालाजीरा-नेत्रवाला-नलिका-बहेडा-और मजीठ । मूच्छा करनेकी विधि पूर्ववत् जाननी । अर्थात् तैल निस्फेन होजावे तब उतारके हरदीजलमें घोरके तैलमें छिरके-फिरमजीठको छिडके-फिरअन्य २ सब वस्तुओंको तेलमें ढाले ४ सेर कटुआतेल-मजीठ २ पल-और २ द्रव्य प्रत्येक दोदो तौलालेवे और जल १६ सेरमिलायके पाककरे ॥

एरंडतैलमूच्छा

विकसामुस्तकंधान्यंत्रिफलावैजयन्तिका ॥ हीवेरवन
खर्जूरवटशुंगानिशायुगं । नलिकाभेपजं देयंकेतकीच
समंसमम् । प्रस्थेदेयंशुक्तिमितंमूच्छनेदायिकांजिकम् ॥

अर्थ—एरंडतेलकी मूच्छा द्रव्य ये हैं-मजीठ-नागरमोथा-धनिया-त्रिफला अरनीके पत्ते नेत्रवाला-वनखर्जूर-बडकीकोपल-हरदी-दारहलदी-नलिका-केतकीकीजड-दही-कौंजी-प्रत्येक चार २ तोला, तेल अंडीका ४ सेर-पूर्वांक रीतिके अनुसार मजीठ आदिसैं मूच्छा करे

घृतमूच्छा

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुंगद्रवैश्चद्रव्यै

रेतैसमस्तैः पलकपारिमितैर्मन्दमन्दानलेन । आज्यं
प्रस्थंविफेनंपरिचपलगंतंमूर्च्छयेद्वैद्यराजः तस्मा
दामोपदोषंहरतिचसकलंभीर्यवतसौख्यदायि ॥

अर्थ—हरड—आमले—बहेडा—नागरमोया—हलदी—और नीबूकारस येसब वस्तु घृतकी मूर्च्छाद्रव्यहै । प्रथमहलदी—पश्चात् नीबूका रस फिर और २ द्रव्य संपूर्ण ढालके पूर्ववत् मूर्च्छित करे—मूर्च्छाद्रव्य प्रत्येक एक २ पल लेवे घृत ४ सेरले और जलपाकार्य १६ सेर मिलावे ॥

वातहरतैलानांविशेषमूर्च्छाविधिः
आम्रजंबूकपित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः ॥
गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणिपञ्चपल्लवम् ॥
पंचपल्लवतोयेनगंधानांक्षालनंमतम् ॥

अर्थ—वातघ्न (नारायणतैल -विषगर्भादि) तैलोंकी मूर्च्छामें पूर्वोक्त साधारण नियमकरे । तथा पंचपल्लवजलमें फिरशोधनकरे । उसका नियम यह है कि-आम्र-जामुन-कैथ, विजोरा—और बेल इनसबके पत्ते तेलके अष्टमांस लेकर चौ-गुने जलमें काढाकरे, जबचतुर्थांश बाकी रहे तबउतारके छानलेवे । फिरइसकाढे केसाथ उत्तममूर्च्छित तैलको फिरपाककरे ॥

स्नेहपाकमेंकालकानियम

मूर्च्छास्यात्सप्तभिः सिद्धारात्रिभिर्बुधसंमता ॥ ब्रीहि
प्राण्यंगयोपाकःसद्यःसिध्यतिनान्यथा ॥ स्यात्पाकः
पयसोद्धान्यांस्वरसादिस्तुतिमृभिः ॥ दधिकान्जिकत
क्राणांसिद्धोभवतिपञ्चभिः ॥ मूत्रादीनामेकयास्यात्ततः
कल्कस्यसप्तभिः ॥ गंधानांपंचभिर्ज्ञेयः स्नेहपाकेत्वयंक्रमः ॥

अर्थ—तैलादिककी मूर्च्छा ७ दिनमें होती है—अर्थात् मूर्च्छा द्रव्य संपूर्ण पाकके अंतर ७ दिन तकउतारके ढालते है । तत्पश्चात् मटरआदिका काढा और उसके पीछे मांसादिक काढेके साथ तैलकापाक करना । इत्यादिकमें एकएक दिनलगतता है, फिरदूधके साथ पाककरना इसमें दोदिन लगते है, फिर स्वरस तथा क्राथके साथपाककरनेमें तीनदिनलगते है, फिरदही—काजी—और छा छइनके साथ पाकमें पांच ५ दिनलगते है । तत्पश्चात् मूत्रादिकके साथपाककर

नेमें एकदिनलगतता है । फिरकल्कपाक ७ दिनमें होता है—सबके पीछे गंधपाक अर्थात् गंधद्रव्य केसाथपाक ५ दिनमें होता है, तथादूध—दही—इनकेसाथ पाकरनेमें एकएक दिनलगतता है ॥

चतुर्विधस्नेह

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥

मज्जा च तं पिवेन्मर्त्यः किंचिद्भ्युदितेरवौ ॥

अर्थ—स्नेह (चिकनाई) चारप्रकार की है—जैसे—धी—तेल—वसा (मांसस्नेह) और मज्जा (हड्डी से निकलातेल) एचारोप्रकारके तेल किंचिन्सूर्योदय होनेपर तथानहोनेपर पीनेचाहिये ॥

द्विविधस्नेह

स्थावरं जंगमं चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥

तिलतैलं स्थावरे पुजंगमेषु घृतं वरम् ॥

अर्थ—वो स्नेह दोप्रकारका है एकस्थावर और दूसराजंगम ये दोही स्नेहकी योनि है, तिनमें स्थावर पदार्थके स्नेह बहुत है उनमें तिलका तैल उत्तम है । और जंगमपदार्थोंमें धी आदिशब्दसे वसादिक अनेक है उनमें धीश्रेष्ठ है इसप्रकार स्नेहके दोभेद जानने ॥

स्नेहकेभेद

द्राभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ॥

अर्थ—धी और तेल दोनोके मिलनेसे उसको यमक कहते है—और धी—तेल तथा वसा (चर्बी) येतीन एकत्र होनेसे उसकी त्रिवृत संज्ञा है । तथा धी—तेल—वसा—और मज्जा इन चारोके एकत्र मिलने से उसकी महान् संज्ञा है । इसप्रकार स्नेहके तीन भेद जानने ॥

स्नेहपाकविधिः

विघ्नेशक्षेत्रपालैव टुकमपिशुभेवासरे पूजयित्वा तैल

स्याज्यस्य किंवारचयतु निपुणः संस्कृतिं संप्रदायात् ॥

१ 'मांसा दष्टगुणं घृतं', अर्थात् मांसकी अपेक्षा घृत अठगुना अधिक है, इसी कारण प्रथम घृत लिखा है । २ मांससे घृतके समान तेल निकलता है अतएव उसको मांस स्नेह अथवा चर्बी कहते है । ३ जो नहीं चले [जैसे वृत्तादि] उनको स्थावर । ४ और चलनेवाले [गौ, भैस, मनुष्य आदि] को जंगम कहते है ।

आदौवर्हिप्रदद्यालघुरथशनकैः फेनशब्दावधिः स्यात् ॥
पश्चान्मृत्पिण्डकैस्तदशभिरलघुभिर्नातिपीनैर्विशोध्यम् ॥

अर्थ—श्रीगणपती-क्षेत्रपाल और वटुक इनका शुभादिनमें पूजनकर-फिर तेल-अथवा घीकी विधिको कुशल वैद्य गुरु संप्रदायानुसार प्रारंभ करे-प्रथम तेलको लोह आदिके कढावमें चढाय चूल्हे पररखके मंद मंद अग्निदेवे कि जवतक तैलमें झागन आवे और घीमेंशब्द नहोवे-फिरक्रमसँ अग्निको बढावे । पश्चात् मिट्टीके दशगोला कि जोनबहुत बडे और नबहुतछोटे हो असेले करउनसँ शोधनकरे

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ॥

द्रव्येचतुर्गुणेसाध्यंतस्यमात्रापलोन्मिता ॥

अर्थ—कल्कसँ चौगुना घीवा तेल लेवे उसको चतुर्गुण द्रव्यमें साधनकरे जि सकी मात्रा एकपल (४ तोले) की है ॥

स्नेहसाधनमेंकाथ्यऔरजलादिकाप्रमाण

निक्षिप्यकाथयेतोयंकाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं

गृहीत्वातुस्नेहस्तेनैवसावयेत् ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्यकठि

नेऽष्टगुणंजलं । मृद्रादिकाथ्यसंघातेदद्यादष्टगुणंपयः ॥

अत्यंतकठिनेद्रव्येनीरंषोडशिकंमतम् ॥

अर्थ—अनेक स्थलमें काथके साथ घी वा तैलका पाककरते है इसीसँ कायब नानेका नियम लिखतेहै । काथ्यद्रव्य (जिसकी काथकरीजावेगी) यदिनग्रहोवे तो चौगुनाजलढाले-और यदिमध्यमहोय अर्थात् नबहुत करडी और नबहुत नरम तो अठगुना जलमिलावे, तथा जो द्रव्य अत्यंत कठोर होवे तो सोलह गुना-जलढालके काथ सिद्धकरे-जवचतुर्गुणशोधपरहे तव उतारके छानलेवे । असाकाढा स्नेहसँ चागु नालेना चाहिये ॥

अन्यच्च

कर्पादितःपलंयावत्क्षिपेत्षोडशिकंजलं ॥ तदूर्ध्वकुडवं-

यावद्भवेदष्टगुणंपयः॥प्रस्थादितःक्षिपेन्निरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ।

अर्थ—अन्यत्रभी लिखाहै कि काथनानेमें काथ्य द्रव्यका परिमाण १ कर्पसँ लेकर पलपर्यंत होनेसँ सोलहगुनाजल ढालना-और पलसँ लेकर कुडव पर्यंत

आठगुना जलढालना एवं प्रस्थसैं लेकरखारी पर्यंत द्रव्य होवेतो उसमें चौगुना जलढालना न्यूनाधिक नहीं ढालना ॥

तुलाद्रव्येजलद्रोणोद्रोणेद्रव्यतुलामता ।

अर्थ—जहांजलका परिमाणकुछ नहीं कहा वहाँ १२॥सेर द्रव्यमें ६४ सेर जलढालके साथकरे । एवं ६४ सेर जलमें काथ्यद्रव्य १२॥सेर ढालनी चाहिये॥

अनिर्दिष्टप्रमाणानांस्नेहानांप्रस्थइष्यते ।

जलस्नेहौपधानांचप्रमाणंयत्रनोदितम् ॥

तत्रस्यादौषधात्स्नेहःस्नेहातोयंचतुर्गुणम् ।

स्नेहसिद्धौद्रव्येऽनुक्तेसर्वत्राम्भश्चतुर्गुणम् ॥

गन्धद्रव्याणिचेच्छन्तिकल्कस्यार्धांशिकानिच ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें जहां विशेष कुछनहीं लिखा उसजगे स्नेह १ सेर लेना चाहिये, तथा जलस्नेह- और कल्कद्रव्यका परिमाण लिखाहो तहां कल्कचौगुनालेना स्नेह और कल्कपाकार्थ जलका परिमाण स्नेहसैं चौगुनालेना चाहिये । स्नेह पाकमें द्रव्य पदार्थ का जहां उल्लेख न होवे तहां चौगुना जलढालके पाक करना । तथा तेल पाकमें गंधद्रव्यका परिमाण कल्कके परिमाणसैं आधा जानना चाहिये

स्नेहपाकविधौयत्रक्षिरमेकतुऋध्यते ।

तोयादीनामनिर्देशेक्षिरमेवचतुर्गुणम् ॥

द्रव्यान्तरेणयोगेतुक्षिरंस्नेहसमंविदुः ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें यदि दुग्धके सिवाय और पदार्थ नहो अर्थात् केवल दूधसैं ही पाककरना होवेतो दूधस्नेहसैं चौगुनालेना चाहिये । और यदि पाकमें जल अथवा अन्य द्रव्यका संयोग होवेतो दूधस्नेहके बराबरही लेना यह नियमहै।

वृन्देतु

स्वरसक्षिरमाङ्गल्यैर्पाकोयत्रेरितःक्वचित् ।

जलंचतुर्गुणंतत्रवीर्याधानार्थमावपेत् ।

नमुंचतिरसंद्रव्यंक्षीरादिभिरुपस्कृतम् ।

सम्यक्पाकोनजायेततस्मात्तोयंचतुर्गुणम् ॥

अर्थ—वृन्दग्रंथमें लिखाहै कि स्वरस- दूध-अथवा दही इनकरके पाक करना कहाहो वहां वही २ चौगुना जल मिलाकर पाककरते है इसकातात्पर्ययहहै कि

१ कल्कचातुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काथश्चतुर्गुणः काथांचतुर्गुणंवारिकाथ काथ्यमसोमन्

: दूधआदिके गाढा होनेपर कल्कादिद्रव्यका रस अच्छीतरहनही निकलता अतएव उत्तम पाकभी नहीहोवे—इसी कारण चौगुना जल ढालनेसे पाकठीक २ होताहै और द्रव्योंमें वीर्यकी प्राप्तिहोती है इससे चौगुना जल ढालना चाहिये ॥

पंचप्रभृतियत्रस्युद्रव्याणिस्नेहसंविधौ ।

तत्रस्नेहसमान्यादुरर्वाक्चस्याच्चतुर्गुणम् ॥

अर्थ—स्नेहपाकमें पांच अथवा पांचसे अधिक द्रव्य होवेतो प्रत्येक द्रव्यका प्रमाणस्नेहके समानलेना चाहिये । यदि पांचसे न्यून (कम) होवे तो उनको स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये ॥

अम्बुक्वाथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ।

कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थपष्टमष्टमम् ॥

अर्थ—जलद्वारा स्नेह पाककरना होवे तो कल्क द्रव्यका परिमाणस्नेहसे चतुर्थांशलेवे । काथके द्वारापाककरना होयतो कल्कका परिमाण स्नेहसे छटाभागलेवे । एवं स्वरस द्वारापाक करना होयतो स्नेहका अष्टमांश रसलेना चाहिये ॥

दुग्धेदधिरसेतत्रैककल्कोदेयोष्टमांशिकः ।

कल्काच्चसम्यक्पाकाथतोयमत्रचतुर्गुणम् ।

कल्कात्कल्कद्रव्यात्तत्रचतुर्गुणतोयंपेपणार्थं ॥

अर्थ—दूध—इही—स्वरस अथवा छाछद्वारा पाककरना होवेतां स्नेहका अष्टमांश बल्क और कल्कका चौगुनाजल ढालना चाहिये । चौगुना जल कल्कके पीसनेके वास्ते लेतेहै ॥

क्वाथेनकेवलैवपाकोयत्रोदितःक्वचित्क्वाथ्यद्रव्यस्य-

कल्कोऽपितत्रस्नेहेप्रगुज्यते । कल्कहीनस्तुयःस्नेहः

ससाध्यःकेवलेद्रवे।केवलेद्रवेक्वाथेतरस्मिन्स्वरसादिरूपे ॥

अर्थ—जहां केवल काथ द्वारा स्नेह साधन कहाहो तो उसजगे काथ्य द्रव्यका कल्कभी मिलायके पाककरे । जहां कल्कके बिना स्नेहपाक करनाहोय उसजगे काथके सदृश अन्य द्रव पदार्थके साथ अर्थात् स्वरसादिके साथ पाककरना चाहिये ॥

पुष्पकल्कस्तुयःस्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम् ।

स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्चपुष्पकल्कप्रगुज्यते ॥

अर्थ—कल्क द्रव्ययदि पुष्पहोयतो उसको स्नेहका अष्टमांसलेवे और पाका-
र्थ स्नेहका चौगुना जलढालना चाहिये ॥

आदौकल्कः प्रदातव्योगंधद्रव्यंततः परम् । तैलमुत्तार्यदा
तव्यंशिङ्खकंकुङ्कुमंनखम्।गंधचंदनकपूरमेलावीजंलवंगकम् ॥

अर्थ—प्रथम कल्कपाककरे—फिर गंधद्रव्यका पाककरे—गंधद्रव्य समग्रकल्क-
के परिमाणसँ आधी होनी चाहिये। तैलकादूनाजलदेकर गंधपाककरे गंध द्रव्यमें
शिलारस, केशर, नख, सपेद चंदन, कपूर, छोटी इलायची, और लौग इनका
पाक नहींकरना इनको पाकांतमें तैल चूल्हेसँ उतार शीतलकर उसमें येद्रव्यपी-
सके ढालदेवे और कौंचासँ सबको मिलायके एकजीव करदेना चाहिये ॥

गंधद्रव्याणि

एलाचंदनकुंकुमागरुमुराकङ्कोलमांसीशटी ॥

श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणीघ्नजोशी

रकम् ॥ कस्तूरीनखपूतितैलजलमुङ्मेथीलवं

गादिकम् गंधद्रव्यमिदंप्रदेयमखिलंश्रीविष्णुतैलादिषु ॥

अर्थ—छोटी इलायची,—सपेद चंदन,—केशर,—अगर,—जटामांसी,—कचूर,—
सरलकाष्ठ,—तेज पत्र,—गठीला,—कपूर,—शिलाजीत,—खस,—कस्तूरी,—नख,—मुस्क
विलाई,—शिलारस,—नागरमोथा,—मेथी, लौग, इत्यादि गंधद्रव्य कहाती है नारा-
यण तैल आदिमें येसंपूर्ण गंधद्रव्य देनी चाहिये ॥

स्नेहपाकपरिज्ञानम्

वर्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्याविवर्तितः ॥

शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥

यदाफेनोद्गमस्तैलेफेनशांतिश्च सर्पिषि ॥

गंधवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें जब कल्कको उगलियोंके मीढनसँ बचीसी होने लगे तथा
अग्निमें उसको गेरनेसँ चट चटाहट शब्द नकरे तब जाननाकि स्नेह, सिद्ध होग-
या। जिस समय तेलमें झाग आवे और घीमें झाग आना बंदहो जावे तथा उप-
युक्त वर्ण गंध और रसकी उत्पत्ति होवे तब जाननाकि पाक सिद्ध होचुका ॥

त्रिविधपाक

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा । ईषत्स्वर
सकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् । मध्यपाकस्यसिद्धि
श्चकल्केनरिसकोमले । ईषत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको
भवेत्स्वरः । तदूर्ध्वदग्धपाकः स्यादाहकृन्निष्प्रयोजनः
आमपक्वश्चनिर्वीर्योवह्निमांचकरोगुरुः ॥

अर्थ—स्नेहपाक तीन प्रकारका है १ मृदु- २ मध्य- ३ खर-तहां कल्क द्रव्यका कुछ थोडासारस अंश बाकी रहनेसे मृदुपाक कहाताहै । और जो कोमल होय तथा रस रहितहो उसको मध्यपाक कहतेहै । एवं कुछ थोडा कठिन होनेसे खर पाक कहाताहै । इसके उपरांत कठिन पाक होनेसे दग्ध पाक कहाताहै । ऐसा स्नेह कार्य साधक नहीं होता-येदाहको प्रगट करेहै तथा आमपक्व (कच्चे पाकका) स्नेह निर्वीर्य-मंदाग्नि करता औरभारी होताहै ॥

नस्यार्थस्यान्मृदुः पाकोमध्यमः सर्वकर्मसु ॥

अभ्यंगार्थः खरप्रोक्तोयुंज्यादेवंयथोचितम् ॥

अर्थ—नस्यके अर्थ मृदुपाकवाला स्नेह लेना, और मालिसमें खरपाक लेना, तथा मध्यपाक स्नेह सर्व कार्योंपयोगी जानना ॥

घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे ॥

प्रकुर्वत्युषिताह्येतेविशेषाद्गुणसंचयम् ॥

अर्थ—घृत-तैल-औरगुड आदिपाक एक दिनमें न साधन करे, इसका यह-कारणहै किउपेत (वासित) अर्थात् अधिक दिनमें सिद्धकरा हुआपाक विशेष गुणोंको करताहै इसी कारण धीरे धीरे साधन करे ॥

अथस्नेहसेवनविधिः

गुरुशीतसरस्निग्धमंदसूक्ष्ममृदुद्रवम् ॥ औषधंस्नेहनं

प्रायोविपरीतंविह्वक्षणम् । सर्पिर्मज्जवसातैलंस्नेहे

पुप्रवरंमतम् ॥ तत्रापिचोत्तमंसर्पिः संस्कारस्यानुवर्त

नात् । घृतातैलंगुरुवसातैलान्मज्जाततोऽपिच ॥

अर्थ—गुरु, शीत, सर, स्निग्ध, मंद सूक्ष्म, मृदु, और द्रव, गुणयुक्त द्रव्य सम-स्त स्नेहन जाननी । इसके विपरीत अर्थात् लघु, उष्ण, स्थिर, सूक्ष्म, स्थूल, क-

ठिन, और सांद्रगुण, विशेष द्रव्यमात्र प्राय रूक्षण जाननी । स्नेहपदार्थमें घृत-मज्जा-वसा-और तैल ये चार प्रधान है । इस स्नेहचतुष्टय में भी घृत उत्तम है । कारण यह है कि इस घृतके अन्य द्रव्यके साथ संस्कार होनेसे निजशक्ति और संस्कृत द्रव्यकी शक्तिको प्रकाश करे है । घृतसे तैल, तैलसे भारविसा है, और वसासे भारी मज्जा जाननी ॥

स्नेहपीनेकाक्रम पित्रेभ्यहंचतुरहं पंचाहं षडहंतथा ॥

अर्थ—थी तीन दिन पीवे-और तैल चार दिन पीवे तथा मांस स्नेह पांच दिन पीवे-और हड्डीका तैल ६ दिन पीना चाहिये । इस प्रकार क्रम करके घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ॥

सप्तरात्रात्परंस्नेहः सात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ—सात दिवसके अनंतर घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान हो जाता है । फिर गुण अवगुण कुछ नहीं करता ॥

स्नेहपानमेंयुक्ति दोषकालाग्निवयसांबलंष्ट्रप्रयोजयेत् । हीनांचमध्यमांज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ—जातादिक दोष-काल-अग्नि-अवस्था इनका बलावल विचारके घृतादिक स्नेहोंकी सेवनकी मात्रा हीन-(अल्प) और मध्य-तथा ज्येष्ठ-इनमेंसे शक्तिका तारतम्य देखकर देनी चाहिये ॥

अविधिस्नेहसेवनकेदोष अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः । स्नेहःकरोतिशोफार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञितः ॥

अर्थ—घृतादिकस्नेह पीनेका प्रमाण कहा है उसकी अपेक्षा कम अथवा ज्यादा पीनेसे, तथा पीनेका कालछोड़कर अन्यकालमें पीनेसे, तथा घृतादिकस्नेह पीकर मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे, उस स्नेहसे मूजन और वयासीर होती है तथा तंद्रा आनकर घोरनिद्रा आती है तथा संज्ञाका नाश होता है ।

१ स्नेह पीनेमें २ कर्पकी मात्रा हीन है २ तीन कर्पकी मात्रा मध्यम जाननी ३ एक पत्र प्रमाणकी जो मात्रा है वो ज्येष्ठ (बडी) जाननी

स्नेहयोग्यमनुष्य

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचित्काः ।

वृद्धबालाबलकृशाखूक्षीणास्त्रेतसः ॥

वातार्तसंधितिमिरदारुणप्रतिबोधिः ॥

अर्थ— औषध करके जिसका पसीना काढाहो, रेचक औषध करके शुद्धक-
हुआ, मद्य पीनेवाला, स्त्रीपरिश्रमसे थकाहुआ, चिंताकरके व्याप्त, वृद्ध, बाल-
क, कृश, खून; क्षीण, रुधिरवाला, धातुक्षीण, वादीकरके पीडित, तिमिर, रोगसे
व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्यघृतादिक स्नेहपीनेके योग्यहै ऐसा जानना ।

स्नेहक्रियाअयोग्य

स्नेहानत्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ।

उरुस्तंभातिसारामगलरोगगरोदरैः ॥

मूर्च्छाछर्द्यरुचिंश्लेष्मटृष्णामद्यैश्वपीडिताः

अपप्रसूतायुक्तेचनस्येवस्तौविरेचने ॥

अर्थ—अत्यंत मंदाग्निवाला, अत्यंत तीक्ष्णाग्निवाला, अतिस्थूल, अत्यंतदुर्बल, ए
वं ऊरुस्तंभ, आतिसार, आम, गलरोग, विपरोग, उदररोगी, मूर्च्छा, वमन, अरुचि,
कफ, तृषा और मदात्यय रोगसे पीडित, अकाल प्रसूता नारी, इत्यादि रोगी तथान-
स्य वस्ती और विरेचन करबुकाहो ऐसे मनुष्योंको स्नेहन क्रिया करना निषेधहै।

(घृतयोग्य)

तत्रधीस्मृतिमेधाग्रिकांक्षिणांशस्यतेघृतम् ॥

अर्थ— तहां बुद्धि स्मृति (स्मरण) मेधा और अग्निबुद्धि इनके निमित्त स्ने
ह प्रयोग करनेवालोंको घृत प्रयोग उत्तमहै ॥

(तैलयोग्य)

ग्रन्थिनाडीक्रिमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिपु॥तैललाघ-

वदार्यथेकूरकोष्ठेपदेहिपु॥वातातपाध्वभापास्त्रीव्या-

यामाक्षीणधातुपु ॥

अर्थ— गांठ, नाडीव्रण, कृमि, कफ, मेदा, वापुरोगसे पीडित, कूरकोठेवाला,
एवं हवा, धूप मार्गचलना, अधिकपुकारना (पठना गानाआदि) स्त्रीसंभोग, और
दंडकसरत, इत्यादिकारणोंसे क्षीणधातुवालोंके पक्षमें तथा हलकापन और द-
दताके निमित्त तैलका प्रयोग अतिउत्तमहै ।

वसाऔरमज्जाकेअधिकारी

रूक्षक्लेगर्क्षमात्यग्निवातावृतपथेषुच ॥ शेषौवसातु

अर्थ—रूक्षदेह, क्लेशकासहनेवाला, अत्यंत अग्निदीप्तवाला, इनको करके मार्गरुका हुआ ऐसे मनुष्योंको वाकीके दोस्नेह वसा और . ।
री जानने ॥

वसाकाप्रयोग

सन्ध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजासुच ॥ तथादग्धाहतेभ्रष्टेयोनि-
कर्णाशिरोरुजि ॥

अर्थ—सांधि, हड्डी, मर्म, कोष्ठ, कर्ण, और मस्तककी पीडा, एवं दग्धं
अह्नयोनि, और भ्रष्टयोनि, असीस्त्रियोंके पक्षमें वसा अत्यंत हितकारी है ॥

ऋतुपरत्वघृततेलादिकासेवन
तैलंप्रावृषिवर्षान्तेसर्पिरन्यौतुमाधवे ॥ ऋतौसाधारणे-
स्नेहः शस्तोऽन्हिविमलेऽवौ ॥

मध्यमायत्रिकर्षास्याज्जघन्यायद्विकार्षिकी॥

अर्थ—जिसमनुष्यकी दीप्ताग्नि होवे उसको घृतादिक स्नेहकी मात्रा १ पल पिलानी चाहिये । और जिसकी मध्यम अग्निहै उसमनुष्यको तीनकर्ष प्रमाणदेवे तथा जिसकी मंद अग्निहोवे उसको दोकर्ष प्रमाणकी मात्रा देनी चाहिये ।

प्रकारांतर

अथवास्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसंमताः ॥

अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नितुमध्यमा ॥

जीर्यत्यल्पादिनाद्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥

अर्थ—संपूर्ण ऋषियोंको मान्य—ऐसी दूसरी घृतादिक स्नेह व्यवस्थापक मात्रा तीनप्रकारकी है उसको कहते हैं । जो मात्रा आठप्रहरमें पचे उसको बड़ी मात्रा कहते हैं वो एक पलकी जाननी । और जो मात्रा एकदिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं वो तीनकर्षकी है । तथा जो मात्रा दोप्रहरमें पचे उसको अल्पा (छोटी मात्रा) कहते हैं वो दोकर्षकी जाननी यह सुखदायक है अर्थात् यह सबको पचनहोसकी है ।

आल्पादिकमात्राओंके गुण

आल्पास्याद्दीपनी वृष्यास्वल्पदोषे सुपूजिता ।

मध्यमास्नेहनी ज्ञेया बृहणी भ्रमहारिणी ॥

ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ।

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेकी जो दोकर्षकी अल्पमात्रा है वह जठराग्नि दीप्तकर स्त्रीसंगकी रुचि बढ़ावे है, तथा वातादिक दोषोंके अल्पप्रकोपको दूरकरे है । तथा तीनकर्षकी जो मध्यममात्रा है वो देहको पुष्टकर धातुकी वृद्धिकरे तथा भ्रमको दूरकरे । एवं १ पलकी जो ज्येष्ठमात्रा है वो कुष्ठ-विष भूतोन्माद और अपस्मार इनका नाशकरे ॥

दोषोंमें अनुपानविशेष ।

केवलपैतिके सर्पिर्वातिके लवणान्चितम् ।

देयं बहुकफे वापि व्योपक्षारसमन्वितम् ।

अर्थ—केवल पित्तके कोपमें घी मिलावे और वायुके कोपमें घी और निमक मिलायके पिवावे । तथा कफके अत्यंत कोप होनेसे व्योष-तथाजवास्वार-इनके चूर्णके साथदेवे ॥

१. सोंठ, -मिरच, -पीपल, इन तीनोंके समुदायको व्योष कहते हैं—

मध्यमायत्रिकर्षास्याज्जघन्यायद्विकार्षिकी॥

अर्थ—जिसमनुष्यकी दीप्ताग्नि होवे उसको घृतादिक स्नेहकी मात्रा १ पल पिलानी चाहिये । और जिसकी मध्यम अग्निहै उसमनुष्यको तीनकर्ष प्रमाणदेवे तथा जिसकी मंद अग्निहोवे उसको दोकर्ष प्रमाणकी मात्रा देनीचाहिये ।

प्रकारांतर

अथवास्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसंमताः ॥

अहोरात्रेणमहतीजीर्यत्यह्नितुमध्यमा ॥

जीर्यत्यल्पादिनार्द्धेनसाविज्ञेयासुखावहा ॥

अर्थ—संपूर्ण ऋषियोको मान्य—ऐसी दूसरी घृतादिक स्नेह व्यवस्थापक मात्रा तीनप्रकारकीहै उसको कहतेहै । जोमात्रा आठप्रहरमें पचे उसको बड़ीमात्रा कहतेहै वो एक पलकी जाननी । और जोमात्रा एकादिनमें पचे उसको मध्यम कहतेहै वो तीनकर्षकीहै । तथा जो मात्रादोप्रहरमें पचे उसको अल्पा(छोटीमात्रा) कहतेहै वो दोकर्षकी जाननी यह सुखदायकहै अर्थात् यह सबको पचनहोसक्तीहै ।

आल्पादिकमात्राओंकेगुण

आल्पास्याद्दीपनीवृष्यास्वल्पदोषेषुपूजिता ।

मध्यमास्नेहनीज्ञेयावृंहणीभ्रमहारिणी ॥

ज्येष्ठाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ।

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेकी जो दोकर्षकी अल्पमात्रा है वह जठराग्नि दीप्तकर स्त्रीसंगकी रुचि बढ़ावे है, तथावातादिक दोषोंके अल्पप्रकोपको दूरकरे है । तथातीनकर्षकी जो मध्यममात्रा है । वोदेहको पुष्टकर धातुकी वृद्धिकरे तथाअमको दूरकरे । एव १ पलकीजो ज्येष्ठमात्रा है वो कुष्ठ-विष भूतोन्माद और अपस्मार इनका नाशकरे ॥

दोषोंमेंअनुपानविशेष ।

केवलपैतिकेसर्पिर्वातिकेलवणान्वितम् ।

देयंबहुकफेवापिव्योषक्षारसमन्वितम् ।

अर्थ—केवल पित्तके कोपमें घी मिलावे और वायुके कोपमें घी और निमक मिलायके पिवावे । तथा कफके अत्यंत कोप होनेसे व्योष-तथाजवास्वार-इनके चूर्णके साथदेवे ॥

१ सोंठ, -मिरच, -पोपल, इन तीनोंके समुदायको व्योष कहते है—

घृतयोग्य

रूक्षक्षतविषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् ।

हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्षमनुष्य—उरक्षत—और विषार्त मनुष्य—तथा वातपित्तके विकारी—
एवं बुद्धि—स्मृति—करके हीन है उनको घृतकापिलाना उत्तम है ॥

तैलयोग्य

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥

पिवेयुस्तैलसाम्यायेतैलं दीप्ताग्रयस्तुये ॥

अर्थ—कृमि रोगी, उदरविकारी—तथा वायुकरके व्याप्त है शरीर जिन्होका
तथा प्रवृद्धहुआ है कफ और मेद जिनके असे मनुष्योको तैल पिलावे । तथा
जिनकी प्रकृतिको तेल सुहाता हो एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी उनमनुष्योंको तै-
ल पिलाना चाहिये ॥

चर्वायोग्य

व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्तामहारुजः ।

महाग्निमारुतप्राणावसायोग्यानराः स्मृताः ॥

अर्थ—कृस्ती कसरत तथा धनुष्यादिकका स्वीचना इनकरके जो पीडित है शरीर
जिसका तथा क्षीण है धातु और रक्त जिनका तथा देहमें घोरपीडा है जिनके एव
अग्नि और वायु है प्रबल जिसके असे मनुष्योको मासस्त्रेह पिलाना चाहिये ॥

मज्जा (हड्डीका तेल)

कृशाशयाः क्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः ।

मज्जानं चापिवेयुस्ते सर्पिर्वासर्वतोहितम् ॥

अर्थ—दुष्ट है कोष्ठं जिन्होका तथा दुःस्व सहन करनेवाले मनुष्य तथा जो
मनुष्य वायुकरके पीडित है एवं प्रदीप्त है जठराग्नि जिन्होकी असे मनुष्योंको
हड्डीका तेलपिलाना अथवा घी पिलावे तो इसकार्यसे शरीरको हितहोता है ॥

१ जिनमनुष्योंकी प्रदीप्त अग्नि है—तथा वायुका शरीरमें जैसा बर्तान चाहिये ऐंसा बर्तन तथा अ-
ग्निवे सायहो अत्रको पचन करे इसीसे अग्नि और वायु ये शक्तिदेनेवाले है तथा
ये अनुकूल होवे तो मासका स्त्रेह पचन होय और ये अनुकूल न होय तो नहीं पचे

२ आम २ अग्नि—३ पक्व—४ मूत्र—५ यष्ट—६ त्प्रोहा—७ हृदय—८ उदुक्—९
और फुफ्फुस नो स्थानोको कोष्ठ कहतेहै अर्थात् ए पदार्थ कोष्ठमें रहते है

स्नेहपानकाल

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिवेत्रिशि ।

वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा ॥

अर्थ—शीतकालमें घृतादिकस्नेह दिनमें पीवे, और गरमीमें वात पित्त प्रबल होनेसँ रात्रिके समय पीवे । तथा कफवायु प्रबल होनेसँ दिनमें पीवे इसप्रकार स्नेह पीनेका क्रमजानना ॥

स्नेहकीस्थलविशेषमेंयोजना

नस्याभ्यंजनगंडूपमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ।

तैलघृतंवायुंजितदृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ—नाकमें डालनेके विषयमें तथा अंगमें मालिस करना कुछे करना तथा मस्तक कान—और नेत्रोंकी दृष्टिके विषयमें वातादिकोंका बलाबल देख. तेल अथवा घृतकी योजनाकरे ॥

स्नेहकेपृथक्२अनुपान

घृतेकोष्णजलंपेयंतैलेदूपः प्रशस्यते ।

वसामज्ज्ञोः पिवेन्मंडमनुपानंमुखावहम् ॥

अर्थ—घृतपीकर उसके ऊपर गरम जल पीवे—तथा तेल पीके ऊपर व्योप पीवे—मांस स्नेह अथवा हड्डीका तेल पीकर ऊपरसँ मंडपीवे । तो सुखकारी होय याप्रकार स्नेहका अनुपानजानना ॥

भातकेसंगस्नेहदेनेयोग्य

स्नेहद्विषः शिशुनवृद्धान्सुकुमारान्छज्ञानपि ।

तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत् ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहसँ जिनको द्वेष (नफरत) है, तथा बाल—वृद्ध—सुकुमार मनुष्य और छश तथा तृषा करके पीडित ऐसे मनुष्यको गरमीके दिनोंमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिवावे ॥

यवागूकोसद्यःस्नेहकारित्व

सर्पिण्मतीवहुतिलायवागूः स्वल्पतंडुला ।

१ चावल कुल्फी इत्यादिक घान्य एक पल ले उसमें जल १ प्रस्थ डालके ओंटावे और गाडीकरे उसको व्योप ऐसा फहंतहै २ भातके पेंजको मंड अमा कहते है

सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥

अर्थ—तिलोंको कूट उसमें थोड़े चावल मिलाय घी और पानी उनमें ढालके बूल्हेपर चढायकै ओंटावे मंदाग्निसँ पतली ल्हपसीसी बनावे उसको यवागू कहते है यहयवागू कुछ गरम २ सेवनकरनेसँ उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न होती है अर्थात् सद्यस्नेहनकारिणी है ॥

घारोष्णदुग्धसैतत्कालधातुउत्पन्नहोतीहै

शर्कराचूर्णसंमृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम् ।

दुग्धाक्षीरंपिवेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥

अर्थ—मिश्रीका चूरा धीमें ढालके उस घीको बूल्हे परचढाय थोड़ा गरमकर दूधदुहनेके पात्र (दोहनी) में ढाले फिरउसपात्रमें गौकादूध उसीसमय गरम २ होय उसको पीवे असाकरनेसँ तत्काल स्नेहनहोताहै अर्थात् उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न करता है ॥

मिथ्योपचारसैजिसकोस्नेहनपचेउसकायत्न

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहोनजीर्यति ।

विष्टभ्यवापिजीर्यैतवारिणोष्णेनवामयेत् ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेके पश्चात् व्यायामादिक परिश्रम करनेसँ वो स्नेह पचेनही अथवा बहुत पीनेसँ नहीं पचा—अथवा मलके अवरोध करके जीर्णनही हुआ असे स्नेहाजीर्णी मनुष्यको गरम २ जल पीलाय कर उलटी करावे जिसे स्नेहके अजीर्णका दोष दूरहोय ॥

दूसरायत्न

स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिवेदुष्णोदकंनरः ।

ततोद्गारोभवेच्छुद्धोभक्तप्रीतिरुचिस्तथा ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेसँ यदि अजीर्णहुआ असी शंका होय तो गरमागरम जल पीवे जिसे शुद्ध उत्तम ढकार आकर अन्नके ऊपर रुचि आवे आतेही अजीर्णदूरहुआ असा जानना ॥

स्नेहनकरकेपित्तकोपहोतृपालगेउसकाउपाय

स्नेहेनपैतिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः ।

तदास्योदीयतेतृष्णाविपमांतस्यपाययेत् ॥

शीतजलं वामयेच्च पिपासातेन शाम्यति ॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी आधी पित्तकी प्रकृति उसमें वो मनुष्य घृतादिक स्नेह पदार्थ पीवे तो उसकरके उसमनुष्यकी अग्नि अत्यंत तीक्ष्ण हो तृपाको बढ़ावे उसतृपाके दूर करनेको उस मनुष्यको शीतलजल पिवावे तथा उलटीकरवावे कि जिसमें अत्यंत प्यासका लगना दूरहो ॥

वर्जितस्नेहीमनुष्य

अजीर्णावर्जयेत्स्नेहमुदरीतरुणज्वरी ॥

दुर्बलोरोचकीस्थूलोमूर्च्छार्तोमदपीडितः ॥

दत्तवस्तिर्विरक्तश्वर्वातितृष्णासमन्वितः ॥

अकालप्रसवानारीदुर्दिनेचविवर्जयेत् ॥

अर्थ—अजीर्णका विकार—उदररोगी—तरुणज्वरवाला—दुर्बलमनुष्य—मरुचिवाला—अतिस्थूल—मूर्च्छारोगी—मद्यपीनेसैं पीडित एवं वस्तिकर्मकराहुआ—तथा जिसको दस्त होतेहो—उलटी करताहो—प्याससे पीडित तथा अकालमें प्रसूता स्त्री इन सब रोगियोंको घृतादिक स्नेह पान नहीकरना चाहिये—तथा जिसदिन बदलसैं आकाश धिररहाहो उस दिनभी स्नेह पानकरना वर्जितहै ॥

उत्तमस्नेहकेलक्षण

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम् ॥

मृदुस्निग्धांगताग्लानिः स्नेहोवेगोथलाघवं ॥

विमलेन्द्रियतासम्यक्स्निग्धेरूक्षेविपर्ययः ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहपीकर अंगका रूखापन दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्धहो जैसैं उसके लक्षण दिखाते है कि वायु देहमें उत्तमरीतिसैं संचारकरे । तथा मल सचिक्रण होवे और अधिक उत्तरे । तथा शरीर नम्र और सचिक्रण होवे—तथा ग्लानि रहितहो । तथा घृतादिकस्नेहके सेवन करनेसैं किसी प्रकारका उपद्रव न होय शरीर हलका होय तथा इन्द्री निर्मल होवे एलक्षण उत्तमके है । और रूक्ष मनुष्य जो होताहै उसके लक्षण इनलक्षणोंसैं विपरीत होते है तात्पर्य यहहै कि देहमे यथार्थ स्नेहन (चिकनाई) न होनेसैं जो ऊपर लक्षणकहे है उससैं विपरीत लक्षण होते है ॥

१ जिसका ज्वर परिपक्व न हुआ हो वो मनुष्य ।

२ गुदाके द्वारा तैल आदिकी पित्रकारी मारनेका प्रयोग ।

अधिक स्नेहपानके उपद्रव
भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥
तन्द्रातिसारः पांडुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य घृतादिक स्नेह अधिक पीता है उसके लक्षण ये हैं कि अ-
न्नसैं द्रव्यकरे मुखसैं लारगिरे-गुदामें दाह होय—मल पतला उतरे—नेत्रोंमें तन्द्रा हो-अ-
तिसार होय—तथा शरीर पीले रंगका होजावे ये अतिस्निग्धके लक्षण जानने ॥

रूक्षकों स्निग्धकरना और स्निग्धको रूक्षकरनेका प्रकार
रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।
श्यामा कचणकाद्यैश्च तक्रापिण्याकसक्तुभिः ॥

अर्थ—रूक्षमनुष्यको स्निग्धपदार्थ—मक्खननिकाला हुआ, तत्कालका मट्टा-
तथा तिलोंका कल्क—तथा जोंका सत्व इत्यादिकरके स्निग्धकरे और स्निग्ध म-
नुष्यको रूक्ष पदार्थ जे सांमखिया—पसाई—धान्य और चना इत्यादिकरके रू-
क्षकरना चाहिये ॥

स्नेहसेवनका फल

दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्जितेन्द्रियः ।
मिर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहके सेवनकरनेसे मनुष्यके लक्षण—जैसे कि अग्निदीप्त हो
कोष्ठ शुद्ध होय—शरीरमें रसादिक धातु पुष्ट हो—तथा वो मनुष्य जितेन्द्री होय तथा
वृद्धावस्थारहित हो बल और कांति इनकरके युक्त होवे—एलक्षण होते हैं ॥

स्नेहसेवनके नियम

उष्णोदकोपचारी स्याद्ब्रह्मचारी क्षपाशयः । न वेगरो-
धी व्यायामक्रोधशोकहिमात्तपान् ॥ प्रवातयानपाना
ध्वभाष्या व्यासनसंस्थिता । नीचात्पुत्रोपवानाहः
स्वप्नभ्रूमरजांसि च । यान्यहानि पिवेत्तानि तावन्त्य-
न्यान्यपित्यजेत् ॥

अर्थ—घृतादि स्नेहसेवनकरनेवाला गरम जल पीवे—शीतलनपीवे—ब्रह्मचर्यसैं
रहे—रात्रिमें शयनकरे दिनमें न सोवे—मलमूत्रादिके वेगको रोकें नहीं उसी समय
त्यागे—दंडकसरत—क्रोध—शोक—सरदी—धूप—अत्यंत ह्वासाना—घोटे आदिकी

सवारी-मद्यआदिकापान-मार्गका चलना-बहुत बोलना-अत्यंतवैठारहना अत्यंत नीचा अथवा अत्यंतऊंचा मस्तकके नीचे तकिया धरके सोना-दिनमें सोना-धू-आके घरमें रहना-उठती धूरमें जानाआना इत्यादिक सब कर्म त्यागदेवे ये संपूर्ण नियम जितने दिन स्नेहपानकरे उतनेही दिन आगेतक पालनकरने चाहिये ॥

त्र्यहमच्छंमृदौकोष्ठेकूरेसप्तदिनंपिवेत् ॥

सम्यक् स्निग्धोऽथवायावदतःसात्म्यमिभवेत्परम् ॥

अर्थ—मृदुकोष्ठवाला ३ दिन, क्रूरकोष्ठवाला ७ दिन, अच्छ स्नेह पानकरें, मध्यकोष्ठवाला पांच दिन सेवनकरे, तब इसस्नेहका फल दीखे । सामान्यताकरके यह नियमहै किंतु जहांतक स्नेहपानके संपूर्ण लक्षण न मालुमहो तबतक स्नेहपानकरे तत्पश्चात् स्नेहपान सात्म्य अर्थात् अभ्यासमें आयजाताहै ॥

स्नेहव्यापत्तीकायत्न

तक्रारिध्रखडोद्दालयवश्यामाककोद्रवम् । पिप्पली

त्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु ॥ यथास्वंप्रतिरोगंच

स्नेहव्यापदिसाधनम् ॥

अर्थ—स्नेहके उपद्रवसँ यदि छुधा-तृपाजातीरहे वमन होय-पसीने आवे-तो रूक्षपान-रूक्षअन्नका भोजन-रूक्षबीपाधे-तक्र-आरेष्ट-खड (रुतान्न विशेष) उद्दाल (धान्याविशेष) यव-सामसिया-कोदोधान्य-पीपल-त्रिफला-सहत हरड-गोमूत्र-तथागूगलइत्यादिकदेवे-तथा जिस २ रोगपरजैसी २ चिकित्सालिखी है वो स्नेह व्यापत्ती रोगोंमें करनी चाहिये ॥

अथस्वेदविधि

स्नेहपानके अनंतर पसीने काढनेकी विधिकहते है तहां प्रथम पसीनेके भेद दिसाते है ॥

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मौस्वेदसंज्ञितौ ।

उपनाहोद्रवःस्वेदःसर्वेवातार्तिहारिणः॥

अर्थ—पसीना निकालना चारप्रकारका है उसके नाम जैसे-ताप-उष्ण-उपनाह-और द्रव ये चार प्रकारके पसीने वादीकी पीडा दूर करने वाले है ॥

दोषकीतारतम्यतासँस्वेदविधिः

महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः ।

दुर्बलेदुर्बलस्वेदोमध्येमध्यतमोमतः ॥

अर्थ—जिसकेदेहमें घोर वादीका रोग है उसके अंगोंसे अत्यंत पसीना काढना चाहिये, तथा हलका रोग होयतो उसके अंगसे थोडा पसीनानिकाले, और मध्यमरोगीके देहसे मध्यम पसीने निकालने चाहिये ॥

रोगविशेषमेंस्वेदविधिः

बलासेरूक्षणःस्वेदोरूक्षः स्निग्धःकफानिले । कफमे-
दावृतेवातेकोष्णगेहरवेःकरान् ॥ नियुद्धंमार्गगमनंगुरु-
प्रावरणंध्रुवं । चिंताव्यायामभारांश्वसेवेतामयमुक्तये ॥

अर्थ—कफका रोगहोनेसे रूक्षपदार्थ जो बालुकादिक उस्से देहका पसीना-निकालना और कफवायुका रोगहोनेसे स्निग्ध और रूक्षइनदोनो प्रकारके पदार्थोंसे पसीना निकालना चाहिये तथा कफ मेदोयुक्त वादीकारोग होनेसे—घरमें जिसजगे गरमी हो उसजगे बैठ अंगको सहन होय ऐसीथोड़ी गरमीलेनी चाहिये तथा सूर्यकी किरण अंगपरलेनी चाहिये । तथा कुस्तीकरे एवं कुछ थोडी रास्ता चले—कंबल, -धुस्सा, -इत्यादिक ओंढे—तथा चिंतापुक्तहोना चाहिये परिश्रमकरे तथा कोई भारीवस्तु अंगोपर धारण करनी—इतने उपायपसीने निकालनेके अर्थकरने चाहिये जिस्से कफमे दोपयुक्तजो वायुका रोग सो दूरहोवे ॥

पसीनेकाढनेयोग्यमनुष्य

येपानस्यंविधातव्यंवस्तिश्वापिहिदेहिनाम् ।

शोधनीयाश्वयेकेचित्पूर्वस्वेद्याश्वतेमताः ॥

अर्थ—जो नस्यकर्मके योग्यहै तथा वस्ति कर्मके योग्य तथा विरेचन देनेके योग्यउन सब मनुष्योंके अंगका पसीना प्रथम काढकर फिर नस्यादि उपाय करना चाहिये ॥

स्वेद्याः पूर्वत्रयोपीहभगंदर्यंशसितथा ।

आश्मर्या चातुरोजंतुः शमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥

अर्थ—भगंदररोगी—चवासीररोगी—और पथरीरोगी इनतीनोंको प्रथम पसीने निकालके फिर शस्त्रकर्म कर रोगको शमनकरना चाहिये ॥

पश्चात् स्वेदनीयमनुष्य

पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येमूढगर्भगदेतथा ।

कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंविनी ॥

अर्थ—जिसस्त्रीके पेटमें गर्भका शल होवे उसका पतन होने उपरांत तथा नौ महिनेके पश्चात् अथवा नौमहिनेके प्रथम प्रसूत होनेसे उसके देहका पसीना निकलवाना चाहिये ॥

स्वेदकर्मयोग्यदेशकाल

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥

अर्थ—ये चाच्यो प्रकारके स्वेद मनुष्यका आहार पचन होनेके अनंतर जिसजगे हवा न आतीहो उसजगे काढने चाहिये ॥

पसीनेकाढनेपरकिसमार्गसेदोपदूरहोतेहै ।

स्वेदाद्वालुस्थितादोषाः स्वेदः स्विन्नस्य देहिनः ॥

द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतर्गतायांतिविरेकताम् ॥

अर्थ—औषधादिक करके मनुष्यके अंगका पसीना काढनेके पश्चात् उसको तथावडे चासनमें तेल भरके उसमें मनुष्यको बँढानेसे उसके वातादिक दोपरसा दि सप्तधातुमें रहनेवालेभी कोष्ठीकेमध्येजानेसे वो दोपपतले होकर गुदाके द्वारा दस्तके साथ निकलते है । प्रथम दोपपसीनेके द्वारानभ्रहोकर कोष्ठमें जाते है वहाँसे दस्तोकं राहवाहर गिरते है यह इस श्लोकका तात्पर्य है ॥

स्वेदनमेंविधि

स्वेद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैः स्पृशेत् ।

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ—मनुष्यके देहकापसीना काढनेसे उसयोगकरके पेटके भीतरके दोपपतले होकर गुदाके द्वारादस्तोंमें निकलते है तबउसमनुष्यकी छाती में चंदनका लेपकरे जिससे प्रकृतिस्वस्थहोय । तथा जो मनुष्य तेलमें बैठाहुआ है उस योगसे उसके दोपपतले होकर गुदाके रास्तेसे दस्तोंके साथ निकलनेसे उमके नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतलता करनेके लियेलगाने चाहिये उसटंढकके करनेसे ग्लानिदूर होकर प्रकृति स्वस्थहोती है ॥

स्वेदकर्मवर्जितमनुष्य

अजीर्णादुर्वलोमेहीक्षतक्षीणपिपासितः ॥

अतिसारीरक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी ॥

मदात्तोर्गभिणीचैवनहिस्वेद्याविजानता ॥

एतानपिमृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यको अजीर्णहो, तथा दुर्बल मनुष्य—तथा जिसको प्रमेहहो, तथा उरःक्षत करके पीडित तथा जिसको अत्यंतप्यासलगरही हो वो तथा अतिसार—रक्तपित्त—पांडुरोगी—उदररोगी—मदार्त—येरोग जिसमनुष्योंके होय वो तथा गर्भिणीस्त्री—इतने रोगीनका पसीना नहीं काढना चाहिये ये पसीना काढनेमें अयोग्य है यदि इनरोगियोंके पसीना काढनेसँ ही रोगनष्टहोता दीस्वेतो हलके उपायसँ थोडा पसीना काढना चाहिये ॥

अल्पपसीनेकाढनेयोग्यस्थल

मृदुस्वेदंप्रयुंजीततथाहृन्मुष्कदृष्टिषु ॥

अर्थ—हृदय और अंडकोश तथा नेत्र इनका पसीना काढना होवेतो हलका काढे विशेषनहीं ॥

अत्यंतपसीनेनिकलनेकेदोष

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः ॥

पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्रशीतैरुपाचरेत् ॥

अर्थ—अंगेसँ बहुत पसीना निकालनेसँ सर्व संधियोंमें पीडा—तृषा—ग्लानि—भ्रम—रक्तपित्त—येउपद्रव होते है तथा अंगमें मरोडी उत्पन्न होती है । इनके शमनकरनेको शीतल उपाय करना कि जिससँ उपद्रव दूरहोवे ॥

उक्तचारप्रकारकेस्वेदोंमेंतापसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ॥

तेपुतापाभिघः स्वेदोभालुकावस्त्रपाणिभिः ॥

कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥

अर्थ—चारप्रकारके पसीनोंमें ताप इसनामकरके जो पसीना है इसको बालू—वस्त्र—हाथ—स्त्रीपडा—कपड़ेकी गैद और अंगार इनकरके बालूकादिक आदि जिस रमे जैसी २ शक्ती है तैसा २ पसीना उत्पन्न होता है । ये छःप्रकार कहेई इनकी क्रियाकैसे करे उसको कहते है स्त्रैरके अथवा कणसर लकड़ीके धूमरहीत जलते हुए कौले करके उसके ऊपरबालूको तपायके उसबालूको अंडके पत्तोंमें धरके उमपत्तेकी पुडिया बनाय उमपुडियामें मनुष्यके अंगोंकोमेके जिससँ अंगका पसीना निकले यह एकप्रकार है । तथा अंगारोपर अपने हाथ गरम कर रोगी के अंगोंकोसेके । अथवा रुअड कपड़ेकी गैदमी बनाय अंगारोपर गरम

करके उसगैदसैं रोगीके अंगसिकावे । तथा कपडेको गरम करके देहको सेके । अथवा अंगारो को स्त्रीपरेमें भरके उससुहाते २ स्त्रिपरेसैं सेककरे थेसवउपायप सीनेनिकालनेकेकहे इनसैं वैद्यको जिसउपायसै पसीने काढने हो काढे ॥

उष्मसंज्ञकस्वेदकेलक्षण

उष्मास्वेदःप्रयोक्तव्यो लोहपिंडोष्टिकादिभिः । प्रतप्तै-
रम्लसितैश्च काये रल्लकवेष्टिते । अथवा वातनिर्ना-
शिद्रव्यकाथरसादिभिः । उष्णैर्वटं पूरयित्वा पार्श्वे
छिद्रं निधाय चाविमुद्रयास्यं त्रिखंडा च धातुजां का
ष्ठवंशजां । षडंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं गुज्याद्विह-
स्तिकां ॥ सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतं । ह-
स्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणं ॥ पुरुषाया-
ममात्रं वा भूमिमुत्कीर्यखादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्धा तथाभ्यु-
क्ष्य क्षीरघान्याम्लवारिभिः ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शया
नं स्वेदयेन्नरम् ॥ एवं माषादिभिः स्त्रिन्नैः शयानः स्वे
दमाचरेत् ॥

अर्थ—उष्माइसनाम करके जो स्वेद (पसीना) है—उसकी क्रियाकहेते है । लोहेके गोलाको अथवा ईटको अग्रिमें तपायकर उसपर थोडा खट्टा पदार्थ छिडक कर रोगीको कंबल उढाय उस गोले करके अथवा उस ईटकरके रोगीके देहकोसेके, जिसै पसीनेनिकले यह एकप्रकार कहा । अथवा दशमूलैादि-
क जो वातहरणकर्ता औषधी उनका काढा अथवा उन औषधियोंका रस गर-
मकर मिट्टीके घडेकी भर उस घडेके मुखको बंदकर उमके एक वाजूमें छेडकर धातुकी अथवा लकडीकी तथा वांसकी नली बनाय उसनलीमें तीनसंधी करे तथा उसकामुख छःअंगुल लंबा और चौडा करे । अथवा गौके पुच्छके आकार करे, इस नलीका आकार हाथीकी सूडके समान होताहै, अतएव इसको ह-

१ छाछ, कान्नी, इत्यादिक खट्टे पदार्थ जानने । २ सालपर्गी, पट्टपर्गी, कटेरी, षडोकेटेरी, गोखरू, वेल्गिरी, अरनी, टेंटू, पादल और गंभारी, इनकी मूलकी दशमूल कहने है । ३ उसरडेके मुखमें डाटदेकर दहकते हुए कौलेनपर धरदेवे—जिसमें उस नलीकेरान्ते वाफ अच्छीरीतिमें निकले । ४ तावे, पीतल, लोहआदि धातुकी नली चाहिये ।

मदात्तोर्गर्भिणीचैवनहिस्वेद्याविजानता ॥

एतानपिमृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यको अजीर्णहो, तथा दुर्बल मनुष्य—तथा जिसको प्रमेहहो, तथा उरःक्षत करके पीडित तथा जिसको अत्यंतप्यासलगरही हो वो तथा अति-सार-रक्तपित्त-पांडुरोगी—उदररोगी—मदार्ति—येरोग जिसमनुष्योंके होय वो तथा गर्भिणीस्त्री—इनने रोगीनका पसीना नहीं काढना चाहिये ये पसीना काढनेमें अयोग्य है यदि इनरोगियोंके पसीना काढनेसे ही रोगनष्टहोता दीखेतो हलके उपायसे थोडा पसीना काढना चाहिये ॥

अल्पपसीनेकाढनेयोग्यस्थल

मृदुस्वेदंप्रयुंजीततथाहन्मुष्कदृष्टिषु ॥

अर्थ—हृदय और अंडकोश तथा नेत्र इनका पसीना काढना होवेतो हलका काढे विशेषनहीं ॥

अत्यंतपसीनेनिकलनेकेदोष

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः ॥

पित्तासृक्पिट्टिकाकोपस्तत्रशीतैरुपाचरेत् ॥

अर्थ—अंगसे बहुत पसीना निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा—तृष्णा—ग्लानि—भ्रम—रक्तपित्त—येउपद्रव होते हैं तथा अंगमें मरोड़ी उत्पन्न होती है । इनके शमनकरनेको शीतल उपाय करना कि जिससे उपद्रव दूरहोवे ॥

उक्तचारप्रकारकेस्वेदोंमेंतापसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ॥

तेपुतापाभिधः स्वेदोवालुकावस्त्रपाणिभिः ॥

कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥

अर्थ—चारप्रकारके पसीनोंमें ताप इसनामकरके जो पसीना है इसको बालू-वस्त्र—हाथ—सीपडा—कपड़ेकी गैद और अंगार इनकरके बालूकादिक आदि जिस रमे जैसी २ शक्ती है तैसा २ पसीना उत्पन्न होता है । ये छःप्रकार करके इनकी क्रियाकैसे करे उसको कहते हैं स्वरके अथवा कण्ठपर लकड़ीके धूमरहीन जलते हुए कौले करकेउमकेऊपरबालूको तपायके उसबालूको अंडके पत्तोंमें धरके उसपत्तेकी पुडिया बनाय उमपुडियामें मनुष्यके अंगोंकोमेके जिससे अंगका पसीना निकले यह एकप्रकार है । तथा अंगारोपर अपने हाथ गरम कर रोगी के अंगोंकोसेके । अथवा रूअड कपड़ेकी गैदसी बनाय अंगारोपर गरम

करके उसगैदसैं रोगीके अंगसिकावे । तथा कपडेको गरम करके देहको सेके । अथवा अंगारो को स्त्रीपरेमें भरके उससुहाते २ स्त्रिपरेसैं सेककरे येसवउपायप सीनेनिकालनेकेकहे इनसैं वैद्यको जिसउपायसैं पसीने काढने हो काढे ॥

उष्मसंज्ञकस्वेदकेलक्षण

उष्मास्वेदःप्रयोक्तव्यो लोहपिंडेष्टिकादिभिः । प्रतप्तै-
रम्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते । अथवा वातनिर्ना-
शिद्रव्यक्वाथरसादिभिः । उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे
छिद्रं निधाय चाविमुद्रयास्यं त्रिखंडा च धातुजां का
ष्ठवंशजां । पटंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं युज्याद्विह-
स्तिकां ॥सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृत्तं ह-
स्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणं ॥पुरुपाया-
ममात्रं वा भूमिमुत्कीर्यखादिरैः॥काष्ठैर्दग्धा तथाभ्यु-
क्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः॥वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शया-
नं स्वेदयेन्नरम् ॥एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानः स्वे-
दमाचरेत् ॥

अर्थ—उष्माइसनाम करके जो स्वेद (पसीना) है—उसकी क्रियाकहते है । लोहेके गोलाको अथवा ईटको अग्निमें तपायकर उसपर थोडा खट्टा पदार्थ छिडक कर रोगीको कंवल उढाय उस गोले करके अथवा उस ईटकरके रोगीके देहकोसेके, जिससै पसीनेनिकले यह एकप्रकार कहा । अथवा दशमूलादि-क जो वातहरणकर्ता औपधी उनका काढा अथवा उन औपधियोंका रस गरमकर मिट्टीके घडेको भर उस घडेके मुखको बंदकर उसके एक बाजूमें छेदकर धातुकी अथवा लकडीकी तथा वांसकी नली बनाय उसनलीमें तीनसंधी करे तथा उसकामुस छःअंगुल लंबा और चौडा करे । अथवा गौके पुच्छके आकार करे, इस नलीका आकार हाथीकी सूडके समान होताहै, अतएव इसको ह-

१ छाछ, कांजी, इत्यादिक खट्टे पदार्थ जानने । २ सालपर्णी, छटपर्णी, कटेरी, षडीकटेरी, गोतरू, वेलगिरी, अरनी, टेंट, पाडल और गंजारी, इनको मूलको दशमूल कहने है । ३ उसघडेके मुखमें डाटदेकर दहकते हुए कौलेनपर धरदेवे—जिसै उस नलीकेरान्ते वाफ अच्छीरीतिमें निकले । ४ तावे, पीतल, लोहआदि धातुकी नली चाहिये ।

स्तिशुण्डिका नाडी कहते है । फिर वायुसँ पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बै-
ठाकरके अंगमें घी अथवा तेल लेपकर उसको रिजाई अथवा कंवल उढाय उस
नलीको उसके भीतर करदेवे कि जिससँ वाफ लगकर अंगोंसँ पसीने निकले ।
अथवा मनुष्यके साढेतीन अथवा चारहाथ लंबा जमीनमें गड्ढा खोद उसमें
खैरकी लकडीभर अग्निजलायके कोलाकरे, फिर शीघ्र कोलान्को बाहर निका-
ल उसजमीनको दूध अथवा धान्यके पानी अथवा छाछ तथा कांजीसँ छिड-
ककर उस जमीनपर वातहारक औषधोंके पत्ते मिछायकर उसपर रोगीको
सुलायके उसके अंगसँ पसीने निकाले । इसी प्रकार उढद लेकर उनको थोडी-
वाफदे अथकच्चे सिजाय उस तपेहुए ठौरमें विछाय ऊपर सूती अंडके पत्ते आ-
दि वातहरक औषधीकेपत्ते डालके उसपर रोगीको सुलायके ऊपरसँ कंवल उ-
ढाय उसके अंगका पसीना निकलवावे । इसप्रकार उष्मसंज्ञक पसीनेके लक्ष-
ण जानने ॥

उपनाहसंज्ञकस्वेदकेलक्षण

अथोपनाहस्वेद्यं च कुर्याद्रातहरौषधैः ।

प्रदिह्य देह वातार्तक्षीरमांसरसान्वितैः ॥

अम्लपिष्टैः सल्वणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ॥

अर्थ—उपनाह इसनामका स्वेदहै उसकी क्रिया लिखते है । दशमूलादि बापु
हारक औषधको लाय कूटेके चूर्णकरे उसमें दूध और हरिणादिकके मांसका
स्नेह ये दोनो मिलाय थोडा गरमकर वायुपीडित मनुष्यके अंगोंको सुहाता २
ऐसा गाढा लेपकर वस्त्रादिकसँ बांधके पसीना निकाले । अथवा वातहारक
औषधका चूर्णकर छाछमें अथवा कांजीमें पीस उसमें थोडा सैधानिमक और
तिलकातेल मिलाय कुछगरम करके वायुपीडितके अंगमें सुहाता २ गाढा लेप-
कर कपडेसँ बांध उसकेअंगका पसीना निकाले ॥

दुसराप्रकारतथा महाशाल्वणप्रयोग

उपग्राम्यान्पमांसैर्जीवनीयगणेन च । दधिसौवीरक-

क्षारैर्वीरतर्वादिना तथा ॥ कुलित्थमापगोधूमैरतसी-

तिलसर्पपैः । शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥

एरंडमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिशुभिः । मिशिकृष्ण-

कुठरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः ॥ प्रसारण्यश्वर्गघाभ्यां
वलाभिर्दशमूलकैः । गडूचीवानरीवीजैर्यथालाभंसमा
हृतैः ॥ क्षुण्णैःस्विन्नैश्चवस्त्रेणवद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥
महाशाल्वणसंज्ञोययोगःसर्वानिलातिजित् ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस, अनूपमांस, जीवनीयगणकी औषधी, तथा गौकादही, सौवीर, सज्जीस्वार, जवास्वार, रेहकास्वार वीरतर्वादिगणकी औषधी और कुलथी, उदद, गैहू, अलसी, सौफ, देवदारु, निर्गुडी, कलौजी, अंडकी जड, अंडके बीज, रास्ना, मूली, सेहजना, छौटीसौफ, पीपल, वनतुलसी, पांचोनिर्मक, अनारदाना-प्रसारणी, असगंध, खरेटीकी जड, दशमूलकी दश औषधी, और गिलोय, कौचकेबीज, ये सब औषध जो मिलसके उनको लेकर कूट थोड़ीगरमकर कपड़ेमें पोटली बांधकर उसमें रोगीका अंगसेके, कि जिसमें संपूर्ण वायुकी पीड़ा दूरहो-वे । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहतेहै । इसप्रकार उपनाह संज्ञक स्वेद (पसीने) की विधि जाननी ॥

द्रवसंज्ञकस्वेदकेलक्षण

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नद्रव्यकाथेन पूरिते । कटाहे कोष्ठ-
के वापि सूपविष्टोवगाहयेत् ॥ नाभेः पडंगुलं यावन्म
श्रः काथस्य धारया । कोष्ठके स्कंधयोः सित्कस्तिष्ठे-
त्स्निग्धतनुर्नरः ॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषास्वेदये-
न्नरं । एकान्तरे द्वयंतरे वा स्नेहो युक्तोवगाहने ॥
शिरामुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तपयेत् । शरीरेवलमा-
धत्ते युक्तस्नेहावगाहने ॥ जलसित्तस्य वर्द्धते यथाम्

१ मुरगा, बकराआदि केमांसको ग्राम्य मांस कहते है । २ चकवा, -चकवी, -वतक जलमुरगावी और मडलीआदि जलसंचारी जीवोके मांसको अनूपमांस कहते है । ३ काकोली, -क्षीरकाकोली, -जीवक, -ऋषभक, -मेदा, -महामेदा, -जीवंती, -मुलहटी, -मुद्गपर्णी, -मापपर्णी—इन दशऔषधोके समुदायको जीवनीय गणकहते है । ४ कच्चे जो अथवा मुने जोओंको कूट पानीमें तीनादिन भिगोनेमें उस पानीको सौवीर कहतेहै, - इसी प्रकार गैहूका भी सौवीर होता है । ५ सैधा, -संचर, -विड, -समुद्र, -और रेहका निमक— इस पांचोको पंचलवण कहते तथा उपनाह संज्ञकस्वेदका दूसरा भेद महाशाल्वण प्रयोगहै

लेङ्कुरास्तरोः । तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्यजा
यते ॥ नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः । मुह-
र्त्तैकं समारभ्य यावत्स्यात्तच्चतुष्टयं । तावत्तदयगाहेत
यावदारोग्यनिश्चयः ॥

अर्थ—द्रव या नामका स्वेद उसकी विधि लिखते हैं । दशमूलादि वायु-
हारक औषधका काढा कर रोगीके देखके घी अथवा तेल लगाय उसको क-
ढाईमें अथवा तामेके बड़े पात्रमें वैठारके पूर्वोक्त गरमागरम काढेको अंगपर और
कंधेपर सहतीर धारडाले, इसीप्रकार तेलकी अथवा दूधकी अथवा घीकी धारडाले
परंतु जवतक वह काढा डालोके नाभिके छः अंगुल ऊपर तक न चढे । पश्चात्
मनुष्यको धर्मयुक्त होना चाहिये । इसप्रकार एक २ दिनके अथवा दो २ दिन
के अंतरसे करना चाहिये कि जिस्से शिराओंके मुखद्वारा रोमांचोंके मुखमें हो
कर तथा नाडीनके द्वारा वो स्नेहादिक पदार्थ शरीरके भीतर प्रवेश होकर श-
रीरको तृप्तकरके बल उत्पन्नकरे । इसमें दृष्टांत है कि जैसे वृक्षकी जड़में पानी-
देनेसे वृक्ष बढ़ता है उसीप्रकार तैलादिकमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सातधातु
बढ़ती है, और वायुका नाश होता है इसउपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा
उपाय नहीं है यह उपाय पराकाष्ठाका है । एकमूहूर्त्तसे लेकर चारमूहूर्त्त अर्थात् ए-
कमहर होनेपर्यंत तैलके पात्रमें बैठना चाहिये तथा जवतक आरोग्यता न दीखे
तावत्कालपर्यंत यही विधिकरे ॥

स्वेदकी समाप्ति

शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।

दीप्तेग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥

अर्थ—अंगकी शरदी और शूल इनकी शांति होनेपर तथा अंगका स्तंभ त-
था जड़पना ये दूरहोने पर एवं आग्निप्रदीप्त होनेपर तथा अंगमें मृदुपना आनेपर
रोगीके अंगसे पसीने न निकाले अर्थात् समाप्ति करदेवे ॥

पसीनेनिकालनेके अनंतर उपचार

सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांशुभिः शनैः ।

भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च विवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके अंगका पसीना काढाहो उसको तथा अंगमें तेल लगाया
हो उसको हलके २ गरम जलसे स्नानकरावे । तथा कफकारक पदार्थ भोजनमें

नदेवे तथा पारिश्रम न करे, इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदमें करना चाहिये । अब, आगे वमनकी विधिलिखी जाती है ॥

वमनर्मेऋतुप्रधान

शरत्काले वसंते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।

वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—शरद ऋतु, वसंत ऋतु, वर्षाऋतु, इनमें मनुष्यको वमन और विरेचन ये कुशल वैद्यको कराने चाहिये [कुशलवैद्यके लिखनेसे यह प्रयोजन है कि यह वमन विरेचनका देना अत्यंत सावधानीका काम है इससे पूर्ववैद्यसे वमन विरेचन लेनासर्वथा त्याज्य है ॥

वमनयोग्यमनुष्य

बलवंतं कफव्याप्तं हृष्टासार्तिनिपीडितम् । तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देग्रौ श्लीपदेर्बुदे । हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु । अपस्मारज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्त्रावे द्विजिह्वके । गलशुब्ध्यामतीसारं पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ मेदोगदेरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥

अर्थ—बलवान्मनुष्य, कफसैव्याप्त, हृष्टासत्सें पीडित (अर्थात् जिसके मुखसे लारगिरती) हो, तथा जिसको वमनका महावरा हो और धीरचित्तहो इनको वमनकरावे । तथाविषदोष, स्तनसंबंधी रोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोगी, कोडी, विसर्परोगी, प्रमेही, अजीर्ण, भ्रमरोगी, विदारिका, अपची रोग, साँसी श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, मृगीरोगी, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, ताल्वपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्त्राव, द्विजिह्वक, गलशुब्धी, अतीसार, पित्तकफरोग, मेदोरोग, अरुचि, इनरोगोंमें तथा इसीप्रकारके जो अन्यरोगहैं उनमें वैद्य रोगीको वमन करावे ॥

वमनकेअयोग्यमनुष्य

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः । ना-
तिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलक्षतातुरः ॥ मदात्तोवा-
लको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः । उदावर्त्यूर्ध्वर-
क्ती च दुःछर्दिः केवलानिली ॥ पांडुरोगिक्रिमिव्याप्तः
पठनात्स्वरघातकः । एतेर्प्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये
विपपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुक्वाथप्रपानतः ॥

अर्थ—तिमिररोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी, तथाकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणीस्त्री अत्यंतमोटा, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित, निरूहित कहिये गुदाद्वारा पिचकारी माराहुआ, तथा उदावर्तरोगी, उर्ध्वरक्ती, तथा जिससे वमनन सही जावे, जिसके केवल वादीका रोगहो, पांडुरोगी, कृमि-रोगसँ व्याप्त, वेदशास्त्रके अत्यंत पढने सँ जिसका कंठ वैठ गयाहो, इतने रोगियोंको वमन (उलटी करानेकी) औपध नहीं देनी चाहिये यदि ये पूर्वोक्त रोगवाले अजीर्णसँ अथवा विपदोप करके कफकरके व्याप्तहोवेतो इनको मुलह-टीके अथवा मुहुआकी छालके काढेको पिलायकर वमन करानी चाहिये ॥

वमनअयोग्य

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ।

अर्थ—सुकुमार (नाशुकमनुष्य) कृश, बालक-वृद्ध-डरपोक-इनमनुष्योंको वमनकी औपधी नदेनी चाहिये ॥

रद्दकरनेमेविहितपदार्थ

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षीरतक्रदघ्नीनि च । असाभ्यैः
श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्यदेहिनः ॥ स्निग्धस्वि-
न्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उलटी करानीहो उसको प्रथम पेटभरके यवागू पियावे

१ रक्तापित्तके कोप करके जिनके ऊपर मुलादिद्वारा रुधिरगिरे उसको उर्ध्वरक्ती ना-
नना-। २ कृश और बालक तथा वृद्ध-इनको वमन न करावे, इसप्रकार प्रथम वह
आपैहै परंतु निश्चय करनेके वास्ते यहांपर फिर कहाहै । ३ चावलका चूरा कर उ-
समें छः भाग पानी मिलायके आटावे, पतलीकरे इमको यवागू कहते हैं । -

अथवा दूध, छाछ, दही, ये पेटभरके पिवावे, तथा प्रकृति को जो न भावे वो पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर, मनुष्यके दोषोको उखाड़े जिसै मनुष्य अच्छीतरह उलटीकरे तथा जिसमनुष्यने घृतपान करा है उसमनुष्यको एकदिनके पश्चात् वमनकरावे तो अच्छीतरह वमन होवे ॥

वमनमेंहितकारीपदार्थ

वमनेपुत्र सर्वेषु संधवं मधु वा हितम् ।

वीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥

अर्थ—जितने वमनके प्रयोगहै उनमे सैधानिमक अथवा सहत इनका भेलन कराना चाहिये तो हितकारी होताहै । अथवा वीभत्स वमनदेवे और विरेचन इसै विपरीतदे अर्थात् दस्त देनाहोयतो घीके बिना देवे ॥

वमनमेंकाढेकाप्रमाण

काथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वाजलाढके ।

अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत् ॥

अर्थ—काढेकी औषधी १ कुडव प्रमाण लेकर कूट उसमें एक आढक प्रमाण पानी डाले जब ओंठकर आधारहे तबतक ओटावे फिर उतार छानके पिवावे ॥

वमनमें काढापानिका प्रमाण

काथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठामात्रा प्रकीर्तिता ।

मध्यमापण्मिताप्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको वमनकरना होय उसको नोप्रस्थ, काढापिलाना बड़ी मात्राहै, तथा छःप्रस्थ काढापाना मध्यममात्रा, और तीनप्रस्थकाढा पाना हलकी मात्राजाननी ॥

वमनविषयमें कल्कादिकोंका प्रमाण

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपला श्रेष्ठमात्रया ।

मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥

अर्थ—कल्क, चूर्ण, और अवलेह ये तीनपल मनुष्यको देनेसै बड़ी मात्राजाननी, तथा दोपल देनेसै मध्यममात्रा और एक एक पल देनेसै हीन मात्रा कहलातीहै । इसवास्ते वैद्यको यथायोग्य मात्रा देनी चाहिये ॥

वमनके उत्तममध्यमकनिष्ठवेग
 वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः ।
 षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरामताः ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकी औषध देनेसे सातवेग पर्यंत संपूर्ण दोष पढके आठवे वेगमें पित्तपढनेसे उत्तमवेग जानना । उसी प्रकार पांच वेगपर्यंत दोष पढकर छठे वेगमें पित्तपढनेसे मध्यमवेग जानना । तथा तीनवेग पर्यंत दोष निकलके चौथेवेगमें पित्तपढेतो कनिष्ठवेग जानने । जेदफे रद्दहोवे उतने वेग जानने अर्थात् रद्दहोनेको ही वेग कहते है ॥

वमन विरेचन आदिमे प्रस्थका प्रमाण
 वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।
 सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थ—वमनहोनेमें तथा दस्त होनेके विषयमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेना कहा है तहां १३ ॥ साढे तेरह पलका प्रस्थलेना । तथा फस्तखोलनेमें एक प्रस्थ रुधिर कढाना जहां लिखा है वहां परभी साढे तेरह पलका प्रस्थ जानना ॥

कफपित्तऔरवातहारकऔषधी
 कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ।
 सस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण औषध करके कफको जीते, तथा मधुर और शीतल औषधों करके पित्तको जीते । एवं मधुर और खार तथा अम्ल और गरम इनकरके वायु संमिले कफको जीते ॥

वातादिदोषोकेनिकालनेको पृथक्क औषधी
 लृप्णाराठफलैः सिंधुकफेकोष्णजलैः पिवेत् ॥
 पटोलवासानिवैश्च पित्ते शीतजलं पिवेत् ॥
 सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिवेत् ॥
 अजीर्णे कोष्णपानीयं सिंधुपीत्वा वमेत्सुधीः ॥

अर्थ—कफदोषमें पीपल और मैनफल तथा सैधानिमक इनसबके चूर्णको गरम पानीके साथ पीवे तो वमनके साथ कफ गिरे । तथा पित्तके दोषमें पटोलपत्र, और अद्दूसा तथा कडुअनीमके पत्ते इनका चूर्णकर शीतलजल डालके पीवेंतो

उलटीके साथ पित्त निकले । एवं कफवायुकी पीढामें मैनफलका चूर्ण दूधमें मिलायके पीवेतो उलटीके साथ मनुष्यके कफ वायु निकल कर पीढादूरहो । तथा अजीर्णमें गरमजलमें सैधानिमक डालके पीवेतो उलटी होनेसे मनुष्यका अजीर्ण दूरहो ॥

वमनकरतेसमयबाह्योपचार
वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितं ।
कंठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्विषक् ॥
ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत् ॥

अर्थ—रोगीको वमन करनेकी औपध देकर पृथ्वीमें घोटू टेककर केवरावर ऊंचे आसनपर चाहिये । अंडके पत्तेकी लंबी बारीक नाल लेकर मुखमें डालके हलके हाथसे धीरे २ कंठको स्पर्शकरे तो उसीसमय उलटीआवे इसप्रकार आगे पीछे उसको फिरायके वैद्य रोगीको उलटीकरावे । तथा उस उलटी करने वालेके कपालके दोनो भागोंको धीरे धीरे हलके हाथसे एक मनुष्य सिराता जावे ॥

दुष्ट वमन होनेके उपद्रव

प्रसेको हृद्ग्रहः कोठकंडुर्दुश्छर्दिताद्भवेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकी औपध देनेसे यदि उससे कोई विकार होयतो उसके मुखसे लारगिरे तथा हृदयमें पीडाहोवे, तथा देहमें खुजली होतीहै ॥

अतिवमनहोनेके उपद्रव

अतिवांति भवेत्तृष्णा हिकोद्गारोविसंज्ञिता ।

जिह्वा निः सर्पणं चाक्ष्णो व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः ॥

रक्तछर्दिष्ठीवनं च कंठे पीडा च जायते ॥

अर्थ—मनुष्यके अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत प्यासलगे, हिककी, डकारआवे, और अंग जडहोवे, तथा संज्ञाका नाशहो, जीभ बाहर निकलजावे, नेत्र जहाँके सहां ठैरजावे, वा चंचलहोवे, तथा भ्रमहोय, ठोडीका स्तंभहोय, अथवा पीडाहो, मुखकेरास्ते रुधिर गिरे, बारंबारधूके और कंठमें पीडाहोय ये लक्षण अत्यंत वमनके है ॥

अत्यंतवमनकायत्न

वमनस्यातियोगेन मृदुकुर्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके अत्यंत उलटी होतीहो उसके बंदकरनेको मृदु जुलाब देवे

उलटी करते२ जीभ भीतरीचली गईहो उसका यत्न

वमनान्तः प्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः ।

स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥

फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥

अर्थ—यदि उलटी करते २ मनुष्यकी जीभ भीतर चली गईहो उसके मनको प्रसन्नकर्त्ता जैसे खट्टे तीखे-मिष्ट और खारी पदार्थ भातके साथ खानेको देवे, तथा घृत और दूध भातके साथदेवे, तथा उसरोगीके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर नीचू अथवा नारंगी चूसकर साथ, ऐसा करनेसे मनुष्यकी जीभ ठिकानपर आयेके प्रकृतिस्थ होयै ॥

उलटी करते२ जीभ बाहरनिकलआईहो

उसका यत्न

निमृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत् ॥

अर्थ—यदि उलटी करते २ जीभ बाहर निकल आईहोवे तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभमें लेपकर वैद्य धीरे २ भीतर करदेवे

वमनसंनेत्रोंमेंविकारहोनेकायत्न

व्यावृत्ताक्षिण घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैः शनैः ॥

अर्थ—उलटी करते २ नेत्र फटजावे तो उसको वैद्यहाथोंमें धी चुपडकर नेत्रोंको सिरायकर ठिकानेपर स्थितकरे ॥

वमन करते२ ठोडी स्तंभित होगईहो उसका उपचार ॥

हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत् ॥

अर्थ—वमन करते करते ठोडी स्तंभित होगई होवे तो उसके अंगका पसीना निकाले, तथा कऋवायुनाशक नाकमें औषध डाले अर्थात् नस्य देय तो ठोडीका स्तंभितहोना जातारहे ॥

वमन करते२ रद्दमें रुधिर आनेलगे उसका उपचार॥

रक्तपित्तविधानेन रक्तछर्दिमुपाचरेत् ॥

अर्थ—यदि रद्द करते २ उलटीमें रुधिर गिरने लगे तो जोउपाय रक्तपित्तपर कहाँहै वो उपाय करके रुधिरकी उलटीको दूरकरे ॥

अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे उसका यत्न ॥

धात्रीरसांजनोशिरलाजाचन्दनवारिभिः ।

मथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥

शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्याः पीडाच्छर्दिसमुद्भवाः ॥ -

अर्थ—आवले, रसोतं, खस, चावलकीखील, लालचंदन, नेत्रवाला, इन छः औषधोंका मथंकरके उसमें घी और सहत तथा मिश्री डालके पिवावे तो उलटी करनेसे जो तृष्णादिक उपद्रव होतेहैं वो सब दूरहोय ॥

उत्तमवमनहोनेकेलक्षण

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्निवंचलाघवम् ।

कफपित्तविनाशश्चसम्यक्त्वांतस्यचेष्टितम् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यको उत्तमउलटी होगईहो उसके लक्षण—हृदय कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोषहै वोदूरहो कर उसकी शुद्धिहो तथा अग्निप्रदीप्त और अंगहलके होय तथा कफदोष और पित्तदोष येदूरहो ॥

उत्तमवमनहोनेकेपश्चात्पथ्य

ततोपराण्हे दीप्ताग्निमुद्गषष्टिकशालिभिः ।

हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा घृपं च भोजयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको उत्तम उलटी होनेके अनंतर तीसरे महरमें अग्नि प्रदीप्तहोवे ऐसा मूग और साठीचावल इनको मनके प्रियकारी भैसे जंगलीजीव हरिणादिकोंके मांस रसके घृपकेसाथ भोजनकरे ॥

उत्तमवमनकाफल

तन्द्रा निद्रास्यदौर्गन्ध्यकण्डूश्च ग्रहणी विषम् ।

सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम प्रकारकी उलटी होगईहो उसके नेत्रोंमें तन्द्रा और निद्रा तथा मुखमें दुर्गंधी और सृजली तथा संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् नही होंगे ॥

१ दारु हलदीके कादमें बराबरका बकरीका दूध मिलायके ओटावे जब गाढ़ा होजावे सुखायके जमायले उसको रसाजन कहते है । २ मूग और साठीचावल एक परलेवे उसमें १ प्रस्य पानीडालके ओटावे कुछ गाढ़ा कर पेजके समानकरे उसको घृप कहते है इसप्रकार हरिणादिकके मांसमें पानीडालके सिजावे पेजके समान करे उसको मांसरस कहतेहै तथा चोभी घृपहै ।

मथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥

शाम्यंत्यनेन तृष्णाद्याः पीडाच्छर्दिसमुद्भवाः ॥ -

अर्थ—आवले, रसोतं, खस, चावलकीसील, लालचंदन, नेत्रवाला, इन छः औषधोंका मंथकरके उसमें घी और सहत तथा मिश्री डालके पिवावे तो उलटी करनेसैं जो तृष्णादिक उपद्रव होतेहैं वो सब दूरहोय ॥

उत्तमवमनहोनेकेलक्षण

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ।

कफपित्तविनाशश्चसम्यक्त्वांतस्यचेष्टितम् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यको उत्तमउलटी होगईहो उसके लक्षण—हृदय कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोषहै वोदूरहो कर उसकी शुद्धिहो तथा अग्निप्रदीप्त और अंगहलके होय तथा कफदोष और पित्तदोष येदूरहो ॥

उत्तमवमनहोनेकेपश्चात्पथ्य

ततोपराण्हे दीप्ताग्निमुद्गपट्टिकशालिभिः ।

हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा घृषं च भोजयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको उत्तम उलटी होनेके अनंतर तीसरे प्रहरमें अग्नि प्रदीप्तहोवे ऐसा मूग और सांठीचावल इनको मनके प्रियकारी ऐसे जंगलीजीव हरिणादिकोंके मांस रसके घृषकेसाथ भोजनकरे ॥

उत्तमवमनकाफल

तन्द्रा निद्रास्यदौर्गन्ध्यकण्डूश्च ग्रहणी विषम् ।

सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम प्रकारकी उलटी होगईहो उसके नेत्रोंमें तन्द्रा और निद्रा तथा मुखमें दुर्गन्धी और सृजली तथा संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् नही होंगे ॥

१ दारु हलदीके कादमें बराबरका बकरीका दूध मिलायके ओटावे जय गादा होजावे मुतायके जमायले उसको रसानन कहते हैं । २ मुंग और सांठीचावल एक पल्लेवे उसमें १ प्रस्य पानीडालके ओटावे कुछ गादा कर पेनके समानकरे उसको घृष कहते हैं इसप्रकार हरिणादिकके मांसमें पानीडालके सिगावे पेनके समान करे उसको मांसरस कहतेहैं तथा वोभी घृषहै ।

वमनकर्ममेनिपिद्धपदार्थं
अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ।
स्नेहाभ्यंगं प्रकोपञ्च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ॥

अर्थ—भारीपदार्थ, शीतलजल, परिश्रम, और मैथुन, देहमें तेलकी मालिस करना, और क्रोधकरना, इसादिक विषय जिसदिन वमनकी औषध लेवे उस दिन वर्जितहै ॥

अथरेचनाधिकारः

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्य दद्यात्सम्यक् विरेचनम् ।
अवांतस्य त्वघः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥
मंदाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ।
अथवा पाचनै रामं वलासं च विपाचयेत् ॥

अर्थ—अब वमनके अनंतर विरेचन (जुझाव) की विधि कहते हैं । प्रथम मनुष्यको घृतादिक पिलायके स्निग्धकरे फिर उसको स्विन्नकरे अर्थात् उसको पसीने निकाले, फिर वमन करावे, वमनके अनंतर उत्तम प्रकार जुझावकी दवाइ देकर दस्तकरावे यदि बिना रद्दके कराये जो वैद्य दस्तकराताहै तो उस रोगीका कफ अधोभागमें (नीचे) जायकर ग्रहणी (छटी पित्तधरा और अग्नि धरा जो कला उसका) आच्छादन करेहै, कि जिसमें अग्निमांस तथा गौरव कहिये अंगोंका भारीपना और प्रवाहिका रोग (अतिसारका भेद) इन रोगोंको उत्पन्न करेहै अथवा अधस्रस्त (नीचेगण्डहुए) कफ और आमको पाचन (शुष्कपरंढमूलादिक) करके (पाचयेत्) अर्थात् पचावे ॥

हमको इस स्थलपर इतना लिखेयिन नहींरहा जाता कि हकीम लोग कहते हैं कि हमारे यहां जैसा जुझाव देनेका उत्तम कायदा है असा हिंदी वैदकमें ख्वाब (स्वप्न)मेंभी नहीं मिलनेका, जैसा हमारे जुझावसै विमारकी तवियत प्रसन्न रह-

१ वमनके अनंतर दस्त क्यों करावे ऐसी शंका होनेसे कहते हैं कि—भेड, चर्क, सुश्रुत, और वागमट इत्यादिक ग्रंथोंका यह अभिप्रायहै कि वमनदेकर, छः दिनके पश्चात् तीनदिन स्निग्ध करे फिर तीनदिन अंगमेंसे पसीने निकाले, फिर तीनदिन हलका भोजन देकर सोरहवे दिन रेचन (दस्त) करावे यह ग्रंथकारोंका अभिप्राय श्लोकमें “ सम्यक् ” पद धरनेसे जानाजाताहै ।

ती है और साफ होता है ऐसा वैद्य कभी नहीं करसकेगा, इसका कारण यही है कि हमलोग प्रथम मरीजको मुंजिस देकर मलको फुलाय मुलायम कर फिर दस्त-कराते है तो बहुत जल्द और बहुत सफाईके साथ दस्त होते है और विमारभी सुसी रहता है ॥

परंतु इस तरह कहनेवाले हकीमोंको हम निरे वैशापनंदन ही जाने है खैर मुसलमान हकीम कहेतो कहे, परंतु दो दिनसँ पैर बढानेवाले कि जिन्होंने अच्छीरीतिसँ हिकमतके भी पूरे २ ग्रंथ नहीं देखे, फिर हमारे ग्रंथ देखना तो उनको मानो एक बडाभारी समुद्रका तैरना है । जैसे हमारेही हिंदु हकीम हमारी और हमारे शास्त्रोंकी निंदा करते है तो हमको उनकी बुद्धिपर अत्यंत शोक होता है कि देखो जैसे कोई बालक अपने घरमें अमूल्य पदार्थ घरेहुए ओंको अंधकार वस न दीखनेसँ तुच्छ मोलके दूसरोंके पदार्थ लेकर अपने मनमें यह विचार करता है कि ऐसे पदार्थ अमूल्य हमने नहीं देखे और उनकी वो अत्यंत इज्जत करता है । यदि उसका पिता आदि कोई बडा मनुष्य उसको दीपकका उजेला दिखाकर घरके धरे हुए पदार्थोंके दिखलाये और उनका गुनभी बतलावे तो उस लडकेको कितनी सुसीहो और फिर वो दुसरेकी तुच्छ वस्तुओंकी तरफ देखेभी नहीं? क्यों देखे जिसके हाथमें चिंतामणी आगई वो कोठी पैसोंकी तरफ क्यों देखेगा ॥

इसी दृष्टांतके अनुसार हमारे हिंदुभाइ जो हकीमी विद्याके जालमें पडके अपनी अमोल वैद्यविद्याका प्रभाव न जानके इसकी निंदा करते है वो उक्त बालकके बतौर है; यदि उनको उनके घरकी धरीहुई वस्तु दिखलाई जाय तो अवश्य फिरजो दुराग्रही और जाहिल नहीं है वो इसकी प्रशंसा करते २ एक-जावेगे और उनको यह निश्चय होजावेगा कि हकीमी और डाक्टरी भादि विद्या हमारी ही उच्छिष्ट (जूठन) है-

उन भोलेभाले भाईयोंको हम इसजगे हिंदी जुल्लावकी विधि दिखलाकर कहते है कि हमारे हिन्दी वैद्यकका कायदा ठीकहै कि अन्य मुसकके हकीमोंका कायदा ! ॥

अब आप देखिये कि हमारे प्रथक जिसको जुल्लाव लेनाहो वो प्रथम घृतभादिको पीवे कि जिससँ देहकी रगरग और नाडीआदिकि जिन्में मवाद भराहै वो अत्यंत चिकनी होजावे । बाद इसके उसरोगीके पसीने निकाले, पसीने निकालनेका यही कारणहै की प्रथम धीके पीनेसँ उसका देह चिकनाहो गया फिर जो स्वेदन करातो जहा २ पर मवाद विकट रहाया वो पसीनेके निकालनेही तत्काल सबदेहसे अलगहो गया । जैसा स्नेहन और स्वेदनमें मवाद फूलताहै

और ढीला पड़ता है ऐसा आप लाख मुंजिस पिलायाकरो कभी नहीं मवाद मुलायम होगा ? इसीसे हम लोगोमें मुंजिस नहीं देते ॥

अब पीछे कराई उलटी तो जितना छातीके ऊपर कफ जमा हुआ है वो सब निकलजावेगा यदि इसको विना निकाले जुलाव देवे तो वो कफ नीचे जायकर मंदाग्नि; प्रवाहिका आदि रोगकरता है इसी कारण रोगीको बलाबल विचारके रद्द करावे जिस्से ऊपरका भाग साफहो जावे ॥

फिर दीना जुलाव तो वो सब मवाद फुलाहुआ और अलग धराहुआ जल्द निकल जावेगा, फिर भी उसको देहमे रहे हुए मवाद साफ करनेको वस्तिकर्म करतेहै । अर्थात् दवाइयोंके रसकी पिचकारी उसकी गुदामें मारते है कि जिस्से रहा सहा विलकुल मल साफ होजावे । इसप्रकार पूर्ववस्ती और उत्तर वस्ती तथा शिरोवस्ती आदि अनेक प्रकारसे हमारे रोगीको साफ करना लिखाहै

इसरीतिसैं जब वो शुद्धहोजाता है तब नकाहत बहुत आयजातीहै इसके वास्ते फिर बृंहण चिकित्सा द्वारा उसको पुष्ट और बलवान करनेकी विधि लिखीहै इसप्रकार शुद्धहुए मनुष्यके कदाचित् रोग नहीं होते इसीसे हमारे शास्त्रमें जहां लिखाहै तहां यही आज्ञाहै कि “ ये तु संशोधने शुद्धा न तेपा पुनरुद्भवः ”

वाकी संपूर्णविधि इस हमारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरमें गौर करके देखिये और जिनको जो शंकाहोवे वो हमसे पूछे हम अपनी बुद्धिके अनुसार उनका समाधान करेगे—इसीप्रकार प्रत्येक वस्तु हमारे शास्त्रसेही अन्य विलायतवालोंने ली नीहै कहांतक लिखे ॥

दस्तोंका दूसरा प्रकार

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्य रेचनम् ॥

अर्थ—घृतदुग्धादिक स्नेहद्रव्य करके स्निग्ध मनुष्यको तथा पिंडेष्टिकादि करके स्विन्न (अर्थात् जिसके पसीना काढाहो) असे मनुष्यको दस्त कराने चाहिये ॥

विनावमनकेदस्तकरानेयोग्य

शरदतौ वसंते च देहशुद्धयैर्विरेचयेत् ।

अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः ॥

अर्थ—शरदऋतुमें और वसंतकालमें मनुष्यके शरीरशुद्धीके वास्ते जुलाव देवे कि जिस्से देह शुद्धीहोकर शरीर उत्तमदीखे । तथा उक्तकालके सिवाय दू-

१ माटीका गोला टिकिया आदि करके ।

सरे कालमें रोग उत्पन्नहोनेसे उसकालमें वैद्य रोगीका अच्छीरीतिसे विचार करके दस्तकरावे तात्पर्य यहै कि शरद और वसंतऋतुमें विना वमनके भी दस्तकरावे परंतु अन्य ऋतुमें नहीं ॥

दस्तकरानेयोग्यरोग

पित्ते विरेचनं दद्यादामोद्भूते गदे तथा ।

उदरे च तथाध्माने कोष्ठाशुद्धौ विशेषतः ॥

अर्थ—पित्तके विकारमें, आमवात, उदररोग, अफरा, और, बद्धकोष्ठ (मलनउतरे) इन रोगोंमें वैद्यको विशेषताकरके दस्तकराने चाहिये ॥

दोषदूरकरनेमें विरेचनको उत्कृष्टता

दोषाःकदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः ।

येतु संशोधने शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥

अर्थ—कफादिकदोष लंघन और पाचन औषधसें यद्यपि शमन (शांति) हो जातेहै फिर कालपायकर कुपित होतेहै, परंतु जो दोष वमन विरेचन आदि-संशोधन करके शुद्धहुए है उनदोषोंकी फिर कदाचित् उत्पत्ती नहीं होती अर्थात् संशोधन द्वारा दोष जडसें नष्टहो जाते है ॥

दस्तकरानेयोग्यमनुष्य

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगंदरी । अर्शः पां-

डुदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥ योनिरोगप्रमेहार्ता

गुल्मष्ठीहव्रणादिताः । विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविपूची

कुष्ठसंयुताः ॥ कर्णनासाशिरोवक्रगुदमेद्भ्रामयान्विताः

यकृतशोथोक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलादिताः ॥ शू-

लिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥

अर्थ—जीर्णज्वर, बच्छनाग विपादिकसें व्याप्त, वातरक्ती, भगंदर, घवासीर, पांडुरोगी, उदररोगी, गाढकारोगी, हृदयरोग, अरुचि, प्रमेह, योनिरोग, गोलाबाला, तिल्ली, व्रणरोगी, विद्रधि, वमन, विस्फोटक, विपूची (हैजा) कोठ,

१ उदररोगीको दस्तकरावे ये प्रथम कह आये है परंतु विशेषता दिखानेकी यहांपर फिर कहाहै । २ देखो हैनामें दस्त करना स्पष्ट लिखाहै परंतु यह लोक विरुद्ध होने से वैद्यको वर्जित है ।

कर्णरोग, नासारोग, मस्तकरोग, मुखरोग, गुदारोगी, लिङ्गमैत्रपदंशादिकरोग, कलेजेकारोगी, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, सोमरोग, क्षारजन्यविकार, वातरोग, शूलरोग, और मूत्रावातरोग, इतनेरोगोंसे व्याप्त मनुष्यदस्तकराने योग्य है अर्थात् इतनेरोगवाले मनुष्योंको दस्तकरना चाहिये ।

दस्तदेनानिषेध

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः । शांतस्त्वृ
षार्तःस्थूलश्चर्गभिणी च नवज्वरी ॥ नवप्रसूतानारी
च मंदाग्निश्च मदात्ययी । शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न-
विरेच्या विजानता ॥

अर्थ—बालक, अतिवृद्ध, अतिस्निग्धमनुष्य, उरःक्षतकरकेक्षीणमनुष्य, मयकरकेयुक्त, श्रमित (जोमेहनतकरनेसैथका) है, प्याससँघबरायाहुआ, अत्यंतमोटा मनुष्य, गर्भिणीस्त्री, नवीनज्वरकरकेपीडित, नवप्रसूतास्त्री, मंदाग्निवालामनुष्य, मदात्ययरोगी, शल्यकरकेपीडित, तथा रूक्ष (निस्तेज) मनुष्य इनको चतुरवैद्य दस्त न करावे [जो करावेतो वो मूर्खजानना]

मृदु मध्यऔरक्रूरकोष्ठ

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः । बहुवातःक्रूर
कोष्ठो दुर्विरेच्यः सकथ्यते । मृद्वीमात्रा मृदौकोष्ठे मध्यकोष्ठे
च मध्यमा । क्रूरे तीक्ष्णामता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका कोठा अत्यंत पित्तकरके व्याप्त है वो मनुष्य मृदुकोष्ठ (नरमकोठेवाला) जानना । तथा जिसके कोठेमें अत्यंत कफहोवे वो मध्यमकोष्ठका जानना । तथा जिसके कोठेमें अत्यंत वायूहोवे वो मनुष्य क्रूर (कठिन) कोठेका जानना । यह क्रूरकोठेवाला दस्त करानेमें दुस्वदाई है [अर्थात् इसको करडीसँभी करडी दवादेने परभी दस्त नहीं होते] और जिसका नरमकोठा है उसको मृदु (नरम) औषधकरके मृदुमात्रादेवे । तथा जिसका कोठा मध्यम है उसको मध्यम औषध करके मध्यम मात्रादेनी । तथा जिसका कोठा क्रूर है उसको तीक्ष्ण औषध करके तीक्ष्णमात्रा देनी चाहिये । वो औषध आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

१ तथा मंदाग्निवालेको भी वैद्य दस्त न करावे कारण कि रहीसही जो जठराग्नि है वो भी दस्त करानेसे शांति होजाती है । २ कांच. काटा- सुई. नल. इत्यापिक शरीरमें रहनेसे जो दुष्ठी होता है उसी शल्यार्दित जानना ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोर्मे मृदुमध्यमादिक औषध
मृदुद्राक्षापयश्चंचुतैरपि विरच्यते ॥ मध्यकस्त्रिवृता-
तित्ताराजवृक्षैर्विरच्यते ॥ क्रूरः स्फुरूपयसा हेमक्षीरी
दंतीफलादिभिः ॥

अर्थ—जिसका नरमकोठाहै उसको कालीदास, दूध, और अडीकेतेलसैही दस्त होतेहैं और जिसका मध्यमकोठाहै उनको निसोथ, कुटकी, और अमल-तासकागूदा इन तीनऔषधोकरके दस्तहोतेहैं अतएव एही औषध देवे । तथा जिसका क्रूरकोठाहै उसको धूहरकादूध, हेमक्षीरी (चौक) जमालगोटा, आदि शब्दसै जलफ इन्द्रायनकीजड सनाय आदि इन करके दस्त करावे, तो दस्तहोवे परंतु वेद्यको उचितहै कि इसमें विपरीत न करे अर्थात् मृदुकोठेवालेको क्रूरको-ठेकी औषध नदेय, और क्रूरकोठेवालेको नम्रकोठेकी न देवे ।

दस्तोंकीहीनोत्तमादिमात्रा

मात्रोत्तमाविरेकस्य त्रिंशद्भेगैः कफांतिका ।

वेगैः विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥

अर्थ—दस्तके वेग ३० होकर अतके दस्तमें कफगिरेतो उत्तममात्रा जाननी तथा दस्तके २० वेगहोकर कफ निकलेतो मध्यम और दशवेग होनेके उपरांत यदि कफगिरने लगेतो हीन मात्रा जाननी । यदि दस्तचहिये जिनने होवे परंतु जबतक कफ नहीं निकले तकतक जुलाव उत्तम नहीं कहलाता, आव और कफके निकलनेपरही जुलावकी तारीफहै ।

दस्तोंमेंकाढेआदिकीमात्राकाप्रमाण

द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलंभवेत् ।

पलार्द्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचने ॥

अर्थ—दस्तहोनेमें दोपल काढादेनेसै उत्तम दस्त होतेहै, और एकपल देने-सै दस्त मध्यमहोते है, तथा अर्द्धपल (दोतोले) देनेसै दस्त कनीय होते है ॥

१. आँव ये नाभिके चारचो तरफ लिपटी है और ऊपरसै बढामारी मलका लपेटा ल-गाहुआ है. जब यह प्राणी दस्तकी दवाई लेताहै तो ऊपरके मलके लपेटेमेंसै थोडाबहु-त मल निकलताहै परंतु जब आम निकलनेको होती है तब इसप्राणीके नाभिके चारोतर-फ थोडा बहुत मरोडा होने लगता है उस समय जाननाकि अब आम निकलेगी ।

दस्तोंमें कल्कादिकों का प्रमाण
कल्कमोदकचूर्णानां कर्षमध्वाज्यलेहतः ।
कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥

अर्थ—कल्क, -मोदक (लहडू) और चूर्ण ये प्रत्येक सहत और घीमें मिलायके, कर्ष १ दस्तहोनेके अर्थ देवे, अथवा—अवस्था और रोग इनका तारतम्य विचारके दोर्ष अथवा पलमात्र देने चाहिये ॥

वातपित्तकफमें औषधी

पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्वाथादिभिः पिवेत् । त्रिफला-
क्वाथगोमूत्रैः पिवेत् व्योषं कफार्दितः ॥ त्रिवृत्सैधवशुं-
ठीनां चूर्णमम्लैः पिवेन्नरः । वातार्दितो विरेकाय जां-
गलानां रसेन च ॥

अर्थ—पित्तकी अधिकतामें—निसोथका चूर्ण कर दाखके काढेमें मिलायके देवे, आदि शब्दकरके गुलकंद, गुलाबकेफूल, -सोफ, -सनाय इत्यादिकके काढे सैं देवे । और कफके प्रकोप होनेसैं त्रिफलाका काढा और गोमूत्र दोनोको मिलाय उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, इनका चूर्णडालके देवे । तथा जो मनुष्य वायुके कोपसैं पीडितहो उसको निसोथ, सैधानिमक, और सोंठ, इनका चूर्णकर नीचूके रससैं देना चाहिये । अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ देवे तो दस्तहोय ॥

अन्य औषधकरके दस्तोंका विधान

एरंडतैलं त्रिफला क्वाथेन द्विगुणेन च ।
युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा नाचिरेण विरिच्यते ॥

अर्थ—अंडीके तैलसैं दूना त्रिफलेका काढा मिलाय दोनोको एककरके पीवे अथवा उसअंडीके तैलको दूधमें मिलायके पीवेतो बहुत जल्दी दस्तहोवे ॥

ऋतुभेदकरके दस्तकी विधि

त्रिवृतांकौटवीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ।
समृद्धीका रसक्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोथ, -इन्द्रजो, -पीपल, -सोंठ, -द्राम्यकारस और सहत इन औषधोंको दस्तहोनेके वास्ते वर्षाकालमें देना चाहिये ॥

शरदकालमेंविरेचन

त्रिवृदुरालभा मुस्ता शर्करादिव्यचंदनं ।
द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये ॥

अर्थ—निसोय,—धमासा,—नागरमोथा,—शकर,—उत्तम सपेद चंदन,—और
मुलहटी इनका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलाय शरद कालमें पीवे, तो इस्ते
दस्त होवे । ये दस्त शीतलहै असा जानना चाहिये ॥

हेमंतऋतुमेंविरेचन

त्रिवृता चित्रकं पाठामजाजिसरलां वचां ।
हेमक्षीरी च हेमते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ॥

अर्थ—निसोय,—चित्रक,—पाठकीजड,—जीरा, देवदारु, वच, और चोक,—
अथवा पीलादूधकाधूहर,—इनका चूर्णकर गरमजलसें हेमंतऋतु (अगहन और
पौषमास) में लेवे तो दस्तहोय ॥

शिशिरऔरवसंतमेंविरेचन

पिप्पली नागरं सिंधु श्यामात्रिवृतया सह ।
लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम् ॥

अर्थ—पीपर,—सोंठ,—सैधानिमक,—विधायरा,—और निसीय इन औषधोंका
चूर्णकर सदतमें निलायके शिशिरऋतु और वसंतऋतुमें लेवेतो इस्ते दस्तहोय ॥

ग्रीष्मऋतुमें विरेचन

त्रिवृताशर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोयका चूर्णकर उसमें मिश्री मिलायके दस्तहोनेके वास्ते ग्रीष्म
(गरमीकी) ऋतुमें सेवनकरे तो दस्तहोय ॥

सुखसें दस्तहोनेके लिये अभयादि मोदक

अभयामरिचं शुंठी विडंगामलकानिच । पिप्पलीपि-
प्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ॥ एतानि समभागानि
दंती च द्विगुणा भवेत् ॥ त्रिवृदप्रगुणाज्ञेया पद्मगुणा
चात्र शर्करा ॥ मधुना मोदकं कृत्वा कर्पमात्रप्रमाणतः ।
एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ तावद्विर-

च्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेव्यते ॥ पानाहारविहारेषु भवे-
न्निर्यंत्रणं सदा ॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥
विदाहृष्टीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥ वातरोगं
तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीं पृष्टपाश्वोर्जुजंघ-
नकटचूदररुजं जयेत् ॥ सततं शीलनादेष पलितानि
विनाशयेत् ॥ अभयामोदकोह्येतद्रसायनवरास्मृता ॥

अर्थ—हरड, कालीमिरच, सोठ, वायविडंग, आवले, पीपर, पीप-
रामूल, दालचीनी, पत्रज, और नागरमोथा, ये दश औषध समान भागले तथा
दंतीकीजड, तीनभागले, निसोथ आठभाग, मिश्री छःभाग इस प्रमाण सब
औषधोंके भागले कर सबका चूर्णकर सहतडाल एकएक तोलेकी गोली बनावे,
इसमेंसे एकगोली प्रातःकाल दस्तहोनेके अर्थ भक्षणकरे ऊपरसे थोडा शीतलज-
ल पीवे, और जबतक दस्तहोवे तब तक गरम पदार्थोंका सेवन न करे, तथा
पान और भोजन तथा विहार कहिये परिश्रमादिक इनको सदैव नियमित (प
रमाणका) करे, कि जिस्से विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खांसी, भगंदर, कुष्ठ,
गुल्मरोग, ववासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, दाह, तिष्ठी, प्रमेह, राजयक्ष्मा,
नेत्ररोग, वातरोग, पेटकाफूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग, और पीठ-पसवाडे-
कमर-ऊरु-जांघ-उदर-की पीडा इन सबरोगोंको दूरकरे । इस मोदकको
अभयादिमोदक कहते है । यह अभयादिमोदक निरंतर सेवन करनेसे पलित
(सपेदवालोंका होना) दूर होय और कालेवालहो यह अभयादि मोदक उत्तम
रसायन रूप है ॥

दस्तोंकोसहायकरनेवालेपदार्थ

पीत्वाविरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुपी ।

सुगंधं किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरः ॥

अर्थ—मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उसके नेत्रोंको शीतलजलसें,
छिडके और सुगंधित वस्तु (अतर आदि अर्गजा आदि) सुंघावे, तथा बीडा
घवावे इत्यादि विधिके करनेसे उत्तम प्रकारके दस्तहोते है ॥

दस्तहोनेपररहनेकेनियम

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयन्ने स्वपेततः ।

शीतांतु न स्पृशेत्कापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः

अर्थ—दस्त होनेके अनंतर हवामें न बैठे, मल मूत्रका जव २ वेग आवे उ-
सी वखत त्यागे रोके नहीं, जबतक दस्तहोय तबतक सोवे नहीं [जुल्लामें
किसी २ को निद्रा अधिक आती है] शीतलजलका स्पर्श करे नहीं । दस्तोंमें
गरमजल वीच २ में पीतारहे ऐसा करनेसें उत्तम दस्त होतेहै ॥

दस्तोमेंनिकलनेवाली वस्तू
बलासौषधपित्तानि वायुर्वाते यथा व्रजेत् ।
रेकात्तथा मलंपित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥

अर्थ—वमनकी औषध लेनेसें कफ तथा जो औषध लीनी है वो एवं पित्त
और वायु ये पदार्थ जैसें वमनेके साथ बाहर गिरते है ।उसी प्रकार दस्तकी औषध
लेनेसें मल-पित्त और जो औषधलीनी है वो एवं कफ ये पदार्थ गुदाके द्वारा
बाहर गिरते है ॥

दुष्टविरेचनकेअवगुण

दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता । पुरीष
वातसंगश्च कंडुमंडलगौरवाः ॥ विदाहो रुचिराध्मा-
नं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ।

अर्थ—उत्तम दस्त न होनेसें इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, कूत्तमेंशूल, म-
ल और अधोवापु इनकी अप्रवृत्ति, शरीरमें सुजली, तथा चकत्ते, ये उत्पन्नहो
तथा अंगोंका जडपना, दाह, अरुचि, पेटका फूलना, भ्रम और वमन ये उप-
द्रवहोते है ॥

(जिसकेउत्तमदस्तनहुएहोउसकायत्न)
तं पुनः पाचनैःस्नेहैःपक्कासंस्नेह्यरेचयेत् ।
तेनास्योपद्रवायांति दीप्तोग्निर्लघुतामवेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम जुल्लाम न हुआहो उसे आरग्वधादि पाचन काठ
देकर आमको पचन करावे, फिर उसको स्नेहपान (घृतापिलायके) उसके
कोठेकी चिकनाकरके फिर दस्तकरावे । ऐसा करनेसें संपूर्ण उपद्रव दूरहोकर
जठराग्नि प्रदीप्तहोय, और अंग हलका होयहै ॥

अत्यंतदस्तहोनेकेउपद्रव
विरेकस्यातियोगेन मूच्छांभ्रंशो गुदस्य च ।

शूलं कफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभं ॥

मेदोनिभं जलाभासं रक्तंचापि विरिच्यते ।

अर्थ—मनुष्यको बहुत दस्तहोनेसँ मूच्छा—गुदा (कांछका) निकलभाना और गुदामें पीडा—ये उपद्रव होते हैं । तथा कफ अत्यंतगिरे, और मांस धुले हुए पानीके समान तथा मद्यके समान अथवा चर्वीके सामान तथा जलके समान गुदाके द्वारा जल और रुधिरभी गिरे हैं ॥

अत्यंतदस्तोंकाउपाय

तस्य शीतांबुभिः सिक्तं शरीरं तंडुलांबुभिः ।

मधुमिश्रैस्तथाशीतैः कारयेद्गमनं मृदु ॥

अर्थ—दस्त अत्यंत होनेसँ मनुष्यके शरीरको शीतलजलकी धारसँ भिगोवे तथा चामलके धोवनके जलमें सहत मिलायके पिवावे, तथा नरम वमन करावे, तो ऐसा करनेसँ अत्यंत दस्तोंकी शांति होय ॥

दस्तबंधहोनेकाउपाय

सहकारत्वचःकल्को दध्नासौवीरकेन वा ।

पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ॥

अर्थ—आमकी छालको गौकी छाछमें अथवा सौवीरमें पीस कल्ककर नाभीके ऊपरलेपकरे तो अत्यंत दस्तहोना बंदहोय ॥

अजाक्षरिं पिवेद्वापि वैकिरंहारिणं तथा । शालिभिः

पट्टिकैः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् । शीतैः संग्राहि

भिर्दिव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥

अर्थ—दस्त बंद होनेवास्ते बकरीका दूध पिवावे । अथवा विष्किर पक्षी

१ कच्चेजों अथवा भुनेजोंको कूट उसमें पानीडालके उस पात्रका मुख बंदकर तीन दिन धरा रहनेदे तो सौवीर बनकर तयारहो इसीप्रकार गेंदूका भी बनायलेना ।

टीका कारणेन दस्त बंद करनेका विषय होनेके कारण सौवीर शब्दकरके कांजी लेना ऐसा कहा है । उसकांजी बनानेकी विधि इस प्रकार है कि एकमिट्टीका पात्रलायके उसके भीतर सरसोंकातेला चुपदेवे फिर उसमें निर्मल जल भरके राई,—जीरा,—सैधानि मक,—हींग,—सोंठ,—हलदी,—इन छःऔषधोंका चूर्ण तथा भातसाहितपेन,—कुलथी,काकादा,—ओर थोड़े वांस्केपत्तेये सब वस्तु उसपात्रमें डाले तथा धीके तलेहुअे उबदके बडे दस पाच उसमें डाले,—उसका मुख बंदकर तीनदिन धरा रहनेदे जब उसमें खटाईकी वा स आने लगे तब जानेकी कांजी बनकर तयार होगई ।

लवाआदिका मांसरस, तथा हरिणका मांसरस सेवन करे, तथा सांठी वा साली चावलका भात करके थोडा स्वाय, अथवा ममूरको सिजायके थोडी स्वाय, और मी अनार आदिशब्दकरके शीतल और ग्राहक अंसे पदार्थ सेवनकरे कि जिसै दस्त बंदहोवे ॥

उत्तमजुल्लावहोनेकेलक्षण

लाघवे मनसस्तुष्ट्या मनुलोभगते निले ।

सुविरक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥

अर्थ—उत्तम दस्तहोनेसै देह हलकाहो जावे, चित्तमें प्रसन्नता,—अधो वायुका स्वस्थानमें गमन,—इतने लक्षण होनेसै उस मनुष्यको दस्त उत्तमहुए अंसा जानना । उसको रात्रिके समय पाचन (सोठ,—अंडकीजड,—और धनिया, ये ती न औषधोंका काढा पाचनार्थ देवे) ॥

उत्तमजुल्लावहोनेकाफल

इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो बन्धिदीप्तता ।

धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥

अर्थ—जुलावके लेनेसै मनुष्यकी इन्द्रियोंमें बलआवे, बुद्धिप्रसन्नहो,—तथा जठराग्नि प्रदीप्त, और धातु तथा अवस्था इनका स्थिरपना होयै अर्थात् रसादिधातु और आयु बढेकर बहुतदिनतक रहे ॥

जुल्लावमेंअपथ्य

प्रवातसेवा शीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ।

व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥

अर्थ—मनुष्य दस्तहोने उपरांत अत्यंत हवा नस्वाय,—तथा शीतल और तैलादिककी मालिस,—अजीर्णकारी पदार्थ भोजन,—परिश्रम,—और मैथुन इनका सेवन न करे ॥

जुल्लावमेंपथ्य

शालिपट्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ।

जांगलैविष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥

अर्थ—दस्तहोनेके पश्चात् सांठीचावल और मूंग आदिशब्दसै अन्यधान्यकी यवागूं करके सेवनकरे, तथा जंगली जीव (हरिण ससे आदि) का मांसरस अथवा विष्करजीव (लवावटेरआदि) पत्तियोंका और मुरगा इनके मांसरसके साथ चावलका भात सेवन करे ॥

नाराचरस

तुल्यं पारदटंकणं समरिचं गंधाश्मत्तुल्यं त्रिभिर्विश्वं
 च त्रिगुणं तातो नवगुणं जेपालबीजं क्षिपेत् ॥ खल्वे
 दंडयुगं विमर्द्य विधिवत्संन्यस्य पर्णे ततः स्वित्रं गोमय
 वन्हिना सतु भवेन्नाराचनामा रसः । गुंजैक प्रमितोरसो
 हिमजलैः संसेवितो रेचयेद्यावत्कोष्णजलं भजेत्खलु-
 नरो भोज्यं तु दध्द्योदनम् ॥

अर्थ—शुद्धपारा,—फुलायाहुआ सुहागा,—कालीमिरच,—ये समान भाग ले-
 वे और शुद्धगंधक तीनोंके समान लेवे तथा सौंठ तीनभाग,—जमालगोटाके बीज
 नौ भाग,— इन सबको दोप्रहर खरलकर—पत्तेपर निकाल आरने उपलो की अ-
 ग्निर पर स्वेदन करे इस रसका नाम नाराचरस है यह एकरत्ती खांडकेसाथ देवे
 ऊपरसैं शीतलजलपीवे तो दस्तहोय और गरमजलपीनेसैं दस्तबंदहोते है,
 इसके ऊपर दहीभात खाना पथ्य है ॥

द्वितीयनाराचरसः

जेपालेन सभैः सूतव्योषटंकणगंधकैः। नाराचः स्याद्द्र-
 सोमापमात्रः सर्पिःसितायुतः॥ हंतिसंग्रहमानाहमाम-
 श्लं तथाज्वरम्॥ वेलाज्वरं विरेकेण शीतलां वुनिषेवणम्॥

अर्थ—जमालगोटा,—पारा,—सौंठ,—काली मिरच,—सुहागा,—गंधक ये समा-
 नभाग लेकर एकत्रकरके खरलकरे तो यह नाराचरस सिद्धहोवे,—इसमेंसैं ६ रत्ती
 रस खांड और घीके साथ देवे तथा ऊपर शीतल जल पिवावे तो मलसंग्रह,—
 अनाहवायु (अफरा) आमश्ल, वेलाज्वर, इनका दस्तहोने सैं नाश करे है ॥

इच्छाभेदीरसः

शुंठीतीक्ष्णरसेन्द्रटंकणवलिः प्रोक्तः समंतात्रिधा कुं-
 भीबीजयुतं विमर्द्य सभवेदिच्छाविभेदीरसः॥ वल्लंशर्क-
 र्या युतेन चुलुकं पुंसः सुखं रेचयेन्निः शेषं मलदोष-
 मेपविनिहंत्युच्चैर्यथेभं हरिः ॥

अर्थ—सौंठ,—कालीमिरच,—पारा,— सुहागा, गंधक ये समानभागले उसमें
 जमालगोटा तिगना डालके खरलकरे इसको इच्छाभेदी रस कहते है इस रस-

को ३ रत्नीले सांठके साथ खाय ऊपरसँ जितने चुड्डू शीतलजलके पीवे उतने-
ही दस्त इस प्राणीको होते है यह सुखजुलाव सवरोगोंको नाशकरे जैसे सिंहा
हार्थीका नाश करता है ॥

द्वितीयइच्छाभेदीरसः

शंभोर्वीर्यं च टंकं वलिमरिचयुतं शृंगवेरं च तुल्यं यो-
ज्यं नैकुंभबीजं समशिखिसहितं मर्दितं याममेकं ॥
भुक्तगुंजाद्विमात्रं शिशिरजलयुतं त्यक्ततल्पत्वमुच्ये-
दिच्छाभेदी रसोऽयं प्रवलमलहरः सर्वरोगैकहर्ता ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ तोला, गंधक, कालीमिरच, सोंठ. जमालगोटेकेबीज,
चित्रक, ये सब औषध समानभाग लेकर एक प्रहर खरलकरे इसको इच्छाभेदी-
रस कहतेहै यह प्रवलमलका नाशकर संपूर्णरोगोंको हरणकरे है ।

अथवस्तिप्रकरणम्

वस्तिद्विधानुवासारव्यो निरूहश्च ततःपरं । यःस्त्रैहै-
र्दीयते सस्यादनुवासननामकः ॥ कषायक्षीरतैलैर्यो-
निरूहः स निगद्यते । वस्तिभिर्दीयते यस्मांतस्मात्
वस्तिरितिस्मृतः ॥

अर्थ—अंडकोशादिक करके गुदांमें जो पिचकारी मारतेहै उसको वस्ती क-
हतेहैं वो वस्ति अनुवासन, और निरूहइस भेदसँ दो प्रकारकीहै उसमें तेल
घी- इत्यादि चिकनाईकीजो पिचकारी मारतेहै उसको अनुवासन और काढे
दूध-तेल-इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारतेहै उसको निरूह वस्ती कहते है ।

प्रकारांतर

वातोल्वणेषु दोषेषु वातेवा वस्तिरिष्यते ।
उपक्रमणां सर्वेषां सोग्रणीस्त्रिविधश्च सः ॥
निरूहोन्वासनोवस्तिरुत्तरःसंप्रकीर्तितः ॥

अर्थ—वातोल्वणदोषोंमें अथवा केवल वातके दोषमें वस्तिकर्म करना चा-
हिये, यह सपूर्ण कर्मोंमें अग्रगण्य (मुख्य) है । जो तीनप्रकारकीहै १ निरूहव-
स्ति, २ अनुवासनवस्ति, और तीसरी उत्तरवस्ती ॥

प्रथमअनुवासनवस्ति

तत्रानुवासनारव्योहि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते॥पूर्वमे-
वततोवस्तिनिरूहाख्योभविष्यति ॥ निरूहादुत्तरं चै
व वस्तिस्यादुत्तराभिधः । अनुवासनभेदश्च मात्राव
स्तिरुदीरितः॥पलद्वयंतस्यमात्रा तस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ—तहां प्रथम अनुवासन नामक वस्तिको कहके फिर निरूहवस्ती तथा उत्तरवस्ती कहैगे । तथा उस अनुवासनवस्तीका भेद मात्रावस्ती है, उस मात्राव-
स्तीमें स्नेहादिकोंकी मात्रा दोपलकी है । अथवा पलमात्रकी जाननी इसप्रकार
वस्तीके चारभेद जानने ॥

अनुवासवस्तीमेंयोग्यप्राणी

अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तौक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥

अर्थ—रूक्ष (स्नेहपान रहित) और प्रदीप्तहै अग्नि जिसकी वो और केवल
वातरोगी जैसे मनुष्योंको अनुवासन वस्तीके योग्य जानने ॥

अनुवासनअयोग्यपुरुष

नानुवास्यास्तु कुष्ठीस्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्था-
प्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ शोकमू-
र्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ—कुष्ठी, प्रमेही, स्थूलपुरुष, उदररोगी, ए अनुवासन वस्तीके योग्य न-
हीहै । तथा उन्माद (पागल) अजीर्ण, तृपा, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वा-
स, खांसी, और क्षय इनकरके पीडित जो मनुष्यहै वो आस्थाप्य (निरूहवस्ती)
में योजनाकरे “ नानुवास्याः ” अर्थात् उनकी अनुवासन वस्तीमें योजना न करे ।

(वस्तीका मुखस्थापन विषयमें सुवर्णादिकोंकीनली)

नेत्रंकार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ।

नलैर्दतैर्विपाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ—नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेके लिये नली- वो सुवर्णादि धा-
तुकी, अथवा चांसकी, अथवा नरसलकी, हाथीदांतकी, अथवा सींगके अग्र त-
था विष्टौर अथवा सूर्यकांतादि (आतसीकांचआदि मणियोंकी करनीचारिये) ॥

(रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाणकरे)

एकवर्षान्तु षड्वर्षं यावन्मानं षडंगुलम् ।

ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंयुतं ॥

ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नैत्रदोधता ॥

अर्थ—वस्तीकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्ष पर्यंत छः अंगुल प्रमाण, तथा छः वर्षसे लेकर चारह वर्षपर्यंत आठ अंगुल प्रमाण लंबी, तथा चारह वर्षके पश्चात् चारह अंगुलकी लंबी नली बनानी चाहिये ॥

नलीके छिद्रका प्रमाण

मुद्गाछिद्रं कलायाम् छिद्रं कोलास्थिसन्निभं । यथासं-
ख्यं भवेन्नैत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसंनिभं ॥ आतुरांगुष्ठमा-
नेन मूलेस्थूलं विधीयते । कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च-
गुटिकामुखं ॥ तन्मूलेकर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थ-
कात् । योजयेत्तत्र वस्तिं च वंघद्वयविधानतः ॥

अर्थ—जो छः अंगुलकी नली है उसका छिद्र मूंगके दानेके समान, और जो आठ अंगुलकी नली है उसका छिद्र मटरके दानेके बराबर, और जो चारह अंगुल लंबी नली है उसका छिद्र बेरकी गुठलीके प्रमाण इसप्रकार क्रमकरके नलीका छिद्रकरे । और वो नली चिकनी होकर गौके पूंछके समान होनी चाहिये । तथा उस नलीका मूल रोगीके अंगूठके बराबर मोटा और अग्रभागमें कनिष्ठिका अंगुलीके प्रमाण मोटी करके उसका मुक्त गोलकरे, तथा उस नलीके तीन भाग छोड़के चतुर्थभागके मूलमें दोकर्णिका कमलपत्रके समान बनाय हरिणादिकोंके अंडकी वस्ति उस जगह लगाय उसकर्णिकासे वस्तीके दोनो भागें बाँधदेवे, कि जिसे संधि न रहने पावे ।

वस्तीकिसके आँडेकी वनावे सो कहते हैं

मृगाजसूकरगवां महिपस्यापि वा भवेत् ।

मूत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदभावेन चर्मजः ॥

कपायरक्तः सुमृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ।

१ जैसे गौकी पूंछ ऊपरसे मतली होती है बीचमें मोटी और नीचे फिर क्रमसे पतली होती चली गई है ऐसी वनावे ।

अर्थ—हरिण, चकरा, सूअर, बैल, अथवा भैसा इनके आंठोंकी बस्ती बना नी, यदि ये न मिलेतो इनके चामकी बस्ती बनावे तथा उसवस्तिको बेरकीछाल इत्यादिकोंके कोठेमें रंगे एवं नम्र और चिकनी तथा दृढ होनी चाहिये ।

व्रणवस्तीकाप्रमाण

व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्यात् श्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितं ।

मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च ।

अर्थ—व्रणमें जो बस्ती योजना करीजायहै उसके नेत्र (नली) आठ अंगुल की लंबी और चिकनी तथा उसकाछिद्र मूंगके समान करे । तथा गीधके पंखकी नली जितनीमोटीहोतीहै इतनीमोटी इसप्रकार व्रणवस्तीकी नली बनानी चाहिये ॥

वस्तीकेगुण

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ।

कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिःसम्यग्गुपासितः ॥

अर्थ—वस्तीका उत्तम प्रकार सेवन करनेसे शरीरकीवृद्धि, कांति, बल, आरोग्य और आयुकीवृद्धि ये गुण उत्पन्न होतेहै ॥

वस्तीकासेवनकाल

दिवसांते वसंते च स्नेहे वस्तिः प्रदीयते । ग्रीष्मवर्षा

शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ न चातिस्निग्धम

शनं भोजयित्वानुवासयेत् । मदं मूर्च्छां च जनयेत् द्वि

धास्नेहः प्रयोजितः ॥ रूक्षं भुक्तवतोत्यन्नं बलं वर्णं च

हीयते । युक्तः स्नेहमतो जंतुंभोजयित्वानुवासयेत् ॥

अर्थ—वसंतऋतुमें स्नेहवस्ती (अनुवासन वस्ती) सायंकालमें करे । ग्रीष्मऋतु, वर्षाऋतु और शरदऋतुमें रात्रिमें वस्तिकर्म करे । तथा रोगीको अत्यंत स्निग्ध भोजन करायके अनुवासनवस्तीका प्रयोग कदाचित् न करे क्योंकि इसप्रकार करनेसे मद, और मूर्च्छाको करेहै । तथा अत्यंत रूखा भोजन करायके वस्तीप्रयोग करनेसे बल और कांति इनकी हानी होतीहै इस वास्ते थोडा स्नेहयुक्त भोजन करायके फिर अनुवासन वस्तीदेवे ॥

(वस्तीमें हीन और अतिमात्राका निषेध)

हीनमात्रावुभौ वस्तीनातिकार्यकरौ स्मृतौ ।

अतिमात्रौ तथानाहकृमातीसारकारकौ ॥

अर्थ—अनुवासनवस्ती तथा निरूहवस्ती इनकी मात्रा होनेसे अत्यंतकार्य न-
होंगे, अर्थात् रोग उत्तमरीतिसे दूर नहींहो। तथा पूर्वोक्तदोनोवस्तियोंकी अति-
मात्रा होनेसे अनाहरोग, ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होतेहैं।

उत्तमादिमात्राकथन

उत्तमस्यपलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैःस्त्रिभिः ।

पलद्वयधेन हीनस्य युक्ता मात्रानुवासने ॥

अर्थ—उत्तम प्रकारवाले बली मनुष्यको अनुवासन वस्तिमें छः पलकी मा-
त्रा जाननी,—मध्यम बलवाले मनुष्य उसको तीन पलकी मात्रा जाननी। और
हीनबली मनुष्योंको षेड पलके प्रमाण मात्रा जाननी। यह वस्तीकी मात्राका
प्रमाण कहा ॥

स्नेहसैंधवआदिकीमात्रा

शताह्वासैंधवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ।

तन्मात्रोत्तममध्यांत्या पट्चतुर्द्वयमापकैः ॥

अर्थ—सतावरी और सैंधानिमक इनका चूर्ण अनुवासन वस्तिमें देनाजो क-
हाहै उसकी मात्रा छःमासेकी है वो उत्तम, और चारमासेकी मध्यम, एवं दो-
मासेकी हीनमात्रा जाननी। [शतावर और सैंधेनिमकका चूर्ण तेलमें मिलाया
जाताहै]

अनुवासवस्तीदेनेकासमय

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातवलाय च ।

भुक्तान्नायानुवास्याय वस्तिर्देयानुवासनः ॥

अर्थ—मनुष्यको रचन (जुल्लाव) देकर सातदिन जानेके बाद बल आनेपर
उसको भोजन कराय अनुवासन नामक वस्तिमें जो योग्य मनुष्य उसको
अनुवासन वस्ती देनी चाहिये ॥

वस्तीदेनेकाप्रकार

अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णां वस्वेदितं शनैः। भोजयि
त्वा यथाशास्त्रं कृतं चंक्रमणं ततः ॥ उत्सृष्टानिलवि-
ण्मूत्रं योजयेत्स्नेहवस्तिना। सुप्तस्य वामपार्श्वेन

वामजंघाप्रसारिणः ॥ कुंचितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धे
गुदे न्यसेत् । वध्वावस्तिमुखेसूत्रं वामहस्तेन धारये-
त् ॥ पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः । जंभाका-
सक्षवादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥

अर्थ—अनुवासन वस्तीके योग्य मनुष्योंके देहमें तेल लगाय गरमजलसँ अंग-
में हलका पसीना काढ उसको यथाशास्त्र लिखित भोजन कराय थोडासा इधर
उधरको फिराय यदि उसको मलमूत्र अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होयतो करा
यके फिर वस्तिकर्ममें योजना करे । और उसको बाई करवट सुलाय बाएपैरको
लंवा पसार दहने पैरको संकुचित करे और गुदाको चिकनीकर वस्तीकीनली
वस्तीके मुखमें डोरेसँ बांध उन नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशलवैद्य उस
नलीको बाए हाथमें लेकर दहने हाथसँ मध्यमवेग करके दावे,—तथा वस्तीके
समय जंभाईलेना,—खांसना,—और छीकना इत्यादिक रोगीको न करनेदेवे
[खांसी आदिके करनेसँ पिचकारीका तैल ऊपर चढ जाताहै अथवा नीचेही
रहे ठीक स्थानपर नहीं पहुचे इसीवास्ते जंभाई और खांसना आदि वर्जितहै)

पिचकारीलगानेमेंकाल

त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तुपीडने ।

ततः प्रणिहितः स्नेहउत्तानोवाक्शतं भवेत् ॥

अर्थ—पिचकारी मारनेके समय तीसमात्रा पर्यंत काल जानना और वो
स्नेह भीतर जानेसँ सौवाक (जितनीदेरमें सौंवार आंख मिचे) इनती देरतक
चित्त सोया करे उसमात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें कहते है ॥

मात्राकाप्रमाण

जानुमंडलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकयायुतं ।

एकामात्रा भवत्येषा सर्वत्रैपं विनिश्चयः ॥

अर्थ—घोटूके चान्योतरफ हाथफेरके चुटकी वजावे इतने कालकि एकमात्रा
होती है । यह सर्वत्र निश्चय है तथा मात्राकाप्रमाण अन्यत्रभी ग्रंथोंमें लिखा है
सो देखलेना ॥

वाङ्मात्राकाप्रमाण

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या छोटिकाथवा ।

१ उसको चाँवलीकी पतली पेयाकरके पिवावे । २ गुदामें घी लगापकर ।

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृताबुधैः ॥

अर्थ—निमेषोन्मेषण (पलकोका स्त्रोलना मूंदना) चूटकी वजाना,—अथवा गुरुअक्षरके उच्चारण इनमें जितना समय लगता है उसको वाङ्मात्रा कहते हैं ॥

पिचकारीलगानेकेपश्चात्क्रिया

प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथावीर्यं प्रसर्पति ।

ताडयेत्तलयोरेनं त्रीनवारंश्च शनैः शनैः ॥

स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणिं शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः ।

जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥

अर्थ—पिचकारी मारनेके पश्चात् रोगी हाथपैर आदि सब देहको ढीलाकरके प्रसारदेवे किं जिस्ते रसादिकधातु अपने २ स्थानपरजावे । तथा रोगीके हाथपैरके तलको तीनवार इलकी (धीरे २)तीन २ ताल देवे उसीप्रकार स्फिज (कूला) औरश्रोणी (कटिपश्चात्भाग) में तीन २ वार ताल मारे । फिर उसको शय्या (पलंगपर) बैठावे । इसप्रकार वस्तीविधि होनेके अनंतर रोगीको सुप्तपूर्वक सुलायदे ॥

उत्तमवस्तिकर्महोनेकेगुण

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ।

उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ।

अर्थ—गुदाके भीतर गयाहुया जोस्नेह वो वायु तथा मल—इनके साथ उपद्रवके विना तत्काल बाहर आनेसे उस मनुष्यको वस्तीकर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहकाविकारदूरहोनेमेंउपाय

जीर्णान्नमथसायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः । लघ्वन्नं भो

जयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ अनुवासिताय देयं

स्यादितरेहिसुखोदकं । धान्यशुंठीकपायो वा स्नेह

व्यापत्तिनाशनम् ॥

अर्थ—गुदाके रास्ते स्नेहनिःशेष (संपूर्ण) बाहर आनेसे और यदि मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होवे तो उसको सायंकालमें पुराने अन्न किंचिद नित्यके आहारकी

१ एक वर्षके चावल अथवा साठदिनके पकनेवाले (साँठी) चावल पथ्यमें देवे ।

अपेक्षा कम पथ्यमें देवे और अनुवासित मनुष्यको दुसरे दिन सुखोदक देवे अर्थात् गरमजल पीनेको देवे अथवा धनिया, —और,—सॉठ,—इनका काढा करके देयतो स्नेहका विकार दूरहोय ॥

वातादिदोषोंमें पिचकारी मारनेका प्रमाण
अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा ।
विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तविधिकरके वातादिक दोषोंमें छःवार अथवा आठवार अथवा नौवार पिचकारी मारे उस पिचकारियोंके अंतमें निरूह वस्ति योजना करे ॥

वस्तीकेगुण

दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवक्ष्णौ । सम्यक्दत्तो
द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत् ॥ बलं वर्णं च जनयेत्तृ-
तीयस्तु प्रयोजितः । चतुर्थपंचमौ दत्तो स्नेहयेतां रसा-
सृजी ॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च । अष्टमो
नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमं ॥ एवं शुक्रगतान्दो-
षान् द्विगुणः साधु साधयेत् । अष्टादशाष्टादशकान् वस्ती-
नां योनिधेवते ॥ सकुंजरबलेश्वस्य रमेतुल्यो मरप्रभः ॥

अर्थ—प्रथम वस्ति (पिचकारी) मारनेसे वह वस्ती वक्ष्ण (अंडसंधि) द्वारा शरीरमें स्नेह न करे है अर्थात् धातु बढ़ावे है । दूसरी पिचकारी मारनेसे मस्तककी वायुको दूरकरे । तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल—कांति आवे । चौथी और पांचवी पिचकारी मारनेसे रस और रक्त इनकी वृद्धि होय । छठी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदमें स्निग्धता आती है । आठवी और नवम पिचकारी मारनेसे मज्जामें और श्लोकमें जो चकार है इसके शुक्रधातुमें स्निग्धता आती है । इस प्रकार द्विगुण (१८) पिचकारी देनेसे शुरुधातुगत जो दोष है उनका नाश होय तथा जो मनुष्य ३६ पिचकारियोंका सेवनकरे उसमें हाथीके समान बल और वेगमें घोड़ेके समान होय एवं देवस्वरूप कांतिहोय है ॥

अनुवासनवस्ती और निरूहनवस्तीयेकिसकोदेनी इसका प्रकार
रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने । दद्याद्वैद्यस्त
धान्येषामन्यांवाधामपाहरत् ॥ स्नेहोल्पमात्रो रूक्षाणां

**दीर्घकालमनात्ययः । तथा निरूहस्निग्धानामल्पमा
त्रः प्रशस्यते ॥**

अर्थ—रूत होकर जो अत्यंत वायुसँ पीडित मनुष्य उसको वैद्य दिन २ में स्नेहवस्ती देवे । अर्थात् स्नेहकी पिचकारी नित्त मारे । उसी प्रकार “ अन्येषां ” कहिये स्निग्ध और स्थूलादिक मनुष्य उनके “ अन्या ” कहिये निरूहणवस्ती दिन २ में देवेतो “ वाधा ” कहिये रोग दूरहोय । तथा रूत मनुष्य उनके स्नेहवस्ती अल्पदेवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी हलकी मारे । परंतु रोगी बहुत दिनका वचाहुआ होय तो स्निग्ध मनुष्य उसके निरूहवस्ती अल्पदेवे ॥

तत्कालस्नेहवाहरनिकलेउसकाउपाय

अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ।

तस्यान्योऽन्यतरो देयो नहि स्निग्धस्य तिष्ठति ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्यकी गुदामें पिचकारी मारनेसँ उसी वखत चिकनाई बाहर निकल आती हैं ठहरे नहीं है इसीसँ स्नेहवस्ती देकर उसी समय निरूहवस्ती देवे, इसप्रकार पलटकर दोनो प्रकारकी वस्तीदेवे ॥

(स्नेहवाहर न निकले उसके उपद्रव और उपाय)

अशुद्धस्य पलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः । तदा शै-

थिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते । पक्काशयो गुरुत्वं

च तत्र दद्यान्निरूहणम् । तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फल-

वर्तिर्हिता तथा ॥ यथानुलोमनोवायु मलस्नेहश्च जायते ॥

तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥

अर्थ—वमन और विरेचन इत्यादिक करके जिसकी शुद्धी नहीं करी उसकी गुदासँ यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर आवे नहीं तो उसके देहमें शिथिलता, और अफरा (पेटका फूलना) शूल, श्वास, और पक्काशयमें भारीपना, ये उपद्रव होते हैं । इनके दूरहोनेके वास्ते तीक्ष्णानिरूहण वस्ति देनी चाहिये । इसीप्रकार तीक्ष्ण औषध करके युक्त अँसी फलवर्त्तोंदे जिससँ वायु अधोगामी होकर मल मिश्रित स्नेह गुदाके रास्ते बाहर आवे, तथा उसीप्रकार तीक्ष्णजुलाब और तीक्ष्णनस्य ए देने चाहिये ॥

(स्नेह वस्ती जिसको उपद्रव करे नहीं उसका विधान ।)

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवस्तिरनिःमृता ।

सर्वोल्पो व्यावृते रौक्ष्यादुपेक्ष्यः सविजानता ॥

अर्थ—स्नेहवस्ती (स्नेहकी पिचकारी) गुदामें मारनेके अनंतर गुदाका संपूर्णभाग व्यावृत (व्याप्त) होनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षपनेके कारण गुदाके एकदेशमें व्याप्तहोके रहनेसें शूलादिक उपद्रव नहीं करे । तो पिचकारी (स्नेहवस्ती) उसीप्रकार गुदामें धरी रहनेदे ॥

अहोरात्रिमें भी स्नेह बाहर न आवे तो उसका उपाय ।

अनायाते त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ।

स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥

अर्थ—स्नेहकी पिचकारी मारनेसें जो स्नेह बाहर नहीं आवे उसकै दोवार पिचकारी मारके स्नेह बाहर आवे असायत्नकरे । अथवा जो स्नेह अहोरात्र (दिनरात्रि) में बाहर न आवे उसको जुलाव देकर तेलको बाहर निकाले ॥

अनुवासनतैल

गुडूच्येरंडपूतीकिभार्गीवृषकरोहितम् । शतावरी सहचरं

काकनासा पलोन्मितम् ॥ यवमाषातसीकोलकुलित्था

न् प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रोणांभसा पक्व द्रोणशेषेण

तेन च ॥ पचेत्तैलाढके पेप्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥

अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ—गिलोय, -अंडकीजड, -कंजाकीछाल, -भारंगी, -अड़मा, -रोहिपट्टण, -शतावर, -पिपौबासा, -काकतुंडी, ये नौ औषध एक २ पललेवे । जौं, -उडद, -अलसी, -वेरकी गुठली, -और कुलथी, ये पांच औषध दो दो पलले, इन सबको कूट पानी ४ द्रोण डालके एकद्रोण जल बाकी रहने पर्यंत ओंटावे, उसमें तिलका तेल एक आढक डालके और जीवनीय गणकी औषधी एक २ पल कूट चूर्णकरके गिलावे, फिर उसको ओंटावे जब काढा जलके तेलमात्र शेष रहे तब नीचे उतारके तेल छानलेवे । इसको अनुवासन तेल कहते है । ये तेल संपूर्ण वायुके रोगोंको दूर करताहै ॥

शय्यादितैलम्

शटीपुष्करकृष्णाव्हा मदनामरदारुभिः।शताव्हाकुप्ट-

यष्ट्याव्हावचाविल्वडुताशनैः॥सुपिष्टैर्द्विगुणं क्षीरं तैलं

तोयं चतुर्गुणम् । पक्त्वा वस्तौ विधातव्यं मूढवातानु-
लोमनम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहं विषमज्वरम् ॥
कट्यूरुपृष्ठकोष्ठस्थान् वातरोगांश्च नाशयेत् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके वास्ते कचूर, पुहकरमूल, पीपल, मैनफल, देवदारु, सॉफ, कूठ, मुलहरी, वच वेलगिरी, और चीते-कीछाल, ए सब मिलायके सेरभर लेवे । जल १६ सेरले, सबको मिलाय तेल-की विधिसे सिद्धकरे । यह वस्तिक्रियामें प्रयोग करनेसे कुपित वायुको अनुलो-म करे । तथा ववासीर, ग्रहणीदोष, अफरा, विषमज्वर, और जांघ,—कमर,—और पीठके वातरोगको दूरकरे । इसे शठ्यादि तैल कहते हैं ॥

वचादितैलम्

वचापुष्करकुष्ठैला मदनामरसिंघुजैः ॥ कांकोलीद्वयय-
ष्ट्याह्व मेदोयुग्मनराधिपैः ॥ पाठाजीवकजीवन्ती भा-
र्गीचंदनकट्फलैः ॥ सरलागरुविल्वाम्बुवाजिगंधाग्नि-
वृद्धिभिः ॥ विडंगारुवधश्यामात्रिवृन्मागधिकर्द्धिभिः ॥
पिष्टैस्तैलं पचेत्क्षीरं पञ्चमूलरसान्वितम् ॥ गुल्मा-
नाहाग्निपंगाशोग्रहणीमूत्रसंगिनाम् ॥ अन्वांसनवि-
धौयुक्तंशस्यतेऽनिलरोगिणाम् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर, छोटा पंचमूलका काढा १६ सेर,—दूध, १६ सेर, कल्कके वास्ते वच,—पुहकरमूल,—कूठ,—इलायची,—मैनफल,—देवदारु,—सैंधानि-मक,—कांकोली,—क्षीरकांकोली,—मुलहटी,—मेदा,—महामेदा,—अमलतास,—पाठ,—जीवक,—जीवन्तीशाक,—भारंगी,—लालचंदन,—कायफल,—सरलकाष्ठ,—अगर,—वेल-गिरी, नेत्रवाला,—असगंध,—चीता,—वृद्धि, वायुविडंग,—कीरवारेकीगिरी,—सारि-वा,—निसोध,—पीपर,—वृद्धि,—यह सब औषध १ सेर ले । जल १६ सेर, तेलकी-विधिसे सिद्धकरे, यह तैल गोला,—अफरा,—मदाग्नि,—ववासीर,—संग्रहणी,—मूत्ररोग, और वातरोग इन समस्त रोगोंमें अनुवासन प्रयोगमें देवे ॥

चित्रकादितैलम्

चित्रकादिविषापाठा दन्तीविल्ववचामिपैः सरलांशु-
मतीराण्या नीलिनीचतुरंगुलैः ॥ चव्याजमोदकांकोली

मेदायुग्मसुरद्रुमैः जीवकर्षभवर्षाभूवस्तगंधशताह्वयैः ॥
रेन्वश्वगंधामंजिस्का शटीपुष्करतस्करैः ॥ सक्षीरं विपचे-
तैलं मारुताभयनाशनम् ॥ गृध्रसीखंजकुब्जाद्व्यमूत्रो-
दावर्त्तरोगिणाम् ॥ शस्यतेऽल्पवलाग्नीनां वस्तावाशु-
नियोजितम् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर, -दूध १६ सेर, कल्ककेवास्ते चीतेकीछाल, -अतीस-
पाठा, -दंती, -बेलगिरी, -वच, -सोंफ, -निसोथ, सालपर्णी, -रास्ना, -नीली, -अ-
मलतास, -चव्य, -अजमायन, -कांकोली, -मेदा, -महामेदा, -देवदारु, -जीवक, -
ऋषभक, -सांठ, -अजमोद, -सोफ, -रेणुक, -असगंध, -मजीठ, -कचूर, -पुहकरमू-
ल, -चौरकाचरी, -यहसव १ सेर ले । जल १६ सेर, -तेलपाककी विधिसें बनावो ।
यह ग्रधसी, -खंजता, -कुबडापना, -मूत्राधिक्य, -और, -उदावर्त्तरोग, -बलहीन, -
तथा मंदाग्नि, इत्यादि रोगमें इस तैलका अनुवासन कर्म उत्तम है ॥

भूतिकादितैलम्

भूतिकैरंडवर्षाभू राष्णावृषकरोहिषैः ॥ दशमूलसहा-
भार्गीपङ्ग्रंथामरदारुभिः ॥ वलानागबलामूर्वा वाजिगं-
धामृताह्वयैः ॥ सहाचरवरीविश्वा काकनासाविदारि-
भिः ॥ यवमापातसीकोल कुलत्थैः कथितैः शृतम् ॥
जीवनीयप्रतीवापं तैलं क्षीरं चतुर्गुणं ॥ जंधोरुत्रिक-
पार्श्वीशवाहुमन्याशिरःस्थिताम् ॥ हन्याद्वातविकारां
स्तु वस्तियोगैर्निषेवितम् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर, काथकेवास्ते अजमायन, -अंडकीजड, -सांठ, -रास्ना,
अहूसा, -रोहिपट्टण, -दशमूल, -मुद्गपर्णी, -भारंगी, -वच, -देवदारु, -खरेटी, -गगेरन, -मूर्वा,
असगंध, गिलोय, पियावांसा, सतावर, सोंठ, काकडोडी, विदारीकंद, जों, उदद-
अलसी, बेर, कुलथी, ये सब २॥ सेरले जल ६४ सेर लेके काडाकरे, जब १६
सेर रहे तब उतारके छानलेय, फिर जीवनीय गणका कल्क, दूध १६ सेर, सब-
को एकत्र कर तैलकी विधिसें सिद्धकरे । इस तैलको अनुवासन द्वारा प्रयोग
करेतो जंधा, ऊरू, त्रिक, पसवाडे, कंधे, भुजा, मन्यानाडी, और मस्तकगत
वातकेरोग यह नष्ट होवे ॥

जीवन्त्यादितैलम्

जीवन्त्यातिबलमेदाकांकोलीद्वयजीरकैः । ऋषभा-
तिविषाकृष्णाकाकनासावचामरैः ॥ राष्णामदनय-
ष्ट्याह्वमरलाभीरुचन्दनैः । स्वयंगुप्ताशठीशृंगीकल-
शीसारिवाह्वयैः ॥ पिष्टैस्तैलघृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेनतु ॥
तच्चानुवासने देयं शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ॥ बृंहणं-
वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं परम् । नस्ये पाने च संयु-
क्तंमूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर । घृत १ सेर । जीवन्ती, अतिबला, मेदा, महामेदा, कांकोली, क्षीरकांकोली, जीवक. ऋषभक, अतीस, पीपल, काकडोडी, वच, देवदारु, रास्ना, मैनफल, मुलहठी, सरल, सतावर, रक्तचंदन, चौछके बीज, कचूर, काकडासिंगी, पिठवन, सारिवा, ए सब औषधी १ सेरले । दूध ४० सेर लेक विधि पूर्वक तेलसिद्धकरे । इसका अनुवासन करनेसँ शुक्र, अग्नि, और बलकी वृद्धिकरै, देहको पुष्टकरे, वायु और पित्तकी शांति, एवं गोला और अफरा रोगको नष्टकरे । नस्य—तथा पानमें इसका व्यवहार करेतो उर्ध्वजत्रुगत रोगोंका नाशकरे । इसे जीवन्त्यादि तैल कहते है ॥

मधुकादितैलम्

मधुकोशीरकाश्मर्यकटुकोत्पलचंदनैः । श्यामापद्मक-
जीमूत शक्राद्वातिविषांबुभिः ॥ तैलपादं पचेत्सर्पिः
पयसाष्टगुणेन च । न्यग्रोधादिगणक्वाथयुक्तं वस्तिषु
योजितम् ॥ दाहासृग्दरवीसर्पवातशोणितविद्रधिन् ।
पित्तरक्तज्वराद्यांश्च हन्यात्पित्तकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर । घृत १ सेर । न्यग्रोधादिगणकीकाय २० सेर । दू-
ध ४० सेर । कल्कके वास्ते मुलहठी,—खस,—कंभारी,—कुटकी,—कमलगटा,—
रक्तचंदन,—अनंतमूल, पथास,—नागरमोया,—इन्द्रजो, नेत्रवाला,—अतीस,—ए सब
१ सेरलेवे । सबको तेलकी विधिसेँ औटायके तेल सिद्ध करलेवे, उसका अनु-
वासन करनेसँ दाह,—प्रदर,—विसर्प,—वातरक्त,—विद्रधि,—तथा पित्तकृत अनेक
प्रकारके रोग दूरकरे ॥

मृणालादितैलम्

मृणालोत्पलशालूकसारिवाद्यकेशरैः । चंदनद्वयभू-
निंब पद्मबीजकसेरुकैः ॥ पटोलकडुकारत्तागुद्रापर्प
टवासकैः ॥ पिष्टैस्तैलमिदं पक्वं तृणमूलरसेन च ।
क्षीरद्विगुणसंयुक्तं वस्तिकर्मणि योजितम् । नस्ये-
ऽभ्यंजनपाने वा हन्यात्पित्तगदान् बहून् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर । तृणपंचमूलका काढा १६ सेर । दूध ८ सेर । क-
ल्कके वास्ते कमल,—नीलकमल,—नीलकमलकीजड,—सारिवा,—अनंतमूल, के-
शर,—रक्तचंदन,—सपेदचंदन,—चिरायता,—कमलगट्टा,—कसेरू,—पटोलपत्र, कुटकी
मजीठ,—भद्रमोथा,—पित्तपापडा,—अडूसा, ये सब १ सेरले । सबका यथाविधि तै-
ल सिद्धकरे । इस तेलकी नस्य—मालिस—पीना—और वस्ति क्रियामें प्रयोग
करनेसे अनेक प्रकारके पित्तरोगोको निवारण करे ॥

त्रिफलाद्यंतैलम्

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निवारग्व-
धपद्ग्रंथासप्तपर्णनिशाद्रयैः ॥ गुडूचीन्द्रसुराकृष्णा
कुष्ठसर्पपनागरैः । तैलमेभिःसमैः पक्वं सुरसादिरसा-
त्क्षुतम् ॥ पानाभ्यंजनगंडूपनस्यवस्तिपु योजितम् ।
स्थूलतालस्यकंड्वादीन् जयेत् कफलतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर । सुरसादिगणकास्वरस १६ सेर— । कल्कके लिये—
त्रिफला,—अतीस,—मूर्वा,—निसोय,—चीतेकीछाल, अडूसा,—नीमकीछाल,—अमल
तासकें पत्ते, वच, सतौनाकीछाल, हरदी, दारुहलदी, गिलोय, मझालू, पीपल,
कूठ, सरसो, और सांठ, सब, १ सेरलेवे । तेलसिद्धकरे इसतेलके पीनेसे मालि
ससे कुरला नस्य—और वस्तीकर्म करनेसे स्थूलता, आलस्य, और खुजलीआदि
कफके विविधविकार दूरहो । यहत्रिफलादितैलहै ।

पाठाद्यंतैलम्

पाठाजमोदाशाङ्गिष्ठा पिप्पलीद्वयनागरैः । सरलाग-
रुकालीयभार्गीचव्यामरद्भूमैः ॥ मरिचैलाभयाकट्टी
शटीग्रंथिककट्फलैः । तैलमेरंडतैलवा पक्वमेभिः समा

युतम् ॥ वल्लीकंटकमूलाभ्यां कायेन द्विगुणेन च ॥ ह-
न्यादन्वासनैर्दत्तं सर्वान् कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीकातेल ४ सेर—। वल्लीपंचमूलका काढा ८ सेर
कंटक पंचमूलकाकाढा ८ सेर । कल्ककेवास्ते— पाठ, अजमोद, महाकरंज,
पीपल, गजपीपल, सोंठ, सरल, अगर, कालीयकाष्ठ, भारंगी, चव्य, देवदारु,
कालीमिरच, इलायची, हरद, कुटकी, कचूर, पीपरामूल, और कायफल सब १
सेरलेवे । इनसैं तेलको विधिपूर्वक सिद्धकरे इसका अनुवासन कफकृत समस्त
रोगोंको निवारणकरे । इसैं पाठादि तैल कहतेहै ॥

विडंगाद्यंतैलम्

विडंगोदीच्यसिंधूत्थ शठीपुष्करचित्रकै । कट्फला-
तिविषामांगी वचाकुष्ठसुराह्वयै ॥ मेदोमदनयष्ट्याह
श्यामानिचुलनागैः ॥ शताह्वानीलिनीराष्णा कदली
वृषरेणुभिः ॥ बिल्वजमोदकृष्णाह्वदंतीचव्यनरा-
धिपैः । तैलमेरंडतैलं वा मुष्ककादिरसाश्रुतम् ॥ छी-
होदावर्तवातासृग्गुल्मानाहकफामयान् । प्रमेहशर्करा
शांसि हन्यादाश्वनुवासनात् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीकातेल ४ सेर । मुष्ककादिगणकारस १६सेर— ।
कल्कके वास्ते वायविडंग नेत्रवाला, सैधानिमफ, कचूर, पुहकरमूल, चीतेकीछा-
ल,— कायफर,— अतीस,— भारंगी,—वच,—कूठ,—देवदारु,—मेदा,—भैरवफल,—मु-
लहठी,—अनंतमूल,—हिअलकेबीज,— सोंठ,—सोफ,—नीलकीजड,—राम्ना,—केला-
कीजड,—अडूसा,—रेणुक,—बेलगिरी—अजमोद,—पीपल,—दंती,—चव्य,—और अ-
मलतासफेपत्ते सब १ सेरलेवे । विधिपूर्वक तैलसिद्धकरे—इसतेलके अनुवासनव-
स्ती करनेसैं घ्रीह,—उदावर्त,—चातरक्त,—गोला,—अफरा,—कफकीजनेकव्याधि,—
प्रमेह, शर्करा, और ववासीर, रोगको दूरकरे । यहविडंगादिताइतैलहै—ये पूर्वोक्त सं-
पूर्णतेल मुश्रुतके वस्ती अधिकारमें लिसेहै ॥

(अनुवासन वस्तिमें विपरीत होनेसैं रोगहोतेहै उनको कहते है ॥)

पट्मस्रतिव्यापदस्तु जायंते वस्ति कर्मणः ।

दूषितात्समुपायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥

अर्थ—वस्तीकर्ममें दोषरूप कुछभी विपरीतता होनेसँ ७६ प्रकारकी व्याप-
त्ती(रोग) उत्पन्न होतेहै। उसकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रंथमें लिखी है वो करनी चाहियो

वस्तिकर्ममें पथ्य

पानाहारविहाराश्च परिहारश्च कृत्स्नशः ॥

स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥

अर्थ—अन्न, पान-और विहार आहारादिक इनके आचरण जैसा स्नेहपानमें
कहा है उसीप्रकार इस जगे वस्तीकर्ममें करे-इस विषयमें विचार न करे ॥

निरूहवस्तीकीविधिः

निरूहवस्तिर्वहुधा भिद्यते कारणांतरैः ।

तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुंगवैः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती कारणभेदकरके अनेकप्रकारकी होती है और जैसे २ का
रण होतेहै उसी २ प्रकारका उसका नाम होताहै । उदाहरण- उत्केशनवस्ति,
दोषहरवस्ति, - दोषशमनवस्ति, इत्यादिक नाम जानने ।

निरूहवस्तीकेदूसरेनाम

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥

अर्थ—निरूह वस्तीका दूसरा नाम आस्थापन है उसकी व्युत्पत्ती-दोष औ-
र रसादिक धातु इनको अपने २ स्थानपर बैठा लेहै, इसासँ इसको आस्थापन
वस्ति कहतेहै । तथा वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूरकरेहै इसीसँ उसको
निरूह अँसा कहतेहै ।

(निरूहवस्तीमें काढेआदिका प्रमाण)

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थपादोत्तरं मतम् ।

मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती देनेमें काढे आदिका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम है, और ए-
कप्रस्थ मध्यम, तथा तीनकुडव कनिष्ठ जानना ।

निरूहवस्तीअयोग्य

अतिस्निग्धो छिष्टदोषो क्षतोरस्कः कृशस्तथा ।
आध्मानछर्दिहिकार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ गुद-
शोफातिसारात्तो विशूचिकुष्ठसंयुतः । गर्भिणीमधुमेही
च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥

अर्थ—अत्यंतस्निग्धमनुष्य, तथा जिसके ऊर्ध्वगामीदोष हुएहो वो, तथा च-
रःक्षत करके पीडित, कृश, अफराका रोगवाला, छर्दिरोगी, हिचकी, बवासीर,
खांसी, श्वास, इन करके पीडित जो मनुष्य होवे वह; गुदामें पीडा, सूजन, अ-
तिसार, विशूचि, कोढ़, गर्भवतीस्त्री, मधुमेहरोगी, और जलंधरका रोगवाला,
इतने रोगी निरूहवस्तीमें अयोग्य अर्थात् इन रोगियोंके निरूहवस्ती न करे ।

निरूहवस्तीयोग्यमनुष्य

वातव्याधायुदावर्ते वातासृक्विषमज्वरे । मूर्च्छातृ-
ष्णोदरानाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ वृद्धत्रसृग्दरमंदा-
ग्निप्रभेदेषु निरूहणम् । शूत्रेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योज-
येद्विधिवद्भुवः ॥

अर्थ—वातव्याधिरोगी, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास, उद-
र, अफरारोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग, बहुतदिनोंका असृग्दर (मदर) मंदाग्नि,
प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त, हृदयरोग, इतनेरोगी निरूह वस्तीके विषयमें यो-
ग्यहै अर्थात् इनरोगियोंके निरूहवस्ती करे ।

निरूहवस्तीदिनेकाप्रकार

उत्सृष्टानिलविषमूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम् । म-
ध्यान्हे गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥ स्नेहवस्ति-
विधानेन वुधः कुर्यान्निरूहणम् । जाते निरूहे च ततो
भवेदुत्कटकासनः ॥ तिष्ठेन् मुहूर्तमात्रं च निरूहाग-
मनेच्छया । अनायातं मुहूर्तेतु निरूहं शोषनैर्हरेत् ॥

अर्थ—निरूहवस्ती जिसमनुष्यको देनीहोवे वह मलमूत्र त्याग चुकाहो, अ-

थीत् उसरोगीसैं कह देवे कि जब तक ये वस्तिकर्म होवेगा तबतक तुमको मल मूत्रत्यागना न होगा, यदि भीतरसैं अधोवायु निकले तो उसको निकाल कोठा शुद्धकर उसके देहमें स्नेहपदार्थ लगाय, थोड़े देहसैं पसीने निकाल उसको भोजन न देकर मध्यान्हके समय घरमें जिसप्रकार जिसरोगपर बस्तीदेना लिखाहै उसप्रकार स्नेहवस्तीका विधान कर तैलादिककी पिचकारी गुदामें मारनी। और निरूहवस्तीके कर्महोनेके अनंतर वह निरूह बाहरआनेके वास्ते दो घडी पर्यंत उंकरू बैठा रहे। यदि दोघडीमें निरूहकी औषधी गुदामेंसैं न निकले तो उसको शोधन करके बाहर आनेका यत्नकरे सो आगेलिखते है ॥

निरूहकोवाहरलानेवालीऔषध

निरूहैरेवमतिमान् क्षारमूत्राम्लसैधवैः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती गुदासैं वाहर न आनेपर जवास्त्रार, और गोमूत्र, नीबूका रस, अथवा जंभीरीकारस, और सैंधानिमक, ए चार औषधी एकत्रकर गुदामें फिर निरूहण करे कि जिससे पहलादियाहुआ निरूह बाहर निकले ॥

निरूहवस्ती उत्तम होनेके लक्षण

यस्य क्रमेण गच्छान्तं विट्पित्तकफवायवः ।

लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके निरूह वस्ती देनेसैं उसके मल—तथा पित्त एवं कफ और अधोवायु ये क्रमकरके गुदाके रास्ते वाहर निकलनेपर शरीरमें हलकापनाहोवे तो निरूहण वस्तीका कर्म उत्तम हुआ अंसा जानना ॥

जिसकोउत्तमनहुईहोउसकेलक्षण

यस्य स्याद्वस्तिरल्पं लघुपयोहीनमलानिरुः ।

मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान् दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जिसको निरूहवस्ती देनेसैं उसका वाहार आनेकावेग अल्प आनेपर मल और अधोवायु ये जितने बाहर आने चाहिये इतने न आवे, अर्थात् थोड़े आवे ओर मूत्र करनेमें पीडा तथा शरीरमें जडपना, अरुचि, ए सब लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूहवस्ती उत्तम नहीं हुई, अंसा वैद्यको जानना चाहिये ॥

(निरूहवस्ति और स्नेहवस्ति उत्तम देनेकाफल)

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ।

आस्थापनस्नेहवस्त्योः सम्यक्दाने तु लक्षणम् ॥

अनेन विधिना गुंज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् ॥

अर्थ—रोगीके अंगमें हलकापना, मनकासंतोष, अंगमें पसीने आना, तथा रोगोंका नाश, ये आस्थापन (निरूहवस्ति) तथा स्नेहवस्ती इनके उत्तम देनेके लक्षण जानने । और पूर्वोक्त (जो वस्तीदेनेका कर्म कहाहै) उस कर्मके जानने वाले वैद्यको निरूहवस्ती देनी चाहिये [और जो वस्तिकर्म न जानताहो उस वैद्यसे कदाचित् वस्तीकर्म न करावे]

निरूहवस्तिदेनेमेंसमयकाप्रमाण

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितं । सस्नेहएकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कपायकटुरूक्षाद्याः कफे कोष्णास्त्रयोमताः ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूपरसैः क्रमात् । निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरूहवस्ती दोवार—अथवा तीनवार—अथवा चारवार—जैसा दोष होवे उसीके अनुसार देनी, तथा वातरोग होनेसे स्नेहयुक्त निरूह वस्ती एकवार देवे, तथा पित्तरोग होनेसे दूधकेसाथ दोवार देवे, एवं कफरोग होनेसे कपाय और कटु तथा रुक्ष इत्यादि पदार्थ एकत्रकर तथा कुछ गरम करके तीनवार निरूहवस्ती देवे, अर्थात् इस औषधकी तीनवार पिचकारी मारनी चाहिये । अथवा कफ और पित्तवायु इन करके मनुष्य पीडितहोनेसे दूध और यूप तथा रस (मांसरस) इनके क्रमकरके गुदादिकमें वस्तीदेवे फिर अनुवासनवस्ती देय अर्थात् स्नेहकी पिचकारी मारे ॥

(सुकुमारादि मनुष्योंके निरूहवस्तिकी योजना)

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ।

वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुपी ॥

अर्थ—सुकुमार (नाजुक) और वृद्ध तथा बालक इनके हलकी पिचकारी मारनी क्योंकि सुकुमारादिकोंके दारुण वस्ती देनेसे इनके बल और आयुका नाश होताहै ॥

(आदि मध्य और अंत्य इनमें वस्तीकी योजना)

दद्याद्दुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ।

पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्द्वस्ति विचक्षणः ॥

अर्थ—प्रथम दोपोंके उत्क्लेद (उखाडने) को उत्क्लेदकारी औषधोंकी वस्ती देवे । तथा बीचमें दोपनाशक औषधोंकी वस्ती देवे, तथा अंतमें अपने २ स्थानपर दोप बैठजावे अंसी औषधोंकी पिचकारी मारनी चाहिये ॥

उत्क्लेशनवस्ती

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैधवं वचा ।

हवुषाफलवल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥

अर्थ—अंडीके बीज, महुआकी छाल, पीपल, सैधानिमक, वच, हौउवेर, ये छः औषध समान भाग लेकर पीसके कल्ककरे, इसको दोपोंके उखाडनेके वास्ते देवे इसें उत्क्लेशन वस्ती कहते हैं ॥

दोषहरवस्ती

शताव्हा मधुकं विल्वं कौटजं फलमेव च

सकांजिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥

अर्थ—शतावर, मुलहठी, वेलगीरी, इन्द्रजों, ए चार औषध समान भाग ले, कांजीमें वारीकपीस तथा इसमें गोमूत्र मिलाय गुड़ामें पिचकारी मारे, कि जिस्तै वातादिकदोषोका शमनहो इसको दोषहर वस्ती कहतेहैं ॥

शोधनवस्ती

शोधनद्रव्यनिक्वाथस्तत्कल्कैः स्नेहसैधवैः ।

युक्त्या खजेन मथिता वस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥

अर्थ—निशोथआदि जो शोधनद्रव्यहैं उनका काढाकर उसमें इन्ही औषधोंका कल्क और सैधानिमक मिलाय कलछीसैं मथनकर दोपोंके शोधन विषयमें पिचकारी मारे, इसको शोधन वस्ती कहतेहैं ॥

दोषशमनवस्ती

प्रियंगुर्मधुकोमुस्ता तथैव च रसांजनम् ।

सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमने स्मृतः ॥

अर्थ—फूलप्रियंगु, अथवा राल, महुआकीछाल, नागरमोथा, रसोत ये चार औषध समान भाग लेकर दूधमें वारीकपीस दोषशमन होनेसैं इसकी पिचकारी मारे, इसे दोषशमन वस्ती कहते हैं ।

लेखनवस्ति

त्रिफलाकाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ।

ऊषकादिप्रतिवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥

अर्थ—त्रिफलेका काढा करके उसमें गोमूत्र, सहत, जवास्वार, डालके तथा ऊषकादिगणकी औषधीका चूर्ण उसमें मिलायके मेदरोगादिकमें कृश करनेको वस्ती देवे, इसे लेखन वस्ती कहतेहै ॥

वृंहणवस्ति

वृंहणद्रव्यनिकाथः कल्कैर्मधुरकैर्युतः ।

सर्पिर्मांसरसोपेतवस्तयो वृंहणा मताः ॥

अर्थ—मूसली, गोखरू, कौचकेबीज, इत्यादिक जो धातुवर्द्धक द्रव्य उनका काढा कर उसमें महुआकी छाल और दास तथा अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य और कल्क तथा घी और मांसरस ये सब औषध डालके पुष्टहोनेके अर्थ वस्ती देवे, इसको वृंहण वस्ती कहतेहै ॥

पिच्छलवस्ति

वदर्येरावतीसेलुशालमलीधन्वनागराः । क्षीरसिद्धाः

क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छलसंज्ञिताः ॥ अजोरणैणरु-

धिरैर्युक्तादेया विचक्षणैः । मात्रापिच्छलवस्तीनां

पलैर्द्वादशभिर्मताः ॥

अर्थ—चेरकीछाल, नारंगी, बहुआरकी छाल, सेमरकीछाल, यमासो, सोंठ, ये छः औषध समान भाग लेकर दूधमें पीससहत मिलाय उसमें बकरा और मेंढा तथा हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोपोंके पतले करनेको वस्तीदेवे, इसको पिच्छल वस्ती कहते है । इस वस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पल जानना ॥

निरूहणमात्राकीविधि

दत्त्वादौ सैषवस्याक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयं । विनिर्मथ्य

ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ एकीभूते ततः

स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् । संमूर्च्छितकपाये तु

चतुःप्रसृतिसंमितं ॥ क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं
कुशलो भिषक् । वाते चतुःपलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य
षट्पलं ॥ पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्य च पलत्रयम् ।
कफे षट्पलकं क्षौद्रं स्नेहस्यैव चतुःपलम् ॥

अर्थ—प्रथम सैंधानिमक १ कर्प, तथा सहत ४ पल, इन दोनोको एकत्र म-
र्दनकर फिर उसमें घी अथवा तेल छःपल ढालके एक जगे मिलाय उसमें क-
ल्ककी जो औषध कही हैं उनका कल्ककरके उसमें स्नेहमिलायदे, अथवा उस
कल्कका काढाकरके उस स्नेहमें मिलावे। फिर कुशलवैद्य गुदामें पिचकारी मारे,
यह निरूहवस्तीकी साधारण विधि जाननी। विशेषविधि वातरोगमें सहत चा-
रपल, और स्नेह तीनपल दोनोको एकत्रकर वस्तीदेवे तथा पित्तके रोगमें सहत ४
पल और स्नेह ३ पलभि लांपवस्तीदे। एवं कफरोग होयतो सहत छःपल—और
स्नेह चारपल लेवे दोनोको एकत्रकर वस्ती देनी चाहिये ॥

मधुतैलवस्ति

एरंडकाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम् । शतपुष्पाप-
लाद्धेन सैधवार्षेन संयुतम् ॥ मधुतैलकसंज्ञोयं वस्तिः
खजविलोडितः । मेदो गुल्मकृमिष्ठीहमलोदावर्तनाशनः ॥
बलवर्णकरश्चैव वृष्यो वृंहणदीपनः ॥

अर्थ—अंडकी जडका काढा ८ पल, सहत और तेल ये चार २ पल, सोफ,
और सैंधानिमक आधे २ पल लेके सबको एकजगे एकत्रकर गढमढ करलेवे,
इसको मधुतैलक वस्ती कहते है, यह गुदामें देनेसे मेदोरोगको, गलेकेरोगको,
कृमिरोगको, ष्ठीह, और उदावर्त इनको नाशकरे। और यहवस्ती बल तथा
कांति, और स्त्रीसंगमेंभीति, घातुकीशुद्धि देयई और अग्निको प्रदीप्तकरे है ॥

दीपनवस्ति

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिं प्रसृतिं भवेत् ।
हपुषा सैधवाक्षांशौ वस्तिः स्यादीपनः परः ॥

अर्थ—सहत, घी, दूध, मत्स्येक दो दो पल, तथा हांउवेर और सैंधा निम-
क दोनो कर्पभरलेय; बारीक पीस जम सहत—घी और दूधमें मिलायके मटरा-
मि प्रदीप्तहोनेके बास्ते वस्ती देवे। इमे दीपनवस्ती कहते है ॥

युक्तरथवस्ति ।

एरंडमूलनिःक्राथो मधुतैलं ससैधवम् ।

एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥

अर्थ—अंबकीजड़का काढा करके उसमें सहत और तेल डालके सैधानिमक बच, पीपल, और मैनफल, ये चारऔषध समान भागले चूर्णकर उस काढेमें मिलायके गुदामें वस्ती (पिचकारी मारे) इसको युक्तरथ वस्ती कहतेहै यह वस्ती सर्व रोगोंपरहै ॥

सिद्धवस्ति

पंचमूलस्यनिःक्राथस्तैलंमागधिकामधु ।

ससैधवः समधुकः सिद्धवस्तिरितिस्मृतः ॥

अर्थ—पंचमूलका काढा करके तेल, पीपलकाचूर्ण, सैधानिमक, और महुआ कीछाल, अथवा मुलहठी, ये सब उस काढेमें डालके वस्ती देनी चाहिये । इसको सिद्धवस्ती कहतेहै । यह वस्ती सर्व रोगोंपर है

(वस्तीमें सेव्य पदार्थ और निषिद्ध पदार्थ)

स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ।

वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवित् ॥

अर्थ—पिचकारी लगनेवाला मजुष्य गरम पानीसँ झानकरे । दिनमें सोवे नहीं, तथा अजीर्ण होनेदे नहीं, तथा दूसरे सब आचरण स्नेहवस्तीके समान करने चाहिये ।

उत्तरवस्तिकीविधि

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । निरूहा-
दुत्तरो यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञितः ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रं
मध्ये च कृतकर्णिकम् । मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं
सर्पपानिर्गमम् ॥

अर्थ—अब इसके उपरांत में उत्तर वस्तीका प्रमाण कहताहूँ । निरूहवस्तीके उत्तर होनेसँ इसको उत्तरवस्ती कहतेहै । इसकी बारहअंगुलकी लंबी नली होक-

र उस नलीका मध्यभाग कमलपत्तेके कर्णिकाके समान करे । और वो नली मालतीफूलके बराबर मोटी होकर उसमें सरसों चली जाय इतना बड़ा छिद्र करना चाहिये ॥

वयोनुमानकरके मात्राका प्रमाण
पंचविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ।

तदूर्ध्वं पलमानंच स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ॥

अर्थ—मनुष्यकी पच्चीस वर्षकी अवस्था होने पर्यंत वस्तीविषयमें स्नेहकी मात्रा दोर्कष प्रमाण विचक्षण वैद्य देवे । तथा पच्चीसवर्षके उपरांत १ पलकी मात्रा देनी चाहिये ॥

(उत्तरवस्तीकी योजना कैसे करावे उसे कहतेहै)

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः । स्थित-
स्य जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया ॥ सिंग्वया मे-
द्मार्गं च ततो नेत्रं नियोजयेत् । शनैः शनैः घृता-
भ्यक्तं मेद्मं ध्रेद्गुलानि षट् ॥ ततोवपीडयेद्दस्तिं श-
नैर्नेत्रं च निर्हरेत् । ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्ति-
क्रमोहितः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती करके शुद्धहुए तथा स्नान और भोजन इन करके तृप्त हुए अंसे मनुष्यको आसनपर घोटू टेकके बैठावे फिर यथा योग्य सलाई सचि-
क्षणहो उस सलाईकी नलीमें घी लगायके शिष्णमार्ग (लिंगके छिद्र) में प्रवेश करे, तथा उस नलीको लिंगके भीतर धीरे २ छः अंगुल प्रवेश कर पिचकारीमारे फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे, जब भीतरका स्नेह बाहर आय जाय तो उत्तम वस्तीकर्म होताहै । इसी प्रकार स्नेहवस्ती क्रम जानना ॥

स्त्रियोंके वस्तिदेनेका प्रमाण

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् । मुद्गप्र-
वेशं योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलं ॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गं
च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ॥

अर्थ—स्त्रियोंके वस्ती देनेमें उस वस्तीकी नली छोटी अंगुलीके समान मोटी और दस अंगुल लंबीहो, तथा उसका छिद्र इतना बड़ा होवे कि जिसमें मूंग च-

ली जाय । तथा उस नलीके योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । परंतु स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें चारीक नली प्रवेशकरे तो उस नली का दो अंगुल प्रवेश होनेपर पिचकारी मारनी चाहिये ॥

बालकोंके वस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण
मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
शनैर्निकंपमाधेर्यं सूक्ष्मनेत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्र विकारमें वैद्य जैसे हाथ नहिले असें धीरे २ वारीक नलीको उसकी इंद्रिमें १ अंगुल प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥

(स्त्री और बालकोंके वस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा)
योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालकी । मूत्र-
मार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्पिकी ॥ उता-
नायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः। अप्रत्यागच्छ-
ति भिषक् वस्तावुत्तरसंज्ञिके ॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमें वस्तीकर्म करनेमें स्नेहकी मात्रा दोपल जाननी । तथा स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें वस्ती देनी होय तो स्नेहकी मात्रा १ पलकी जाननी तथा बालकोंके दो कर्पकी मात्रा जाननी । और उत्तर संज्ञक वस्तीमें कुशलवैद्य उस स्त्रीको सीधी चित्त लिटाय कर उसके थोड़े ऊपरको धर फिर वो स्नेह जैसे बाहर न आवे असी पिचकारी मारे ॥

शोधनद्रव्यकरके वस्तीका विधान
भूयोवस्ति निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः । फल-
वर्ति निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढं भिषक् ॥ सूत्रैर्विनि-
र्भितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुतां । दह्यमाने तथा व-
स्तौ दद्याद्वस्ति विचक्षणः॥क्षीरवृक्षकपायेण पयसा-
शीतलेन च ॥ वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्त-
वजा रुजः ॥ हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचिता मोहि-
नां क्वचित् ॥

अर्थ—मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंमें शोधनद्रव्य (अंडीकातेल आदि जो) औष-

घी उनके समुदायोंकरके योनिके मार्गमें पिचकारी मारे अथवा अंडीके बीज आदि औषधोंकी दृढवत्ती बनाय अथवा सूतकीवत्ती बनाय उसवत्तीमें एरंड वीजादिक औषधी चुपढके उसको योनिमें प्रवेश करनी चाहिये । यदि उसवत्तीके अधोभागमें वस्तिस्थानहै वो विगडजावे अर्थात् उसमें दाहादिक होवेतो गूलर, वड, इत्यादि क्षीरवृक्षहै उनका काढा करके वस्ती देवे । अथवा शीतल दूधकी वस्तीदेवे तो वस्तिस्थान शुद्धहो । और यह वस्ती शुक्रघातु संबंधी जिस पुरुषके पीडाहोती हो उसके तथा स्त्रियोंके आर्चव संबंधी पीडा होतीहोवे उनको दूर करती है । तथा जिस मनुष्यके प्रमेह है उसके उत्तरवस्ती कभी उपयोगी नहीं होवे ऐसा जानना ॥

उत्तमउत्तरवस्तिहोनेके लक्षण

सम्यक्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रमएव च ।

वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहवस्तिना ॥

अर्थ—उत्तरवस्ती स्नेहवस्ती करके उत्तम प्रकार योजनाकरीहुई उसके लक्षण क्रमकरके येहै शुक्रघातु संबंधी जो प्रमेहादिक पीडा वो दूर होती है ॥

गुदामें फलवर्तीकी योजना

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णस्वांगुष्ठसंनिभा ।

मलप्रवर्तिनीवर्तिः फलवर्तिश्चसास्मृता ॥

अर्थ—गुदामें घी लगायके रोगीके अगूठेके प्रमाण उत्तम दृढवत्ती बनाय मलहोनेके वास्ते अंडीके बीज आदि जो रेचक औषध उनका उस वत्तीमें छेप कर उसको गुदामें धरे तो मल निकले, इस वत्तीको फलवर्ती कहते है ॥

नस्यविधि

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदौषधं ।

नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥

अर्थ—जो औषध नाकमेंडाली जावे उसको नस्य कहते है उसनस्यके नाम-नावन और नस्यकर्म जैसे दोजानने ॥

नस्यकेभेद

नस्यभेदो द्विधाप्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।

रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं वृंहणं मतम् ॥

अर्थ—इस नस्यके दो भेदहै—एक रेचन, और एक स्नेहन, इनमें जो नस्य रेचन है उसको कर्षण संज्ञक जाननी अर्थात् वातादि दोषोंको उच्छेद करताहै एवं जो स्नेहन नस्यहै उसको बृंहण जाननी ये धातुवृद्धिकरनेवाली है ॥

नस्यकाकाल

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्नके ।

दिनस्य गृह्यते नित्यं रात्रौ वाप्युत्कटे गदे ॥

अर्थ—कफके नाशकरनेको नस्य प्रातःकालमें ले, पित्तके नाशको दोपहरमें ले,—वादीके नाशकरने को औषधी नासिकामें सायंकालमें डालनी, यदि रोगका अत्यंत बल होयतो रात्रिमेंनी डालना कहा है ॥

नस्यकानिषेध

नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पणे ॥ तथा नव-
प्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥ अजीर्णी दन्तवस्ति-
श्च पीतस्नेहोदकासवः । कृद्धः शोकाभिभूतश्च तृषा-
तौ वृद्धबालकौ ॥ वेगावरोधीस्नातश्च स्नातुकाम-
श्च वर्जयेत् ॥

अर्थ—नाकमें नस्य डालना होयतो भोजनके अंतमें जिसदिन, बहलहोय उसदिन और अपतर्पण तथा लंघनकराहो इनमें नस्य न देवे । जिसके नवीन पीनसरो-
ग हुआहो, गर्भिणीस्त्री, तथा विषदोषकरके तथा अजीर्णकरके पीडित मनुष्य त-
था जिसके वस्तिप्रयोग कराहै वया घृत,—तेल इत्यादिक स्नेह और पानी तथा
मद्य इनका सेवन करेहए मनुष्यके,—क्रोधी,—शोक करे तथा तृषाकरके पीडि-
त,—वृद्ध,—बालक, वात मूत्र इनका निरोध करनेवाला मनुष्य, तथा स्नानकरा-
हुआ,—तथा स्नान करनेको जो तयार हो इन सब मनुष्योंको नस्य न देवे ॥

नस्यकर्ममेंयोग्यअयोग्यमनुष्य

आष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्मसमाचरेत् ।

अशीतिवर्षाद्दूर्ध्वचनावनंनैवदीयते ॥

अर्थ—आठवर्षके बालकके नासिकामें औषधी डाले और अस्सी वर्षके उप-
रांत अवस्था बालके नाकमें औषधि नहीं डालनी चाहिये ॥

रेचकनस्यकाविधान

अथवैरेचकं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ।

तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः काथै रसैस्तथा ॥

अर्थ—जो रेचन नस्य नाक्रमें डालनी वो अजमायन,—सरसो इत्यादिकोंके तीक्ष्णतेल निकालके नाक्रमें डाले अथवा तीक्ष्ण औषधडालके स्नेह सिद्धकरे,— अथवा तीक्ष्ण औषधका काढा अथवा रस इनसैं स्नेह सिद्ध करके नाक्रमें डाले

रेचननस्यप्रकार

नासिकारंघ्रयोरष्टौ षट्चत्वारश्च विंदवः ।

प्रत्येकं रेचने योज्यामुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥

अर्थ—रेचनके वास्ते नाकके दोनो छिद्रोंमें औषधकी आठ विंदु डालना यह उत्तम मात्रा है, छः विंदु डालनेसैं मध्य मात्रा जाननी, और चारबूंद डालनेसैं कनिष्ठमात्रा जाननी चाहिये ॥

नस्यकर्ममें औषधीका प्रमाण

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधं ॥ हिं गुस्या-

द्यवमात्रं तु मापैकं सैंधवं मतम् ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं

स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् । कार्षिकं मधुरं द्रव्यं

नस्यकर्मणि योजयेत् ॥

अर्थ—नस्यकर्ममें जो तीक्ष्ण औषधी होय वो एक शाण प्रमाण डाले । तथा हींग एक यव प्रमाण, सैंधानिमक १ मासे, दूध आठ साण, पानी तीनकर्प, और खांड—अनार इत्यादिक मधुरद्रव्यजो है वो प्रत्येक कर्पलेवे, इस प्रकार इनकी योजनाकरे ॥

विरेचननस्यकेदूसरेदोभेद

अवपीडः प्रथमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ।

शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ॥

अर्थ—उस विरेचन नस्यके दो भेदहैं—एक अवपीडन, तथा दूसरा प्रथमन, अैसे जानना इन दोनोंको मस्तकके विरेचनमें देना चाहिये ॥

अवपीडनऔरप्रमथनकेलक्षण

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निमृतो रसः । सोव-

पीडः समुद्धिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्रवः ॥ षडंगुलाद्विव-
क्राया नाडीचूर्णं तथा धमेत् । तीक्ष्णकोलमितं वक्रवा-
तैः प्रथमनं हितम् ॥

अर्थ—अब उन दोनोंके लक्षण कहते हैं—तीक्ष्ण औपधको पीस उसका क-
ल्ककर निचोडनेसैं जो रस निकलताहै उसको अबपीड कहते है । तथा छःअंगुल
प्रमाण लंबी और सीधी ऐसी नली करके उसमें तीक्ष्ण चूर्ण १ कोल प्रमाण डा-
लके मुखकी हवासैं नाकमें फूकदेना उसको प्रथमन कहते है ॥

रेचनऔरस्नेहननस्यकेयोग्य

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये। अरोचके प्रति-
श्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु न-
स्यं वै रेचनं हितम् । भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्ने-
हेन दीयते ॥

अर्थ—ऊर्ध्वजत्रुगतारोग, कफ संबंधी स्वरभंग; अरुचि, सरेकमां, मस्तक शूल,
पीनस, सूजन, अपस्मार, कुष्ठ, इनरोगोंमें रेचक नस्य हितकारी जाननी—डरपा
हुआ मनुष्य, कृश मनुष्य, तथा बालक, और स्त्री इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे॥

अवपीडननस्ययोग्य

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम्

अर्थ—गलरोग, संनिपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृ-
मिरोग, इनमें अवपीडन नस्य देय ॥

प्रथमननस्यकेयोग्य

अत्यंतोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते
चूर्णं प्रथमनं धीरेस्ताद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥

अर्थ—मूर्च्छा, अपस्मारादिक, संज्ञा नष्टहोय जिससैं असेसंन्यासादिकरोग-
इनमें अत्यंत तीक्ष्ण असेप्रथमन संज्ञक चूर्णकी नस्य देवे ॥

रेचनसंज्ञकनस्य

नस्यं स्याद्दुडशुंठीभ्यां पिप्पली सैववेन च ।

जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥

हनुमन्यागलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः ॥

अर्थ—सोंठको गरमपानीमें ओटाय उसमें गुडढालके नस्य देवे । पीपल और सैंधानिमक इनको गरमपानीमें ओटाय नाकमें डाले, तो इससें नेत्र, कान, मस्तक, ठोड़ी, मन्यानाड़ी, भुजा, और पीठ, इतमें जो पीडाहोती है सो दूरहोय ।

रेचननस्यकी दूसरीविधि

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचा मरिचसैधवैः ।

नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥

अपस्मारेतथोन्मादेसंनिपातेपतंत्रके ॥

अर्थ—महुआकी लकड़ीके भीतरका गूदा, पीपल, वच, कालीमिरच, और सैंधानिमक ये औषध गरम जलमें पीसके नस्य देवे तो मृगी, उन्माद, संनिपात, और अपतंत्रक वायु, इत्यादि जिनसें चेष्टा ज्ञान ये नष्ट होते है वो दूरहोकर मनुष्य शीघ्र सावधान होवे इसप्रकार जानना ॥

रेचननस्यकातीसराप्रकार

सैधवं श्वेतमरिचं सर्पपा कुष्ठमेव च ।

वंस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक, सपेदमिरच, पीलीसरसो, और कूठ, इन औषधोंको बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवेतो नेत्रोंमें तन्द्रा आती है वो दूरहो । तथा पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग दूरहों ॥

प्रधमनसंज्ञकनस्य

रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं सैधवं वचा । मरिचं पि-

प्पलीशुंठी कंकोलं लथुनं पुरं ॥ कट्फलं चेति तच्चूर्णं

देयं प्रधमनं बुधैः ॥

अर्थ—सैंधानिमक, वच, कालीमिरच, पीपल, सोंठ, कंकोल, लहसन, गूगल, और कायफल, इनका चूर्ण कर रोहित (रोहू) संज्ञक मछलीके पित्तके चूर्ण में पुष्टदेवे, फिर पूर्वप्रधमनके लक्षणमें नलीका मान कहआएहै उसरीतिसं नलीले उसमें यह चूर्णभरके नाकमें फेंकदेवे । इस करके पूर्वोक्त अपतंत्रादिक रोग दूर होतेहै । इस चूर्णको प्रधमन अंसा कहते है ॥

वृंहणनस्यकी कल्पना

अथ वृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना॥ मर्शश्च प्राति-
र्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ मर्शस्य तर्पणीमात्रा मु-
ख्या शाणैः स्मृताऽप्रभिः । मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना
शाणमिता स्मृता ॥ एकैकस्मिन्स्तु मात्रेयं देया नासा-
पुटे बुधैः । मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाव-
लम् ॥ एकांतरं द्वयंतरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ।
अहः पंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितः ॥

अर्थ—अब वृंहण नस्य (धातु वृद्धि करनेवाली तप्या नाकमें औषध डालने वाली ऐसी नस्य) कल्पना कहता हूँ—उस वृंहण नस्यके दो भेद हैं मर्श और रप्र-
तिमर्श, ये दोनों स्नेहन विषयमें योग्य हैं । इनमें मर्शनस्यकी तर्पणी मात्रा जान-
नी, वो आठ शाणकी मुख्य मात्रा है । तथा चार शाणकी मध्यम मात्रा है । औ-
र एकशाणकी हीनमात्रा जाननी । ये मात्रादोषोंका बलाबल देखके मनुष्यको
बस्त्रादिकसे ढककर एक एक नाकके पुटमें दो दो बार अथवा तीन तीन बार
अथवा एकदिन बीचमें देकर तथा दोदिन बीचमें देकर अथवा तीन दिन बीचमें
अथवा पांचवे या सातवे दिन नस्य देनी चाहिये ॥

(मर्शसंज्ञकनस्य तथा विरेचन संज्ञक नस्य इनके
आधिक्य होनेसे जो रोग होते हैं उनका उपाय ।)
मर्शो शिरोविकारे च व्यापदो विविधाः स्मृताः । दो-
षोत्केशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ दोषो-
त्केशनिमित्तासु युञ्ज्याद्भ्रमनशोधनम् । अथ क्षयनि-
मित्तासु यथास्वं वृंहणं मतम् ॥

अर्थ—मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी तृप्तिकरनेवाली है । उसके आधि-
क्य होनेसे तथा दोषोंकी वृद्धि होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचन-
संज्ञक नस्यकी मात्रा अधिक होकर मस्तकके भीतरके मेदादिकों का क्षय होने
से अनेक प्रकारकी पीडा होती है जिस दोषके उत्कर्ष निमित्त पीडा होय उसके
दूर होनेको व्रमन तथा विरेचन औषध देवे । तथा क्षय निमित्तसे जो पीडा हो-
ती है उसके दूर करनेको धातुवृद्धि करनेवाली औषध नाकमें अथवा पेटमें साने-
के वास्ते देवे ॥

जो बृंहणनस्य मे योग्य है

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्धभेदके । दंतरोगे बले
हीने मन्याबाव्हंसजे गदे ॥ मुखशोषे कर्णनादे वात-
पित्तगदे तथा । अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपा-
तने ॥ युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥

अर्थ—मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्तरोग, आघासीसी, दंतरोग
दुर्बलमनुष्य, मन्यानाडी, भुजा, कंधा, इनमें जिसके पीडाहोतीहो, तथा मुख-
शोष, कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधीविकार, विनासमयकेवालोंका सपेदहोना सो
पलित कहाताहै, मस्तककेवाल, डाढीके वाल उसख २ के गिरे वो, तथा इन्द्र
लुप्तारोग, इन सब रोगोंमें घृतआदि स्निग्ध पदार्थ करके तथा मिश्री आदि जो
मधुरपदार्थ है इन करके नस्य देना चाहिये ॥

पक्षाघातादि रोगोंपर नस्य

मापात्मगुत्तारास्त्राभिर्वलाऋभुकरोहिषैः । कृतोश्वगं-
घया काथो हिं गुसैधवसंयुतः ॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण
पक्षाघातं सकंपनम् । जयेददितवातं च मन्यास्तं-
भापवाहुकम् ॥

अर्थ—उडद, कौचकेयोज—रास्त्रा, वलाकीजड, अंडकीजड, सुगधवृण, अस-
गंध, इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भुंजीहींग और सैंधानिमक ढाल-
के गरम गरम उस काढेकी नस्य देवे, जिसमें कंप सहित पक्षाघात वायु, अर्दि-
तवायु, मन्यास्तंभवायु, तथा अपवाहुकवायु ये दूरहोय ॥

प्रतिमर्शनस्य की दो विंदु रूप मात्रा

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विविंदुमिता मता ।

प्रत्येकशो नस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥

अर्थ—घृतआदि करके जो स्निग्धपदार्थ उनके दो २ वृंद एक २ नासिका-
के पुटमें ढालनेसे वह प्रतीमर्शनस्यकी दोविंदु मात्रा जाननी ॥

विंदुसंज्ञक मात्रा

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः । तर्जनीयं
स्रवेत् विन्दु सा मात्रा विन्दुसंज्ञिता ॥ एवं विधैर्वि-

न्दुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते । सदेयो मर्शनस्येतु प्र-
तिमर्शो द्विविन्दुकः ॥

अर्थ—घी तेल आदिसँ जो स्नेहपदार्थ तिनमें तर्जनी उंगलीके दो पोरुआ बू-
दजावे अँसी तर्जनीको निकालके उस पोरुआसँ जो बूद टपकाई जावे उसको
विंदुमात्रा कहतेहै । इस प्रकार विंदुसंज्ञक आठ मात्राओंकी एक शाण संज्ञक
तोल होतीहै । वो शाणमात्रा मर्शनस्यमें देवे । और प्रतिमर्शनस्यमें दोबूदकीदे
य, इतनाही मर्शनस्य और प्रतिमर्श इनमें विशेषताहै ॥

प्रतिमर्शनस्यकासमय

समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते
दंतकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥व्यायामाध्वव्यवा-
यांते विष्णूत्रान्तेंजने कृते।कवलान्ते भोजनान्ते दि-
वास्वप्नोत्थिते तथा॥वमनांते तथासायं प्रतिमर्शःप्रयुज्यते ।

अर्थ—प्रतिमर्शनस्यके १४ समयहै, जैसे—१ प्रातःकाल २ मुस धोनेके समय
३ घरसँ बाहर निकलनेके समय, ४ परिश्रमके अंतमें, ५ रस्ताचलकर आनेपर,
६ मैथुनके अंतमें ७ मल और ८ मूत्रकरनेके अंतमें, ९ नेत्रोंमें अंजन करनेके
उपरांत, १० ग्रासके, तथा ११ भोजन तथा १२ दिवसमें सोयकर उठनेके सप
य, १३ वमनके अंतमें, १४ सायंकाल—इतने समय प्रतिमर्श संज्ञक नस्यदेवे ॥

प्रतिमर्शद्वारातृप्तहुएकेलक्षण

ईपदुच्छिंकनान्त्रेहो यदा वक्रं प्रपद्यते ।
नस्ये निपिक्तं तं दद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥
उच्छिदं न पिवेच्चैतन्निष्टीवेन्मुखमागतम् ॥

अर्थ—नस्यदेनेपर थोड़ीछींक आनकर वो स्नेह मुसमें उतरजावे तो उसमनु-
ष्यको प्रतिमर्शनस्यकरके तृप्तहुआ जानना, तथा मुसमें जो उतरआया स्नेह उ-
सको निगले नहीं किंतु धूकके बाहर पटक देवे ॥

प्रतिमर्शकेयोग्य

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्ते वाले वृद्धे च युज्यते ।
प्रतिमर्शनं शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥
बलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् ।

अर्थ—धातुक्षीणमनुष्य, बालक, वृद्ध, तृषा-और मुखशोष, इन करके पी-
डित मनुष्योंके प्रतिमर्श संज्ञक नस्य देना चाहिये, तो उक्तरोग दूरहो तथा ना-
डके उपरके जो रोगहै वो तथा त्वचाका सिथिलपना, कुसमय सपेद वालोंका
होना उसको बलीपलित कहते है—ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्श संज्ञक नस्यसँ दूरहो ।
तथा नेत्रादिक इन्द्रियोंमें बलवढे ॥

कुसमयसपेदवालहोनेपरनस्य

विभीतनिंबकंभारी शिवा शेलुश्च काकिनी ।

एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥

अर्थ—बहेडा, नीमकीछाल, कंभारी, हरड, बहुवार, काकडोडी, इनके बीज-
के भीतरकी मिंगीका तेल पृथक्-रनिकाल कर-एक एक न्यारी-नस्य देवे तोम-
नुष्यके विना समय जो बालसपेदहुएहै वो तरुणावस्थाके समान काळे होय निश्चय॥

नस्यकीविधि

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे । देशे वातरजो
मुक्ते कृतदन्तनिर्घर्षणं ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्विन्न-
मालगलं तथा । उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलंबशिरसं
नरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचन
म् । समुन्नमितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ को
ष्णमच्छिन्नधारं च हेमतारादिशुक्तिभिः । शुक्त्या वा
यंत्र युक्त्या वा छेतैर्वा नस्य माचरेत् ॥

अर्थ—नस्य देनेके वास्ते नस्यकी विधि कहते है—जिस स्थानमें वायु अ-
थवा धूल न होवे वहां मनुष्य दांतुन-और धूमपान करके कपाल और गलेको
शुद्धकर पसीने युक्त करावे, फिर सीधा (चित्त) मुलाय मस्तकको लंबा और
कुछ नीचेकी तरफ झुकता कर हाथपैरोंको लंबे पसारदे फिर कपड़ेसँ नेत्रोंको
दांकेके वैद्य अपने हाथसँ मनुष्यकी नाकको ऊंचीकर जो नस्य डालनेकी वस्तु
है उसकुछ २ गरमको एकसी धारसँ तथा उस नस्यको सुवर्ण, चांदी, इनके पा-
त्र करके अथवा सोप करके तथा कौड़ी वा फोहेसँ नाकमें निचोढदेवे, दोनो न-
थनोंमें समान निचोढे ॥

नस्यग्रहणमेंआज्ञा

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकंपयेत् । न कुप्ये-

न्न प्रभाषेत नोच्छिदेन्न हसेत्तथा ॥ एतैर्हि विहितः स्ने-
हो नैवान्तः संप्रपद्यते । ततः कासप्रतिश्याय शिरो-
क्षिगदसंभवः ॥

अर्थ—मनुष्य नस्यलेते वसत मस्तकको कंपावे नहीं, तथा क्रोध न करे, कि-
सीसैं बोले नही, किसी तिनका आदिको तोड़े नही, न हसे यदि इसप्रकार न
करेगा तो वो नस्य पदार्थ मस्तकके भीतर अच्छे प्रकार प्रवेशनही करनेका औ-
र खांसी, सरेकया, और मस्तकनेत्र-इनमें पीडा आदि उपद्रव होने लगते है ॥
अतएव बड़ी सावधानीके साथ नस्य ग्रहण करना चाहिये ॥

नस्यसंवारणकाप्रकार

शृंगाटकमभिष्ठाव्य स्थापये न्न गलद्रवम् । पंचसप्तद-
शैवस्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ॥ उपविश्याथ निष्ठी-
वेन्नासावक्रगतं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वभ्यांनिष्ठीवे-
त्सन्मुखे नहि ॥

अर्थ—मनुष्यको नस्य देकर नासावंशके आगे भ्रूमध्य देशमें चतुष्पथ (चौ-
राहेके समान) है उसको उस नस्यके स्नेहसैं भिगोय उस नस्यको धरदेवे । उस
का धारण ९ । ७ मात्रा अथवा दशमात्रा कालपर्यंत करे, फिर बैठारहे और ना-
कमें तथा मुँहमें उतरा जो पानी वा कफ उसको दहनी तरफ अथवा बाँई तर-
फ धूकता जावे साहने न धूके ॥

नस्यकर्मकरनेमेंवर्जितवस्तु

नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् । शयी-
त निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्शतं नरः ॥ तथैव रेच-
नस्यांते घ्नो वा कवलो हितः ॥

अर्थ—नस्य कर्म होनेके उपरांत—मनमें संताप न आने दे,—जहां घूर उठ-
तीहो तहां बैठे नहीं, तथा क्रोध न करे, जैसे नीद न आवे इसप्रकार साँवाक्
(साँवार पलक खुले मुँदे इतने समय) पर्यंत सीधा मुलावे । इसीप्रकार विरे-
चन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास ये न देवे ॥

नस्यमेंशुद्धादिभेद

नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः ।

शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिंतकैः ॥

अर्थ—नस्यमें शुद्धिलक्षण,—तथा हीनयोगलक्षण,—तथा अतियोगलक्षण, ये तीन ही लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्योंने कहे है उन लक्षणोंको आगे संक्षेपसे कहते है ॥

उत्तमशुद्धिकेलक्षण

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ।

चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ—नस्य करके मस्तकभी उत्तमबुद्धि होनेसे शरीर हलकाहो,—मन शुद्धहो—तथा मुख,—नाक,—कान,—गुदा,—इत्यादि बाह्यद्वारवाले मार्ग उनका शोधन होनाहै। तथा शिरोरोगादिक दूरहो,—अंतःकरण और नेत्रादिक इन्द्री ये प्रसन्न रहतीहै॥

हीनशुद्धिकेलक्षण

कंडूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्त्रवः ।

मूर्ध्निहीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ—नस्य करके मस्तककी अल्पशुद्धि होनेसे देहमें खुजली,—तथा भारीपणा,—ये लक्षण होतेहै तथा, मुख—नासिकादिक बाह्यद्वार है उनसे कफका स्राव होता है ॥

अतिशुद्धिके लक्षण

मस्तुलंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ।

शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्निगाढं विरेचिते ॥

अर्थ—नस्य करके मस्तककी अत्यंत शुद्धिहोनेसे मस्तकके भीतरजो तरल पदार्थ रहताहै उसका नाकसे स्रावहोने लगे,—तथा वायुकी वृद्धि होय,—इन्द्रियों का विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आती है ॥

हीनशुद्ध्यादिमेंचिकित्सा

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् ।

सम्यक्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्ये निषेचयेत् ॥

अर्थ—नस्य करके मस्तककी अल्पबुद्धि अथवा अत्यंत शुद्धिहोनेसे कफ वा-
यु हारक ऐसी नस्य देवे तथा उत्तमबुद्धि होनेसे नाकमें घीका नासदेवे ॥

अतिस्निग्धकेलक्षण

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ।

लक्षणं तदतिस्निग्धरूक्षं तत्र प्रदापयेत्॥

अर्थ—नस्य करके मनुष्यका मस्तक अति स्निग्धहोनेसे कफका स्त्राव, मस्तकका भारीपना, इन्द्रियोंकी भ्रांति, ये लक्षण होते हैं । इस कारण इस अत्यंत स्निग्धताके दूर करनेको रूक्षपदार्थकी नस्य देवे ॥

नस्यमेषथ्य

भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचरितमादिशेत् ।

अर्थ—नस्यलेनेवाला मनुष्य अभिष्यंदी पदार्थ अर्थात् भैंसका दही आदि कफकारी पदार्थ भक्षण न करे, और नस्यमें जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसप्रकार आचरण करे । ये नस्यकर्ममें पथ्य है ॥

पंचकर्माकीसंख्या

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ।

एतानि पंचकर्माणि कथितानिमुनीश्वरैः ॥

अर्थ—वमन, रेचन, नस्य, निरूहवस्ती, और अनुवासनवस्ती, इन पांचोंको पंचकर्म कहते हैं ॥

धूमपानविधिः

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो वृंहणस्तथा ।

रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥

अर्थ—धूमपान छःप्रकारका है उनके नाम शमन,—१ वृंहण, २ रेचन, ३ कासत्र, ४ वामन, ५ और व्रणधूपन ६ इसप्रकार छःप्रकार जानने ॥

शमनादिकधूमोकेपर्यायशब्द

शमनस्यतुपर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ।

वृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ रेच-

नस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ।

अर्थ—तहां शमनधूमके पर्यायवाचक शब्द मध्य और प्रायोगिक जैसे दो हैं, तथा वृंहणधूमके पर्याय शब्द स्नेह, और मृदु जानने । तथा रेचन धूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥

धूमसेवनके अयोग्य

अधूमार्हाश्च खल्वेते शांतो भीरुश्च दुखितः । दत्तव-
स्तिर्विरक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च
दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी । शिरोभितापी तिमिरी
छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडु-
रोगी च गर्भिणी । रूक्षः क्षीणोभ्यवहृतः क्षीरक्षौद्रघृ-
तासवैः ॥ भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्त
था । अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ।

अर्थ—स्वामितमनुष्य, डरपाहुआ, दुःखसँपीडितमनुष्य, जिसके वस्तीप्रयोग
करा, जिसका कोठा दस्तकरके रीताहो वह, रात्रिमें जागने वाला, तृपा करके
पीडित, तथा दाह करके पीडित, तालुशोषी, उदररोगी, शिरोभितापकरके
पीडित, तिमिररोगी, वमन, वादीसँ पेटफूलाहुआ, उरक्षतरोग, प्रमेह, पांडु-
रोग, इनकरके पीडित मनुष्य, गर्भिणीस्त्री, रूक्ष, तथा क्षीणमनुष्य, दूध, घी-
और आसव (मद्य) अन्न, दही, और मछली, इनका भक्षणकरनेवाला म-
नुष्य, तथा बालक, और दुर्बलमनुष्य ये धूमपानमें अयोग्यहै । यदि कुसमयमें
अत्यंत धूमपानकरे तो वह घोर उपद्रवोंको करे है । अतएव उक्त मनुष्यों को त-
था कुसमय धूमपान करना त्यागदेवे ॥

धूमपानके उपद्रवोंकायत्न

तत्रेष्टं सर्पिपः पानं नावनांजनतर्पणम् । सर्पिरिक्षुरसं
द्राक्षा पयो वा शर्करांबु वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि
शमनाय प्रदापयेत् ॥

अर्थ—धूमपानसँ यदि उपद्रवहोवे तो उस मनुष्यको घी पिवावे । नासिका
में नस्यन्देवे, तथा नेत्रोंमें अंजन तथा तर्पण अर्थात् देहमें तृप्ति करनेवाला अ-
सा द्राक्षादि मंड देवे । तथा घी, ईसकारस, और दास, दूध, सरवत्, अथवा
मिश्री, पानी, अथवा मधुरपदार्थ और सट्टेपदार्थ भोजनको देवे, तो धूमपान
संबंधी उपद्रव दूरहो ॥

धूमपानकाकाल और उसकेगुण

धूमश्च द्वादशाहर्षाद् गृह्यतेशीतिकान्न च ।

कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ।

वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्भूमः सुयोजितः ॥

अर्थ—धूमपान वारहवर्षकी अवस्थासँ लेकर अस्सी वर्षपर्यंत करे फिर न करे और उस धूमपानको उत्तम योजनाहोने सँ श्वास, खांसी, सरेकमां, मन्यानाडी, ठोडी, और मस्तकमेंजो पीडा होतीहै उसको तथा वातकफ संबंधी विकार ये संपूर्ण रोग दूरहोवे ॥

धूमोपयोगहोनेपरगुण

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनः ।

दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगंधिवदनो भवेत् ॥

अर्थ—धूमका उपयोग होने सँ मनुष्य चक्षुरादिक इन्द्री तथा वाणी—अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहताहै, और केश तथा दांत और ढड्डी इनमें बल आताहै तथा मुख सुगंधित रहता है ॥

धूममेंनलीकाविधान

धूमनाडी भवेत्त्रिखंडा च त्रिपर्विका । कनिष्ठिका-
परीणाहा राजमाषागमान्तरा ॥ धूमनाडी भवेदीर्घा
शमने रोगिणोंगुलैः । चत्वारिंशन्मितैस्तद्वत् द्वात्रिं-
शद्भिर्मृदौ स्मृता ॥ तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने
षोडशोन्मितैः । दशांगुलैर्वाग्नीये तथा स्याद्भ्रणना-
डिका ॥ कलाय मंडलस्थूला कुलित्यागमरंध्रिका ॥

अर्थ—धूमपानके विषयमें नली तीन टुकड़ेकी और तीन गांठकी करे, तथा कनिष्ठिका (छोटी ऊंगली) के समान मोटीकरे, तथा उसमें चोराका दाना मी-
तर चला जाय अँसा चौड़ा छिद्र करे । इस प्रकारकी नली सामान्य धूमपानमें
होनी चाहिये । वह नली रोगीके चालीस अंगुल लंबीहो । तथा मृदुसंज्ञक जो
धूमहै उसके सेवनमें चत्तीस अंगुलकी लंबी लेय । तथा काससंज्ञक धूम उसके
सेवनमें सोलह अंगुलकी ले । तथा वामनीय संज्ञक धूमके सेवनमें दस अंगुल-
लंबी लेनी । उसीप्रकार व्रणके धूनी देनेको जो नली ले वो दस अंगुलकी ले,
तथा वो व्रणके धूनी वाली नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी और उसमें छि-
द्र कुलधीका दाना भीतर चला जावे इतना चारीक करे । इस प्रकारकी वैद्य-
को बनानी चाहिये ॥

धूमपानार्थैर्ईषिकाका विधान

अथेपिकां प्रलिपेच्च तु श्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलाम् ।
 धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टाङ्गुलःस्मृतः ॥ कल्कं
 कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् । ईषिका-
 मपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात् ॥ अंगारैर्दीपितां
 कृत्वा घृत्वा नेत्रस्य रंघ्रके । वदनेन पिवेद्धूमं वदने-
 नैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततःपित्वा मुखेनैव
 वमेत्सुधीः । शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितं ॥
 छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ।

अर्थ—ईषिका (सरकंडेका टुकड़ा) वारह अंगुलका चिकना लेवे, उसपर धूँआँ लेनेकी वस्तुओंके कल्कका लेप ८ अंगुलपर्यंत करे कल्क द्रव्यका परिमाण २ तोले होना चाहिये । फिर उसकल्कके लेपको छायामें सुखाय लेवे, जब वो कल्क सूखजाय तब युक्तिके साथ उसमेंसे सरकंडेके टुकडेको निकास लेवे, कि वो कल्ककी लंबी नलीसी रहजावे, उसके छिद्रमें दूसरी स्नेहकी बत्ती धरके उसको अंगारोंसे जलायके पूर्वोक्तनलीके छिद्रमें धरे फिर उसनलीको मुखमें रखके धूँआ ईचे और मुखके द्वाराही उस धूपको छोडदेवे । तथा नाकके छिद्रसे धूँआंको र्खीचकर मुखसे छोडदे । एवं सराव संपुटेके ऊपरले सरावमें छिद्रकर उसमें अंगारे भरके उनमें व्रणकी धूनीको जो कि कल्ककराहुआ तयारहै उसे ढालदे जब धूँआं उठने लगे तब उसके उस छिद्रके द्वारपर नलीका छिद्र लगाय व्रणको धूनीदेवे ॥

कौनसीऔपधकाकल्ककौनसेधूममेंदेवे

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसंमृदौ । रेचने ती
 क्ष्णकल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोपणम् ॥ वामने स्नायुच-
 र्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकं । व्रणे निववचाद्यं च धूपनं
 संप्रचक्षते ॥

अर्थ—शमन सङ्गक धूनी उसमें एलादिक औषधोंका गणहै उनका कल्क-
 करके देय तथा मृदुसङ्गक धूममें घृतादिकज्जैह पदार्थोंमें राल ढालके कल्ककरके
 देय । तथा रेचनसङ्गक धूममें सरसो. राई इत्यादि औषधोंका कल्क करकेदेवे ।

तथा कासप्र घूमसें कटेरी और कालीमिरच इत्यादिक औषधोंका कल्क करके देय । तथा वामनधूम (वमन करानेवाली धूम) में स्नायु और चर्मादिकोंका कल्ककरके पान करनेको देवे तथा व्रणमें नीम और वच इत्यादिकोंका कल्क करके धूम देवे ॥

बालग्रहादिदूरकरनेकोधूनी

अन्या हि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशांतये । तद्यथा ।
मयूरपिच्छं निंबस्य पत्राणि बृहतीफलं । मरिचं हिं-
गुमांसी च बीजं कार्पाससंभवम् ॥ छागरोमाहिनिर्मो-
कं विष्टावैडालिकी तथा । गजदंतश्च तच्चूर्णं किंचिद्
घृतविमिश्रितम् ॥ गेहेषु घूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहान्
जयेत् । पिशाचान् राक्षसान् जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ।
एष माहेश्वरो नाम्ना धूपः शिवमुखोद्गतः ॥

अर्थ—बालग्रहमें रोगशांतिकेअर्थ घरमें धूनीदेनी तहां मयूरपिच्छादि धूनी कहते है; मोरकेपंख-१, नीमकेपत्ते २, कटेरीकेफल ३, कालीमिरच ४, हिंग ५, जटामांसी ६, कपासके बीज ७, बकरेकेवाल ८, सापकीकांचली-९, विष्टीकि-विष्टा १०, हाथीकादांत ११, इन ग्यारह औषधोंका चूर्णकर और थोडासा इ-समें घी मिलाय घरमें इस चूर्णकी धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह (शकुनी,—पू-तना,—नैगमेयादि) तथा पिशाच राक्षस—इनके उपद्रव दूरहोय, तथा सर्वप्रकार के ज्वर दूरहोवे । यह मयूरपिच्छादि धूनीहै इसी प्रकार माहेश्वरादि धूनी जानो

धूममेंपरिहार

परिहारस्तु खंडेषु कार्यो रेचननस्यवत् ।

नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥

अर्थ—रेचन सज्ञक नस्पमें रोगोंके परिहारके विषयमें जो उपाय कहाहै वो-ही उपाय इस धूमसें करावे । तथा नलीका मुस सुवर्णादी धातुका अथवा नर-सल तथा वांस इत्यादिकोंका करावे ॥

धूमपीनेकायंत्र

चतुर्विंशत्यंगुलानि त्रीणि युक्तानि युक्तितः ।

योजिता या त्रिखंडेयं नलिका नेत्रसंज्ञिता ॥

अर्थ—चौविस अंगुल लंबी—तीन नली लेके पुक्कीसैं जोडे ये त्रिसंबनलीका इसीकी नेत्र संज्ञाहै ॥

धूमपानकेगुण

मनस्तापं रजः क्रोधं धूमपाने निवारयेत् ॥

अर्थ—धूमपान करनेसैं मनकासंताप, रजोगुण, क्रोध, ये दूरहोते है ॥

(गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधिः ॥)

चतुर्विधः स्याद्गंडूषः स्त्रैहिकः शमनस्तथा ।

शोषनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥

अर्थ—गंडूष (कुरलाकरना) चारप्रकारकाहै— १. स्नेहिक,— २ शमन, ३ शोषन, और चौथा रोपण । तथा कवल (गस्ता—कौर) भी चार प्रकारकाहै ॥

स्त्रैहिकादिगंडूषोकीदोषभेदकरकेयोजना

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।

पित्तकट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोषनः कफे ॥

कपायत्तिक्तमधुरैः कटुष्णे रोपणे व्रणे ।

चतुःप्रकारो गंडूषः कवलश्चापि कीर्तितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और गरम पदार्थोंकरके जो कुरले करने उसको स्नेहिक गंडूष जानना । इसको वादीके रोगोंमें योजना करे । तथा मधुर और शीतल पदार्थके कुल्ले प्रसादन (शमनगंडूष) जानने उनको पित्तमें योजना करे । तथा तीक्ष्ण, सट्टे, सारी और गरम पदार्थके कुल्ले शोषन गंडूष कहाते है उनको कफके विषयमें योजना करता । तथा कपेले, कटुप, और मधुर पदार्थ करके रोपण गंडूष जानना, इसको कुछ गरम करके व्रणमें योजना करे । इसीप्रकार कवलभी चार प्रकारका कहाहै ॥

गंडूषऔरकवलइनमेंभेद

असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः ।

तत्र द्रवेण गंडूषःकल्केन कवलः स्मृतः ॥

अर्थ—काटे आदिशब्दसैं जो द्रवपदार्थ उनसैं मुस्रको भरके उसको इधर वधर मुखमें चलायमान न करे घोड़ी देर रखके कुरलाकरदेवे उसको गंडूष कहाते है

तथा कल्कादिक पदार्थोंको मुसमें भरके इधर उधर फिरावे इसप्रकार रस्ने-
को कवल कहते है ॥

गंडूपऔरकवलकी औषधका प्रमाण
दद्याद्द्रव्येषु चूर्णं च गंडूपे कोलमात्रिकम् ।
कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवले बुधैः ॥

अर्थ—गंडूपमें काढे आदि द्रव (पतली) द्रव्य उनमें चूर्ण एक कोलके प्र-
माण मिलाना चाहिये । तथा कवलमें कल्क कर्ष प्रमाण जानना ॥

किस अवस्थामें गंडूपकरे और कैसेकरे
धार्यते पंचमाद्र्षाद्गंडूपकवलादयः । गंडूपान्सुस्थि-
तः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ मनुष्यस्त्रीस्तथापं-
च सप्त वा दोषनाशनात् ॥

अर्थ—गंडूप अथवा कवलादिक पांचवर्षकी अवस्थाके पश्चात् कराने चाहि-
ये । तथा मनुष्यको स्वस्थ चित्त कर बैठाने, फिर रोग दूरहोनेके अर्थ कपाल,
और गला तथा आदि शब्दकरके मुख इनमें थोडा २ पसीना आवे तवतक तीन
अथवा पांच अथवा सात कुरले करावे, अथवा दोष दूरहोने पर्यंत कराने चाहिये ॥

प्रमाणान्तर

कफपूर्णास्यतां यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गंडूपधारणम् ॥

अर्थ—कफकरके मुख भराआवे तवतक अथवा दोषोच्छेदन होय तहांतक
तथा नेत्र और नाक इनमें स्नावछूटे तवतक गंडूप धारण करे ॥

वातरोगमेंचिकनाईकेकुरले

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा सैहिके हितः ॥

अर्थ—तिलोंकाकल्क, पानी, दूध, तेल, आदिशब्दकरके स्नेहपदार्थ, ये स्रोहि-
क गंडूपमें देवे ॥

पित्तरोगमेंशमनसंज्ञकगंडूप

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च ।

सक्षौद्रो हनुवक्रस्यो गंडूपो दाहनाशनः ॥

अर्थ—तिल, नीलकमल, घी, मिथ्री, और दूध ये पदार्थ एकत्र कर इसमें

सहत ढालके कुरले करे—तो पित्तसंबंधी, ठोड़ी और मुख इनमें जो दाह होता है वह दूर होवे ॥

व्रणादिरोगोपरमधुगंडूष

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणात् ।

दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥

अर्थ—सहतके कुरले करनेसे मुखके छाले, घाव, तथा दाह, तथा ये रोग दूरहोकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥

गंडूषधारणकेगुण

व्याधेरपचयस्तुष्टिवैशद्यं वक्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे विद्यते भवेत् ॥

हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् ।

दंतचालं च गंडूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥

अर्थ—कुरले करनेसे व्याधिका नाश, तृष्णी, स्वच्छता, मुखमें हलकापना, सर्व इन्द्री प्रसन्न हो तथा मुखकी अरुचि, शोष मुखकेछाले, व्रण, प्यास, दातोंका हिलना इतने रोगोंका नाशकर सब शरीरको निर्मल करेहै ॥

कवलधारणकेगुण

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धं निक्षि-

प्य संचर्व्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ कवलः कुरुते

कांक्षां भक्षेपु हरते कफम् । तृषां शोषं च वैरस्यं दं-

तचालं च नाशयेत् ॥

अर्थ—वात-पित्त-कफ-इनके नाशकर्ता औषधोंका कवल (घ्रास) मुखमें लेकर आधा चवायके धूक देवे । तो अन्नभक्षण करनेकी इच्छा होंतया कफका नाशहरे । एवं शोष, प्यास, और अरुचि इनका नाशकरके हलतेहुए दातोंके जसीसमय जमाय देवे ॥

प्रतिसारणम् (मंजन)

दंतजिह्वामुखानां च तूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्घर्षण-

मंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणं ॥ वैरस्यं मुखदुर्गंधं मुख-

शोषं तथा तृषाम्। अरुचिं दंतपीडां च निहन्यात्प्रतिसारणं॥

अर्थ—दांत-जीभ-मुख-इनको चूर्ण-कल्क-और अवलेह अंसें तीन प्रकारकी औषधीसें धीरे धीरे उंगलीसें रगड़े उसको प्रथिसारण (मंजन) कहते है ये प्रतिसारण करनेसें मुखका कहुआपना, दुर्गंध, मुखका सूखना, प्यास, अरुचि, और दांतोंकी पीडा इन सबको नाश करे है ॥

गंडूष कवल और प्रतिसारणकी विधि
क्षीरस्नेहकषायादिद्रव्यैः संपूर्णमाननम् ।
आपूर्य स्थीयते तावद्विधिर्गंडूषधारणे ॥

अर्थ—दूध तथा घृतादि स्निग्धपदार्थ तथा काढा आदिशब्दसें पतली औषधको मुखमें भरके थोड़ीदेर रहनेदे फिर उसको कुरला (कुछा) करदेवे, यह गंडूष लेनेकी विधिजाननी ॥

विषादिर्मेगंडूष.

विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्घार्यं पयोथवा ॥

अर्थ—विषदोष-(संस्त्रियाआदि) और क्षारादिजन्य विकार तथा अग्निदग्धजन्यविकार इनसें घी अथवा दूध इनके कुछे करे ॥

दंतचालनमेगंडूष.

तैलसैधवगंडूषो दंतचाले प्रशस्यते ॥

अर्थ—तिलकातेल, और सैधानिमक, दोनोकों मिलाय कुछे करे तो दांत हिलतेहुए जमजावे ॥

मुखशोषपरगंडूष

मुखशोषं मुखस्य वैरस्यं गंडूषः कांजिको जयेत् ॥

अर्थ—मुखशोष तथा मुखकी चिरसताको कांजीके कुछे नाश करते है ॥

कफपरगंडूष.

सिंधुत्रिकदुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ॥

अर्थ—सैधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, और राई इनका चूर्णकर अदरसक मिलायके कुछे करे तो कफदोष दूरहोय ॥

कफतथारक्तपित्तपरगंडूष

त्रिफलामधुगंडूषः कफामृक्पित्तनाशनः ॥

अर्थ—त्रिफलेका चूर्ण सहतमें सानके उसके कुंछे करे तों कफ और रक्त पित्त नष्टहो ॥

मुखपाकपरगंडूप

दावीं गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवाः ।

यवासश्चेति तत्काथःषष्ठांशः क्षौद्रसंयुतः ॥

शीतो मुखे घृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजं ॥

अर्थ—दारुहलदी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीकेपत्ते, जवासा, इन औषधोंको समान भागले काढा करे, तथा काढेका छटांभाग सहत मिलाय काढेको शीतलकरके कुंछे करेतो त्रिदोषजन्य मुखके छाले दूरहोवे ॥

यस्यौषधस्य गंडूपस्तथैव प्रतिसारणम् ।

कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥

अर्थ—जिस औषधोंका गंडूप उत्तीका प्रतिसारण करना, तथा कवल भी उन्ही औषधोंका होता है ऐसा कुशलवैद्योंको जानना चाहिये ॥

कवलकाप्रकार

केशरं मातुलिङ्गस्य सैधवं व्योपसंयुतं ।

हन्यात्कवलतो जाड्यमरुचिं कफवातजाम् ॥

अर्थ—विजोरेकी केशर, सैधानिमक, तथा सोंठ, मिरच, पीपल, इन औषधोंको एकत्रकर इनका कल्ककर कवल करेतो मुखकी जडता तथा कफवातकी अरुचि रोग दूरहोवे ॥

प्रतिसारणकृभेद

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम् ।

अंगुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥

अर्थ—कल्क, अवलेठ, और चूर्ण, इन भेदोंसे प्रतिसारणतीन प्रकारकाहै । इनमें मनुष्यको जैसी दोषकी तारतम्यताहो उसके सदृश अंगुलीके अग्रभागसे लेकर जीभमें लगा और संपूर्ण मुखको रगड़े ॥

प्रतिसारणचूर्ण-

कुष्ठं दावीं समंगा च पाठा तिक्ता च पीतिका ।

तेजनी मुस्तलोघ्नं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥

रक्तश्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ।

अर्थ—कूठ, दारहलदी, घायकेफूल, पाठ, कुटकी, हलदी, तेजवल, नागर-
मोथा, और लोध, ये नो औषधोंका चूर्ण करके जीभ तथा सब मुखमें उंगलीके
अग्रभागसे लेकर रगड़े, तो दातोंके मसूढोंसे जो रुधिरगिरे वह, दातोंकीपीडा,
सूजन, दाह, ये संपूर्णरोग दूरहोवे । इस चूर्णको प्रतिसारण (मंजन) कहते है॥

गंडूपादिकीहीनयोगहोनेकेलक्षण

हीनयोगात्क्फोत्क्लेशो रसाज्ञानाऽरुची तथा ।

अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्रमो भवेत् ॥

अर्थ—गंडूपादिका हीनयोग होनेसे कफकी अधिक्यता होतीहै । तथा मधु-
रादिक रसोंका यथार्थ स्वाद मालूम नहींहो । तथा अन्नादिकमें अरुचिहोय ।
तथा गंडूपादिका अतियोग होनेसे मुखपाकके समान मुख उपदब्धवे, तथा शो-
ष और प्यास ये लक्षण होतेहै ।

शुद्धगंडूषकेलक्षण

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ—गंडूपादिका उत्तमयोग होनेसे मुखसंबंधी व्याधीका नाश अंत कर-
णमें सतोप, मुखमेंनिर्मलता और हलकापना, तथा रसनादिइन्द्रियोंमें प्रसन्नता, ये
लक्षण होतेहै । ये शुद्धगंडूष होनेके लक्षण जानने ॥

इतिगंडूपादिविधिःसमाप्तः

अथनेत्ररोगचिकित्साविधिः

नेत्रअच्छेहोनेकेउपचार

सेक आश्रोतनं पिंडी विडालस्तर्पणं तथा ।

पुटपाकौजनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥

अर्थ—सेक, आश्चोतन, पिंढी, विडाल, तर्पण, पुटपाक, और अंजन, ये सातप्रकार नेत्ररोगमें कहेहैं, इनका कलककरके जिस प्रकार नेत्ररोगमें उपचार करनेका कहाहै उसप्रकार करना चाहिये ॥

सेककेलक्षण

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।

मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेहश्चतुरंगुलात् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रबंदकर दूध, घी, रस, इत्यादिकोंका सार, नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसें वारीक धार देवे इसे सेक कहतेहैं ॥

सेककेभेद

सचापि स्नेहने वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ।

लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राऽधुनोच्यते ॥

अर्थ—वातरोगमें स्नेहन सेक करे, रक्तपित्तके कोपमें रोपण सेक करे, तथा कफरोगमें लेखन सेक करना चाहिये ॥

सेककीमात्रा

षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे ।

वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेके लेखनकर्मणि ॥

अर्थ—स्नेहनकर्ममें छःसौवाक् होनेपर्यंत नेत्रोंपर तरबा जिस औषधका देना कहा वो देवे । रोपण कर्ममें चारसौ वाक्पर्यंत धार देनी । तथा लेखनकर्म में तीनसौ वाक्पर्यंत धार देनी चाहिये ॥

सेककर्मकाकाल

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ।

अर्थ—यदि नेत्रमें सेक करनाहोयतो दिनहीमें करे, कदाचित् रोगकी आपेक्ष्यता होयतो रात्रीमें भी करे, असी शास्त्रकी आज्ञाहै ॥

वाताभिष्यंदादिरोगपरसेक

एरंडत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयोहितम् ।

सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—सुरतीअंडकीछाल, पत्ते, जड़, इनसबको बफरीके दूधमें ओंटायके फिर घुहाते २ गरमदूधकी धार वाताभिष्यंदरोग दूरकरनेके वास्ते नेत्रोंमें देय ॥

तथादूसराक्रम

परिपेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैधवम् ।

रजनीदारुसिद्धं वा सैधवेन समन्वितम् ॥

वाताभिष्यंदशमनंहितं मारुतपर्यये ।

शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा ॥

अर्थ—बकरीकेदूधमें सैधानिमकडाल गरमकर सहनहोयजैसा गरम २ धार नेत्रोंपर गेरे, अथवा हलदी, देवदार, सैधानिमक, इनका चूर्णकर उसको दूधमें डाल गरमकर सुहाता २ गरमनेत्रोंपर धार देय तो वाताभिष्यंदरोग और वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूरहोय ॥

पित्त; रक्त और अभिघातपरसेक

सावरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।

छागक्षीरे घृतं सेकात् पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ—पठानीलोष और मुलहठी, इन दोनो औषधोंको समान भागले घीमें घून चूर्णकर बकरीके दूधमें डालके उस दूधकी सुहाती गरम २ धार नेत्रोंपर डाले तो पित्तविकार, रक्त विकार, और अभिघातजन्य विकार ये सब दूरहोवे ॥

रक्ताभिष्यंद

त्रिफलालोघ्रयष्टीभिः शर्करामद्रमुस्तकैः ।

पिष्टैः शीतांबुनासेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—हरड, बहेडा, आमला, लोष, मुलहठी, सांड, नागरमोघाका भेद भद्रमोघा, ये सब औषध समानभागले सीतल जलमें पीस उसपानीकी नेत्रोंपर धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद दूरहोय ॥

तथादूसरा

लाक्षामधुकमंजिष्ठा लोघ्रकालानुसारिवा ।

पुंडरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—लास, मुलहठी, मजीठ, लोष, सारिवा और सपेदकमल इन औषधोंको पानीमें पीस उस पानीकी नेत्रोंमें धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद (शीघरके कोपसे आंसू दूखने आरंभ हो) सो दूरहो ॥

नेत्रशूलमेसकः

श्वेतलोघ्रं घृतभृष्टं चूर्णितं पटविस्तृतम् ।

उष्णांशुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमंबके ॥

अर्थ—पठानी लोघको घीमें भून कूटकर कपडछान चूर्णकर गरम जलमें पी-
स उस पानीका नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रका दरद दूरहो - कोई इसकी पोटली
बनाय गरमपानीमें भिगोयके नेत्रको सेकेतेहै जिस्से नेत्रपीडा जाती रहती है ॥

आश्रोतनकेलक्षण

अथ आश्रोतनं कार्यं निशायां न कथंचन

उन्मीलितेक्षिण दृष्ट्मध्ये विंदुभिर्द्वयैर्गुलाद्वितम् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रमें दोअंगुलपर्यंत दूधकांठा इत्यादिकी
बूंद डाले इसको आश्रोतन कहते है यह आश्रोतनकर्म रात्रिमें न करे ॥

अथआश्रोतनविधिः

काथक्षौद्रासवस्नेहविंदूनां यत्तु पातनम् ।

यद्व्यंगुलोन्मिते नेत्रे प्रोक्तमाश्रोतनं हि तत् ॥

अर्थ—दूखते नेत्रको दोअंगुल प्रमाण खोलके उसमें कांठा, सहत, आसव,
तथा स्नेह पदार्थ की बूंद डाले उसको आश्रोतन क्रिया कहते है ॥

लेखनादिक आश्रोतनमें कितनी बूंदडाले

विन्दुवोष्टौ लेखनेषु स्नेहने दशविन्दवः । रोपणे द्वा-

दशप्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ उष्णे च शीत-

रूपाः स्युः सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥

अर्थ—लेखनकर्ममें नेत्रमें आठबूंदडाले—स्नेहनकर्म होयतो दशविंदुडाले-
रोपणकर्म होनेसे चारह विंदुडाले—चोबूंदशीतल औरनेत्रोंको सुहाती २ गरम २
डालनी चाहिये और यदि गरमीके दिन होयतो शीतल २ बूंदडाले ॥

वातादिकमेंआश्रोतनः

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।

तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्रोतनं हितम् ॥

अर्थ—वादीके रोगमें कटू और चिकना असा आश्रोतनकरे । पित्तरोगहोय-

तो मधुर और शीतल ऐसाकरे । कफरोग होयतो कटु गरम—रूक्ष ऐसा आश्रो-
तन करना चाहिये इसप्रकार आश्रोतनकर्म करना हितकारी है ॥

आश्रोतनकी मात्राकाक्रम

आश्रोतनानां सर्वेषां मात्रास्याद्वाक्शतं हितम् ।

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृताबुधैः ।

अर्थ—मनुष्यके आँखोंके पलक मुदना और खुलना अथवा चुटकी बजाना
अथवा गुठ (दीर्घ) अक्षरका उच्चारण करना इनमें जितनी देरी लगती है उस
काल (देरी) को एक वाङ्मात्रा कहते हैं; ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्रो-
तनमें हितकारक जाननी । अर्थात् सौवाक् पर्यंत उक्त औषधोंकी बूंद नेत्रोंमें
धारण करनी ॥

वातभिष्यंदपरआश्रोतन

विल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरंडशिशुभिः ।

काथआश्रोतने कोष्णो वाताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—बेलहै आदिमें जिनके अँसी पांच औषधोंके मूल, कटेरी, अंडकीजड़,
सहजनेके जड़की छाल, इन सब औषधोंका फादाकरके जैसा २ सहन होये अँ-
सी गरम बूंद नेत्रमें डाले, तो वाताभिष्यंद रोग दूरहो ॥

(वायुजन्यवारक्तपित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्रोतन)

अंबुपिष्टैर्निबुपत्रैस्त्वचं लोघ्नस्य लेपयेत् ।

प्रतापवन्दिहनापिष्ठा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥

वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यंदं विनाशयेत् ।

अर्थ—कहुए नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोघकी छाल पर लेपकरे, फिर
उस छालकी अभ्रिमें तपावे पीछे पीसके उसकारस निकाल नेत्रोंमें कुछ गरम २
बूंद डाले तो वातजन्य रक्तपित्तजन्यअभिष्यंद दूरहो ॥

सर्वअभिष्यंदोंपरआश्रोतन

त्रिफलाश्रोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यंदनाशनम् ।

१ बेल, अरनी, टेढ़, पावट, कपारी, ये विल्वादि पंचमूल जानना इसीको बृहत्पंच
मूल करते हैं ।

अर्थ—त्रिफलेके काढेकी गरम, २ मुहाती बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्वप्रकारके अभिष्यंद दूरहो ॥

रक्तपित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्रितन

स्त्रीस्तन्याश्रितनं नेत्रे रक्तपित्तानिलातिजित् ।

क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ॥

अर्थ—स्त्रीके दूधके बूंदको नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त और वायु इनकी पीडा को दूरकरे । उसी प्रकार दूधके ऊपरकी मलाई और घी इनकी बूंद अथवा फाये नेत्रोंमें बांधे तो वातरक्त संबंधी पीडादूरहो ॥

पिंडिकाकेलक्षण

पिंडी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ।

नेत्राभिष्यंदयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते ॥

अर्थ—नेत्ररोग नाशक औषधको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर धरके कपड़ेकी पट्टीसे उसको बांधदेवे, इसको पिंडी अथवा कवलिका कहते है यह पिंडी नेत्राभिष्यंद रोगके योग्यहै । तथा व्रणके ऊपरभी बांधना कहाहै ॥

स्निग्धोष्णा पिंडिका वाते पित्ते सा शीतला मता ।

रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥

अर्थ—चातव्याधिपर चिकनी और गरम-पित्तपरशीतल-तयाकफपररूक्षी-और गरम अंसी पिंडी बांधनेकी विधिकही है ॥

नेत्राभिष्यंदमेंशिरिविरेचन

अभिष्यंदेऽधिमंथे च संजाते श्लेष्मसंभवे ।

स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ—कफसंबंधी अभिष्यंद तथा अधिमंथ रोगीके मस्तकमें तेल चुपड पत्ती ने निकाले फिरमस्तक शोधन करनेको तीक्ष्ण औषधकरके नाकमें नस्य देवे ॥

उपायांतर

अधिमंथेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम् ।

अशांतिः सर्वथा मंथे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत् ॥

अर्थ—संपूर्ण अधिमंथमे (नेत्रदूस्सनेमें) मस्तककी शिरा वेधे (फस्तसोले) तो नेत्रदूस्सना शांतिहो । यदि सब उपाय करनेपरभी आंस दूस्सनेसे न रहे तो मुकुटी (भौह) में दाग देवे ॥

वाताभिष्यंदकायल

वाताभिष्यंदशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिंडिका भवेत् ॥

अर्थ—संगूर्ण अभिष्यंद रोगमें नेत्रोंकी पीडा दूरकरनेको ओषध कहीं है उनकी टिकिया करके बांधे। तथा वाताभिष्यंदमें चिकनी और गरम टिकियाबांधनी

वाततथापित्ताभिष्यंदकायल

पुरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी ।

पित्ताभिष्यंदनाशाय धात्रीपिंडी सुखावहा ॥

अर्थ—अंडकेपत्ते, छाल, जड़, इन सबको एकत्र पीस टिकिया बनाय वाताभिष्यंद दूरकरनेको नेत्रोंपर बांधनी। पित्ताभिष्यंद दूरकरनेको आमलोंको पीस टिकियाकरके नेत्रोंपर बांधेतो नेत्रपीडा दूरहोवे ॥

पित्ताभिष्यंदपरदूसरीपिंडी

महानिंबफलोद्भूता पिंडी पित्तविनाशिनी ।

अर्थ—वकायनके फलको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद रोगवालेके नेत्रोंपर बांधे तो पीडा दूरहो ॥

श्लेष्माभिष्यंदपरपिंडी

शिशुपत्रकृतापिंडी श्लेष्माभिष्यंदनाशिनी ।

अर्थ—सहजनेके पत्तोंकी टिकिया बनायके बांधेतो कफसें नेत्रदूसना दूरहोय

कफपित्ताभिष्यंदपरपिंडी

निंबपत्रकृता पिंडी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ।

त्रिफला पिंडिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ॥

अर्थ—नीमकेपत्तोंकी टिकिया बनायके रोगीके नेत्रोंपर बांधेतो कफपित्ताभिष्यंदकी पीडा दूरहो। तथा त्रिफलेकी टिकिया बांधेतो कफपित्ताभिष्यंद नाशहो

रक्ताभिष्यंदपरपिंडी

पिष्टा कांजिकतोयेन घृतभृष्टिं च पिंडिका ।

लोघ्नःप्रहरति क्षिप्रमभिष्यंदमसृद्धरम् ॥

अर्थ—लोघको कांजीसे पीसके टिकिया बनाय घीमें सेकके नेत्रोंपर बांधे तो रक्ताभिष्यंद (रुधिरकी दुष्टतासें जो नेत्र दूस्नेको आते हैं वो) दूरहो ॥

सूजनऔरखुजलीआदिपरपिंडी
शुंठीनिंबदलैः पिंडी सुखोष्णा स्वल्पसंघवा ।
धार्या चक्षुषि संयोगात् शोथकंद्बुध्यथापहा ॥

अर्थ—सोठ और नीमके पत्तोंको पीस उसमें थोड़ा सेंधानिमक डाल टिकिया बनाय गरमकरके नेत्रोंपर बांधे तो—नेत्रोंका सूजना नेत्रोंकी खुजलीकी पीडाको दूरकरे ॥

विडालककेलक्षण
विडालको बहिल्लेपो नेत्रपक्षमविवर्जितः ।
तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ—नेत्रके पल्लकोको मूंदके ऊपर सर्वत्र लेपकरनेको विडालक कहते हैं । इस लेपकी मात्रा मुखलेपकी विधिके माफिक जाननी, अर्थात् जैसे मुखलेप करनेमें जो मात्रा लेनी लिखी है वही मात्रा इस विडालककी लेवे ॥

सर्वनेत्ररोगोम्लेप
यष्टीगैरिकसिंघूत्यदावींताक्षर्यैः समांशिकैः ।
जलपिष्टैर्वहिल्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ—मुलहठी,—गेरू,—सैंधानिमक,—दारहलदी,—और स्वपरिया,—ये पांच औषध घरावरले पानीमेंपीस नेत्रोंके बाहर २ लेपकरे तो सर्वअभिष्यंद (नेत्रोंका दुखना) दूरहो ॥

तथादूसरालेप
रसांजनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलै रपि । कुमारिका
ग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि ॥ वचा हरिद्राविश्वैर्वा त-
था नागरगैरिकैः ॥

अर्थ—रसोतको जलसे पीस लेप करे । उसीप्रकार हरद, सोंठ, तमालपत्र—इन तीनों औषधोंको जलमें पीस लेपकरे । अथवा घागुवार और चीनेके पत्तोंको एकत्र जलसे पीस लेपकरे । अथवा अनारके पत्तोंको पीस लेपकरे अथवा वचा, हलदी, और सोंठ, इन तीन औषधोंको जलमें पीस लेपकरे उन्नीप्रकार सोंठ और गेरू इनको जलमें पीसके नेत्रके बाहरले भागमें चान्यो तरफ लेप करे तो सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूरहो । ये छःलेप पृथक् २ कहे हैं ॥

तथातीसरालेप

दग्ध्वाग्नौ सैधवं लोघ्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ।

पिष्टमंजनलेपान्भ्यां सद्यो नेत्ररूजापहम् ॥

अर्थ—सैधानिमक और लोघ इन दोनों औषधोंको अग्निमें भून-मौम और घी एकत्रकर उसमें वो औषध पीसके नेत्रोंमें अंजन करे, और पूर्वोक्त औषधोंका नेत्र के बाहर लेप करे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूरहोय ॥

चतुर्थलेप

लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः ।

किंचिद्धनो वहिलेपान्नेत्रबाधां व्यपोहति ॥

अर्थ—लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोटे जब गाढा होजावे तब नेत्रके वहिर्भागमें लेप करे तो नेत्रसंबंधी सर्वपीडा दूरहो ॥

अर्मरोगपरलेप

संचूर्ण्य मरिचं केशराजं स्वरसमर्दनात् ।

लेपनादर्मणानाशंकरोत्येषप्रयोगराट् ॥

अर्थ—कालीमिरचोकों भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे, तो शुष्कर्म और जाधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगोंमें जो अर्मरोग है वो दूरहो ॥

अंजननामिकापरप्रतिसारण

स्विन्नां भित्वा विनिष्पीड्य भिन्नामंजननामिकाम् ॥

शिलैकानतसिंघृत्यैःसक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ॥

अर्थ—नेत्रोंकी-पलकोंमें अंजननामिका नामकी फुंसी होतीहै उसको आंजनी कहतेहै, उस फुंसीका बफारेसें पसीने निकालके चीरडाले फिर उसका मवाद निकाल पश्चात् मनसिल, इलायची, तगर, सैधानिमक, इन चार दवाइयोंका चूर्णकर सहृत्में मिलाय उस फुंसीमें प्रतिसारण करे अर्थात् ये औषध उस फुंसी पर चुपडदेवे तो आंजनी फुंसी दूरहो ॥

नेत्ररोगमेंतर्पण

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परं । यद्भक्षं परिशु-
ष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पात-
कृच्छ्रोन्मिलिनसंयुतम् । तिभिरार्जुनशुक्राद्यैरभिध्यं-

दाधिमंथकैः ॥ शुक्राक्षिपाकशीथाम्यां युक्तं वातविप
र्ययैः । तन्नेत्रतर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥

अर्थ—नेत्रमें तृप्तिकरता अंसा तर्पण कहते हैं; जिस नेत्रमें सूखापना, शुष्कता, टेढापना, और गदलाहटपना है अंसेनेत्र, तथा जिसके पलकोंके बाल गिर गएहो, शिरोघात, कृच्छ्रोन्मीलन, (कठि-सैनेत्रमुदे) तिमिर, अर्जुन, शुक्र (मोतियाबिंद) अभिष्यंद, अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, और वातविपर्यय इन रोगसँ व्याप्त नेत्ररोगीकें तर्पण करे, अर्थात् तृप्ति करता औषधीकी योजना करे ॥

हीनाधिकतर्पणमें उपचार

पूर्णे चापांगतः स्नेहं स्रावयित्वा क्षिशोधयेत् ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ॥

यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं तर्पणं चरेत् ॥

अर्थ—नेत्र पूर्णहोनेके पश्चात् अपांग (नेत्रकोण) के द्वारा स्नेह बाहर निकालके नेत्रका शोधन करे । फिर स्नेहवीर्यसँ दुष्टनेत्रोंका जोंके चूनको फिगो वाफदेकर अर्थात् कुछ गरम करके नेत्रोंके ऊपर बांधे अथवा धूमपान करके उसके कफको निकाले, इस प्रकार एक अथवा तीन अथवा पांचदिन तर्पण करे

तर्पणकानिषेध

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिंतायासंभ्रमेषु च ।

अशांतोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥

अर्थ—जिसदिन आकाश बदलोंसँ घिरा हुआहो, अत्यंत शरदी या गर्मीहो, शरीरमें चिंताहो, परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसँ तथा नेत्रसंबंधी श्लेष्मादिक उपद्रवशांत न हुए होवे तो तर्पण न करे ॥

तर्पणका विधान

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः । आचारौ
मापचूर्णेन क्लिन्नेन परिमंडलौ ॥ समौ दृढावसंवाधौ
कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः । पूरयेत् घृतमंडेन विलीनेन
सुखोदकैः ॥ अथवा शतघौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा ।

निमग्रान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ पूर-
येन्मोलिते नेत्रे ततः उन्मीलयेच्छनैः ॥

अर्थ—पवन, धूप, धूल, ये जिसजगे न हो उस स्थानमें मनुष्यको चित्त मु-
लायके नेत्र कोशमें भीगे उडदोंके चूनका गोल धामलासा बनावे फिर नेत्रोंको
बंदकर उनके ऊपर पतला घी अथवा मूड (पेया) अथवा गरमजल अथवा सौं-
वारका धुला हुआ घी अथवा दूध येपदार्थ जबतक नेत्रोंके पलककी वरुनी न
हूवे तब तक नेत्रोंमें डाले, फिर धीरे २ नेत्रोंकी उवाडे; इसप्रकार करने को
तर्पण कहते है इससे नेत्र दृप्तहोते है ॥

तर्पणकीमात्राकाप्रमाण

धारयेद्धर्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधाः । स्वच्छे
कफे संधिरोगे मात्रा पंचशतं हितम् ॥ शुक्ले च षट्-
शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥ दृष्टरोगेष्वष्टशतम-
धिमंथे सहस्रकम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥

अर्थ—नेत्रसंबंधी पलकोंके रोगमें १०० सौ वाङ्मात्र तर्पणरूप औषधको
नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफका रोग होय अथवा नेत्रकी संधिगत रोग होने-
से ५०० पांचसौ वाक्पर्यंत, नेत्रके सपेद भागमें रोग होनेसे ६०० छःसौ—। त-
था काले भागमें रोगहोनेसे ७०० सातसौ—। दृष्टिरोग होयतो ८०० आठसौ ।
आधिमंथ रोग होयतो १००० एकहजार । वातकारोग होयतो १००० एक हजा-
र वाङ्मात्र होने पर्यंत औषधको नेत्रोंपर धारणकरे । इसप्रकार तर्पणके धारण
का प्रमाणकहा ॥

(तर्पणसैस्त्रेहकेअधिकयोगद्वाराकफाधिक्यहोनेकाउपाय)

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ।

यथास्वं घूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥

अर्थ—तर्पणके स्नेहवीर्य करके उत्पन्न हुआ जो कफ (नेत्रोंमें कीचड) उ-
सको भीगे जोओंको पीस उससे तथा घूमपान करके शोधन करना चाहिये ॥

तर्पणकी मर्यादा

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेष्यते परम् ॥

अर्थ—नेत्रमें तर्पण प्रयोग करना होयतो एकदिन अथवा तीनादिन अथवा
पांचदिन पर्यंत करे, यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ॥

तर्पणकरकेतृतकेलक्षण

तर्पणे तृप्तिर्लिंगानि नेत्रस्येमानि भावयेत् । सुखस्व-
प्रावबोधत्ववैशद्यं वर्णपाटवम् ॥ निवृत्तिर्व्याधिशं-
तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥

अर्थ—सुखपूर्वक निद्रा आवे, सुखपूर्वकजागे, नेत्रोंमें निर्मलताहोय, नेत्रोंकी
कांति उत्तमहोय, नजर साफहोवे, रोगका नाशहोय, और नेत्रोंके खोलने मूंदने
में हलकापना, आवे, येलक्षण तर्पण करके नेत्रवृत्त हुए प्राणीके होते है ॥

तर्पणअत्यंतहोनेकेलक्षण

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकंदूपदेहवत् ।

घर्षतोदयुतं नेत्रमतिर्तर्पितमादिशेत् ॥

अर्थ—भारी, गदले, अतिचिकने, आंसू, खुजली, कीचडसँ चिकटे हुए, घर्ष-
ण, पीडा, ये लक्षण अति तर्पित नेत्रवाले प्राणीके जानने ॥

हीनतर्पणकेलक्षण

आस्रावशोफरागाढ्यमुपदेहसमाकुलम् ।

रूक्षमस्त्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥

अर्थ—पानीगिरना, रूजन, लाली, चिकटेहुए, रूखे, रक्त, गदले, और, पी-
डायुक्त ये लक्षण जिसके नेत्रोंमें होय उसको हीनतर्पित जानना । अर्थात् ठी-
क तर्पण नहीं हुआ ॥

तर्पणसँहीनाधिक्यस्निग्धकायत्न

अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सिते ।

रूक्षस्निग्धौपचाराभ्यामेतयोःस्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ—अधिकतृप्त और हीनतृप्त हुए रोगीकी वैद्य रूक्षस्निग्ध उपचार करके
चिकित्साकरे अर्थात् अधिकतृप्तकी रूक्ष और हीन तृप्तकी स्निग्ध चिकित्सा
करनी चाहिये ॥

पुटपाक

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम् । द्वौ वि-

ल्वमात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ ॥ द्रव्या-
णां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः । तदेकस्थं
समालोच्य पत्रैः सुपरिवोष्टितं ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वागृ-
ह्णीयात्तद्रसंबुधः । तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ॥

अर्थ—अब इसके उपरांत हम पुटपाक साधन (बनाना) कहेंगे; हरिणादि-
कोंका मांस दोबिल्व लेके उसको घृतादिक स्नेह पदार्थमें मिलाय चारीक पीसे,
तथा सूखी औषध जो कहीहै वो एक बिल्व प्रमाण ले तथा सहत, पानी, इत्या
दिक द्रवपदार्थ—एक कुडव प्रमाण ले, इस सबको उस पूर्वोक्त मांसमें मिलायके
गोला बनावे, फिर जायुन, अथवा आम, इत्यादिके पत्ते उस गोलेके
चान्यो तरफ लपेट देवे, फिर उसपर मिट्टीका लेप करे, पश्चात् पुटपाककी
रीतिसँ गोला को आग्निमें भूनके बाहर निकाले मिट्टी पत्ते दूरकर उस गोले-
को निचोड़ कर रसनिकाल लेवे, इस रसको तर्पणकी विधिसँ ऊपर कहेप्रमाण
नेत्रोंमें डाले, तो यह सर्वनेत्रधिकारोंको दूरकरे ॥

पुटपाकसंबंधीरसनेत्रमेंडालनेकीविधि
दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।
स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति सत्रिधा ॥

अर्थ—वह पुटपाक संबंधी रस स्नेहन, लेखन और रोपण इन भेदोंकरके तीन
प्रकारकाहै । इस मनुष्यको सीधा चित्त लिटायकर नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें
नित्य डालना चाहिये ॥

स्नेहनादिभेदसँपुटपाककीयोजना
हितः स्निग्धोतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापिहि लेखनः ।
दृष्टेर्वलार्थमितरः पित्तासृक्प्रणवातनुत् ॥

अर्थ—रूखे नेत्रवालेको स्निग्धपुटपाक, स्निग्ध नेत्रवालेको लेखन पुटपाक,
तथा दृष्टीमें बल आनेके वास्ते रोपण पुटपाक की योजनाकरे वो पुटपाक नेत्रसं-
बंधी दुष्टहुए जे पित्त रक्त प्रण और वायु इनको दूरकरे इस पुटपाककी विधि
आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

स्नेहपुटपाक
सर्पिर्मांसवसामज्जामेदस्वाद्वापैः कृतः ।

स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वेवाक्शते दशोः ॥

अर्थ—घी, हरिणादिकोंके मांस,-मज्जा,-औरमेद ए सब घीमें मिलाय के पी-से और कांकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण कर उस मांसादिकमें मिलाय देवे फिर एक गोला बनाय जामुन,-आंव, इत्यादिकोंके पत्तोंमें लपेट मिट्टी चढाय पुटपाककी विधिसे अग्निदेवे फिर उस गोलैको अग्निसँ निकाल मिट्टी और पत्ते दूरकरके निचोड रस निकाल लेवे, इस रसको नेत्रोंमें डाले और २०० बाह् मात्र पर्यंत धारणकरे । इसको स्नेहनपुटपाक कहते है आगे लेखनपुटपाक कहते है ॥

लेखनपुटपाक

जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ।

कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ॥

समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः ।

लेखने वाक्शतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ॥

अर्थ—हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस,लोहचूर्ण(ताम्रचूर्ण)शंस, मूंगा,सैंधा निमक, समुद्रफेन, कसीस, मुरमा, और बकरीके दहीकी छाछढालके पीस गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे पचाय रसनिकाल नेत्रोंमें डाले और सौ १०० मात्रा होनेपर्यंत धारणकरे इसको लेखन पुटपाक कहते है ॥

रोपणपुटपाक

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः । लेखना-
त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ वितरेत्तर्पणोक्तां-
तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥

अर्थ—स्त्रीकादूध, हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस,सदत, और घी, कुटकी ये सब उसमांसमें मिलाय पीसके गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे प-रिपक्व कर बाहरनिकाले तथा मिट्टी और पत्ते दूरकरे निचोड रस निकालले इस-को नेत्रोंमें डाल तनिसे ३०० वाक्पर्यंत धारणकरे, इसको रोपण पुटपाक कह-तेहै । यादे पुटपाकके आधिक्य अथवा न्यूनताके कारण भारीपना तथा निस्ते-जता आदि उपद्रव होवेतो तर्पणमें जैसी क्रिया कहआएहै उसके माफिक यत्न करना चाहिये ॥

(दोषपक्वहोनेसैंअंजनऔरअंजनकासाधारणविधान)

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् । हेमंते शि-

शिरे चैव मध्यान्हेंजनमिष्यते ॥ पूर्वाण्हे चापराण्हे

च ग्रीष्मे शरदिचेष्यते । वर्षासु नाग्ने नात्युष्णे वसंतेचसदैवाहि ।

अर्थ—जिसके दोष परिपक्व हो उसमाणीके अंजन लगना होयतो पांचादि-
नके पश्चात् लगावे, अंजनकी साधारणविधि—हेमंतऋतु और शिशिरऋतु इनमें
दोपहर दिनचढ़े अंजन लगावे, ग्रीष्मऋतु और शरदऋतु इनमें प्रातःकाल अ-
थवा सायंकालमें अंजन लगावे, वर्षामें और अत्यंत गरमीमें अंजन न लगावे ।
एवं वसंत ऋतुमें सकालमें अंजन (आजना) उत्तम है ॥

अंजनकेभेद

लेखनं रोपणं चैव तथा तस्त्रेहनांजनम् । लेखनं क्षा-

रतीक्षणाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ कषायतित्तरसयुक् स-

स्त्रेहं रोपणं मतम् । मधुरस्त्रेहसंपन्नमंजनं च प्रसादनम् ॥

अर्थ—लेखन, रोपण, और स्त्रेहन, इनभेदोंसैं अंजन तीन प्रकारकाहै । तिन-
में स्वार, तीक्ष्ण, और स्वष्टा ये रस जिस अंजनमें है उसको लेखनांजन कहतेहै ।
तथा कपेला, कदुआ, ये दो रस करके युक्त जो अंजनहै तथा स्त्रेहयुक्तहो उस-
को रोपणांजन कहते है । और जो मधुररस संपन्न तथा स्नेहयुक्त हो उसको स्ने-
हनांजन जानना ॥

अंजनकेगुटिकादितीनभेद

गुटिका रसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि च ।

कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥

अर्थ—गोली, रस, और चूर्ण, इन भेदोंसैं अंजन तीनप्रकारका है । इन अं-
जनोमें गुटिकांजन की अपेक्षा रसगुणवाला न्यूनहै, और रसरूप अंजनकी अपे-
क्षा चूर्णरूप जो अंजनहै सो गुणोंमें न्यूनहै, अंसैं उत्तरोत्तर गुणोंमें हलके जा-
नने । इन अंजनोको सलाईसैं अथवा उंगली करके नेत्रोंमें लगावे तहां वत्ती चं-
द्रोदयादिक जाननी, रगडा आदि रसांजनहै, और सुरमा आदि चूर्णांजन जा-
नने चाहिये ॥

अंजनकेअयोग्य

श्रांते प्ररुदिते भीते पीतमध्ये नवज्वरे ।

अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते ॥

अर्थ—परिश्रमसे थका, रुदित, डरपाहुआ, मद्य (दारू) पानकरचुकाहो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णमें, मलमूत्रकी बांधा रोकनेवाला इतने मनुष्योंके अंजन नहीं लगाना ॥

अंजनमेंवत्तीकाप्रमाण

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तितीक्ष्णांजने भिषक् ।

प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण अंजनमें हरेणुबीज (मटर) के समान गोली लंबी वत्तीके समान बनावे, अर्थात् मटरके समान उसका मुटापा होय । उसीप्रकार मध्यम अंजनमें मटरसे ढ्योटी वत्ती बनावे तथा मृदु अंजनमें हरेणुबीज (मटर) दोकी धरावर अर्थात् दूनी गोल वत्ती बनावे ॥

अंजनमेंरसकाप्रमाण

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्रिविडंगमिताहिता ।

मध्यमा द्विविडंगं स्याद्धीनात्वेकविडंगकम् ॥

अर्थ—द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें सलाईसे लगावे यह उत्तम रसक्रिया है । दो वायविडंगके प्रमाण लगाना मध्यम रस क्रिया जाननी, और एक वायविडंगके धरावर मात्रा कनिष्ठ अर्थात् छोटी है ॥

विरेचनअंजनमेंचूर्णकाप्रमाण

विरेचनिकचूर्णं तत् त्रिशलाके विधीयते ।

मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नेहिकेजने ॥

अर्थ—विरेचनिक चूर्णको सलाईमें दोवार लगाय दोवारनेत्रोंमें फेरके निकाललेय । मृदु अंजनमें औषधका चूर्ण तीनवार सलाईमें लगावे और तीनवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । तथा घृतआदि जो स्नेहपदार्थ तिनकरके युक्तजो अंजनहै उनको सलाईमें चारवार लगावे और चारवारही नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय, यह अंजन लगानेका प्रमाण कहाहै ॥

१ जिसअंजनके लगानेसे नेत्रोंमें अधिक पानी गिरे उसको विरेचनिक चूर्ण कहते हैं ।

सलाईवनानेकीयुक्ति

मुखयोः कुंठिता श्लक्षणा शलाकाष्टांगुलोन्मिता ।

अश्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमंडला ॥

अर्थ—अब सलाईके लक्षण कहते हैं, कि जो पापाणकी अथवा सुवर्णादि धातुओंकी सलाई आठ अंगुलीकी बनावे उसके दोनों आगेके भाग गोलकरें त-
याँ उसको बहुत पतली न करे तथा मटरके दानेके समान सुंदर गोल बनावे ॥

लेखनादिमेंशलाईकाप्रमाण

ताम्रलोहारमसंजाता शलाका लेखने मता ।

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहनेमता ॥

अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः ॥

अर्थ—लेखन अंजनमें तांबेकी अथवा लोहकी वा पत्थरकी सलाई लेनी,
स्नेहांजनमें सौनेकी अथवा चांदीकी शलाईले, अंगुलीमें मृदु (नरम) ताँहै अत-
एव रोपण अंजनमें उगलियोंसें नेत्रोंमें अजन आंजना चाहिये, सलाईसें नहीं ॥

अंजनमेंसमयका निश्चय

सायंप्रातर्वाजनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ।

नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ॥

कृष्णभागादधः कुर्यादपांगं यावदंजनम् ।

अर्थ—सायंकाल और प्रातःकालमें अंजन लगावे, सर्वकालमें अंजन नहीं
लगाना। अत्यंत शरदी, अत्यंत गरमी, अत्यंत हवा, तथा जिसदिन आकाश बदलों-
सें धिराहो, इनमें अजन नहीं करना। नेत्रोंके कालेभागके नीचे अर्थात् सपेद
भागमें अंजन करना चाहिये ॥

चंद्रोदयवर्ती

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जापथ्यामनःशिला। पिप्पली
मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकं ॥ छागीक्षीरेण संपि-
प्य वर्ति कुर्याद्यवोन्मितां । हरेणुमात्रां संघृष्यजलैः
कुर्यादथांजनम् ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च कालं पटल-
मर्बुदम्। रात्र्यंघं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥

अर्थ—शंखकीनाभि, वहेडेके फलके भीतरकी मिंगी, हरड, मनसिल, पीपर-फालीमिरच, कूठ, वच, ये औषध समान भागले बकरीके दूधमें वारीकपीस जाँ के बराबर गोल बत्तीके सदृश बनावे । इसको चंद्रोदयावर्त्ता कहते हैं । फि, र इस गोलीमेंसँ छोटी मटरके प्रमाण जलमें घिसके अंजनकरे तो तिमिर, मांस वृद्धि, कांचविंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतौंध, तथा एकवर्षकाफूला, ये संपूर्णरोग दूरहो ॥

(फूलाछरइत्यादिकरोंगोंपरलेखनीवर्ती)

पलासपुष्पस्वरसैर्वदुशः परिभाविता ।

करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादीन् शस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ—रंजेके बीजोंका चूर्णकर, केसूलाके फूलोंके स्वरसकी अनेक भावना देकर वारीकर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । फिर इस गोलीको पानीमें पीस नेत्रोंमें लगावे तो शुक कहिये फूलेको, मांसवृद्धि, छर इत्यादि सकलरोंगोंको शस्त्रसँ काटनेके समान दूरकरे ॥

दूसरीविधि-

समुद्रफेनसिंघूत्थ शंखदक्षांडवल्कलैः

शिमुबीजयुत्तैर्वर्तिः शुक्रादीन् शस्त्रवल्लिखेत्

अर्थ—समुद्रफेन, सैंधानिमक, शंख, मुरगीके अंडेके ऊपरकी सपेदी, सहजनेके बीज, इन पांच औषधोंको बराबरले पानीमेंपीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला, छड, इत्यादिक रोंगोंको शस्त्रसँ काटनेके समान दूरकरेहै ॥

लेखनीदंतवर्ती

दंतैर्दंतिवराहोद्गोहयाजखरोद्भवैः ।

शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सैर्विचूर्णितैः ॥

दंतवर्तिः कृताश्लक्षणा शुक्राणां नाशिनीपरा ।

अर्थ—हाथी, सूअर, बैल, घोडा, चकरा, और गद्धा, इनके दांत; शंख, मोती, और समुद्रफेन, इन सबका चूर्णकर पानीमें वारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्ती कहते हैं । इसको जलसँ घिसके अंजन करेतों फला दूरहोय [ओर अनेकनेत्रके विकारोंको दूरकरे है]

तंद्रानाशकलेखनवर्ती

नीलोत्पलं शिशुबीजनागकेशरकं तथा ।

एतत्कल्कैः कृतावर्तिरतितन्द्रा विनाशयेत् ॥

अर्थ—नीलाकमल, सहजनेके बीज, नागकेशर, इनतीनोंको समान ले पानी-
सँ पीसके लंबी २ बत्तीके आकार गोली बनावे । इसको जलमें घिसके लगाये तो
तंद्राको दूर करे है ॥

रोपणीकुसुमितावर्ती

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिसंख्याकणाकणाः ।

जातीकुसुमपंचाशत् मरिचानि च षोडश ॥ सूक्ष्मं

पिष्ट्वा जले वर्तिः कृताकुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुन

शुक्राणां नाशनी मांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्वांजने

मात्रा प्रोक्तासार्धहरेणुका ।

अर्थ—तिलकेफूल ८०, पीपलकेभीतरकेदाने ६, चमेलीकेफूल ५० काली-
मिरच १६, इन सबका चूर्णकर पानीसँ पीस बत्तीके समान गोली बनावे, इ-
सको कुसुमिकावर्ती कहते है यह गोली डेढ मटरके समान जलमें पीसके ने-
त्रोंमें अंजनकरे तो तिमिर, अर्जुन, फुला, और मांसवृद्धि, ये रोग दूरहोय ॥

नक्तांध्यनाशिनीवर्ती

रसांजनं हरिद्रेद्रे मालतीनिवपलवाः ।

गोशुद्धससंयुक्ता वर्तिनक्तांध्यनाशिनी ॥

अर्थ—रसोत, हलदी, दारुहलदी, चमेलीकेपत्ते, नींबूकेपत्ते ये पांचवस्तु स-
मान लेके गौके गोबरके रसमें बारीक पीस गोली बनावे, जलमें घिसके नेत्रोंमें
अंजन करेतो रतौंध (जिसको रातमें न दीखे वह रोग) दूरहोवे ॥

नेत्रस्त्रावनाशकवर्ती

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च ।

पिष्ट्वावर्ति जलैः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम् ।

नेत्रस्त्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजंतथा ॥

भांवलके भीतरकाबीज १ भाग, वहेडेके भीतरकी मिर्गी, २ भाग
रकी मिर्गी ३ भाग, सब बीजोंको एकत्र कर पानीसँ बारीक पीस

वृत्तीके समान लंबी गोली बनावे, फिर उस गोलीमेंसे दो रेणुकाबीजकी बराबर पानीमें घिसके अंजन करे तो नेत्रोंमें जलका साव होनेको तत्काल दूरकरे, तथा वातरक्त संबंधी पीडा दूरहोवे ॥

रसक्रिया

तुथमाक्षिकसिंघूथ्यसिताशंखमनःशिलाः । गैरिको
दधिफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥संयोज्य मधुना कु-
र्यादंजनार्थं रसक्रियाम् । वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरांपरां ॥

अर्थ—नीलाथोथा, सुवर्णमाक्षिक, सैधानिमक, मिश्री, शंख, मनसिल, गेरू, समुद्रफेन, और कालीमिरच, इनसबको, समान भागले वारीक चूर्णकर सह-
तमें मिलाय अंजनकरे तो पलकोका रोग, अर्मरोग, तिमिर, कांच, और शुक्र-
रोग इनको हरणकरे ॥

फूलादूरहोनेकोरसक्रिया

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः
क्षिप्रमंजनतो हंति कुसुमं च द्विमासकम् ॥

अर्थ—बडके दूधमें कर्पूरको घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो दोमहिनेका
फूला शीघ्र दूरहो ॥

अतिनिद्रादूरहोनेकोलेखनीरसक्रिया
क्षौद्राश्वलालासंगृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ।
अतिनिद्राशमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥

अर्थ—सहत और घोडेकीलार इन दोनोको एकत्र कर इसमें कालीमिरच
को पीस अंजन करे तो अत्यंत निद्राका आनादूरहो । जैसे सूर्योदय होनेमें अं-
धकार नष्टहोताहै इस प्रकार इस औषधके लगानेसे नीद तत्काल जातीहै ॥

तंद्रानाशिनिरसक्रिया

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ।
सैधवं वस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ—चमेलीकेफूल, मूंगा, कालीमिरच, कुटुमी, वच, और सैधानिमक, ये
औषध समान भागले. बकरेकेमूत्रमें पीसके अंजन करतेता तंद्रा दूरहो ॥

सन्निपातमैलेखनीरसक्रिया

शिरीषबीजगोमूत्र कृष्णामरिचसैध्वैः ।

अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥

अर्थ—सिरसकेबीज, पीपल, कालीमिरच, सैधानिमक, लहसन, मनसिल, औरवच, ए सब समानले गोमूत्रमे वारीक पीसके अंजन करेतो सन्निपातजन्य संज्ञानष्टताको दूरकर मनुष्यको चैतन्यकरे ॥

तिमिरादिरोगोर्मेरोपणीरसक्रिया

गुडूचीस्वरसैः कर्पः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितं । सैधवं
क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ अंजयेन्नयनं ते-
न पिष्टार्मतिमिरं जयेत् । काचं कंडू लिंगनाशं शुक्ल-
कृष्णागतान् गदान् ॥

अर्थ—गिलोकयका स्वरस-१ कर्पलेवसमे सहत, और सैधानिमक, ए एक २ मासे ढालके अच्छी रीतिसँ खरलकरे; इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो पिष्टार्म, तिमिर, काच, खुजली, लिंगनाश, नेत्रोंके सपेदभागमें और काले भागमें होने वाले सपूर्ण नेत्ररोग दूरहो ॥

पुनर्नवाकेअनुपान

दुग्धेन कंडुं क्षौद्रेण नेत्रस्त्रावं च सर्पिषा ।

पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांधतां ॥

पुनर्नवाजयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा ।

अर्थ—पुनर्नवा (सांठकीजड) को दूधमें पीस नेत्रोंमें अंजन करेतो नेत्रोंकी खुजली दूरहो । सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रसँ पानीका भिरना दूरहो । घीमें घिसके लगावे तो फूलाको दूरकरे । तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर दूरहो । कांजीमें घिसके लगावे तो रत्नों दूरहो । जैसे सूर्य अंधकारको शीघ्र नष्ट करे है इस प्रकार पुनर्नवा अनुपान भेदकरके सर्व रोगोंको दूरकरे । किसी ग्रंथमें इस-पाठसँ कुछ २ फरक लिखा है ॥

नेत्रस्त्रावर्मेरोपणीरसक्रिया

वव्वूलदलनिःकाथो लेहीभूतस्तदंजनात् ।

१ घृतेन पुष्पं मधुनासुपात तैलेन काड तिमिर जलेन ।

साध्यंघतो वा सहकाजिकेन पुनर्नवा नेत्रपुनर्नवाकरी ॥

नेत्रास्त्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥

अर्थ—बबूरके पत्तोंका काथ गाढा होनेपर्यंत ओंटावे, फिर उसमें थोडा सहत डाल नेत्रोंमें अंजनकरे तो नेत्रोंके जल गिरनेको अवश्य दूरकरे ॥

दूसराप्रकार

हिज्जलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनात् ।

नेत्रास्त्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥

अर्थ—हिज्जलके फलको पानीसँ पीस सहतडाल निरख अंजन करे तो नेत्रोंसे पानी गिरना दूरहोवे ॥

नेत्रप्रसादन

कतकस्यफलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ।

ईषत्कपूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥

अर्थ—निर्मलीके फलको सहतमें घिस और उसमें थोडासा कपूर मिलाय नेत्रोंमें लगावे तो नेत्र स्वच्छहो ॥

शिरोत्पातरोगमेंअंजन

सर्पिः क्षौद्रं चांजनं स्यात् शिरोत्पातस्य शांतये ।

अर्थ—घी और सहत दोनोको एकत्र कर इसको नेत्रोंमें अंजन करेतो नेत्ररोगमें जो शिरोत्पात रोगहै वो दूर होवे ॥

आंधरापनदूरहोनेकोरसक्रिया

रुष्णसर्पवसाशंखः कतकाफलमंजनम् ।

रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥

अर्थ—काले सांपकी चर्चो, शंख, और निर्मलीके बीज, इनको एकत्र बारीक पीस नेत्रोंमें अंजनकरे तो यह रसाक्रिया अंधे मनुष्यको शीघ्र दीखनेलगे ऐसा करतीहै ॥

अंजनयोग

दक्षांडत्वक्शिलाकाचैः शंखचंदनगैरिकैः ।

द्रवैरंजनयोगोऽयं पुष्पामादिविलेखनः ॥

अर्थ—पुरगेके अंडेकी मपेदी, मनमिल, सपेदकांच, शंख, सपेदचंदन, गै-

रू, इन छः वस्तुओंको समानभागले वारीक चूर्ण कर नेत्रोंमें अंजन करतो फूला और मांसार्मादिक रोग नष्टहोवे ॥

रतौघदूरहोनेकोलेखनचूर्णांजन
कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता ।
अचिराद्भ्रंति नक्तांध्यं तद्भ्रत्सक्षौद्रमूषणम् ॥

अर्थ—बकरेके कलेजेके मांसमें पीपल भरके अंगारोंपर पाक करे, फिर उस मांसका रस निचोड उस रसमें उस पीपलको पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो रतौघ बहुत जल्दी दूरकरे ॥

कंडूकाचादिपरलेखनचूर्णांजन
शाणाद्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ।
शाणाद्धं सैधवं शाणानवसौवीरकांजनम् ॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम् ।
कंडूकाचकफार्त्तानां मलानां च विशोधनम् ॥

अर्थ—कालीमिरच आधे शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोदो शाण लेवे, सैधा निमक आधे शाण, सुर्मा नौ शाण, इन सब औषधोंको जिसादिन चित्रा नसत्रहोय उसदिन उत्तमप्रकार पीसके चूर्णकरे; फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली, कांच ये दूरहोवे । तथा कफकरके पीडित नेत्रोंके मलको शोधन करे है ॥

सर्वनेत्ररोगमेंअंजन

शिलायारसकं पिष्ट्वा सम्यगाल्ढव्य वारिणा । गृण्ही-
यात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ शुष्कं च तज्जलं
सर्वं पर्पटीसंनिभं भवेत् । विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवे
लं त्रिफलारसैः ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन
निक्षिपेत् । अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत् ॥
सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च ।

अर्थ—सपरियाको स्पामूसाके सरलमें उत्तम रीतिसें पीस वारीक चूर्ण कर फिर उस चूर्णको पानीमें डाल देवे, और उस पानीको हाथोंसैं मूव हिला-
तत्काल दूसरे पात्रमें कर ले पहले पात्रमें जो बडे २ टुकडे निकले

उनको फैंकदेवे । फिर उसको थोड़ीदेर धरा रहनेदे इस प्रकार करनेसे वो सप-
रियाका सब चूर्ण पानीके तले जम जावेगा उसको दूसरे पात्रमें सुखाय लेवे तो
उसकी पपड़ी जम जावेगी उस पपड़ीका चूर्ण कर उस चूर्णमें त्रिफलेके का-
ढेकी तीन पुट देवे, फिर उस चूर्णका दशवाँ भाग कपूर मिलावे, सबको एक
जीव कर इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्वदोष और नेत्रके सर्व रोग दूर हो कर
नेत्रोंको सुख होवे ॥

सर्वनेत्ररोगोंपरसौवीरांजन

अग्नि तप्तं च सौवीरं निषिंचेत् त्रिफलारसैः । सप्तवेलं
तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयने
तेन प्रत्यहं चक्षुषे हितं । सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्या-
देतन्न संशयः ॥

अर्थ—सुरमाको अग्निपर तपाय २ के त्रिफलेके काढेमें बुझाये जब
शीतल होजावे तब फिर गरम करे और बुझावे इसप्रकार सातवार बुझावे, इसी
प्रकारस्त्रीके दूधमें सातवार बुझावे फिर उसको शीतलकर वारीक चूर्ण कर नेत्रमें
अंजनकरे, यह अंजन नेत्रोंको परमहितकारी है । इससें सर्व नेत्रके विकार दूर
होते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

शिशिकीसलाईवनानेकाक्रम

त्रिफलाभृंगशुंठीनां रसैस्तद्गुञ्ज सर्पिषा । गोमूत्रमध्व-
जाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ तच्छलाका भव-
त्येव सर्वान्नेत्रभवान् गदान् ॥ नाशयेदितिशेषः ॥

अर्थ—शिशिकी गलाय २ के त्रिफलेका काढा, भागरेकारस, सोंठकाकाढा,
घी, गोमूत्र, सहत, और बकरीका दूध, इन प्रत्येकमें सात २ वार बुझावे, फिर उ-
सकी सलाई बनावे; इस सलाईको नेत्रोंमें फेराकरेतो नेत्रके सर्वविकार दूरहोवे ॥

प्रत्यंजनकरनेकाविधान

गतदोषमपेताश्रु संपश्यन्सम्यगंभसि ।

प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥

अर्थ—उस शिशिकी सलाईसे नेत्रोंमें अंजन करे, जब दोष दूरहोकर नेत्रोंमें
पानी गिरजावे तब रोगी एकक्षण शीतलपानीको देखे, फिर उस रोगीके नेत्रों

लसैं धोयके दोषोंके अनुसार फिर नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे, उस प्रत्यंजनको कहतेहै ॥

सदोषनेत्रमेंनिषेध

न वा निर्गतदोषेक्षिण धावनं संप्रयोजयेत् ।

प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ॥

अर्थ—नेत्रोंसैं दोषोंके न निकलने पर नेत्रोंको जलसैं धोवे नहीं, और तीक्ष्णअंजन करके नेत्र संतप्त होनेपर उनमें प्रत्यंजन चूर्णकरे सो आगेके श्लोकोंमें कहा है । अथवा प्रसादनचूर्णकरे ॥

प्रत्यंजनचूर्ण

शुद्धे नागे द्रुते तुल्ये शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत् । कृष्णां-
जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ दशमांशेन क-
पूरं तस्मिन् चूर्णे प्रदापयेत् । एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगद-
जिन्नयनामृतम् ॥

अर्थ—शुद्धशीशेको तपावे जब गलजावे तब उसमें बराबरका शुद्धपारा मि-
लायदे फिर इन दोनेके समान सुरमा मिलायके एककर सबका बारीक चूर्णक-
रे, तथा सब चूर्णका दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलावे, इसको प्रत्यंजन चूर्ण
कहते है । इसके लगानेसैं संपूर्ण नेत्ररोग दूरहो, तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके
समान सुखकारी है ॥

सर्पविषनाशकअंजन

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निंबुकद्रवैः । एकविंश-
तिवेलं तत्ततो वर्ति प्रकल्पयेत् ॥ मनुष्यलालया घृ-
ष्ट्वा ततो नेत्रे तथांजयेत् ॥ सर्पदष्टविषं जित्वा संजी-
वयति मानवम्

अर्थ—जमालगोटेके भीतरकी मिंगी लेकर चूर्णकरे फिर इसमें नींबूके रस-
की २१ इसकी पुट देवे, पीछे इसकी लंबी बचीवनावे, इस गोलीको मनुष्यकी
लारमें घिसके नेत्रोंमें आंजे यह सांप कांटे हुए प्राणीके विषको दूरकर जिवाता
है अर्थात् सावधान करताहै ॥

नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय
भुक्त्वापाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जातरोगा विनश्यन्ति तिमिराणि तथैव च ॥

अर्थ—भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धोवे फिर वोही गीले हाथोंकी हथेलीको आपसमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो उत्पन्नहुए नेत्ररोग-तथा तिमिर-रोग आदि संपूर्ण नेत्ररोग दूरहोवे ॥

तथाउपायांतर

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयन
द्वितयं जलेन । आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षि
रोगव्यथा विधुरतां भजते मनुष्यः ॥

अर्थ—नित्य दिन दिनमें तीनवार शीतलजलसँ मुखको भरके और दूसरे शी-तलजलसँ नेत्रोंके तीनवार छीटा मारे तो अति दुखदायक नेत्ररोगसंबंधी पीडा कदाचित् नहीं होय । यह उपाय बहुतही सहजका और अत्यंत गुणदायकहै सब मनुष्योंको उचित है कि इसको अवश्य किया करे इतनी दत्तरामचौबे की प्रार्थना है ॥

अथसंधानविधिः

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् ।

आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ ३ ॥

अर्थ—उपयुक्त जलादि द्रव पदार्थोंमें औषध डालके फिर पात्रके मुखको बांध मुद्रादेकर बहुत काल (मास, पक्ष) पर्यंत धरा रहनेदे, फिर उससँ उत्से-क (दारुनिकालनेकी क्रिया) द्वारा एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होवे उस क्रि-याको संधान क्रिया कहते है तथा उस औषधोंचित संधान को आसव और अरिष्ट भेदों दो भेदों करके कहते है ॥

आसवारिष्टयोर्लक्षणम्

यदपकौषधांतुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।

अरिष्टः काथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ २ ॥

अर्थ—अपक औषध और जलद्वारा संपादित (बनाएहुए) मद्य (दारु)

को आसव कहते हैं और कायसैं वनेहुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं, इनदोनोंकी मात्रा ४ तोले है ॥

आष्टाव्यसुरया सम्यग् द्रव्याणि विविधानि च ।

सप्ताहान्ते परिस्त्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ३ ॥

एषोऽरिष्टाभिधानेन भिषग्भिः परिकीर्तितः ।

अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ ४ ॥

अर्थ—दाहमें संपूर्ण द्रव्य भिगोयके सात दिन पर्यंत धरी रहनेदे पश्चात् इसका भवकेके द्वारा रसजुवावे उसको कपडेमें छानके बोतल आदिमें भरके धरदेवे, इसको अरिष्ट कहते । जिस २ द्रव्यको भिगोयके अरिष्ट बनाया जाताहै उसी २ द्रव्यके गुण वो अरिष्ट करता है ॥

सामान्यतोऽरिष्टविधिः

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडातुलाम् ।

क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादद्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अरिष्ट साधनमें जहां किसी वस्तुका मान न कहाहो वहां नीचे लिखी विधिके अनुसार वर्तना चाहिये । जैसे ६४ सेर प्रमाण जल आदि द्रव द्रव्यमें गुड १०० पल्ले, और सहत गुडसैं आधा लेवे, अर्थात् ५० पंचास पल्ले, तथा प्रक्षेप वस्तु गुडके दशमांश (दशमाहिस्सा) अर्थात् १० पल डाले, सबको एकत्र कर यथाविधि अरिष्टको बनाना चाहिये ॥

द्विविधसीधुमाह

ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः ।

सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब सीधुकी विधि कहते हैं; तहां सीधु दो प्रकारकाहै जैसे—शीतरस सीधु बनताहै । अर्थात् ईस आदि अपक्व रसको वासित करनेसैं (धरारस्वनेसैं) शीतरस सीधु बनताहै । अर्थात् ईस्वकारस अथवा और कोई मधुर रसको पात्र में भर धरदेवे फिर सातदिनके बाद रस नितारलेवे । इसीप्रकार पके हुए ईस्वके रसके द्वारा उत्पन्न सीधुको पक्वरससीधु कहते हैं । सीधुको भाषामें सिर्का कहते हैं । इसका प्रचार प्राय पूरबके देश (काशी, पटना, आदि प्रातोंमें) अधिकहै

सुरादिलक्षणम् - -

दिनानि कतिचित् क्षिन्नं गुडादौ स्थाययेद्विपक्वम् ।

ततो विक्लित्तिमापन्नं यंत्रैश्च नाडिकादिभिः ॥ ७ ॥

विधिवत्प्रावयेच्चास्मादन्यपात्रे मृतं रसम् ।

गृण्णीयात्सामुरा ख्याता तीक्ष्णोष्णवीर्यशालिनी ॥ ८

अर्थ—सुरोपादानद्रव्य (दारू वनानेकी दवाई) उन सब गुडादिकको पात्र-में डालके कुछदिन उसी प्रकार धराराखे, जब सब द्रव्य गलजावे और वो जल उठ आवे अर्थात् गंधदेनेलगे तब उसको नाडिकादियंत्र द्वारा चुवायके रस निकाल लेवे । इस निकले हुए द्रवपदार्थको सुरा कहते है यह तीक्ष्णवीर्य तथा उष्णवीर्य वाली है ॥

सुरा प्रसन्नादि मद्योके, भेद

परिपक्वान्नसंधानात्समुत्पन्नासुराजगुः ।

सुरामंडः प्रसन्ना स्यात्ततः कादंबरी घना ॥ ९ ॥

तदधो जगलोज्ञेयो भेदको जगलाद्धनः ।

वक्त्रसो हृतसारः स्यात्सुरावीजं च किण्वकम् ॥ १० ॥

अर्थ—तंडुलादिक धान्यको सिजाय अग्निके संयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य उत्पन्न करते है उसको सुरा कहते है उस सुराके फेन (झाग) को प्रसन्ना कहते है । उस प्रसन्नाके मध्यमें जो घन (गाढा) भाग है उसको कादंबरी कहते है । उस सुराके अधोभागमें जो द्रव्य भाग है उसको जगल कहते है और उस जगल से भी गाढे भागको भेदक—उस भेदकको पक करके उसमेंसे सारकाढके शेष रहे हुए पदार्थको सुरावीज अथवा किण्व कहते है ॥

वारुणी

यतालखर्जूररसैः संधिता साहि वारुणी ।

अर्थ—ताडकारस अथवा खर्जूरेके रससै संधानक्रिया द्वारा वारुणी उत्पन्न हो, अर्थात् ताड अथवा खर्जूरेके रससै अग्निके संयोगकरके यंत्रद्वारा जो पदार्थ उत्पन्न करते है उसको वारुणी कहते, इस वारुणी मद्यको भाषामें ताडी कहते है

शुक्त

कन्दमूलफलादीनि सस्त्रेहलवणानि च ॥ ११ ॥

यत्रद्रवेषभिपूर्यन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥

अर्थ—अनेक प्रकारके कद, मूल, फलादि, स्त्रेह, और संधानिमक, इनको

पानी आदि द्रवपदार्थमें ढालके कुछदिन धरारहनेदे जब उठआवे तब काममेलावे उसको सूक्त कहते है । भाषामें सूक्तको अचार, वा अधाना, वा संधाना, कहते है जेसे आमका नीचूका अचार ॥

विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवैः ॥ १२ ॥

विनष्टः संधितो यस्तु तच्छूक्तमभिधीयते ।

अर्थ—मद्य विनष्टहोकर खटाई आयजावे अथवा कोई मीठी द्रव्यको पात्रमें बंदकर मुखपर मुद्रा देकर महिना या पक्षपर्यंत धरा रहनेदे जब सिद्धहोय उस मद्यको शुक्त (चक्र) कहते है ॥

गुडशुक्त

गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ १३ ॥

संधितश्चाम्लतां यातं गुडशुक्तं तदुच्यते ॥

अर्थ—गुड, पानी, तैल, कंद, मूल, फल, साक, इन सबको किसी पात्रमें भरके मुखबंद कर १ महिने या पंद्रह दिन धरा रहनेदे जब खटाई आयजावे तब कार्यमें लावे इसे गुडशुक्त कहते है ॥

एवमेवहि सूक्तं स्यान्मृद्धीका संभवस्तथा ॥ १४ ॥

अर्थ—इसीप्रकार ईसका तथा दासका शुक्तभी बनताहै ॥

तुपांबुऔरसौवीर

तुषाम्बुसंधितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ।

यवैस्तुनिस्तुपैः पक्वैः सौवीरं साधितं भवेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—निस्तुप कच्चे जौ कूट उसमें पानी ढाल किसीपात्रमें भरके घोडेदिन धरा रहनेसे जब खटाई आयजावे उसको तुपांबु कहतेहै । ओर भुनेहुए-अथवा सीजे हुए जो कूट पानीढाल खटाई आने पर्यंत धरा रहनेदे उसको सौवीर कहते है

ग्रंथांतरे

सौवीरस्तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुपीलितैः ।

गोघूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे ॥ १६ ॥

अर्थ—अपक अथवा पक निस्तुप जौको सधित (पूर्वोक्तक्रिया) करनेमें सौवीर बनताहै । किसी २ वैद्यके मतसे गेहूं द्वाराभी सौवीर (पूर्वोक्त क्रियासे बनताहै) ॥

आरनाल

आरनालस्तुगोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ।

पक्वैर्वा संहितं तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १७ ॥

अर्थ—कच्चे अथवा पक्के निस्तुप गैहूँलेकर संहित (साधित) करनेसे आरनाल उत्पन्न होताहै, इसके गुण सौवीरके समान जानने ॥

कांजिक

मंधितंधान्यमण्डादि कांजिकं कथ्यते जनैः ।

अर्थ—धान्य के मंडादिसे साधितको कांजी कहते है ॥

सांडाकी

सांडाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्पपादिभिः ॥१८॥

अर्थ—ओर मूली तथा सरसो आदिका बना रसजसमें पानीढाल हलदी,-
हींग,-राई, सैधानिमक,-जीरा,-सोंठ,-इत्यादिका चूर्ण ढालंके पात्रका मुख बंद-
कर तीन चार दिन धरा रहनेदे इसको मांडाकी कहते है ॥

त्पिहितं प्रयत्नात् ततस्तु कल्कं सकलं निरस्येत्तत्
कांजिकं कथ्यत आरनालम् । तद्भ्रैतितीक्ष्णं लघुपा-
चनं च दाहज्वरघ्नं कफवातनाशि ।

अर्थ—१२॥ साठे वारह सेर स्वच्छ सांठी चावल लेवे, उनको ६४ सेर जलमें भिगोय देवे, इस प्रकार उनको रक्षापूर्वक सात दिन भीगनेदे, बाद सात-दिनके उसको छानके पानी नितारले, इम कल्कको आरनाल अथवा कांजी कहते है, यह दस्तकरानेवाली, तीक्ष्णगुणयुक्त, हलकी, और पाचनहै तथा दाह, ज्वर और कफवातको नाशकरती है । परंतु हमारेदेशमें इसको कांजी नहीं कहते, हमारे राईके पानीमें उबदके बड़ा भीगोनेसैं जो बनती है उसको कांजी कहते



यद्यपि भूमिपरीक्षा देशपरीक्षामें लिखआए है परंतु यहांपर यह पूर्वपरीक्षासैं भिन्नहै सो नीचेके अर्थमें दिखामे हे यह सुश्रुतसैं लिखते है ॥

अथातोभूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायंव्याख्यास्यामः

अर्थ—अब हम भूमिप्रविभाग विज्ञानीयाध्यायका वर्णन करैगे अर्थात् भूमिका जो उत्तम भाग उसके अर्थका विज्ञान जिस अध्यायमें उसकी व्याख्या करैगे । यद्यपि आतुरोपक्रमणीयाध्यायके देशवर्णनमें भूमिपरीक्षा कहीं है परंतु वह परीक्षा भूतोके कार्य (शीतोष्णवर्षादिको) करके तथा पर्वतवृक्षादिको करके करी है । और इस भूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायमें सास भूतगणोंकरके परीक्षा करीहै यहमेदहै । वो पृथ्वीका विभाग दोमकारका है, एकसामान्य और दूसरा-विशिष्ट तहां मध्यम सामान्य भूमिविभागको कहतेहै ॥

सामान्यभूमिभागकावर्णन

श्वभ्रशर्कराश्मविपमवल्मीकश्मशानाऽद्यतनदेवता-
यतनसिकताभिरनुपहतामनूपराममंगुरामद्रोदकां

१ मूतशब्दसैं पृथ्वी जल आदि संयमून जानने इनके शीतल उष्णता आदि कार्य जानने । २ मूतगुण अर्थात् पृथ्वी जल आदिके गुण काठे पीठे कठोर मृदु आदिमानने ।

स्निग्धां प्ररोहवतीं मृद्धीं स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लो-
हितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत तस्यां जातमपिकु
मिविषशस्त्रातपपवनदहनतोयसम्बाधमार्गैरनुपहत-
मेकरसं पुष्टं पृथ्ववगाढमूलमुदीच्यां चौषधमाददीते-
त्यौषधभूमिपरीक्षाविशेषः सामान्यः ॥

अर्थ—जो पृथ्वी सर्प मूसेआदिके विले, शर्करा, पत्थर, आदिसैं विषम अ-
र्थात् ऊंची नीची न हो तथा बाँबी, श्मशान, बधस्थान, देवस्थान, और बालूरेत
आदिसैं दूषितनहो, ऊपर नहो, रेखावाली नहो, जिस्मे बहुत नीचापानी नहो, वि-
कनी, बीजमेअंकुरोत्पादक, कोमल, स्थिर (पानी और हवासैं जिसको मिट्टी न
जाय) समान अर्थात् एकसी, काली, गौरी, (सुवर्णके समान वर्णवाली)
लोहित (लाल रंगकी) इसादि गुणवाली पृथ्वी की परीक्षा औषधग्रहण
(औषधलानेके) अर्थकरे ॥

अब कहते है कि केवल पृथ्वीके गुणोंकरकेही औषधोंको ग्रहण न करे, किंतु
औषधोंके दोष गुणकोभी विचार करके औषधलेनी यह दिखाते है ॥

तहां उक्तपृथ्वीमें भी उत्पन्नहुई, जो कृमि (कीडा) विष, शस्त्र धूप,
हवा, अग्नि, संकट, और मार्ग (रस्ता) इत्यादि करके दूषित (विगडी हुई) न-
हो, जिसमें एकरस (उत्कृष्टरस) हो, देखनेमें पुष्टहो तथा जिसकी पृथ्वीके भीतर
दूरतक जड चलीगईहो [चकारसैं वो जडभी उत्तमहो दूषित नहो] इत्यादि
गुणविशिष्ट औषधको वैद्य उत्तरामुख करके उखाडे । यह औषध भूमिकी परी-
क्षासामान्यता करकेकही है ॥

इस प्रकार सामान्य पृथ्वीके गुणोंको कहकर अब विशेष गुण प्रत्येक भूतो-
को दिखाते है ॥

स्वगुणभूयिष्ठपृथ्वीके गुण

विशेषतस्तु । तत्राश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृ-
ष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ।

१ आगे रसायनके प्रकरणमें कपोती नामकी रूखडोंको बाँबीपरसैं राना लि-
ताहै फिर निषेध क्यों करा ! तहां कहते है कि दिव्योषधियोंका बीर्य सर्पादि विषसैं नष्ट
नहीं होता अथवा वो उसी जगे उगनेमें अधिक बीर्यवाली होती है । २ जहां मुँदें
जटाए जाते है ।

अर्थ—अब विशेषता दिखाने है कि जो पृथ्वी पथरवाली, (पथरीली-ककरीली,) कठोर, भारी, कालेरंगकी, अथवा स्याम रंगकीहो तथा जिसमें बड़े २ पुष्टवृक्ष- (दरख्त) और लंबी २ घास आदि तृणहो, वो पृथ्वी (जमीन) स्वगुणभू- विष्ट अर्थात् पृथ्वीगुण भूविष्ट जाननी ॥

जलगुणभूविष्टपृथ्वी

स्निग्धा शीतलासन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृ-
क्षप्राया शुष्काम्बुगुणभूविष्टा ।

अर्थ—जोपृथ्वी चिकनी, शीतल, जलप्राय, अर्थात् जिसमें समीपही जलहो तथा जिसमें सचिक्कण, छोटी २ और बड़ी घास (दूब आदितृण) हो, कोमलवृ- क्ष, और प्राय सर्वत्र गीलीहो वो जमीन जलगुणभूविष्ट जाननी अर्थात् इसमें जलका भाग अधिक रहताहै ॥

अग्निगुणभूविष्टपृथ्वी

नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहा-
ऽग्निगुणभूविष्टा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी अनेकवर्णकी, हलकी पथरीली, कहींकहीं थोड़े और पीले वृक्षादिकहो वो जमीन अग्निगुणभूविष्ट जाननी, अर्थात् इसमें अग्निका गुणअ- धिक जानना ॥

पवनगुणभूविष्टपृथ्वी

रुक्षाभस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोठराल्परसवृक्षप्राया-
ऽनिलगुणभूविष्टा ॥

अर्थ—जोपृथ्वी रूखी, भस्म (साक) और गद्वेके वर्णसमान साकी रंग- की हो तथा जिसमें छोटे २ रूखे, पोले, थोड़े रसवाले असे वृक्षहो वो जमीन पवनगुण भूविष्ट जाननी । अर्थात् इसमें पवनका गुण अधिक है ॥

आकाशगुणभूविष्टपृथ्वी

मृद्धी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा
महापर्वतवृक्षप्राया श्यामाचाकाशगुणभूविष्टा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी नरम, समान, गह्वेवालीहो, तथा जिसमें रस हीन (मल-

स्निग्धां प्ररोहवतीं मृद्धीं स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लो-
हितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत तस्यां जातमपि कृ-
मिविषशस्त्रात्पपवनदहनतोयसम्बाधमागैरनुपहत-
मेकरसं पुष्टं पृथ्ववगाढमूलमुदीच्यां चौषधमाददीते-
त्यौषधभूमिपरीक्षाविशेषः सामान्यः ॥

अर्थ—जो पृथ्वी सर्प मूसेआदिके विले, शर्करा, पत्थर, आदिसँ विषम अ-
र्थात् ऊंची नीची न हो तथा बाँबी, श्मशान, वधस्थान, देवस्थान, और बालूरेत
आदिसँ दूषित न हो, ऊपर न हो, रेखावाली न हो, जिस्मे बहुत नीचापानी न हो, चि-
कनी, बीजमें अंकुरोत्पादक, कोमल, स्थिर (पानी और हवासँ जिसको मिट्टी न
जाय) समान अर्थात् एकसी, काली, गौरी, (सुवर्णके समान वर्णवाली)
लोहित (लाल रंगकी) इत्यादि गुणवाली पृथ्वी की परीक्षा औषधग्रहण
(औषधलानेके) अर्थकरे ॥

अब कहते है कि केवल पृथ्वीके गुणोंकरकेही औषधोंको ग्रहण न करे, किंतु
औषधोंके दोष गुणकोभी विचार करके औषधलेनी यह दिखाते है ॥

तहां उक्तपृथ्वीमें भी उत्पन्नहुई, जो कृमि (कीडा) विष, शस्त्र धूप,
हवा, अग्नि, संकट, और मार्ग (रस्ता) इत्यादि करके दूषित (विगडी हुई) न-
हो, जिसमें एकरस (उत्कृष्टरस) हो, देखनेमें पुष्ट हो तथा जिसकी पृथ्वीके भीतर
दूरतक जड चलीगईहो [चकारसँ वो जडभी उचमहो दूषित नहो] इत्यादि
गुणाविशिष्ट औषधको वैद्य उत्तरामुख करके उखाड़े । यह औषध भूमिकी परी-
क्षासामान्यता करकेकही है ॥

इस प्रकार सामान्य पृथ्वीके गुणोंको कहकर अब विशेष गुण प्रत्येक भूतो-
को दिखाते है ॥

स्वगुणभूयिष्ठपृथ्वीके गुण

विशेषतस्तु । तत्राश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृ-
ष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ।

१ आगे रसायनके प्रकरणमें कपोती नामकी रूखडोको बाँबीपरसे लाना लि-
खाहै फिर निषेध क्यों करा ! तहां कहते है कि दिव्यौषधियोंका बीर्य सर्पादि विषसँ नष्ट
नहीं होता अथवा वो उसी जगे ऊगनेसँ अधिक बीर्यवाली होती है । २ जहो मुँदें
जलाए जाते है ।

अर्थ—अब विशेषता दिखाने है कि जो पृथ्वी पत्थरवाली, (पथरीली-ककरीली,) कठोर, भारी, कालेरंगकी, अथवा स्याम रंगकीहो तथा जिसमें बड़े २ पुष्टवृक्ष- (दरख्त) और लंबी २ घास आदि तृणहो, वो पृथ्वी (जमीन) स्वगुणभू-यिष्ठ अर्थात् पृथ्वीगुण भूयिष्ठ जाननी ॥

जलगुणभूयिष्ठपृथ्वी

स्निग्धा शीतलासन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृ-
क्षप्राया शुष्काम्बुगुणभूयिष्ठा ।

अर्थ—जोपृथ्वी चिकनी, शीतल, जलप्राय, अर्थात् जिसमें समीपही जलहो तथा जिसमें सचिकण, छोटी २ और बड़ी घास (दूब आदितृण) हो, कोमलवृ-क्ष, और प्राय सर्वत्र गीलीहो वो जमीन जलगुणभूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें जलका भाग अधिक रहताहै ॥

अग्निगुणभूयिष्ठपृथ्वी

नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविलालपपाण्डुवृक्षप्ररोहा-
ऽग्निगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी अनेकवर्णकी, हलकी पथरीली, कहींकहीं थोड़े और पीले वृक्षादिकहो वो जमीन अग्निगुणभूयिष्ठ जाननी, अर्थात् इसमें अग्निका गुणअ-धिक जानना ॥

पवनगुणभूयिष्ठपृथ्वी

रुक्षाभस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोठरालपरसवृक्षप्राया-
ऽनिलगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जोपृथ्वी रूखी, भस्म (साक) और गद्देके वर्णसमान साकी रंग-की हो तथा जिसमें छोटे २ रूखे, पोले, थोड़े रसवाले ऐसे वृक्षहो वो जमीन पवनगुण भूयिष्ठ जाननी । अर्थात् इसमें पवनका गुण अधिक है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठपृथ्वी

मृद्धी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा
महापर्वतवृक्षप्राया श्यामाचाकाशगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी नरम, समान, गद्देवालीहो, तथा जिसमें रस हीन (मल-

मलेस्वादके) जलहो, सारहीनवृक्ष, बड़े २ पर्वत और बड़े २ वृक्ष जिसमें सर्वत्रहो तथा रंगमें स्यामहो वो जमीन आकाश गुण भूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें आकाशका गुण अधिक है ॥

पंचभूतोंके गुणकहनेसें यह प्रयोजनहै कि प्रत्येक वमन विरेचनादिमें अपने २ गुणभूयिष्ठ दवाईलेनी, जैसे वमनकी औषध आकाशगुण भूयिष्ठ होती है तो उनको आकाशगुणभूयिष्ठ जमीनसें लेनी इसी प्रकार जुल्लावमें जलगुणभूयिष्ठ होनेवाली औषधी जलगुणभूयिष्ठ पृथ्वीसें वैद्य लेवे, कारण यह कि स्वगुणभूयिष्ठ औषधी बलवान् होती है ॥

औषधग्रहणमें मतभेद

तत्र केचिदाहुराचार्याः । प्रावृद्धवर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षीरसारफलान्याददीतेति, तत्र न सम्यक् कस्मात् सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः । सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुष्वदादीताग्नेयान्याग्नेयेष्वेवमव्यापन्नगुणानि भवन्ति । सौम्यान्यौषधानि सौम्येषु ऋतुषु गृहीतानि सोमगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते । एतेन शेषं व्याख्यातं ।

अर्थ—तहां कोई २ आचार्य कहते हैं कि प्रावृद्ध, वर्षा, शरद, हेमंत, वसंत और ग्रीष्म इन ऋतुओंमें यथाक्रम जड़, पत्ते, त्वचा, दूध, सार, और औषधोंके फललेने चाहिये ॥ परंतु यहमत उत्तम नहीं है, क्योंकि यह जगत सौम्य और आग्नेयके भेदके दोही प्रकारका है, जब दोप्रकारका जगहै तत्र सौम्य (शीतल) औषधोंको सौम्यऋतु (शरद, हेमंतादि) में लेवे, और आग्नेय (गरम) औषध गरमऋतु (ग्रीष्मआदि) में लेवे तो ये निर्दोष गुणवाली होती है । सौम्य औषध सौम्यऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा सौम्यगुण भूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न, हुई वो अत्यंत मधुर स्निग्ध और शीतल होती है । इसीप्रकार आग्नेय औषधी आग्नेय ऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा आग्नेयगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहुई वो अत्यंत-तीक्ष्ण-और-रूक्ष और गरमहोती है ॥

विरेचनादिद्रव्यकिसपृथ्वीकीलेनी

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरे-

चन्द्रव्याण्याददीताभ्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां व-
मनद्रव्याणि । उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतो भागानि ।

आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनान्येवं बलवत्तराणि भवन्ति ॥

अर्थ—तहां पृथ्वी और अंबु (जल) गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होने वाली ऐसी विरेचन अर्थात् दस्तकारी औषधोंको वैद्य लेवे । और आकाश एवमन गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहो ऐसी वमन करानेवाली औषधोंको वैद्य लेवे । एवं दोनोगुण अर्थात् आकाश और पृथ्वीमें—तथा जल और एवमन गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमेंसे वमन विरेचन दोनो कराने वाली औषधोंको वैद्यलेवे । एवं आकाश-गुण भूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली औषधी संशमन संज्ञक औषध होती है उनको उसी स्थानसे लेवे ॥

सर्वाण्येवचाभिनवान्यन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविड-
ङ्गेभ्यः । सर्वाण्येवंसक्षीराणि वीर्यवन्ति तेषामसम्प-
त्तावनतिक्रान्तसंवत्सराभ्याददीतेति ॥

अर्थ—वैद्यको उचितहै कि जितनी औषधले सब नवीन ले परंतु सहत, घी-गुड, पीपल और वायविडंग ए पुरानेही लेना [तथा दोष वर्जित अर्थात् कृमि-विपादि दोष रहित औषधी लेना] एवं सब क्षीर [दूधवाली वा रसवान्] ले कारण की रस औषध वीर्यवान् होती है कदाचित् कहे हुए लक्षण वाली औषध न मिले तो फिर कैसाकरे तहां कहते है कि यदि पूर्वोक्त गुणवान् औषध न मिले अर्थात् सहत घृत आदि पुराने तथा औषधी आदि नवीन न मिले तो जिनको लाए वर्षदिन न हुआहो ऐसी औषध लेवे ॥

औषधजाननेकाउपाय

भवन्ति चात्र ॥

गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः ।

मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ॥

अर्थ—गोपाल (गौ, भैस, बकरी, आदिके पालन करने वाले चरवाहे) तपस्वि (जटाधारी, स्थंडिलशापी आदि) व्याध (सिकारी, अहेरिया आदि) वनचारी (भील, चुआड, गौण, माली, काछी, बंजारे, नाय, कालवेलिया,

१ जो द्रव्य न वमन करावे न दस्त करावे किंतु रोगके साथमें एकीभूतहो उस व्याधिको शमन करे उसको संशमन संज्ञक औषधी कहते है ।

इत्यादि) तथा मूलफलकंदभक्षणकर्त्ता तपस्वि. इनसे औषधका स्वरूप और नाम मालूमहो सक्तेहै । अर्थात् उक्तप्राणी जिस वनमें रहा करते है अतएव इनको सब वनस्पती, वृंटी, आदिकी पहचान होती वैद्यको उचित है कि इनके सकाससे औषधोंको जाने ॥

सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु । व्यव-
स्थितो न कालोऽस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥ ३ ॥

अर्थ—संपूर्ण मूलादि अवयव ग्राह्य असें पलाश लवण अर्थात् पत्रलवणादि योगोंमें जहां कालकी मर्यादा नहीं कही वहां पर संपूर्ण(प्रावृद्धादि) काल जानना

गन्धवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते ।

तस्माद्भूमिस्वभावेन वीजिनः षड्सायुताः ॥

अर्थ—वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्द, और सर्व लक्षणा असें छःप्रकारकी पृथ्वी है अतएव इस पृथ्वी के स्वभावसेही वृक्षादिकभी पहचान करके युक्त है अथवा ए छःरस भूमि के स्वभावसे मिलकर वृक्षादिरूपसे प्रगट होतेहै ॥

अब कहते है कि द्रव्योंके परिणाम विशेषकरके मधुरादि रस होते है फिर आप 'आप्योरसः' अर्थात् रस है सो आप्य है असा क्यो कहते है तहां कहते है ॥

अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः ।

रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत् ॥

अर्थ—जलका रस (मधुरादि भावकरके) अप्रकट है यह प्रमाण निश्चय है अर्थात् जलमें रसतो है परंतु मीठा वा खरी है यह निश्चय नहीं है, तहां वही अप्रकट रस भूमिके रससे प्रगट होता है ॥

भूमिद्रव्यकाकारणकहतेहै

सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।

द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गुणानि विशेषतः ॥

अर्थ—सर्वलक्षण (पृथिव्यादि पंच महाभूत लक्षणों करके) युक्त पृथ्वी साधारण कही है असी साधारण पृथ्वीकी द्रव्य (औषधी) विशेषकरके साधारण गुणवाली जाननी ॥

नवीनवापुरानीकैसीद्रव्यलेनी
विदग्धे नापरामृष्टमधिपन्नं रसादिभिः ।
नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जो औषधी विरोधी गंध करके स्पर्श न करी गई हो [अर्थात् जिसमें जोसुगंध आया करे उससे विपरीत गंध न आवे जैसे गुलाबमें प्याजकी-गंध,] और रसादि करके क्षीण न हो अर्थात् रसादि संपन्नहो, ऐसी नवीन अथवा प्राचीन लेनी चाहिये ॥

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितं ।
शेषमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयादोपवर्जितं ॥ ४ ॥

अर्थ—तहां वायविडंग, पीपल, सहस्र, और घी, ए पुराने लेवे इससे अन्य औषधी सब नवीन और पूर्वोक्त विषादि दोष रहित लेनी चाहिये ॥

इसप्रकार स्थावरोको कहकर अब जगमों को कहते हैं ॥

जङ्गमानां वयःस्थानां रक्तरोमनखादिकं ।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥

अर्थ—तहां वयस्य जंगम (अर्थात्) तरुण प्राणीयों के रुधिर, रोम, और नखादिक लेवे, और यदि इनके क्षीर, मूत्र गोबर लीद आदि लेने होयतो जब इनका आहार पचजावे तब लेवे, अजीर्णवस्थाका नलेय ॥

औषधरखनेकाउपाय

छोटमृद्गाण्डफलकशङ्कु, विन्यस्तभेषजं ।
प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ॥ ५ ॥

अर्थ—इन औषधोंको कपड़ेके टुकड़ोंमें, मिट्टीके वासन (इमरतवान् हांडी,

१. जंगम शब्दसें सजीव चलने फिरनेवाले मनुष्य, घोडा, हाथी, शेर, बकरी, मेदा, हरिण, मुरगा, आदि जानने । जंगम प्राणी जो जवान होते हैं उनके मांस, रुधिरादिमें अधिक बौर्यवाले होते हैं । और बच्चे, तथा बुड़े निर्बली और हीनबौर्य होते हैं । इस वास्ते इस जगे [वयस्य] ऐसा पद धरा है ।

२ जो दानेदार औषधहैं उनको कपड़ेमें बांधके धरे, जो चूर्ण आदि हैं उनको मिट्टीके पात्र तथा शीशी आदिमें धरे परंतु उनके ऊपर नाम लिखदेवे कि निस्सै मूल न हो । जो लंबी और भारी वस्तुहैं उनको तक्के आदिपर धरे, और जो रुखडी जडी

चीनीके प्याले, सकोरा, गागर, मांठ, तथा शीशीआदि) फलक (तक्ता, पट्टी) और शंकु (कील, मेख,) इनमें धरी है औपधी, जिसमें असा औपधालय पूर व अथवा उत्तर दिशा और पवित्र स्थानमें होना चाहिये ॥

पिछाडी वस्ती प्रकरणमें लिख आए है कि औपधोके गण आगे कहैगे, इस वास्ते अब द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायकरके औपधोके ३७ गण कहते है ॥

अथातो द्रव्यसंग्रहणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम द्रव्यसंग्रहणीय अध्यायका वर्णन करेगें, तहां संग्रह शब्दसैं संक्षेपार्थलेना अर्थात् द्रव्योंका संक्षेप मुख्यकरके करी अध्याय उसका हम व्याख्या करेगें, द्रव्योंका विस्तारसैं वर्णन आगे चिकित्सा खंडमें कराजायगा जैसे इसी अध्यायके अंतमें लिखैगै 'समासेन गणा ह्येते प्रोक्तास्तेषां तु विस्तरम् । चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषवलावलम् ' जैसे इस मुश्रुतमें ३७ गणकहे है उसीप्रकार वाग्भटके शोधनादिगणसंग्रहाध्यायमें ३३ ही औपधोके गण कहे है

आदि है उनको डोरसैं बांधके कील, सूटी, मेख आदिमें लटकाय देवे । तेल घृत आदि को कुप्पी, चिकने वासन, आदिमें वैद्य एक मुडोल रीतिमें अपने औपधालयमें धरे कि जिससै मकानभी सनजाय और औपधमी न विगडे तथा बखतपर शीघ्र मिलजावे ।

३ पवित्रस्थान कहनेका यह प्रयोजन है कि जो सपेदी आदिमें स्वच्छ तथा नीचें कूडे आदिमें रहित, जिसमें उत्तम ऊंचे २ द्वार हो जिससै पवनका संचार अच्छे प्रकारहो, और उज्जल चांदनी आदि कपडे बिछेहो, तथा ऊपरभी ऐसेही तने हो, तथा उस मकानके और पास दुर्गंध न हो, इत्यादिक सामिग्रांसं पवित्रहो, ऐसा न होवे कि वहाँ कुछ रूखडो पडी है, कहीं कूडेका ढेर लगाहै, पासही टूटे फटे जूतेके जोडे पडे है, पुराना धुराना कुछ बिछैया बिछाहै, मकानकी छत्त और भीतोंमें मिट्टीकी बर्षा होरही है मक्खनी भिन भिनाती है, दुर्गंधआती है, टूटे फटे वासनेसि कुछ दवाई धरतीमें फैल रही है, कुछ उस पात्रमें है । पोधी पत्तरे अस्तव्यस्त पडे है कुरूप और मलीन असे औपध नानेके पात्र कहीं पडे है इत्यादि अनेक बरणोंसे अपवित्रता होती है । उससै वैद्यको सदैव सावधान रहना चाहिये ॥

यह वैद्य अन्परोगी आदिको स्वच्छ रहनेकी आज्ञा देताहै फिर दीपकके नीचे अंबकारहो तो रोगिगन क्या कहैगे । देखो डांक्टर लोक वैनी अस्पताल और अपने मकानकी स्वच्छता रखने है खैर उनहीका अनुकरण सीगो ॥

तर्हान्अध्यायकार्पिडार्थ

समासेन सप्तत्रिंशद्द्रव्यगणा भवन्ति तद्यथा ।

अर्थ—सत्तेपसै द्रव्योंके सैतीस गण होते है, जैसे—आगे लिखते है ॥

विदारिगंधादिगण

विदारिगन्धा विदारी सहदेवा विश्वदेवा श्वदंष्ट्रा पृ-
थक्पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्षभ-
कौ महासहा क्षुद्रसहाबृहत्त्यू पुनर्नवैरण्डौ हंसपादी,
वृश्चिकाल्यु षट्भीचेति ।

विदारिगन्धादिरयं गणः पित्तानिलापहः ।

शोषगुलमाङ्गमर्दोर्द्विश्वासकासविनाशनः ॥ १ ॥

अर्थ—विदारिगंधा (शालपर्णी) विदारीकंद, सहदेवा (सहदेई) विश्वदेवा (गगेरन गुडसकरीनामसैप्रसिद्ध) श्वदंष्ट्रा (गोखरू) पृथक्पर्णी (पिठवन) शतावर, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, ऋषभक, महासहा (मासपर्णी) क्षुद्र-सहा (मुद्रपर्णी) बृहती (छोटेफलकी और बडेफलकी दोना कटेरी) पुनर्नवा (सांठ) अंड, हंसपदी, वृश्चिकाली (मेढासिंगीकाभेद) और ऋषभी (कौंच, किवाच)

ये ऊपर लिखीहुई संपूर्ण औषध विदारिगंधादिगण जानना । यह पित्त, वा-

१ विदारिकंद कोहला (पेठे) के समान लाल फलका होताहै । इसके दो भेदहै—पेहला लंबाकंद और बहुत दूधवाला, दूसरा हाथीके पैरके समान बहुतथोडा दूधवाला होताहै । ये पूरवके देशोंमें बहुत मिलताहै । सारिवा जामुनके पत्तेसमान पत्तेवाली बूध-वालीबेल इसी नामसै प्रसिद्धहै । ३ कृष्णसारिवा छिलहिंगुके समान पत्तेवाली और उ-समें चदनकीसी मुगंध आती है, प्रापामें कालीबेल कहते है । ४ हंसपदीइसके पत्ते हंसके पैरके सदृश होते है, और पीलाफूल—तथा जलमूल गयाहो उस पृथ्वीमें होताहै. लोकमें हंस-सराज कहते है; परंतु हंसराज यह नहीं है । इसकी परीक्षा और रूप हम इसी बृहत्त्रि-घंशुरत्ताकरके निबंधभागमें लिखैगे । ५ वृश्चिकाली रूखडी कांटेवाली मेढाके सांगके समा न ऊंचे फलवाली होती है । कोई कहताहै कि पादकेसे पत्ते—कुछ २ रूआं वाली सौधे फूलकी दक्षिणावर्त्त बेलमेढासिंगीका भेद होताहै ॥

वाग्प्रष्टमें देवदारू तथा जीवनीयगणको इसीगणमें लिखाहै ॥

दी, शोष (राजयक्ष्मा) अंगमर्द (अंगोकाट्टना) उर्द्धश्वास, और खांसीको दूरकरे है ॥

वातपित्त हरण करने से इस गणको दोष नाशक और शोषादि हरण करने से इस गणको व्याधिनाशक अर्थात् व्याधियोंका शत्रु जानना दोषोंपर कहकर व्याधियोंके ऊपर कहनेसे इस गणको अवस्था, काल, और देशादि भेदकरके संपूर्ण अथवा आधाजो मिले उतना लेकर काढा, फांट, स्वरस, कल्क, चूर्ण और गुटिकाआदि बनायकर रसक्रिया, लेप, नस्य, परिपेक, और स्नान तथा घृत तैलादिक यथायोग्य योजित करने चाहिये । इसीप्रकार अन्य गणोंमें भी जानना तथा जीवकरूपभक्तआदि द्रव्योंका अन्नपानादिकमें गुण नहीं कहे उनको संपूर्ण गणके गुणाभिधान करके पृथक् द्रव्यगुण जानने चाहिये ॥

आरग्वधादिगण

आरग्वधमदनगोपघोण्टाकुटजपाठाकण्टकीपाटला-
मूर्वेन्द्रयवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासीकुरुण्टकगुडू-
चीचित्रकशार्ङ्गष्टाकरज्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानि
सुपवीचेति ।

आरग्वधादिरित्येपगणः श्लेष्मविपापहः ।

मेहकुष्ठज्वरवमी कण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥ २ ॥

अर्थ—आरग्वध (जमलतास) मदन (मैनफल) गोपघोंटा (ककडीकाभेद) कूडाकाट्टक, पाट, विकंकत (कांटेवालावृक्ष कटेरीनाममेंप्रसिद्ध) पाटल, मूर्वी, इन्द्रजों, सतवन, नीम, कुरुण्टक (कटसरैया, पीलेफूलका पीयापांमा) दासीकुरुण्टक (नीलेफूलका पीयापांसा) गिलोय, चीता, शार्ङ्गष्टां (काकजंघा, विकसवनी करके प्रसिद्ध) करंज, (कंजा) और पृतीकरंज, पटोलपत्र, किरात तिक्तक (चिरायता) कारवी (कलोजी अथवा काकटासिंगी) ॥

यह आरग्वधादिगण करु, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन, मुजली, इनको दूर करे तथा [पुष्ट] धावको भरने वाला है ॥

१ कोई गोपघोंटाको बेरका भेद बताने है । और कोई मुपारीका भेद करने है । २ स-
तोना यह इस शरदि ऋतुमें लिखता है और छायाके मदवीसी इसमें गंध आती है ।
३ कोई शार्ङ्गष्टाको काकमाषी—और कोई कारुत्तिका कहने है ।

वरुणादिगण

वरुणार्त्तगलशिशु मधुशिशु तर्कारीमेपशृङ्गीपूतीकन-
क्तमालमोरटाग्रिमन्थसैरीयकद्वयविन्वीवसुकवासिर
चित्रकशतावरीविल्वाजशृङ्गीदर्भा बृहतीद्वयञ्चेति ।

वरुणादिर्गणोह्येषकफभेदोनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ—वरुणा (वरना इसवृक्षके पत्तोंका कहुआ साग होता है ॥ आर्त्तगल (कोह.) शिशु (सहजना) मधुशिशु (लालसहजना) तर्कारी (अरनी) मेपशृङ्गी (मेढासिंगी) पूतिक (कंजा) नक्तमाल (बढाकरंज) मोरट (मूर्वा) आग्रिमन्थ (अगेधू पूरवदेशप्रासिद्ध अरनीका भेद) सैरीयकद्वय (दो प्रकारकी कटसरैया, लालफूलवाली जिसको कुरवक कहते हैं । और पीलेपुष्प का पियावांसा) विन्वी (कंदूरी) वसुक (वकपुष्प) अथवा वसुक (आक) वसिर (मर्कटपिप्पली, आँगानामसैप्रसिद्ध,) चींता, शतावर, बेल, अजशृङ्गी (मेढासिंगीकाभेद) कुश, और छोटीबडीकटेरी ॥

यह वरुणादिगण कफ, मेदा, मस्तकशूल, गोला, और भीतरकी विद्राधि इनको दूरकरे है ॥

वीरतर्वादिगण

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशा
श्मभेदकाग्रिमन्थमोरटावसुकवासिरभल्लुककुरुण्टके-
न्दीवरकपोतकङ्काश्वदंष्ट्राचेति ॥

वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ।

अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रघातरुजापहः ॥ ४ ॥

अर्थ—वीरतरु (बेल्वंतर) दोनोकटसरैया, दर्भ(डाभ)वृक्षादनी(बंदाक, वादा प्रासिद्ध) गुन्द्रा (गोदर) नल (नरसल) कुशा, कांस, अश्मभेदक (पास्तानभेद) अरनी, मोरट (मूर्वा) वसुक (वकपुष्प) वसिर (आंगा) भल्लुक (स्योनाक) कुरुण्ट (सिरवालिका) इन्दीवरी (नीलाकमल) कपोतकंका (हुलहुल) औरगोसूख ॥

यह वीरतर्वादिगण वातके विकारोंको तथा पथरी-शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, आदिकी पीडा इनसबको दूरकरे ॥

ष्पीक्षुद्रश्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति ।

अर्कादिको गणो ह्येष कफभेदोविषापहः ।

रुमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्ब्रणशोधनः ॥ ७ ॥

अर्थ—अर्क(लालफूलकाआक) अलर्क (सपेदफूलकाआक) कंजा, दंती, ऑगा (चिरचिटा) भारंगी, राम्ना, इन्द्रपुष्पी (कटेरी) क्षुद्रश्वेता (फेसंद) महाश्वेता (नीलपुष्पसंकंद) वृश्चिकाली (मेढासिंगीकाभेद) अलवणा (मालकांगनी,) काकमर्दानिका और इंगुदीवृक्ष (गोंदीवा हिंगोट वृक्ष) ये अर्कादिगणहै॥

यह कफ, भेद, विष, कृमि, कुष्ठ, इनको दूरकरे और ब्रणको शोधन करे है॥

सुरसादिगण

सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसु-

मुखकालमालकासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फल-

सुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिकाफञ्जीप्राचीवल-

काकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति ।

सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदनः ।

प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो ब्रणशोधनः ॥८॥

अर्थ—सुरसा (सपेदतुलसी) और कालीतुलसी, फणिज्झक (मरुआ) अर्जक (सपेद आजवला) भूस्तृण (गुंदाक रोहिसतृण) सुगंधक (बढांसुगंधतृण) सुमुस्त (राई, वा बवैरी) कालमाल (कारीचमेली) कासमर्द (कसौंदी) क्षवक (जिह्वारिपाक इसप्रकार पारियात्र पर्वतमें प्रसिद्ध) खरपुष्प (क्षवकका भेदहै) वायविडंग, कायफल, सुरसी (बिल्वनासी) निर्गुंठी, कुलाहल (मुंडिका) उंदुरकर्णो (मूसाकर्णो) भारंगी, प्राचीवल (मछेछी) काकमाची (मकोय अथवा गुडफला) विषमुष्टिक, (राजर्जिव) ये सुरसादि गणहै ॥

यह कफरोग, कृमिरोग, पीनस, अरुचि, श्वास, सांसी, इनको नाशकरे, तथा ब्रणको शोधन करे है ॥

मुष्ककपलाशघवचित्रकमदनवृक्षशिशपावज्रवृक्षास्त्रि-
फलाचेति ।

मुष्ककादिर्गणो ह्येष भेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ।

मेहार्शःपाण्डु रोगघ्नः शर्कराशमरिनाशनः ॥ ९॥

अर्थ—मुष्कक, (मोस वा मोक्षवृक्ष) पलास (टाक) धव (धों) चित्रक (चीता) मैनफलका वृक्ष, सीसो, धूहर और त्रिफला (हरढ-वहेढा-भामला) ये मुष्ककादिगणहै ॥

यह मेद, शुक्र (वीर्य) के दोष, प्रमेह, पांडुरोग, शर्करा, पथरी, इनको दूरकरे है ॥

पिप्पल्यादिगण

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमारिचहस्ति-
पिप्पलीहरेणकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहा
निम्बफलहिड्ढुभार्गीमधुरसातिविषावचाविडङ्गानि
कटुरोहिणी चेति ।

पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिशयायानिलारुचीः ।

निहन्यादीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥

अर्थ—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चीता, अदरस, कालीमिरच, गजपीपल, हरेणुक (रेणुकाद्रव्य) इलायचीछोटी, अजमोद, इन्द्रजों, पाढ, जीरा, सरसों, चकायन, हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, वच, वायविडंग, और कुटकी यह पिप्प-
लादिगणहै ॥

यह कफको तथा पीनस, वादी, अरुचि, गोला, शूल, और आमवात रोगको हरणकरे । तथा अग्निको दीपनकरे है ॥

एलादिगण

एलातगरकुष्ठमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गु-
हरेणुकाव्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौण्यकश्रीवेष्टकचो
चचोरकवालकगुग्गुलुसर्जरसतुरुष्ककुन्दुरुकाऽगुरु-
स्पृक्कोशीरभद्रदारुकुङ्कुमानिपुत्रागकेशरञ्चेति ।

एलादिको वातकफो निहन्याद्विपमेवच ।

वर्णप्रसादनः कण्डूपिडकाकोठनाशनः ॥११॥

अर्थ—छोटीइलायची, तगर, कूठ, जटामांसी, रोहिपट्टण, तज, पत्रज, नाग-
केशर, भियंगु, रेणुका द्रव्य, बृहन्नख, शुक्ति (उसीव्याघ्रनखकांभेद) चंडा,
स्थौण्यक (शुनेर) धीवेष्ट (सरलवृक्ष) चोच (तजकाभेद) चोरक (ग्रंथिप-
र्णोंकाभेद) वालक (नेत्रवाला) गुग्गुल, राल, सिव्हक, सल्लकी, अगर, पृक्का

(सुगंधिद्रव्य उत्तरमें प्रसिद्ध) उशीर (खस) भद्रदारु (देवदारु) कुंकुम (के शर) पुन्नाग, और कमलका केशरा, ये एलादिगणहै ॥

यह वातकफ, विपविकार, खुजली, पिढका (फुंसी) रुधिर विकारके काले काले चकत्ते, इन सबको नाशकरे । तथा देहके रंगको स्वच्छ (गोरा) करे ॥

वचाहरिद्रादिगण

वचामुस्तातिविषामयाभद्रदारूणि नागकेशरञ्चेति ।

हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकंचेति ॥

एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ।

अमाती सारशमनौ विशेषादोषपाचनौ ॥ १२ ॥

अर्थ—वच, मोथा, अतीस, हरड, देवदारु, नागकेशर, ये वचादि गणहै । हलदी, दारुहलदी, पृष्टपर्णी, इन्द्रजों, और महुआ ये हरिद्रादि गणहै ॥

यह दोनों गण स्त्रीके स्तनसंबंधी दूधको शोधन करे, तथा आमातिसारको शमनकरे, तथा विशेषकरके वातादि दोषोंको पाचन करे है ॥

श्यामादिगण

श्यामामहाश्यामातृवृद्धन्तीशंखिनीतिल्वककम्पिल्ल-

करम्भकक्रमुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरञ्जद्वयगुड-

चीसप्तलाच्छगलान्त्रीसुधाः सुवर्णक्षीरी चेति ॥

उक्तः श्यामादिरित्येष गणो गुल्मविपापहः ।

आनाहोदरविड्भेदी तथोदावर्तनाशनः ॥ १३ ॥

अर्थ—श्यामा (सपेद निसोथ) महाश्यामा (विषायरो) तृवृत्त (लालज-डकी निशोथनामसँ प्रसिद्ध) दन्तीशंखिनी (यवतिकाकाभेद) तिल्वक (लोध) कपिल्लक (कबीला) रम्पक (बकायन) क्रमुक (सुपारी) पुत्रश्रेणी (संवरी) गवाक्षी (इन्द्रायन) राजवृक्ष (अमलतास) करंज, पूतीकरंज, गिलोय, धूहर, छगलानी (बृहदारककाभेद) सुधा (सेहड) स्वर्णक्षीरी (चोक) ये श्यामा-दिगणहै ॥

यह गोला, विपविकार, अफरा, उदररोग, इनको दूरकरे मलको भेदक है अर्थात् दस्तावरहै, और उदावर्तका नाशकहै ॥

बृहत्यादिगण

बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकञ्चेति ।

पाचनीयो बृहत्यादिर्गणः पित्तानिलापहः ।

कफारोचकहृल्लासमूत्रकृच्छ्ररुजापहः ॥ १४ ॥

अर्थ—बड़ीकटेरी, छोटीकटेरी, इन्द्रजो पाद, और महुआ, यह बृहत्यादि गण है । यह पाचन है तथा पित्त वादीका और कफ, अरुचि, हृल्लास, मूत्रकृच्छ्र, इत्यादि रोगोंको नष्ट करे है ॥

पटोलादिगण

पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटु, रोहि-

णोचेति । पटोलादिर्गणः पित्तकफरोचकनाशनः ।

ज्वरोपशमनो व्रण्यश्छर्दिकण्डू विषापहः ॥ १५ ॥

अर्थ—पटोलपत्र, चंदन, लालचंदन, मूर्वा, गिलोय, पाद, और कुटकी, यह पटोलादि गण है ॥

यह ज्वर, पित्त, कफ-अरुचि छर्दि, खुजली, विष इनको दूरकरे तथा घाव-को हितकारी है ॥

कांकोल्यादिगण

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभमुद्गपर्णीमापपर्णीमे-

दामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौ-

ण्डरीकृद्धिवृद्धिमृद्धीकाजीवन्त्यो मधुकञ्चेति ॥ का-

कोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः । जीवनो-

वृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—कांकोली, क्षीरकांकोली, जीवक, ऋषभक, मूंगोन, मापपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, कांकडासिंगी, वंशलोचन, पत्रास, कमल, ऋद्धि, वृद्धि, दास, डोडी, और मुलहटी, यह कांकोल्यादि गण है ॥

यह पित्त, रुधिर, वादी, इनको नाशकरे तथा जीवन वृंहण (शरीरको पुष्टकारी) वृष्य, स्तनोंमें दूधका बढ़ानेवाला, और कफकारी है ॥

उपकादिगण

उपकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्दयहिङ्गुनि तुत्यकञ्चे-

ति । उषकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोषणः ।

अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ १५ ॥

अर्थ—उषक (क्षारमृत्तिका यह काशीके पास बडहर देशमें अधिक होती है) संधानिमक, शिलाजीत, कसीस, पुष्पकसीस, हिंग, और लीलायोया, ये ऊषकादि गण है ॥

यह कफ, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, गोला, इनको नष्टकरे, तथा मेद (चर्बी) को शोषण करे ॥

सारिवादिगण

सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधु-
कपुष्पाण्युशीरश्चेति । सारिवादिः पिपासाघ्नो रक्त-
पित्तहरो गणः । पित्तज्वरप्रशमनो विशेषाद्दाहनाशनः ॥

अर्थ—सारिवा (सरिवनगौरी सर) मुलहठी, चंदन, लालचंदन, पद्मास, कंभारी, महुआके फूल, और खस, ये सारिवादि गण है ॥

यह, प्यास, रक्तपित्त, पित्तज्वर, और विशेषकरके दाहको हरण करे है ॥

अंजनादिगण

अञ्जनरसाञ्जननागपुष्पप्रियङ्गु नीलोत्पलनलदनलिन-
केशराणिमधुकश्चेति ।

अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिवर्हणः ।

विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—सुमारा, रसोत, नागकेशर, प्रियंगु, नीलाकमल, जटापांती, कमल-
केशर, और महुआ, ये अंजनादि, गण है ॥

यह रक्तपित्तको दूरकरे, विष, दोषको शमनकरे, भीतरके दाहको नष्ट करेहै

परूपकादिगण

परूपकद्राक्षाकट्फलदाडिमराजादनकतकफलशाक-
फलानि त्रिफला चेति ।

परूपकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ।

मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नो रुचिप्रदः ॥

अर्थ—फालसे, दास्य, कायफल, अनार, खीरनी, कतकफल (निर्मली) शाकवृ-
क्षका फल, और त्रिफला, ये परूपकादि गण है ॥

यह वादीके दोष, मूत्रके विकार, और प्यास इनको हरण करे तथा हृदयके
हितकारी तथा रुचि उत्पन्न कर्ता है ॥

प्रियंगु और अंबष्ठादिगण

प्रियङ्गु, समझाधातकी पुन्नागरक्तचन्दनकुचन्दनमोच-
रसरसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोऽञ्जनपद्मकेशरयोजनवल्लयो
दीर्घमूलाचेति ॥ १७ ॥

अम्बष्ठाधातकी कुसुमसमझाकट्वङ्गमधुकविल्वपेशि-
कारोध्रसावररोध्रपलाशनन्दीवृक्षपद्मकेशराणि चेति ।

गणौ प्रियङ्गवम्बष्ठादौ पक्वातीसारनाशनौ ।

सन्धानौयौ हितौ पित्ते व्रणानाञ्चापि रोपणौ ॥

अर्थ—प्रियंगु, लजालू, धायकेफूल, पुनाग, लालचन्दन, चन्दन मोचरस,
रसोत, कुंभीनामा वृक्ष (जिसकी छाल वस्त्रके आकार होती है) सूरमा,
कमलकेशर, मजीठ, और धमासा ये प्रियंग्वादि गण है ॥

अंबष्ठा (कुरंद) धायकेफूल, लजालू, रेणुक, मुलहटी, बेलगिरी, लोध, पष्ठा-
नीलोध, पलाश (टाक) नन्दीवृक्ष (काश्मरी) और पद्मकेशर, ये अंबष्ठादि-
गण है ॥

ये दोनो (प्रियंग्वादि और अंबष्ठादि गण) पक्वातिसारको नष्ट करते हैं दू-
डी दहड़ीको जोड़ने वाले, पित्तमें परम हितकारी, और व्रणोंको रोपण करे हैं

न्यग्रोधादिगण

न्यग्रोघोदुम्बराश्वत्थलक्ष्ममधुककपीतनककुभाप्रको-
शाप्रचौरकपत्रजम्बुद्रयप्रियालमधुकरोहिणी वज्रुल-
कदम्बवदरीतिन्दुकीसल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातक-
पलाशा नन्दीवृक्षश्चेति । न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः सं-
ग्राही भग्नसाधकः रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्न योनिदोषहृत् ॥

अर्थ—बह. गुलर, पीपल, पाम्बर, महुआ. अंबाढा, कोह, आम, कौशाप्र,
चौरकपत्र, (लाम्बकावृक्ष) छोटीजामुन (काकजामुन,) बड़ीजामुन (गज-

खिरनी, मुलहठी, कायफर, वेत, कदंब, वेर, तैंदू, सालवृक्ष, लोध, प-
ध, मिलाए, ढाक, और नंदीवृक्ष ये न्यग्रोधादि गण है ॥

ई व्रणको हितकारी, ग्राही, दूटेहाडआदिको जोडने वाला, रक्तपित्त, दा-
ह, मंद, और योनिके दोष इनको नाश करे है ॥

गुडूच्यादिगण

गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बुरुचन्दनानि पद्मकञ्चेति ।

एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥

हृल्लासारोचकवमीपिपासादाहनाशनः ॥

अर्थ—गिलोय, नीम, धनिया, लालचंदन, और सफेद चंदन तथा पद्मास ये
गुडूच्यादि गणहै । यह सर्वज्वरोका नाशकरे, और जठराग्निको दीपनकरे है ।
तथा हृल्लास, अरुचि, वमन, प्यास, दाह, इनको नष्टकरे ॥

उत्पलादिगण

उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि

मधुकञ्चेति । उत्पलादिरयं दाहपित्तरक्तविनाशनः ।

पिपासाविषहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरोगणः ॥

अर्थ—नीला कमल, लालकमल, कमोदनी (बघौला, नीलोफर) सौगंधिक
(नीलकमलके आकार सुगंधवाला) कुवलय (कुलनील और सपेदीयुक्त क-
मल) पुंडरीक (सपेद कमल) और मुलहठी, ये उत्पलादि गण है ॥

यह दाह, रक्तपित्त, प्यास, विषदोष, हृदयकोरोग, वमन, और मूर्च्छा इन-
को हरण करे है ॥

मुस्तादिगण

मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकविभीतककु-

ष्ठहैमवतविचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गप्रातिविपाद्रावि

डीभल्लातकानि चित्रकञ्चेति । एष मुस्तादिको ना-

ग्रा गणः श्लेष्मनिपूदनः । योनिदोषहरःस्तन्यशो-

धनः पाचनस्तथा ॥

अर्थ—मोथा, हलदी, दारुहलदी, हरड, आमला, बहेडा, कूट (कूठ) सपे-

दवच, वच, पाठ, कुटकी, यवतिका, अतीस, छोटीइलायची, भिलाया, और चीता ये मुस्तकादि गण है

यह कफको दूरकरे, योनिदोषको हरण करे, स्तन संबंधी दूधको शुद्धकरे और पाचन है ॥

त्रिफलागण

हरितक्यामलकविभितकानि त्रिफला ।

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी ॥

चक्षुष्या दीपनी चैव विपमज्वरनाशनी ॥

अर्थ—हरद, बहेडा और आमला, ये त्रिफला है यह कफ, पित्त, प्रमेह, कुष्ठ और विपमज्वर, इनको नाशकरे नेत्रोंको परमहितकारी, और अग्निको दीपन करे है।

त्रिकटुगण

पिप्पलीमरिचशृंगवेराणि त्रिकटुकम् ।

त्र्युपणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ।

निह्न्याद्दीपनं गुल्मपीनसाश्रयल्पतामपि ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, और पीपल, ये त्रिकटुकगण है इसको त्र्युपण कहते है यह कफ, मेदा, प्रमेह, कोठ, त्वचाके रोगोंको, गोला, पीनस, और मंदागि, इस सबको दूरकरे और अग्निको दीपन करे है ॥

आमलक्यादिगण

आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ।

आमलक्यादिरित्येष गणः सर्वज्वरापहः ।

चक्षुष्यो दीपनो वृष्यः कफारोचकनाशनः ॥

अर्थ—आमला, हरद, पीपल, और चीतेकी छाल, ये आमलक्यादि गण है यह सर्व ज्वरोंको और कफ तथा अराचिको नाश करे, नेत्रोंको हितावह, दीपन और वृष्य है ॥

त्र्यम्बादिगण

त्र्यम्बासताम्ररजतरुष्णलोहसुवर्णानि लोहमलञ्चेति ।

गणस्त्र्यम्बादिरित्येष गरक्तिमिहरः परः ।

पिपासाविषहृद्रोगपाण्डुमेहहरस्तथा ॥

अर्थ—रांग, शीशा, तामा, चांदी, खेडीलोह, सुवर्ण (सौना) और लोहमल (लोह कीटी) ये ऋत्वादि गण कृत्रिम विषदोष, कृमिरोग, प्यास, विषदोष, हृदयरोग, पांडुरोग, और प्रमेह-रोग, इनको हरण करे ॥

लाक्षादिगण

लाक्षारेवतकुटजाऽश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बस-
प्तच्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति ।

कषायस्तित्तमधुरः कफपित्तार्तिनाशनः ।

कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्टत्रणविशोधनः ॥

अर्थ—लास, अरेवत (अमलतास) इन्द्रजो, कपेर, कायफल, हरदी, दा-
हरदी, नीम, सतना, मालती, और त्रायमाण, यह लाक्षादिगण कपेला, कहु-
आ, मिष्ट असाहै । तथा कृमिकुष्ठको नाशकरें तथा दुष्टनासूर आदि फोडोंको
शोधन करे है ॥

लघुपंचमूलगण

पञ्च पञ्चमूलान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः । तत्र त्रिकण्टकवृ-
हतीद्वयपृथक्पर्णी विदारिगन्धा चेति कनीयः ।

कषायतित्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम् ।

वातघ्नं पित्तशमनं बृहणं बलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—अब पाच पंचमूलोंको कहते है । तहां गोखरू, छोटीकटेरी, बड़ीकटे-
री, पृष्टपर्णी, और शालपर्णी, यह छोटा पंचमूल है । यह कपेला, कहुआ, और
मीठाहै तथा वात और पित्तको शमन करे, बृहण ओर बलको बढ़ाताहै ॥

बृहत्पंचमूल

विल्वाग्निमन्थदुन्दुकपाटलाकाशमर्य्यश्चेति महत् ।

सतित्तं कफवातघ्नं पाके लघ्वग्निदीपनम् ।

मधुरानुरसश्चैव पञ्चमूलं महत् स्मृतम् ॥

अर्थ—वेलगिरी, अरनी, स्योनाक, पाटल, और कंभारी, ये बृहत्पंचमूल है ।
(आई लिये मीठाहै, कफ वादी इनको नष्टकरे, पचने पर हलका और
दीपन करे है ॥

दशमूल

अनयोर्दशमूलमुच्यते ।

गणः श्वासहरो ह्येष कफपित्तानिलापहः ।

आमस्य पाचनञ्चैव सर्वज्वरविनाशनः ॥

अर्थ—छोटे और बड़े दोनो पंचमूलोंके मिलानेसे दशमूल होता है । यह दशमूल गण श्वासरोग, कफ, पित्त, और वादी तथा ज्वरको नाशकरे और आमको पाचन करे है ॥

वल्लीपंचकतथाकंटकपंचक

विदारिसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी चेति वल्ली-

संज्ञः । करमर्दत्रिकण्टकसैरीयकशतावरीगृध्रन-

ख्य इति कण्टकसंज्ञः ॥

रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ॥

सर्वमेहहरौ चैव शुक्रदोषविनाशनौ ॥

अर्थ—विदारीकंद, सारिवन, हलदी, गिलोय, और मेढासिंगी, ये वल्लीपंचक है । करोदा, गोस्वरू, कटसैरैया, सतावर, गृध्रनखी, ये कंटकपंचमूल है ॥

वल्ली पंचक और कंटक पंचक, दोनोंगण रक्तपित्तको हरणकरे, त्रिविध शोथरोगको नाशकरे तथा सर्वमेह और शुक्रके दोषको हरणकरे है ॥

तृणपंचक

कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुक इति तृणसंज्ञकः ।

मूत्रदोषविकारञ्च रक्तपित्तं तथैव च ।

अन्त्यः प्रयुक्तः क्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ।

अर्थ—कुश, कांस, नरसल, डभा (मूज) और काण्डेक्षुक (सरपता) ये तृणपंचक है । यह मूत्रदोष तथा मूत्रके विकारोंको रक्तपित्तको शीघ्र दूरकरे है ॥

पाचोकेगुणएकश्लोकसैकहतेहै

एषां वातहरावाद्यावन्त्यः पित्तविनाशनः ॥

पञ्चकौ श्लेष्मशमनावितरौ परिकीर्तितौ ॥

अर्थ—इन पांचो पंचकोमें आदिके दोपंचक (लघुपंचमूल और बृहत्पंच-

मूल) वादीको हरण करते है । और अंशपंचक (वृणपंचमूल) पित्तको शमन करे है । और वीचके (वल्लीसंज्ञक और कंटकसंज्ञक पंचमूल) कफको शमन करे है ॥

त्रिवृत्तादिकमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—त्रिवृत्तादिकगण अन्यत्र कहिये आगे संशोधन सशमनीयाध्यायमें कहैगे ॥

इनकोसंक्षेपत्वदिखातेहै

समासेन गणाह्येते प्रोक्तास्तेपान्तु विस्तरम् ।

चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥

अर्थ—ये संक्षेपसै (औषधोंके) गण कहे है दोषोंका बलाबल विचारके आगे चिकित्सास्थानमें इनको विस्तारसै वर्णन करेगे दोषोंका बलाबल कहनेसै संपूर्ण परीक्षाओंका ग्रहण जानना ॥

इन गणोंका क्याकरे इसवास्ते कहतेहै

एभिर्लेपान् कषायांश्च तैलं सर्पिषि पानकान् ।

प्रविभज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक् ॥

अर्थ—कुशलवैद्य इस औषधोंका यथाक्रम विभाग करके लेप, कषाय (घृत-शीत, स्वरस, फांट, कल्क, आदि पांच कषाय) तैल, घृत, और मंढादिकोंकी कल्पना करे ॥

औषधरक्षणकीविधि

धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्तुष्वनभिद्रुते ।

ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौपधसंग्रहं ॥

अर्थ—विविध औषधसंग्रहको लेकर धूआ, वर्षा, हवा, और क्लेदोंसै सर्व ऋतुमें न विगडने पावे ऐसे उत्तम मकानमें औषधोंको रखनी चाहिये ॥

(इस द्रव्यगणकी कैसेयोजनाकरे सो कहतेहै)

समीक्ष्य दोषभेदांश्च गणान् भिन्नान् प्रयोजयेत् ।

पृथङ्मिश्रान् समस्तान् वा गणं वा व्यस्तसंहतं ॥

अर्थ—वैद्य दोषोंको पृथक्-दृष्टके अभिश्रित गणोंकी योजना करे तथा द्विदो-

प मिले देखके मिश्रित गणोंको देवे, और संपूर्ण मिले दोष देखके तीनों गणोंको मिलायके देवे ॥

(इति द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायसमाप्तः)

‘पहलीअध्यामें लिखआए है कि “ त्रिवृतादिमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ” अर्थात् त्रिवृतादिगण आगे (संशोधन-संशमनीयाध्यायमें) कहेंगे अतएव हमसंशोधन संशमनीया ध्यायको कहतै है ॥

अथातः संशोधनसंशमनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब संशोधन और संशमनीयअध्यायकी व्याख्याकरते है । पूर्व द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायमें व्याधिके नाशक द्रव्योंके गण कहे, और इस संशोधन संशमनीया ध्यायमें दोषोंके प्राय नाशकरी पंचकर्मोपयोगी शोधन द्रव्य संग्रहगणोंको तथा वातादि शमनद्रव्य गणोंको कहेंगे । तहां संशोधन दोषकारका है, जैसे—वमन और विरेचन, तहां विरेचनके पूर्व वमन कराते है इस कारण वमनद्रव्यगणको कहते है ॥

वमनद्रव्यगण

मदनकुटजजीमूतकेक्षाकुधामार्गवकृतवेधनसर्पप विडङ्ग पिप्पली करञ्ज प्रपुत्राटकोविदार कर्बुदाररिष्टा श्वगन्धा विदुलयन्धुजीवक श्वेता सणपुष्पी विम्ब्री वचा मृगेर्वारुचित्रा चेत्युर्ध्वभागहराणि । तत्र कोविदारपूर्वाणां फलानि । कोविदारादीनां मूलानि ॥

अर्थ—मैनफल, इन्द्रजौ, वंडाल, कडुईतूंबी, धामार्गव (पीले फूलकीतोरई) कृतवेधन (सपेद फूलकीतोरई) सपेदसरसो, वायविडंग, पीपल, कंजा, पवार, कोविदार (कचनारकाभेद) कर्बुदार (लिसोडेह्लेसुआ) नीम, असमंध, वेत, मक्षनियाकापुष्प, सपेदवच, सनहुली, कदूरी, लालवच, इन्द्रायण, चित्रांडजा (जिसकाफल परबलेके आकार होताहै) ये ऊर्ध्वभाग हरण कर्ना गण है अर्थात् वमनकारी हैं । तहां वंडालसें पूर्व मैनफलादिकके फल लेने, और कोविदार आ-

दिकी जडलेनी चाहिये । यह औषध कोईतो अकेलीही उलटी लाती है । और कोई वमनकारी द्रव्यके साथ मिलानेसे वमन (उलटी) लाती है ॥

विरेचनद्रव्यगण

त्रिवृता श्यामा दन्ती द्रवन्ती सप्तला शङ्खिनी विषा-
णिका गवाक्षी च्छगलान्त्री स्नुकसुवर्णक्षीरी चित्रक-
किणिही कुशकाश तिल्वककम्पिल्लकरम्भकपाटलापू
गहरीतक्यामलक विभीतकनीलि चतुरङ्गुलैरण्डपू-
तीक महावृक्ष सप्तच्छदार्क ज्योतिष्मती चेत्यधोभा-
गहराणि ॥

तत्र तिल्वकपूर्वानां मूलानि । तिल्वकादीनां पाट-
लान्तानां त्वचः । कम्पिल्लकफलरजः । पूगादीनामे-
रण्डान्तानां फलानि । पूतीकारग्वधयोः पत्राणि ।
शेषाणां क्षीराणीति ।

अर्थ—लालजडकी निसोध, सपेदनिसोय, दंती (दांतन) द्रवन्ती (दंतीका-
भेदाजसको बरी कहतेहै) थूहर, शंखिनी, मेदासिंगी, सपेदफूलकी इन्द्रायण,
विषायरा, सेहुड, चोक, चीता, कटभी, कुश, कांस, तिल्वक (छोटीलोथ) क-
वीला, पटोलकीजड, पादल, सुपारी, हरड, आमला, घेहेडा, नीली, अमलता-
स, अंड, कंजा, महावृक्ष (थूहरकाभेद) सतोना, और मालकांगनी, यह संपूर्ण
औषधी अधोभाग हरहै अर्थात् दस्त लाती है । इनमे तिल्वकसे पूर्व अर्थात् निसोय
आदि जितनी द्रव्यहै उनकी जडलेनी, तिल्वकसे लेकर पादल पर्यतकी त्वचा
(छाल) लेनी । कबीले आदिके फलका चूर्णले, और सुपारीसे लेकर अंडपर्यतके
फल लेने, कंजा और अमलतासके पत्ते, बाकी जो रही उनका दूध लेना चाहिये ॥

वमनविरेचनकर्त्ताद्रव्यगण

कोशातकी सप्तला शंखिनी देवदाली कारवेळिकाचे-
त्यभयतोभागहराणि । एषां स्वरसा इति ।

अर्थ—तोरई (कढवी तुरैयां) थूहर, शंखिनी, वंदाल, और करेला यह दोनों
भागसे हरणकर्त्ता है। अर्थात् वमन और विरेचन दोनों करातेहै, इनका स्वरसलेना

शिरोविरेचन

पिप्पलीविडङ्गापामार्गशिशु सिद्धार्थकशिरीषमरिच-
करवीरबिम्बीगिरिकर्णिकाकिण्णिहीवचाज्योतिष्मती-
करञ्जाकालकलथुनातिविषाशृङ्गवेरतालीशतमाल-
सुरसार्जकेङ्गुदीमेषशृङ्गीमातुलुङ्गीमुरुङ्गीपीलुजाती-
शालतालमधुकलाक्षाहिङ्गुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्रा-
णीति शिरोविरेचनानि ॥

तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि । करवीरादीनामर्कान्ता-
नामूलानि । तालीशपूर्वाणां कन्दाः । तालीशादीना-
मर्जकान्तानां पत्राणि । इङ्गुदीमेषशृङ्गीत्वचौ । मा-
तुलुङ्गीमुरुङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि । शालतालमधु-
कानां साराः । हिङ्गुलाक्षे निर्य्यासौ । लवणानि पा-
थिवविशेषाः । मद्यान्यासवसंयोगाः । गोमूत्रशकृद्र-
सौ मलाविति ।

अर्थ—पीपर, वायाविडंग, ओंगा, सहजना, सरसो सिरस, कालीमिरच, कर्णे-
र, कंदूरी, सेफन्द, कट्ठी, वच, मालकांगनी, कंजा, आक, सपेदआक, लहस-
न, अतीस, अदरस, तालीसपत्र, तमालपत्र, तुलसी, कुहेरक, हिंगोट, मेदासिं-
गी, विजोरा, अरण्यबीज, पीलू, चमेली, शाल, ताल, महुआ, लास, हिंग, निमक
मद्य, गोवरकारस, और गौका मूत्र, यह मस्तकके, विरेचक है । कणेरके, जो,
प्रथम है उनके फल लेवे, कणेरसँ आदिले आकपर्यंतकी जडले, तालीससँ जो
प्रथम है उनके कंद लेवे, तालीससँ लेकर कुटेरक तकके पत्ते लेवे । हिंगोट और
मेदासिंगी इनकी छालले विजोरा अरण्यबीज और पीलू इनके फूलले शाल
ताल, महुआ इनका सारले हिंग, लास, इनका गोदले, पृथ्वीका विकार निमक,
आसचआदिके संयोगसँ मद्य जानने गोवर और गोमूत्र आदि मल ए सब प्रसिद्धी
है अत एव इनको स्वरूपसँ ही ग्रहण करे ॥

संशमनान्यत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः ।

अर्थ—संशोधनको कहकर अब संशमन चर्माको कहते हैं, उत्तम रीतमें दु-

ष्ट दोषोंको बिना निकालेही शमन करे और जो दोष दूषित नहीं है उनको घटा-
वे नहीं अर्थात् जो देहमें व्याधि है उसको संशमन करे, अर्थात् दूर करे, और जो
व्याधि होनेवाली है उसको भगट न करे, उस औषधको संशमन कहते हैं। जैसे
प्रमाण है "नशोधयति यदोषान् समान्नोदीरयत्यपि-समीकरोति च कुद्धान् तत्सं-
शमनमुच्यते" दोषशब्द इसजगे दोषोंमें-दोषोंके कार्योंमें और रोगमें भी कहा है॥

वातसंशमनोवर्ग

तत्र भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेषशृङ्गीवलातिवलात्त-
गलकच्छुरासल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्निमन्थव-
त्सादन्येरण्डाश्मभेदकालर्ककेशतावरीपुनर्नवावसु-
कवासिरकाञ्चनकभार्गीकार्पासीवृश्चिकालीधतूर वद-
रयवकोलकुलत्थप्रमृतीनि विदारिगन्वादिश्च द्वे चा-
द्येष्वमूल्यौ समासेन वातसंशमनोवर्गः ॥

अर्थ—देवदारु, कूठ, हलदी, वरना, मेढासिंगी, वला (सिरिडी) अतिवला
(कंगही) कोह, कौल, साल, काष्ठपाढर, वीरतरु, कटसरैया, अरनी, गिलोय, अंठ
पापानभेद, सपेदआक, आक, सतावर, सांठ, वकपुष्प, आंगा, धतूरा, भारंगी
वनकपास, वृश्चिकपाक, पतंग, वेर, जो, वेर, कुलथी, विदारिगन्वादिगण और
र दोनोंपंचमूल, यह संक्षेपसे वात संशमन अर्थात् वातनाशक वर्ग है। (मभृति)
शब्द ग्रहणसे उडद, तिल, और आलसीअदिका ग्रहण है ॥

पित्तसंशमनोवर्ग

चन्दनकुचन्दनहीवेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारिश-
तावरीगुन्द्राशैवालकङ्काकुमुदोत्पलकदलीकन्दलीद्व-
र्वामूर्वाप्रमृतीनि काकोल्यादिन्यग्रोवादिस्तृणपञ्चसु-
लमिति समासेनपित्तसंशमनो वर्गः ।

अर्थ—चंदन, पतंग वा लालचंदन, नेत्रवाला, सस, मजोठ, क्षीरकांको-
ली, विदारीकंद, सतावर, सुगंधितृण, शिवार (काई) लालकमल, कमोद-
नी, नीलकमल, केला, कंदली [नवीन अंकुर] दुर्वा, मूर्वा, आदि काकोल्या-

दिगण, न्यग्रोधादिगण, तृणपंचमूल, ये संक्षेपसै पित्त संशमनवर्ग है आवि-
शब्दसै मधुर, कहुए, और कपेले पदार्थोंका ग्रहण है ॥

कफसंशमनवर्ग

कालेयकागुरुतिलपर्णीकुष्ठहरिद्राशीतशिवशतपुष्पा-
सरलारास्राप्रकीर्य्योदकीर्य्येङ्गुदीसुमनःकाकादनीला-
ङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीक-
न्टकपञ्चमूल्यौपिप्पल्यादिर्बृहत्यादि मुष्ककादिर्व-
चादिः सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसं-
शमनो वर्गः ॥

अर्थ—कालेयक (चंदनविशेष) अगर, हुलहुल, कूठ, हलदी, कपूर, सौंफ
निसोय, रास्रा, कटेरी, कंजा, इंगोट, चमेली, काकडोडी, कल्यारी, भूपला-
स, सुजातक, लामज्जक (स्वसकाभेद) इत्यादि तथा, वल्लीपंचक, कंटकपंचक,
दशमूल, पिपल्यादिगक, बृहत्यादिगण, मुष्ककादिगण, वचादिगण, सुरसादिग-
ण, और आरग्वधादिगण, येसंक्षेपसै कफ संशमनवर्ग है ॥

संशमनऔरसंशोधनद्रव्योंकीमात्रा

तत्र सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्रिपुरुषवलान्यभिसमी
क्ष्य विदध्यात् ।

अर्थ—तहां संपूर्ण संशोधन संशमन औषधोंको रोगीके रोगको अग्नि, और
उसके बल (शक्ति) को देखके अल्प मात्रा याबृहन् मात्रा देवे ॥

व्याधिमेंवलाधिक्यऔषधकेअवगुण

तत्रव्याधिवलादधिकमौषधमुपयुक्तंतमुपशमय्यव्या
धिं व्याधिमन्यमावहति । अग्रिवलादधिकमजोर्णं
विष्ठम्य वा पच्यते । पुरुषवलादधिकं ग्लानिमूर्च्छा
मदानावहति ।

अर्थ—तहां व्याधिके बलसै अधिक औषध देनेसै वह औषध उस रोगको
शमनकर दूसरी व्याधिको प्रगटकर । इसीप्रकार जठराग्निकी शक्तिसै अधिक

औषध देनेसे वह व्याधि देरमें पचे, अथवा विष्टब्ध होकर पचे । इसीप्रकार पुरु-
पके बलसे अधिक औषध देनेसे ग्लानि, मूर्च्छा, और मत्तावस्थाको करे है ॥

संशोषनकेदोष

संशमनमेवं संशोषनमतिपातयति ।

अर्थ—इसीप्रकार संशमन और इस्से अधिक संशोषन दोषोंको करे है अर्थात्
रोगीके बलको नष्ट करे है ॥

औषधकीहीनमात्रादेनेमेंदोष
हीनमेभ्यो दत्तमकिञ्चित्करं भवति ।

अर्थ—रोगके बलसे हीनमात्रा रोगीको देनेसे वो व्यर्थ जाती है उससे कुछ
कार्य नहीं होता ॥

सिद्धीहेतुउपाधियोंकोदिखातेहै
तस्मात् सममेव विदध्यात् ॥

अर्थ—तस्मात् कहिये वही न्यूनाधिक देनेसे रोगीको हित नहीं पढे इसीसे
रोगके अनुसार यथार्थ मात्रा वैद्यको देनी चाहिये ॥

(दुर्बलकोतीक्ष्णवमनविरेचनदेनानिषेध)

भवन्तिचात्र ।

रोगे शोषनसाध्ये तु यो भवेद्दोषदुर्बलः ।

तस्मै दद्याद्विषक् प्राज्ञो दोषप्रच्यावनं मृदु ॥

अर्थ—जो प्राणी शोषनसाध्य रोगमें दोषोंकरके दुर्बलहो (किंतु उपवासा-
दि करके दुर्बल न हो) उसको बुद्धिवानवैद्य दोषोंका निकालनेवाला नम्र वि-
रेचन देवे ॥

अवस्थाविशेषकरकेव्याधिदुर्बलकोभीशोषनकरे

चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं नृणां ।

अव्याधिदुर्बलस्यापि शोषनं हि तदा भवेत् ॥

अर्थ—दोषोंके अपने स्थानसे चलायमान होनेपर—तथा नम्रकोष्ठवालेका
(आम अवस्थामें) बलाबल न देखे, उपवासादिसे दुर्बल भी हो तयापि उसका
शोषन करना चाहिये ॥

(मध्यवलीतथामध्यअग्निवालेमनुष्यकोकितनी -)

मात्रादेयहकहंतेहै

व्याध्यादिषु तु मध्येषु काथस्याञ्जलिरिष्यते ।

विडालपदकं चूर्णं देयः कल्कोऽक्षसंमितः ॥

अर्थ—व्याधिआदिके मध्यवली होनेसे काथ और शृतशीत आदिकी मात्रा चारपलकी देवे, और चूर्ण १ तोलेदेवे, तथा कल्ककी मात्रा भी एक तोले मात्र कहिये

स्वयं प्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनं ।

भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्तं व्याधिनाशनं ॥

अर्थ—यदि दोषस्वयं निकलतेहो तथा मृदुकोष्ठ एवं हीनवली पुरुषको शोधन व्याधि नाशकहै ।

इति संशोधन संशमनीयाध्यायः समाप्तः

अथातो द्रव्यविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करतेहै ।

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदायाद्द्रव्याभिनिर्वृ-

तिरुत्कर्षस्त्वभिह्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्य-

मिदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति ।

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनके एकत्र होनेसे द्रव्योंकी उत्पत्ति वृद्धि और अभिव्यापकता (प्रसिद्धी) होतीहै । जैसे यह द्रव्य पार्थिव (पृथ्वी संबंधी) है, यह आप्य (जलसंबंधी) है, यह तैजस (अग्निसंबंधी है यह वायुसंबंधी और यह आकाश संबंधी द्रव्य है ॥

उत्कर्ष उपाधिभेदको दिखातेहै

तत्र स्थूलसारसान्द्रमन्दस्थिरस्वरगुरुकाठिनगन्धबहु-

लमीपत्कपायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवं तत् स्थै-

र्यं बलसंवातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति ।

अर्थ—तहां स्थूलसार (मोटापणा) सान्द्र (भराहुआ) मंद, स्थिर, स्वर (ठी

क्षण) गुरु (भारी) कठिन, अधिक गंभयुक्त, कुछकपेला, और प्राय मधुर, जो पदार्थ है उसको पार्थिव जानना अर्थात् यह पूर्वोक्त गुणयुक्त पदार्थको पृथ्वीसंबंधी जानना ॥

पार्थिवगुणवत्त्व कहकर उसीको क्रियावत्त्व कहते हैं कि—वह स्थिर (अचलता) बलसंघात (दृढबल) और उपचय (वृंहण) को करे है । विशेष करके इस पार्थिव द्रव्यका अधोगमनशील स्वभावहै अर्थात् यह नीचेको जाती है ॥

जलद्रव्यकीउत्कर्षउपाधि

शीतस्तिमितस्निग्धमन्दगुरुसरसान्द्रमृदुपिच्छिलर-
सबहुलमीषत्कपायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यं तत्
स्नेहनप्रल्हादनक्लेदनबन्धनविष्यन्दनकरमिति ॥

अर्थ—शीत, स्तिमित (आर्द्रता) स्निग्ध (चिकना) मंद, गुरु, सरस, सान्द्र, मृदु (नरम) पिच्छल (लहसदार) रसबहुल (बहुतरसवाला) ईषत्कपाय (कुछकपेला) सट्टा, निमकीन, और मधुर रसप्राय असा आप्य (जल) पदार्थ होताहै ॥

वह स्नेहन (चिकनाई करनेवाला) प्रल्हादन (सुखोत्पादन) क्लेदन (आर्द्रकरता) बंधन और विष्यन्दनकर (झरने वाला) इत्यादि गुणोंको यह आप्य द्रव्यकरे है ॥

तैजसद्रव्यकेगुणऔरस्वभाव

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदं रूपगुणबहुलमीष-
दम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्द्धगतिस्वभाव-
मितितैजसं तदहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभाव-
र्णकरमिति ॥

अर्थ—उष्ण, तीक्ष्ण (तीखा—चरपरा) सूक्ष्म (छिद्रोंमें प्रवेशकरता) रुक्ष (रूखा) खर (पैना) लघु (हलका) विशद (फैलनेवाला) रूपगुण बहुल (इसमेरूपगुण अधिक रहता) है, कुछ सट्टा, निमकीन, और कटुरसप्रायहै तथा इसका स्वभाव ऊर्द्ध गति (ऊपरकी जानेवाला) है ये तैजस पदार्थका स्वभाव है ॥

अब इसकी गुण कहते हैं कि ये दहन (दाह) पचन (पाचक) दारण (चीरना) तापन (संतापकारी) प्रकाशन (उज्जोलाकरने वाला) तथा प्रभा (तेज) और र वर्ण (गौरसपेद) इत्यादि गुणोंको करे है ॥

वायवीय द्रव्यके गुण स्वभाव

सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलमीपत्तिकं
विशेषतः कषायमिति वायवीयं तद्वैशद्यलाघवग्लप-
नविरूक्षणविचारणकरमिति ॥

अर्थ—सूक्ष्म, रुक्ष, खर, शिशिर (शीतल) लघु, विशद, स्पर्शबहुल (इसमें छूनेका गुण अधिकहै) कुछ कडुआ और विशेषकरके कपेला इत्यादिगुणवान् वायवीय अर्थात् वायु संबंधी द्रव्य होता है ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि यह वैशद्य (फैलना) लाघव (हलकापना) ग्लपन (वृष्यताके विरुद्ध) विरूक्षण (रुक्षता कारक) और विचारणकर(मनमें अनेक विचार करता) इत्यादि पवन द्रव्यके गुण जानने ॥

आकाशीय द्रव्यके गुण स्वभाव

श्लक्ष्णसूक्ष्ममृदुव्यवायिविविक्तमव्यक्तरसं । शब्दबहु-
लमाकाशीयं तन्मार्दवशौपिर्यलाघवकरमिति ॥

अर्थ—श्लक्ष्ण (गिलगिला) सूक्ष्म, मृदु, व्यवायी (प्रथम सब देहमें व्याप्त होकर पकने वाला) विविक्त (पृथक् हुआ अर्थात् अवयव द्वारा करके शून्य) अव्यक्तरस (जिसमें मधुरादि रसकी प्रतीति नहो) तथा शब्दबहुल (इसमें शब्दका गुण अधिकहै) कुछ कडुआ, और विशेष करके कपेला इत्यादि गुण विशिष्ट आकाशीय अर्थात् आकाश संबंधी द्रव्य जानना ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि यह मार्दव (मृदुता) शौपिर्य (छिद्रभाव वाला) और हलका करनेवाला आकाश संबंधी द्रव्य जानना ॥

सव औषधोंको पांचभौतिकत्व

अनेन निदर्शनेन नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्य-
मस्तीति कृत्वा तं तं युक्तिविशेषमर्थं वाभिसमीक्ष्य
स्ववीर्य्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कर्मकराणि भवन्ति ।

अर्थ—इस पूर्वोक्त पांचभौतिक द्रव्योंके कहनेसें यह दिखाया कि इस स्थान पर जंगमात्मक जगत्में कोईसी द्रव्य अनौषधीभूत (जो औषध न कहलाती हो) नहीं है [अर्थात् जितनी संसारमें वस्तुहै वो सब औषध रूपी है] इन्हींसें

उनकी पृथक् २ युक्ति विशेष और अर्थ विशेषको विचार स्ववीर्य गुणयुक्त द्रव्य देनेसे वो कर्मके करनेवाली होती है ॥

तानि यदा कुर्वन्ति स कालः यत्कुर्वन्ति तत् कर्म, ये-
न कुर्वन्ति तद्वीर्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, यथा-
कुर्वन्ति स उपायो, यन्निष्पादयति तत् फलमिति ॥३॥

अर्थ—वो द्रव्य जिस कालमें क्रियाकरे है वो काल जानना, और जो कार्-
य करे वो कर्म है, तथा जिस करके करे वो वीर्य है, जिसमें करे वो अधिकर-
ण है, जैसे करे वो उपाय है, एवं उस क्रियाद्वारा जो रोग अथवा आरोग्य प्रगट
होवे उसको फल कहते है ॥

औषध ज्ञानमें अनुमानकी योजना

तत्र विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि पृथि-
व्यापो गुर्व्यो गुरुत्वादधोगच्छन्ति तस्माद्विरेचन-
मधोगुणभूयिष्ठमनुमानात् ।

अर्थ—तहां विरेचन द्रव्य (निसोय, जमालगोटा आदि) पृथ्वी और अं-
गुण भूयिष्ठ है, तो अब जानना चाहिये कि पृथ्वी और जल यह दोनो भारी है
भारीहोनेमें दोनों नीचेको जाते है, अतएव जितनी विरेचन द्रव्य है अर्थात् जु-
लाब लानेवाली औषधी है सो अधोगुण भूयिष्ठ कहिये अधिक करके नीचेको
जानेवाली है । यह अनुमान (अटकल) से जाना जाता है । [उदाहरण
जैसे—पत्थर ईंट, जल, तेल आदि जानने] ॥

१ युक्ति विशेष करके जल, अग्नि, सस्कार, भावना, मात्रा, और काल आदिकी
योजना विशेष जानना । २ अर्थ करके अनेक व्याधि नाशरूप प्रयोजनका ग्रहण
है । ३ काल करके शीतोष्णवर्षालक्षण सवत्सरात्मक रोगिके अनुकूल्यता ग्रहणहै ।
४ कर्मशब्दसे शोधनादि द्रव्योंका व्यापार जानना । ५ शक्तिहै । ६ अधि-
करणशब्दसे पचमहाभूतोंके बने हुए इस मनुष्यदेहका ग्रहणहै । ७ उपाय इस शब्दमें
स्वरास, कल्क, शृतशीत, फाट, घृत, तैल, लेह, मोदकादि प्रकार जानना । ८ इस
जगे भारी और हल्कापना निशोयआदि और भैरवफल आदि द्रव्य प्रभावविशेष
करके मिश्रित लेना केवल गुरु लघुत्व मात्रही करके नहीं लेना क्योंकि यदि गुरु
लघुत्व मात्रसेही दस्त के होती है ऐसा मानोगे तो मछली, पिमा आठामे और ममर
आदि भारी हैं इनके खानेसे दस्त होने चाहिये ।

वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठान्यग्निवायू हि लघू
लघुत्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति तस्माद्दमनमप्यूर्ध्वगु-
णभूयिष्ठं मुक्तं ।

अर्थ—इसीप्रकार संपूर्ण वमनद्रव्य (कैलानीवाली औपधी) अग्नि और पवन गुण भूयिष्ठ है तो अब विचारना चाहिये कि अग्नि और वायु ये दोनों हलके हैं हलके होनेसे यह दोनों ऊपरको जाते हैं इसी कारण वमनद्रव्य ऊर्ध्वगुण भूयिष्ठ ऐसा कहा है अर्थात् अनुमानसे जाना जाता है [उदाहरण जैसे-धूआ और अग्निकीज्वाला आदि जानने] ॥

उभयगुणभूयिष्ठमुभयतोभागं ।

अर्थ—इसी प्रकार उभय गुणभूयिष्ठ द्रव्य अर्थात् जिसमें पृथ्वी और अग्नि इसप्रकारदो तत्वोंके गुण मिले हो तो अब विचारना चाहिये कि पृथ्वी भारी है और अग्नि हलकी है तो ऐसी उभय गुणवाली औपधी दोनों तरफ गमन करती है अर्थात् दस्त और रद्द दोनों कराती है ऐसा अनुमानसे जाना जाता है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनं । संग्राहकमनिलगुणभू-
यिष्ठमनिलस्यशोपणात्मकत्वात् । दीपनमग्निगुणभू-
यिष्ठं । लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठं । वृंहणं पृथिव्य-
मृद्यगुणभूयिष्ठं । एवमौषधकर्माण्यनुमानात् साधयेत् ॥

अर्थ—आकाशगुण भूयिष्ठ द्रव्य संशमन है [जैसे आकाश निश्चल और सर्वत्र व्यापक है उसीप्रकार संशमन औपधी है] जिसमें पवन गुण भूयिष्ठ है वो द्रव्य संग्राहक (शोपक) है, [जैसे पवन शोपण करती है इसी प्रकार संग्राही द्रव्य (आर्द्रता) शोपण करे है] अग्नि दीपन गुणवाला होनेसे अग्नि गुणभूयिष्ठ द्रव्यभी दीपन जानना । तथा पवन और अग्निगुण भूयिष्ठ द्रव्य लेखन अर्थात् (कफ भेदाको पतला करनेवाला जानना । पृथ्वी और जलगुण भूयिष्ठ द्रव्य वृंहण (पुष्टकारी) जाननी । इसीप्रकार औषधोंके कर्मोंको अनुमानद्वारा वैद्य साधनकरे ॥

१ तथा सपेद तीतर और लवा षसियोंकामांस हलका है तो इससे भी रद्द होनीचाहिये । परंतु ऐसा नहीं होता तो इसमें यही सिद्धहूआ कि प्रभाव विशिष्ट भारी हलकी औषधोंमें दमन और रद्द होती हैं ।

भवन्ति चात्र ।

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः ।

भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिं ॥

खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणां ।

अर्थ—तहां पृथ्वी, तेज, और जल गुण भूयिष्ठ द्रव्यसँ वादी शमन होती है। पृथ्वी-जल और वायुगुणभूयिष्ठ द्रव्यसँ पित्त तत्काल शांति होता है। एवं आकाश, अग्नि, और पवनगुण बहुलद्रव्यसँ मनुष्योंका कफ शांति होता है ॥

वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥

आग्नेयमेव यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते ।

वसुधाजलजाताभ्यां वलासः परिवर्द्धते ॥

एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितं ।

द्विशो वा बहुशो वापि ज्ञात्वा दोषेष्वचारयेत् ॥

अर्थ—तथा आकाश पवन जन्य औषधोंसँ वादी वाढती है, अग्नि गुण संबन्धी द्रव्य सँ पित्त बढता है, और पृथ्वीजल जन्य औषधोंसँ कफकी वृद्धि होती है। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्यमें गुणाधिक्य जानना, उन दो दो गुणोंसँ-तथा तीनर गुणोंसँ उत्पन्न द्रव्योंको दो दो दोषोंमें अधवा बहुतसे दोषोंमें विचार करके देवे

तत्र यद्मे गुणा वीर्य्यं संज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृ-

दुतीक्ष्णपिच्छलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ ।

शीतापिच्छलावम्बुगुणभूयिष्ठौ । पृथिव्यम्बुगुणभूयि-

ष्ठःस्नेहः । तोयाकाशगुणभूयिष्ठं मृदुत्वं । वायुगुणभूयिष्ठं

रौक्ष्यं । क्षितिसमीरणगुणभूयिष्ठं वैशद्यं ।

अर्थ—तहां शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छल, विशद, ये जो बीर्यसंज्ञक गुण है इनमें तीक्ष्ण और उष्ण ये अग्निसंबन्धी गुण है। शीत और पिच्छल अंबुगुण भूयिष्ठ है अर्थात् जल संबन्धी है। पृथ्वी और अंबुगुण भूयिष्ठ स्नेहगुण है। जल और आकाश गुणभूयिष्ठ मृदुगुण है। रूक्षगुण पवन भूयिष्ठ है पृथ्वी और पवन गुण भूयिष्ठ विशद गुण है ॥

गुरुलघुविपाकावृक्तगुणौ । तत्रोष्णस्निग्धौ वातघ्नौ ।

शीतमृदुपिच्छलाः पित्तघ्नाः । तीक्ष्णरूक्षविशदाः

श्लेष्मघ्नः । गुरुपाको वातपित्तघ्नः । लघुपाकः श्ले-
ष्मघ्नः । तेषां मृदुशीतोष्णाः स्पर्शग्राह्याः । पिच्छ-
लविशदौ चक्षुस्पर्शाभ्यां । स्निग्धरूक्षौ चाक्षुषौ ।
शीतोष्णौ सुखदुःखोत्पादनेन । गुरुपाकः सृष्टविण्-
मूत्रंतयां कफोत्क्लेशेन च । लघुर्वद्विण्मूत्रतयां मारु-
तोकोपेन च । तत्र तुल्यगुणेषु भूतेषु रसविशेषमुप-
लक्षयेत् । तद्यथा । मधुरो गुरुश्च पार्थिवः मधुरः स्नि-
ग्धश्चाप्य इति । (भवति चात्र ।)

अर्थ—लघु ओर गुरु विपाक दोनोंके गुण प्रथम कह आए है । उष्ण और स्निग्ध वीर्यसंज्ञक गुण वातको शमन करते है । शीत मृदु और पिच्छल वीर्यसंज्ञक गुण पित्तको । तीक्ष्ण रूक्ष और विशद वीर्यसंज्ञक गुण कफको शमन करते है । गुरुपाक वातघ्न है । लघुपाक कफघ्न है । इनमें मृदु शीत और उष्णगुण स्पर्शनेन्द्री अर्थात् त्वचाकरके ग्राह्य है । पिच्छल (गिल गिला) और विशद दोनों चक्षुइन्द्री तथा स्पर्शनेन्द्री करके ग्राह्य है । स्निग्ध रूक्ष नेत्र करके शीत और उष्ण सुखदुःखके उत्पादन से ग्राह्य है अर्थात् प्रतीत होते है ॥

तहां मले मूत्रके निकलनेसें और कफके उत्क्लेशकरके गुरुपाकहुआ जानना, तथा मलमूत्रके न उतरनेसें और वायुके कुपित होनेसे लघुपाक हुआ जानना तथा तुल्यगुण पृथिव्यादि भूतोंमें रसविशेषको जाने । जैसे मधुर और गुरये पृथ्वीके है और मधुर स्निग्ध ये जलके है ॥

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा ।

स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ ४।५।६

अर्थ—जो बीस गुण द्रव्य (औषधादिक) में कहे है वो इस देहमेंभी है अतएव है, वोस्थान (दोष, धातु, मलकी साम्यता) वृद्धि (दोषादिकोंकी अधिकता) और हास (दोषादिकोंके घटने करके) पांचभौतिक द्रव्यके हेतु होते है । अर्थात् जैसे २ दोषधातु मलादिक इस प्राणीकी देहमें घटते बढ़ते है तैमें २ पृथ्वीजल, तेज, वायु और आकाश जन्य द्रव्योंको इस देहमें घटाने बढ़ाने है यह अध्याय सप्त वैद्योंका विचारने योग्य है ॥ इति श्री माधुर कृष्णलालतयन इत्त राम सकलिते आयुर्वेदोदारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे द्रव्यविशेष विज्ञानाया ध्याय. स०

अथातो हिताहितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम हिताहितीय अध्यायकी व्याख्या करते हैं । अर्थात् इसभाषीको ये वस्तु हित (पथ्य) है, और ये वस्तु अहित (अपथ्य) है, इन दोनोंका इस अध्यायमें वर्णन किया जावेगा ॥

प्रथमऔरौकेमतकोकहतेहै

यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद्द्रव्यमेकान्तेन हितमहितं वास्तीति केचि-

दाचार्या भ्रुवतेतत्तु न सम्यक् ।

अर्थ—जो वस्तु वादीके रोगमें पथ्य है वह पित्तके रोगमें अपथ्य है [कारण यह है कि वादीको वही वस्तु दूरकरेगी जो गरम होवेगी, और जो गरम है वह अवश्य पित्तके रोगमें अपथ्य होवेगी जैसे तेल और कांजी है] इस हेतुसे कोईसी द्रव्य निरंतर हितकारी नहीं होसके क्योंकि पित्तको अहितकारी है और न निरंतर अहितकारीहो सक्ती है कि वातको हितकरे है ।-ऐसैं कोई आचार्य कहतेहै परंतु उनका यह कहना ठीक नहीं है क्योनहीं है इसवास्ते कहतेहै।

अपनामतकहतेहै

इह खलु यस्माद्द्रव्याणि स्वभावतः संयोगतश्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति ।

अर्थ—इस सौश्रुत ग्रथमें द्रव्य, स्वभाव (प्रकृति) से और संयोगसे निरंतर

हे वृहन्नघंडुरत्नाकरके ग्राहक मित्र गणहो ! इस हिताहितीयाध्यायके नीचे हम चरकसे यज्जः पुरपी याध्यायका केवल भाषातर मात्र करके आपकी सेवामें निवेदन करते है यदि आप प्रसन्न होकर इसको स्वीकारकरेंगे तो हम अपने परिश्रमको सफल मानेंगे ॥

श्रीहारि—पहिले प्रत्यक्ष धर्मस्वरूप भगवान् पुनर्वसु आत्रेय की महर्षियोंके साथ यह वार्त्ता चलीकि आत्मा, इन्द्री, मन, और इनकेअर्थ इनका समूह यह पुरुषसंज्ञक है इस पुरुषका और पुरुषके देहमें जो रोग उत्पन्न होते है उनकेप्रथमहीं रीगोत्पत्तिका निश्चय किस प्रकारहो । तब उसस्तभामें काशीपति जिसको वामकभी कहते है वो सब ऋषियोंको प्रणामकर अपनी संमती इसप्रकार कहने

१ जोसपूर्ण अवस्थाओंमें छूटे नहीं वो द्रव्यको प्रकृतो है । जैसे अग्निमें उष्णत्व, औ-अलमें द्रवत्व, तो यहा उष्णत्व और द्रवत्व येही अग्नि और जलद्रव्यकी प्रकृति जाननी ।

लगा कि हितकारी और निरंतर अहितकारी एवं निरंतर हिताहित कर्ता होती हैं। इस जगह चकार जो पडा है इससे संयोगमें स्वभावभी हेतु जानना तथा देश, काल, मात्रा, संस्कार ये सब स्वभावके संबंधसे जानने ॥

प्रथमएकांतहितोकोकहतेहै
तत्रै कान्तहितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धौ
दनप्रभृतीनि ।

यह पुरुष जिन कारणोंसे होता है वही कारण जन्य इसके देहमें व्याधिहोती है यह बात जो मैंने कही है हेऋषिहो ! यह ठीक है या नहीं ? तब उस सभाके मध्यमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय महर्षि सब ऋषियोंके प्रति बोले कि हेऋषिहो ! तुम सब अचित्त ज्ञान विज्ञान करके संशय रहितहो आपही इन महात्मा काशीराजके संशयको दूरकरो । यह वचन सुन मौद्गल्य ऋषि बोले कि ॥

यह पुरुष आत्मासे उत्पन्न होता है अत एव इसके जो रोगहोते है वो भी सब आत्मजन्य है अर्थात् आत्मासे प्रगट होते है । यह पुरुष कर्मोंको संचय करता है अतएव उन कर्मोंके फलको भोगता है, ये जितने आत्माजन्य सुखदुःखहै वो सुखदुःख चैतन्यरूपको नहीं है यह मौद्गल्यके वचन सुन शरलोमा ऋषि बोलाकि ॥

यह आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मासे आत्मा नहीं हो, न यह पुरुष आपको दुखदाई कर्मोंका संग्रह करता है । इसका यह कारण है कि दुःखोंसे द्वेषकर्ता प्राणी अपनी आत्मको दुखदाई व्याधियोंमें कदाचित् नियुक्त नहीं करनेका । कदाचित् सब ऋषि प्रणयकरे कि फिर यह पुरुष कैसे होता है

तहां शरलोमा अपने मतको कहे है कि यह सत्व संज्ञक मन रजोगुण तमोगुणसे मिलाहुआ इस मनुष्य देहका और इस मनुष्यदेहमें होनेवाले रोगोंका कारण है यह शरलोमाके वचन सुन वाणीविद ऋषि बोलेकि ॥

यह आपका कहना ठीक नहीं है ? क्योंकि एक मनही इनका कारण नहीं होसक्ता देहके अंतमें न शरीररहे न शरीरके रोगरहे न मन रहता है इससे मेरी समझमें यह आता है कि संपूर्ण प्राणी राजसी अर्थात् रजोगुणसे प्रगटहै । और संपूर्ण व्याधिभी राजसी है । यह शरलोमाके वचन सुनके हिरण्याक्ष ऋषि बोलेकि

यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा राजसी नहीं है और इन्द्रीरहित मनभी नहीं है और न शब्दादि जन्यरोगहै । इसी मेरी समझमें यह आता है कि यह पुरुष छःधातुओंमें प्रगटहै, और रोगभी पद्धातु जन्यहै । अतएव यह छःधातु

अर्थ—तहां हिताहित द्रव्योंमें मनुष्य मात्रक जातिसात्म्य होनेके कारण जल, शृत, दूध, मात, और आदिशब्दसैं गैहं जो आदिनिरंतर सबको हितकारी है ॥

एकान्तअहित

एकान्ताहितानि दहनपचनमारणादिषुप्रवृत्तान्यग्नि-
क्षारविषादीनि । संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवन्ति ।

अर्थ—तथा दहन (जराना) पचन (पचाना) और मारणादिकोंमें प्रवृत्त ऐसे अग्नि, क्षार, विषादिक ये सब प्राणिमात्रके जाति असात्म्य होनेसैं निरंतर अहितकारी है । परंतु यह कथन नैरोग्य पुरुषोंके प्रति है, रोगीको तो रोगमात्राकी अपेक्षा करके अग्नि क्षारादि हितकारी ही होते है । और बहुतसी द्रव्य द्रव्यांतरोंके संयोग वससैं विषके तुल्य होजाती है ॥

ओंका समूहहै । इस वचनको मुन सांख्यायन आद्यपरीक्षित और कुशिकऋषि बोलेकि हमारी समझमेंभी ऐसाही आता है । इसप्रकार कुशिकऋषिके वाक्यको मुन शौनकऋषि बोलेकि ॥

यदि आप इसपुरुषको पृथ्वातुसैं उत्पन्नहुआ बतातेहो तो में आपसैं पूछताहूं कि बिना माता पिताके कैसे यह पुरुष पृथ्वातुज प्रगट होसक्ताहै । इस्सैं मेरी समझमें ऐसा आताहै किपुरुपसैं पुरुषहोताहै। गौसैं गौ।घोडेसैं घोडा उत्पन्नहोता है। और जितने प्रमेहादिक रोग है वो पितृजन्य अर्थात् पितासैं ही होते है यह सौनक ऋषिके कहनेको सुनकर भद्रकाप्य नामक ऋषि बोला यह ठीक नहीं है ॥

क्योंकि अंधेमनुष्यसैं अंधा वालक नहीं होता पहले मातापिताहीकी उत्पत्ति नहींथी फिर वालक कहासैं हुआ, इस्सैं मेरी समझमें ऐसा आता है कि यह प्राणी कर्मज हैं अर्थात् कर्मसैं प्रगट होता है और जितने रोग इस प्राणीके होनेवाले है वह सब कर्मज हैं । क्योंकि कर्मके बिना न पुरुषका जन्म और नरोगोंका जन्म है । इस प्रकार भद्रकाप्यके वाक्यको मुन भरद्वाजबोलेकि यह ठीकनहीं क्योंकि उस कर्मकाभी रचनेवाला उसके प्रथमथा ऐसा देखागया है जि सकर्मका फल पुरुष है ऐसा अकृतकर्म नहीं देखा गया अतएव हमारी समझमें ऐसा आता है कि इस प्राणीके और रोगोंके उत्पन्नहोनेमें स्वभावही हेतु है । जैसे द्रव्योंमें खर, द्रव, चल, उष्ण, तेज, इनमें स्वभावही कारण है उसीप्रकार इस पुरुष और रोगोंके होनेमेंभी स्वभाव कारण है ॥

१ जो वस्तु आत्मा और देहके साथ रहकर देहमें विकार न करे उसको सात्म्य कहते है ।

एकांतहिताहित

हिताऽहितानितु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्य
मित्यतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्ग उपदिश्यते ॥

अर्थ—और बहुतसी द्रव्य हितकारी तथा अहितकारी दोनों प्रकारकी है जैसे जो द्रव्य वादीको पथ्य है वह पित्तको अपथ्य है इसप्रकार सकल द्रव्य हिताहित कर कहाती है, अब सब प्राणियोंके आहारके वास्ते एकांतहितवर्ग एकांत अहितवर्ग और एकांत हिताहितीय वर्गोंको कहते हैं ॥

इस वचनको सुन कांकायनऋषि बोला यह भी ठीक नहीं है—क्योंकि यदि स्वभावही पुरुष और व्याधिका कारण है तो उम स्वभावका फल प्रारंभमेंही क्यों नहीं होता, भावों के होने न होनेकी सिद्धी अथवा असिद्धी स्वभावसँ होती है यदि स्वभावसँ ही पुरुष होता है तो उस ब्रह्माको रचनेवाला और प्रजापति कहते हैं वो व्यर्थ है, और संतानहोनेके निमित्त जो प्रजाहितैपी दुःख उठाते हैं वो भी नहोना चाहिये क्योंकि वह तो स्वभावसँही होती है ? फिर दुःख क्यों उठाना इसवास्ते मेरी बुद्धिमें यह आता है कि यह पुरुष कालज्ञ अर्थात् कालसँ उत्पन्न है और इसके होनेवाले रोगभी कालजन्य है और यह संपूर्ण जगत कालके वश है । इसवास्ते सर्वत्र कालही कारण है ॥

इस प्रकार ऋषियोंके आपसमें विवाद (झगडा) करनेमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय बोलेकि भाईहो ऐसा विवादमतकरो, क्योंकि जहां पक्षपात है वहां पर तत्व निश्चय अर्थात् किसी बातका निर्णयद्वारा सिद्धांत करना दुष्प्राप्य है । वाद और प्रतिवादोंको कहते हैं २ उस पक्षकी समाप्तिको नहीं पहुंचे, जैसे तेलकी घानीका घैल चलते २ समाप्तिको नहीं पहुंचे [तात्पर्य यह हैकि जैसे घानीका घैल बराबर उस घानीके और पास डोलाही कर्त्ता है, उसीप्रकार पक्षपाती दो विवाद करनेवालोंका झगडा नहीं समाप्ति होवे इसवास्ते आत्रेय महर्षि कहते हैं कि इस विवादको त्यागके अध्यात्म (सिद्धांत) का चिंतन करो ॥

जैसे अंधकारमें एक खंभसडाहुआ है उसको जाननेवाले जत्र तक नहीं जानेगे कि यावत् वह अंधकार दूर नाहिंहो । जिन भावोंकी संपत्त्य इस प्राणीको उत्पन्न करेहे वोही उन प्राणियोंकी अनेक प्रकारकी व्याधियों को उत्पन्न करे हे ।

इसप्रकारका आत्रेय ऋषिके वचन सुन काशीपति वामक फिर आत्रेयसँ बोलाकि हेमभो ! संपन्नमित्तजन्य प्राणिके संपन्नमित्तजन्य रोगके बढनेमें क्याकारण है ॥

तद्यथा-रक्तशालिषाष्टिककङ्कुममुकुन्दकपाण्डुकपी-
तकप्रमोदककालकाशनकपृष्पककर्मकशकुनाहृत-
सुगन्धककलमनिवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवे-
णुयवाद्यः ।

अर्थ—लालचावल, सांठीचावल, कंगू (कांगुनी) मुकुन्दक (काटेरंगकेसाठी-
चावल) पाण्डुक (पीले रंगके चावल) पीतक-प्रमोदक-कालक-अशनक-पु-
प्यक-कर्मक-शकुनाहृत-सुगन्धक-(देवशालि) कलमक-(कल्मी) इत्यादिचा-
वलोंको जाति-गेहू तथा-वेणुयव (वांसके चावल) इत्यादिधान्य ॥

तब आत्रेय महर्षि बोलेकि अहित आहार अर्थात् कुपथ्य भोजन करना व्या-
धि होनेका कारण है इस प्रकार कह रहे जो आत्रेय उनसें अग्निवेश ऋषि
बोलाकि हेभगवन् ! हित और अहित आहारका लक्षण बादरहित हम किसम-
कार जाने तथा हम देखतेहेकि मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष, पुरुषकी
अवस्थांतर और, इनमें युक्तभी आहार अपने विपरीत गुणकरता है इस्ते आप
कहियेकी इनमें क्या कारण है ॥

हिताहित आहारके लक्षण

तब आत्रेयमहर्षि बोले कि प्रथममें तुमसें हितआहारके लक्षण कहताहू सो मुनो
हे अग्निवेश ! जो आहार शरीरकी समान धातुओंको प्रकृतिमें स्थापनकरे
अर्थात् घटने वढने न देवे, और जो धातु विषय होरहीहो उनको समानकरे
उसको हित आहार जानना । यह सब प्राणियोंके सेवन करनेयोग्य है, और इस
कहेहुए लक्षणसे विपरीतहो वह आहार अहित है, उसको मनुष्य त्यागदेवे ॥

इस प्रकार हिताहित कहने वाले भगवान् आत्रेयसें अग्निवेश बोला कि हेभ-
गवन् ! यहजो आपने हिताहित कहा इसको क्या वैद्य जान जावैगे ? तब आत्रेय
बोले कि हेपुत्र ! जिनको गुणोंसें, द्रव्य सें, कर्मसें, संपूर्णअवयवोंसें, मात्रासें
और भावसें आहारतत्वका ज्ञानहै वोही वैद्य जानसक्ते है अन्यनहीं परंतु जैसें
सब वैद्य जाने उसको में कहताहूं ॥

मात्रादि भावोंके कहनेसें उनके अनेक भेद होते हे इसवास्ते आहार विधि
विशेषोंको लक्षण सें ओर अवयवो कर्के व्याख्यान करें है ॥

एकप्रकारका आहार अर्थभेदसें वह स्याधिर जंगमात्मक द्वियाँनेके कारण
दोप्रकारका तथा द्विविध प्रभाव अर्थात् एक हितकारीदूसरी अहितकारी होकर

एणहरिण-कुरङ्गमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालक्रकरकपोत- लावतिक्तिरिक्पिञ्जलवर्तीरिवर्तिकादीनांमांसानि ।

कालामृग-लालवर्णकामृग-कुरंग (काले हरिणके बराबर कुछ २ लालरंग-
का) मृगमात्रिका (कुरंगकी स्त्री) स्वदंष्ट्रा (अतिदुष्टककटका) कराल (कस्तू-
रीमृग) क्रकर (क्रकसपक्षी) कपोत (पिंडुकिया) लवा, कालातीतर-सपेदती
तर-वटेर-वर्तिका (वटेरका भेद घर्घर) इनमवका मांस ॥

उसको चारप्रकारसँ उपयोग करते हे जैसेँ भक्ष (बूरा, खांड, चूर्णआदि) भांज्य
(लड्डू पेडा आदि) लेह्य (अवलेह, लहापसी, चटनीआदि) और चोष्य (जो
चूसने योग्य पदार्थ हे जैसेँ ईखकी गढेरी और आम इत्यादि ॥

उस आहारमें रसोंके भेदसँ छःप्रकारका (भीठा, खट्टा, चरपरा, निमकीन, कडु-
आ, और कसेला) स्वाद हे । और बीस गुण हैं जैसेँ गुरु, लघु, शीत, उष्ण, त्रिगुण
रूक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, रस, मृदु, कठिण, विपद, पिच्छल, श्लक्ष्ण, खर, सू-
क्ष्म, स्थूल, सांद्र, द्रव, इनके आपसमें संयोगहोनेसँ असंख्यात भेद होजाते हे ॥

द्रव्य संयोग करणकी अधिकतासँ उस आहारके जो जो विकारके अवयव
अत्यंत प्रगटहोते हे । वह मनुष्योंकी प्रकृतिसँ हिततम और अहिततम अधिक
कल्पना होती हे उन्ही २ कल्पनाओंको हम व्याख्यान करते हे ॥

तहां लालचावल शूकधान्योंमें पथ्यतम और उच्चमहे, इसीप्रकार-फलीके धान्योंमें
मूंग उत्तम, निमकोमें मैधानिमक, शाकोमें (तरकारियोंमें) डोडीका साग उत्त-
महे, हिरनके मांसोंमें कालेहिरनका मांस, पक्षि (परंदों) में लवा, विलेमें रह-
ने वाले जीवोंमें गोह, मछलियोंमें रोहू मउली, घीयोंमें गौका घी, दूधोंमें गौ-
का दूध, स्थावर अर्थात् वृक्षादिजातिके तेलोंमें तिलकातेल, चर्बियोंमें सूअरकी
चर्बी, रूपमृग चर्बियोंमें भेह (जो कांटेवाला जानवर होताहे उसकी) चर्बी,
मछलियोंकी चर्बीमें जो पाकहंस नाम मछली होती हे उसकी वसा, जलमें र-
हनेवाले पक्षियोंमें जलमुर्गावीकीचर्बी, पसेरुओमें विष्कर (जो खानेकी ची-
जको विसैरके खाने वाले असे)मुरगा, कबूतर, पिंडुकिया, और चिडाआदि उ-
त्तमहे, चारपैरोंके जीवोंमें बकरी-डुंवा आदि पथ्यहे । कंदोंमें अदरस पथ्य हे ।
फलोंमें मुनकादास पथ्यहे । ईसके विकारोंमें मिश्री वा चीनी उत्तम हे ॥

ये आहारकी अर्थात् खानेयोग्य वस्तु सब मनुष्यकी प्रकृतिसँही हितहे (ये
पदार्थ सबकोखाने चाहिये) ये हित अहार समूह मेने संक्षेपमें कहाहे ॥

अपथ्यगण

अब अहित पदार्थोंको कहते हे । शूकधान्योंमें लौं काश्वदंष्ट्रा मलीखाने अनाजों-

मुद्गवनमुद्गमकुष्ठकलायमसूरमङ्गल्यचणकहरेण्वाढकी
सतीलाः । चिल्लिवास्तुक-सुनिपण्णकजीवन्तीतण्डु
लीयकमण्डूः, पण्यः ।

अर्थ-वनकीमूंग-मूंग-मौठ-मटर-मसूर-पीलेरंगकी मसूर-चना-गोलमटर-
अरहर-और केराव इतने फलीवाले धान्य ॥

स्वेतकावधुआ-वनका वधुआ-चौ पतिवा-डोडी-चौलाई-और ब्राह्मी ये सागोंमें

में उहद अपथ्य है, नदियोंमें वारिषका जल कुपथ्य है । निमकोभेऊपर जमीनमें
जो निमक होता है वह कुपथ्य है । सागोंमें सरसोंका साग कुपथ्य है । चरपाएन्
में गौका मांस कुपथ्य है [इसी कारण हमारे हिन्दुओंमें गोमांस खाना निषेध है]
अब मांसखाने वालोंसे हम प्रार्थना करते हैं कि जब यह गोमांस खानेको निषे
ध करताहै तो हेगोमांसभक्षीहो तुम क्यों हठसे अवगुणकारी पदार्थको खाकर अप-
नी आत्मा और अस्पदादि हिंदुओंके दुश्मन होते हो] पक्षि (परंदों) में कौआका
मांस कुपथ्य है । विलेमें रहने वालोंमें भेडका कुपथ्य है । मछलियोंमें चिलचिम म-
छली कुपथ्य है । घृतोमें भेडका घी कुपथ्य है । दूधोमेंभी भेडका दूध कुपथ्य है ।
तेलोंमें स्थावर तैल (अर्थात् वृक्षसंबंधी तेलोंमें) कसूम (करड) का तेल
कुपथ्य है । जलसमीप रहनेवाले जानवरोंमें भैसकी चर्बी कुपथ्य है । मछलीकी
बसामें कुंभीर नामक मछलीकी बसा कुपथ्य है । जलमें रहनेवाले जीवोंमें जल
कौआ कुपथ्य है । कंदोंमें मूली कुपथ्य है । पक्षियोंकी बसामें विष्कर पक्षियोंकी
बसा कुपथ्य है । जो वृक्षोंकी शाखा (गुदे) खाने वाले हैं उनमें हाथीकी ब-
सा कुपथ्य है । फलोंमें लकुच (कटहर) फल कुपथ्य है । इसके विकारोंमें उस
ईसकी राव कुपथ्य है । ये आहार की वस्तुओंमें ये सब प्रकृतिसै ही कुपथ्यतम
हैं इनमें जो मुख्य २ द्रव्य है सो हमने कहीं ॥

अब हिताहित अवयव रूप आहार विहारको फिर दूसरे प्राधान्यतासे और
अनुबंध सहित द्रव्योंका व्याख्यान करते हैं ॥

कि अब देहरक्षा करनेवाले में श्रेष्ठ है । जल, प्राणरक्षकोंमें श्रेष्ठ है मद्य, श्रम
हरनेवालोंमें श्रेष्ठ है । जीवनदाताओंमें, दूध श्रेष्ठ है । पुष्ट करनेवालोंमें, मांस श्रेष्ठ है ।

☞ गोमांसभक्षणनिषेधकाकारण मुख्ययही है फिर भी जिहासवाद लंपट सर्व
नाशी विवर्भा क्यामानेगे ' प्राणनाथपरवचननजाऊ ' । यह वचन इनही दुराग्रही पाम-
रोंमें चरितार्थ होताहै नही तो इस अभक्षको क्योंभक्षणकरै सम्म्यता इसीसे प्रगटहोती है
वन्यरे कलियुगके अंडबंड सालेसम्भयो ?? ।

गव्यं घृतं क्षौद्रसैन्धवदाडिमामलकमित्येष वर्गः सर्व-
प्राणिनां सामान्यतः पथ्यतमः । तथा ब्रह्मचर्य्यानि-
वाताशयनोष्णोदकनिशास्वप्रव्यायामाश्वैकान्ततः
पथ्यतमाः ।

अर्थ—घृतोमें गौकाशी, सहत, निमकोमें सैधानिमक, विलायतीअनार
अथवा अनार दाना, और फलोंमें आमले, इत्यादि कहेहुएवर्ग सब प्राणीमात्रों को
सर्वथा हितहै

तथा ब्रह्मचर्य (स्त्रीसेवनसँ वचना) निवात स्थानमें शयन करना, गरमज-
लसँस्नान, रात्रिमेंसोना, और दंड कसरत करना, ये एकान्त हित है अर्थात् एक-
२ ही हित है ॥

भोजनद्रव्य रुचि करानेवालोंमें निमक श्रेष्ठहै । हृदय प्रियोंमेंस्वर्दई श्रेष्ठहै ।
घलकारियोंमें मुरगेका मांस श्रेष्ठहै । वीर्यके बढ़ाने वालोंमें मगरका वीर्य श्रेष्ठहै
कफपित्त नाशकारियोंमें सहत उत्तम है । वातपित्त नाशकर्त्ताओंमें घी उत्तम
है । वात पित्तशमनकर्त्ताओंमें तेल उत्तम है । कफ हरणकारियोंमें वमन
कराना उत्तमहै । पित्त हरणकरनेवालोंमें जुल्लाव कराना उत्तमहै । वस्तीकर्म वात
हरण कर्त्ताओंमें उत्तम है । नम्र करनेवालोंमें पसीने निकालना यह कर्म उत्तम है ।
स्थिर करनेवालोंमें दंडकसरत करना उत्तम है । नपुंसक (द्विजडा)करने वालोंमें
खार(सजीखार, जवाखार और निमक, आदि) उत्तम है । अन्न द्रव्यरहित जो
पदार्थ है उनमें रुचिकर्त्ताओंमें तैदुआ उत्तमहै । हृदयके अहितकारियोंमें भेडका घी
उत्तमहै । देहसूखनेके रोग हरणकरने वालोंमें बकरीका दूध उत्तमहै । समान रु-
धिरके संग्रहण करनेवालोंके शांतिकरनेमें स्त्रीका दूधउत्तमहै । कफ पित्तके संचय
करनेवालोंमें भेडीका दूध उत्तम है । निद्रा उत्पन्न करनेवालोंमें भैसका दूधउत्तमहै ।
देहके छिद्र रोकनेवालोंमें दर्ही उत्तम है । कर्पण (देहसूखानेवालो) में समापसा-
ईअन्न उत्तमहै । देहमें रुखाई करनेवालोंमें कोदो अन्न उत्तम है । सूत्र पैदाकरने
वालोंमें ईस उत्तमहै । वादी पैदाकरने वालोंमें जामुनका फल उत्तमहै । कफ
और पित्त करनेवालोंमें पूडी पिरामठे उत्तम है । अम्लपित्त करनेवालोंमें
कुलशी उत्तमहै । कफपित्तकरनेवालोंमें उडद उत्तमहै । वमन, आस्थापनवस्ती, अ-
नुवासन वस्ती, इनके उपयोगी पदार्थोंमें मैनफल उत्तम है । सुप्तपूर्वक दस्तला-
नेवालोंमें निसोथ उत्तम है । नरम जुल्लावोंमें अमलतास उत्तम है । तीक्ष्णजुल्ला-
व लानेवालोंमें भूहरका दूध उत्तम है । शिरोविरेचनीय द्रव्योंमें सपेद जोंगा उ-

एकान्तहितान्येकान्ताहितानि प्रागुपदिष्टानि । हि-
ताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्थापथ्यमिति ॥

अर्थ—एकान्तहित जल है और एकान्त अहित अग्निमे प्रथम कह आय है और हिताहित वही जानना कि जो वादीमें पथ्य है वो पित्तमें अपथ्य है ॥

उत्तम है । पेटके कीड़े नाशकोमें वायुविहंग उत्तम है । विष हरणकरनेवाले पदार्थोंमें सिरस उत्तम है । कोढरोग हरणकरनेवालोंमें खैर (खैरसार) उत्तम है । वादी हरणकरनेवालोंमें राष्णा उत्तम है । अवस्था स्थापनकरनेवालोंमें आमले उत्तम है । पथ्यवस्तुओंमें हरड उत्तम है । वृष्य और वात हरणकरनेवालोंमें अंडकी जड उत्तम है । दीपनीय पाचनीय और अफरा हरण करनेवाली औषधोंमें पीपरामूल उत्तम है । दीपनीय गुदाका शूल और सूजन हरणकरनेवालोंमें चीत्तेकीजड उत्तम है । द्विचकी, श्वास, खांसी, और पसवाडेके शूल हरण करनेवालोंमें पुद्गकरमूल उत्तम है । संग्राहक, दीपनीय, और पाचनीयोंमें मोथा उत्तम है । शीतलकरना, दीपन, वमन, और अति सार, हरणकरने वालोंमें नेत्रवाला (मुग्धवाला) उत्तम है । संग्राहक और दीपनीयोंमें स्योनाक अर्थात् टेडू उत्तम है । संग्राहक और रक्तपित्तनाशकोमें अनंतमूल उत्तम है संग्राहक वातहर-दीपनी कफ और रुधिरके विबंधको नाशकरने वालोंमें गिलोय उत्तम है । संग्राहक दीपनीय, और वातकफनाशकोमें देलफल उत्तम है । दीपनीय पाचनीय संग्राहक और सर्वदोष हरनेवालोंमें अतीस उत्तम है । संग्राहक और रक्तपित्त नाशकोमें उत्पल (नीलाकमल) कमोदनी और कमलका केशरा उत्तम है । पित्तकफके शोषणकरने वालोंमें धमासा उत्तम है । रक्तपित्तके अत्यंत गिरनेको दूर करनेवालोंमें गेधामियंगु उत्तम है । कफपित्त रक्तके संग्राहक और शोषण करनेवालोंमें सूहाकी छाल उत्तम है । रक्तसंग्राहक नाशकोमें कंभारीके फल उन्नम है । संग्राहक वातहर-दीपनीय और वृष्योंमें पृश्निपर्णी (पिठवन) उत्तम है । वृष्य और सर्वदोष करने वालोंमें विदारीगंधा उत्तम है । संग्राहक और वंधवातहरण करनेवालोंमें खैरटी उत्तम है । मूत्रकृच्छ्र और वादी हरणकरने वालोंमें गोखरू उत्तम है । छेदनीय और भेदनीय दीपनीय अनुलोमनी और वातकफके नाशकर्ताओंमें अमलवेत उत्तम है । संसनीय और पाचनीय और ववासीर नाशकों में जो उत्तम है । ग्रहणीदोष-ववासीर-घृतके विकार इनके नाशकरनेवालोंमें छाछपीनेका अभ्यास उत्तम है । वृष्यहो और उदावर्चहरण र्त्ताओंमें समान घृत-सचूकास्रानेका अभ्यास उत्तम है । दांतोंमें बल और रुचि-

संयोगविरुद्ध

संयोगतस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवन्ति; तद्यथा,
 वल्लीफलकरककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकद-
 वितैलविरोहिपिष्टशुष्कशाकाजाविकमांसमद्यजा-
 म्बवचिलिचिममत्स्यगोधावराहांश्च नैकध्यमश्रिया-
 त् पयसा ॥

अर्थ—और बहुतसी द्रव्य संयोग होनेसे विषके तुल्य होजाती है अर्थात् विष के समान एकांत अहित हो जाती है। जैसे बेलके फल (पेठा, कोला, धीया, तोरई, आदि) करक (छत्राक छतोना) करील, वांसकी कोपल, खटाई वालेफल, निमक-कुलथी-खल-दही-तेल-विरोहि (जिस्केअंडुर नहो) चावलेंकाचून-सूखेसाग, मेंढेका मांस, मद्य, जामुन, चिलचिलनामकी मडली, गोह, और मूअरकामांस इनसबवस्तुओंको दूधके साथनभक्षणकरे

कारियोंमें तेलकेकुल्ले करनेका अभ्यास उत्तम है। निर्वारिण (शांतकरना) और लेपकरनेवालोंमें चंदन और गूलर उत्तम है। शीतनाशक और लेपकी औषधोंमें राम्ना उत्तम है। ढाह त्वचाके दोष-पसीने और लेपकारी औषधोंमें लामज्जक-और खस उत्तम है। वातहर-उबटना-और पसीनेवालोंमें कूठ उत्तम है। नेत्रकाहितकारी-वालोंकोहितकारी-कंठसुधारनेवाला वर्णको उज्ज्वल करनेवाला रंगनेवालोंमें और घावके भरने वालोंमें महुआ उत्तम है। प्राणसंज्ञा-प्रधानहेतुओंमें पवन उत्तम है। जल-स्तंभ-शीत-शूल-कंपइनके नाशकरनेवालोंमें अग्नि उत्तम है। आपदोष करने वालोंमें अग्नि भोजनकरना उत्तम है। अग्नि को चैतन्यकारियोंमें यथा अग्निके अनुसार भोजन करना उत्तम है। चेष्टा-और व्यवहारोपसेवियोंमें सात्म्य (अपनी आत्माको जो हितहोतो) उत्तम है। आरोग्यकरने वालोंमें यथासमयभोजन करना उत्तम है। रोगीकरनेको मलमूत्रोंका वेग धारण उत्तम है। आहारके गुणोंमें वृद्धिहोना उत्तम है। मन प्रसन्न करनेवालोंमें मद्य (दारू) उत्तम है। धी-धृति-स्मृति-हरण करने वालोंमें मद्यका अत्यंतसेवन उत्तम है। पेटमें दुष्टपाक करने वालोंमें भारी पदार्थोंका भोजन उत्तम है। मुर-और परिणाम करने वालोंमें एकवार भोजन करना हितकारी है। देहका शोषण करनेवालोंमें स्त्रीसंग उत्तम है। नपुंसककरने वालोंमें

१ पीलेरंगका खसके समान वृणहोता है।

क्वचित् विरुद्धकाभीप्रयोगदिखातेहै
रोगं सात्म्यंश्च देशश्च कालं देहश्च बुद्धिमान् ।
अवेक्ष्याम्यादिकान् भावान् रोगवृत्तेः प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—उदरादिकरोग, सात्म्य, देश, (अनगादि) काल (शीतादिक) देह (स्थूलहृशादि) और अम्यादिभाव कहिये जठराग्निआदिकी सामर्थ्य विचारके बुद्धिमान् वैद्य उक्त विरुद्धपदार्थोंको भी रोगीकोदेवे ॥

अत्यंत शुक्रकेवेग (स्तंभनदवाई द्वारा) रोकना उत्तमहै । देहके घटाने वालोंमें अन्नका त्यागदेना उत्तम है । देहके सुखानेमें थोडा भोजन करना उत्तम है । ग्रहणीके दूषितकरनेमें अजीर्ण और अर्घ्यसन उत्तम है । विपमाग्निकरने वालोंमें विपमाग्नि करना उत्तम है । दुष्ट रोगकरने वालोंमें विरुद्धवार्य पदार्थ खाना, उत्तम है । पथ्योंमें प्रशम (क्रोध मोहादि मार्जितना) उत्तम है । संपूर्ण अपथ्योंमें कुलभीकर्म न करना एकजगह बैठारहना उत्तम है । व्याधिके मुखांमें मिथ्यायोग उत्तम है । अलक्ष्मी (तेजबलादि) हरणकरने वालोंमें रजस्वला स्त्रीसँ गमन करना उत्तम है । आयुकरने वालोंमें ब्रह्मचर्य उत्तम है ॥

सब वृष्योंमें मनको प्रसन्न राखना उत्तम है । अवृष्य कारियोंमें दौर्मनस्य अर्थात् चित्तको दुःखित रखना उत्तम है । प्राणोंके हरणकर्त्ता कर्मोंमें ठीक विचारके बिना करना उत्तम है । रोगवृद्धाने वालोंमें दुखी रहना उत्तम है । परिश्रम हरण करनेवालोंमें स्नान करना उत्तम है । प्रसन्न करताआर्भे हर्ष परमोत्तमहै । शोषण करनेवालोंमें शोक (सोच) करना उत्तम है । पुष्टिकारियोंमें मैथुनादि कर्मसँ निवृत्ति होना उत्तमहै । तन्द्रा करनेवालोंमें निद्रा उत्तम है । बलवृद्धाने वालोंमें सर्षप भोजन करना उत्तम है । दुर्बलकरने वालोंमें एकरसका मेवन करना उत्तम है । निकालनेयोग्योंमें गर्भशल्यका निकालना उत्तम है । उद्धारकरनेमें अजीर्ण उत्तम है । नम्र औपथके देनेमें बालक उत्तम है । याप्यकर्मोंमें वृद्ध उत्तम है । तोदन औपथ और परिश्रमसँ बचाने वालोंमें गर्भिणी स्त्री उत्तम है । गर्भधारणकर्त्ताओंमें प्रसन्न चित्त रहना उत्तम है ॥

दुश्चिकित्स्य रोगोंमें सन्निपातका रोग उत्तम है । विपम चिकित्सा वाले रोगोंमें

१ सात्म्य आठ प्रकारका है जैसे जातिसात्म्य, आतुरसात्म्य, औपथसात्म्य अन्नसात्म्य, रससात्म्य, देशसात्म्य, ऋतुसात्म्य, जलसात्म्य, २ भोजनके ऊपर भोजन करना । ३ कभीथोडा और कभी अधिक कभीसिद्धीसी कभीअवेरी ।

अवकहतेहैकिहिताहितत्वनहीहै
 अवस्थान्तर बाहुल्याद्रोगादीनां व्यवस्थितम् ।
 द्रव्यं नेच्छन्ति भिषज इच्छन्ति स्वस्वरक्षणे ॥

अर्थ—रोगादिककी अवस्था विशेषा धिक्क्यतासँ वैद्य यह द्रव्यहितहै, और यह अहितहै ऐसी द्रव्य व्यवस्था नहीं मानते, किंतु स्वस्थ रक्षणमे उस द्रव्य व्यवस्थाको मानते है ॥

आमका रोग श्रेष्ठ है । संपूर्ण रोगोंमे ज्वर श्रेष्ठ है । दीर्घरोगोंमें कुष्ठरोग श्रेष्ठ है । रोगोंके समूहोंमे राजयक्ष्मा रोग श्रेष्ठ है । अनुतगिकरोगोंमें प्रमेह श्रेष्ठ है ॥

अनुशस्त्रोंमें जोख लगाना उत्तम है । तंत्रोंमें वस्तीकर्म करना उत्तम है । औषध उत्पन्न होने वाली संपूर्ण पृथ्वीभरमें हिमालय पर्वत श्रेष्ठ है । आरोग्य देशोंमें माडवारकी पृथ्वी उत्तम है । अहित देशोंमें अनुपदेश श्रेष्ठ है । आज्ञा कर्त्ता रोगी उत्तम है । चिकित्साके अंगोंमें वैद्य श्रेष्ठ है । वर्जितोंमें नास्तिक उत्तम हैं । छेशकारियोंमें हांसी ठठोरी करना श्रेष्ठ है । अनिष्टोंमें वैद्यकी आज्ञा न मानना श्रेष्ठ है । वमनके लक्षणोंमें जीका मचलाना श्रेष्ठ है । वैद्यके गुणोंमे औषधका योग जानना उत्तम है । औषधोंमें पहचान करना उत्तम है । साधनोंमें शास्त्रके साथ तर्क (वहिष) करना श्रेष्ठ है । कालज्ञान प्रयोजनोंमें सप्रतिपत्ति उत्तम है । रुजगारमें आपत्ति डालने वालोंमें उद्योग (कोशिश) न करना श्रेष्ठ है । निःसंशय करनेवालोंमें ठीठता श्रेष्ठ है । भयकारियोंमें असामर्थ्य होना श्रेष्ठ है । जो विद्याआप पढाहो उसमें यादकरना उस विद्याकी वृद्धिमें श्रेष्ठ है । शास्त्रप्राप्ति होनेमें आचार्य श्रेष्ठ है । अमृत (जरामरण रहितकरने) में वैद्यविद्या श्रेष्ठ है । अनुष्ठान करनेमें सद्रचन (उत्तमवाणी) श्रेष्ठ है । सर्वहितोंमें परित्याग उत्तम है । सुखोंमें सबका संन्यास श्रेष्ठ ॥

इसप्रकार जो जो वस्तु जिस २ में उत्तम है सत्र १५२ एकसँ बावन उत्तर सब रोगोंको दूरकरनेको भेनेरहे है । ममान अर्थ उत्तम और निरुष्टोका उदाहरण देकर दिखाए है तथा वातपित्त और कफ इनपर जो जो नाशकरनेमें हित है वो कहे है । ये भेने व्याधिहरणकर्त्ता जोजो मुरय है सो सो कहे है निपुण वैद्य इनकोविचारके चिकित्सामें प्रयोगकरे ॥

श्री आत्रेय महर्षिकहते हे कि जो वैद्य इसप्रकार करता है वो धर्म और काम नाओंको प्राप्तहोता है । इनमें आपको अप्रिय और अपथ्य है उसको यह प्राणी

१ आदिशब्दसे साम्य और देशादिकोंका ग्रहण है ।

पूर्वोक्तार्थकोस्पष्टकरतेहै

द्वयोरन्यतरादाने वदन्ति विषदुग्धयोः ।

दुग्धस्यैकान्तहिततां विपमेकान्ततोऽहितम् ॥

अर्थ—तहां स्वस्थ मनुष्यको इनदोनो विप और दूधमें विप सर्वथा एकांत अहित और दूधको वैद्यजन हितकारी बताते है ॥

एवं युक्तरसाद्येषु द्रव्येषु सलिलादिषु ।

एकान्तहिततां विद्धि वत्स सुश्रुत ! नान्यथा ॥

अर्थ—हेसुश्रुतवत्स! इसीप्रकार स्वस्थोपयोग प्रकारकरके रसादिद्रव्योंमें और जलआदिमें एकांतहितता जानना अन्यथा अर्थात् जो स्वस्थता हरणकरे उनमें एकांत अहितता जानना ॥

अतोऽन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः । न च

विरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमपैर्वा ग्राम्यानूपौदक-

पिशितादीनि नाभ्यवहरेत् । न पयोमधुभ्यां रोहि-

णीशाकं जालुशाकं वाश्रीयात् । वलाकां वारुणीकु-

ल्मापाभ्याम् । काकमार्चीं पिप्पलीमरिचाम्भ्यां ।

नाडीभङ्गशाककुक्कुटदधीनि च नैकध्यम् । मधु चो-

ष्णोदकानुपानं पित्तेन वा मांसानि । सुरारुशरापा-

यसाश्च नैकध्यम् । सौवीरक्रेण सह तिलशङ्कुलीम् ।

मतस्यैः सहेषुविकारान् । गुडेन काकमार्चीं मधुना

मूलकं गुडेन वाराहं मधुना च सह विरूढम् । क्षीरेण

मूलकम् । आम्रजाम्बवश्वाविच्छकरगोधाश्च सर्वांश्च

मत्स्यान् विशेषेण चिलिचिमं पयसा । कदलीफलं

कदाचित् सेवन न करे । और जो आपको पश्यते तथा प्रियहो उमका सेवन करे । मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष, और गुणान्तर, इनमें द्रव्यादिभाव प्राप्तहोकर उसी उमीक अनुमार दीखते है ॥

तालफलेन पयसा दध्ना तक्रेण वा । लकुचफलं पयसा
दध्ना माषसूपेन वा मधुना घृतेन च । प्राक्पयसं पय-
सोऽन्ते वा ॥

अर्थ—अब अन्य जो संयोग विरुद्ध है उनको कहते हैं । विरुद्धधान्य (जिसमेंसे अंकुर निकले हो या अंकुर दूर होगएहो) उनको वसा (चर्वी) सहत, दूध, गुड, उडद, इनके साथ भक्षण न करे । गामके जीवोंका मांस अनूप संचारी जीवोंका मांस, जलसंचारी जीवोंका मांस इनकोभी वसा सहत आदिके साथ न खाय, क्योंकि संयोगसे विरुद्ध है । कुटकीकाशाक और कमलकाशाक दूध और सहत केसाथ न खावे । बलाका (बगलाका भेद) का मांस मद्य और उवालेहुए उडदके साथ न खाय । पीपर और काली मिरचके साथ काकमाचीके सागको न खाय । ना-डी सागके पत्तोंका साग मुरगेका मांस और दही इनको दो मिलायके अथवा तीनों मिलायके न खावे । गरमजलके साथ अथवा पित्तके साथ सहतको न खाय । अथवा मांसोंको पित्तके साथ न खाय । दारू खिचडी और खीर इनको मिलायके न खाय । तिलकी पूडियोंको काँजीके साथ न खाय । मछलीके साथ कोईसा ईखका विकार (खांड, मिश्री, गुडजादि) न खाय । काकमाचीको गुडके साथ न खाय । सहतसें मूली न खाय । तथा सूअरका मांस सहतके साथ खाना विरुद्ध है । दूधके साथ मूली न खाय । आम जामुन—सेह (कांटेवाला जानवर) सूअर और मोह तथा सब प्रकारकी मछली उनमेंभी चिलचिम नामकी मछली इन सबको दूधके साथ न खावे । केलाका फल (ग-हर) को ताडफलके साथ वा दूधके साथ वा दहीकेसाथ अथवा छाछके साथ न खाय । बडहरके फलको दूध, दही, उडदकीदाल, सहतअथवा घीके साथ नखावे । दूध पीनेके प्रथम अथवा अंतमें बडहरका फल नखावे । इति ।

कर्मविरुद्ध

अतः कर्मविरुद्धान् वक्ष्यामः । कपोतान् सर्पपतैलभृ-
ष्टान्नाद्यात् । कपिञ्जलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्चैरण्ड-

इसी हेतुसें यह प्राणी और स्वभाव और मात्रादिके आश्रित कहा है अतएव स्वभाव और मात्राका प्रथम विचारकरके सिद्धीकी इच्छा करनेवाले वैद्यको प्रयोग करना चाहिये ॥

दार्वाग्निसिद्धा एरण्डतैलमिद्धा वा नाद्यात् । कांस्य-
भाजने दशरात्रपर्युषितं सर्पिर्मधुचोष्णैरुष्णे वा ।
मत्स्यपरिपचने शृङ्गवेरपरिपचने वा भाजने सिद्धां
काकमाचीम् । तिलकल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम् ।
नारिकेलेन वराहवसापरिभृष्टां बलाकाम् । भासम-
ङ्गारशूल्यं नाश्रीयादिति ॥

अर्थ—अब संयोग विरुद्धोको कहकर कर्मविरुद्धोको कहते हैं । तहां कपोत (कबुतरका भेद पिंडुकिया) को सरसोंके तेलमें भूनके न खावे । सपेदतीतर, मोर, लवा, कालातीतर, गोद, इनको अंडकी और दारहलदीकी लकाडियोंकी आंचमें भूनके न खावे । तथा अंडीकेतेलमें भी तलके न खाय । गरमीकी ऋतुमें कांसेकेपात्रमें अथवा गरम कांसेके पात्रमें घी—सहत ए दशदिन धरेहुएनको न खाय । मछली जिस पात्रमें बनाईहो अथवा अदरखका साग जिस पात्रमें किया होवे उस पात्रमे सिद्धकरी काकमाचीका साग न खाय । तिलकल्कमें सिद्धकरा (पकाया हुआ) पोईका साग न खाय । सूअरकी चर्चोंमें भुनीहुई बगलीके मांसको नारियलकी गिरीके साथ न खाय । भास (जो एक गीधका भेद है) उसको लोहेके सूपसें भेदकर आगमें सिकेहुएको न खाय ॥

अथमानविरुद्ध

अतो मानविरुद्धान् वक्ष्यामः । मध्वम्बुनी मधुसर्पि-
षी मानतस्तुल्ये नाश्रीयात् । मधुस्त्रेहौ जलस्त्रेहौ वा
तैलसर्पिषी तैलवसे तैलमज्जानौ सर्पिर्वसे सर्पिर्मज्जा-
नौ विशेषादान्तरिक्षोदकानुपानौ ॥

अर्थ—अब कर्मविरुद्ध कहनेके अनंतर मान (तोल) विरुद्धोको कहते हैं

आगे इसअध्यायमें ८४ आसव इस प्रकार कहे हैं ॥

तहा धान्य, फल, सार, पुष्प, कांड, पत्र, छाल, ये सात वस्तु आसवकी यो-
नि है अर्थात् आसव इन्हींसें बनती है तथा शर्करा और नवमद्रव्य संयोग इनके
मिलापसें अनेक आसव अमृतके तुल्य बनती है । तिनमे ८४ आसव पथ्यत-
म हैं । उनको मुन । सुरा, सौवीर, तुपोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्ल, पे छः
धान्यासव है ॥

सहत जल और सहत घी ए समान भाग मिलायके न खावे । सहत और घृता-
दि स्नेह । तथा जल और घी आदि तेल और घी तेल और चर्बी । तेल औ-
र मज्जा । घी और चर्बी तथा घी और मज्जा ए समान भाग मिलायके न खाया
तथा घी और मज्जाको पीकर अतरीक्ष संबंधी जल न पीवे ॥

दोदोरस रसवीर्य और विपाकसै विरुद्ध

अत ऊर्ध्वं रसद्वन्द्वानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च
विरुद्धानि वक्ष्यामः । तत्र मधुराम्लौ रसवीर्यविरुद्धौ
मधुरलवणौ च, मधुरकटुकौ च सर्वतः । मधुरतिक्तौ
रसविपाकाभ्यां मधुररसकषायौ च, अम्ललवणौ र-
सतः । अम्लकटुकौ रसविपाकाभ्यां, । अम्लतिक्ता-
वम्लकषायौ च सर्वतः । लवणकटुकौ रसविपाकाभ्यां
लवणतिक्तौ लवणकषायौ च सर्वतः । कटुतिक्तौ रस-
वीर्याभ्यां ॥ कटुकषायौ तिक्तकषायौ च रसतः ।

अर्थ—मान विरुद्धोंको कहकर अब दोदो रसोंको रस, वीर्य, और विपाक
सँ विरुद्धको कहते हैं । तहाँ मधुर और खट्टे दोनोरस—रस और वीर्यसँ विरुद्ध
है अतएव मिलायके न खावे एवं मधुर और लवणरसभी रसवीर्य सँ विरुद्ध है
मधुर और तीक्ष्णरस सर्व रसवीर्य विपाक से विरुद्ध है, मधुर और कटुआ रस-
रसविपाक सँ विरुद्ध है । एवं मधुर और कसेला रसभी रसविपाकसँ विरुद्ध है
खट्टा और निमकीनरस रससँ विरुद्ध है । खट्टा और चरपरा रस तथा विपाक सँ
विरुद्ध है । अम्ल, तिक्त, तथा अम्ल और कषाय ये रसवीर्य और विपाक सँ वि-
रुद्ध है । लवण कटुक रस रसविपाक सँ विरुद्ध है । लवण तिक्त तथा लवण औ-

मुनक्काटास, सजूर, कंभारी, धन्वन. राजादन, टणशूल्य, परूप, अभया,
आमलक, मृगालिङ्गिका, जाम्बव, वक, कैथ, कुवल, बदर, कर्कधु, पीलू, पिया-
ल, पनस, न्यग्रोध, अश्वत्थ, द्राक्षा, कपीतन, उदुंचर, अजमोद, सिंघाडे, और
संखनी इन फलोंसँ बननेवाले २६ फलासव है ॥

• १ दही बुरा यद्यपि खट्टे और मीठे रमहोनेपरभी उपयोगी होनेमें दोष नहींहै, परंतु
जो खटाई और मिठाई मिली किसी उपयोगमें नहीं आवे वो विरुद्ध है उमको ग्रहण
नहीं करना ।

र कपाय ये सबसँ विरुद्ध है । चरपरा और कडुआ रस एवं कटु कपाय रस रसवीर्यसँ विरुद्ध है । तिक्त (कडुआ) और कपाय सबसँ अर्थात् रस वीर्य-और विपाक सँ विरुद्ध है ॥

तहां गयदास इस रसवीर्य विपाक विरुद्धोंको नहीं माने कारण यह है कि प्रथम मधुररस भोजन करना लिखा है फिर सब रसस्वाय एकरसकाही सेवन निषेद्ध है परंतु प्राचीन ग्रंथोंमें लिखा देखकर हमनेभी लिखकर व्याख्या करदी-अब कहते है कि अत्यंत गुणकारी भैसके दूधआदि पदार्थ हितभी हे, परंतु स्वस्थ मनुष्यको उसी एकका सेवन अहितकारी होता है यह कहते है ॥

तरतमयोग्युक्तांश्च भावानतिरूक्षानतिस्निग्धानत्यु- ष्णानतिशीतानित्येवमादीन् विवर्जयेत् ॥

अर्थ—अत्यंत स्नेहादि सहित जैसे अतिरूक्ष, अतिस्निग्ध, अतिउष्ण, अति-शीतल, इत्यादि पदार्थोंका सेवन इसप्राणीको वर्जनीय है । इसमे चकार जो पडा उससँ अत्यंत पथ्यतम, अत्यंत आयुके वढानेवाले, अत्यंतवृष्यदार्थोंको भी सेवन न करे ॥

पूर्वोक्तकोस्पष्टकरतेहै

विरुद्धान्येवमादीनि रसवीर्यविपाकतः ।

तान्येकान्ताहितान्येव शेषं विद्याद्विताहितम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तजो विरुद्ध पदार्थ कहे हे उनसँ आदिले जोजो अन्य पदार्थ र-स वीर्य और विपाकसँ विरुद्ध है, उनको एकान्त अहित. वैद्य अपनी बुद्धिसँ विचारलेवे । वाकी जो द्रव्य है वो एकांत हिताहित है ॥

विरुद्धपदार्थभक्षणकेअवगुण

व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यं मरणश्चाधिगच्छति ।

विरुद्धरसवीर्यादीन् भुञ्जानोऽनात्मवान्नरः ॥

अर्थ—रस-वीर्यादि विरुद्ध अहित कारी द्रव्य भोजन करनेसँ उस चंचल

विदारीगन्धा, असर्गंध, कृष्णगंध, शतावर, श्यामा, त्रिवृत्, दंती, द्रवंती, विल्व, आरुक, और चित्रक ए११मूलामव अर्थात् जइसे बननेवाली आसव है

१ जैसे भैस गौकादूध अत्यंत स्निग्धहै इसी वास्ते नैरोग्य मनुष्यको अपनी समाप्तिके रसाके वास्ते ये नहीं खाना चाहिये ।

चित्तवाले मनुष्यके अनेक प्रकारकी व्याधि, इन्द्रियोंमें दुर्बलता, अधवा मृत्यु-पर्यंतको करे हे, इसवास्ते विरुद्ध पदार्थको सर्वथा त्याग देवे ॥

विकारकर्तापदार्थ

यत्किञ्चिद्विषमुत्कृश्य भुक्तं कायान्न निर्हरेत् ।

रसादिष्वयथार्थं वा तद्विकाराय कल्पते ॥

अर्थ—कोई २ द्रव्य भोजनके अंतमें भोजनके पदार्थको प्रकुपित करके वमनकीसी इच्छा कराती है, उसको वमनके द्वारा देहके बाहर न निकाले तो वह कोई न कोई पीडाको करे ऐसा जानना । यह केवल दोषकारी होकर व्याधिमात्रको ही नहीं करे किंतु रसादिधातु दुष्टकारी व्याधियोंको भीकरे हैं । तहां बहुतसी द्रव्य दोषोंको दुष्टकरे है और बहुतसी द्रव्य धातुओंको दुष्टकारी है उनको ग्रंथ बढनेके भयसँ इसजगेपर नहीं लिखा ॥

विरुद्धभोजनजनितरोगोकीचिकित्सा

विरुद्धाशनजान् रोगान् प्रतिहन्ति विरेचनम् ।

वमनं शमनं वापि पूर्वं वा हितसेवनम् ॥

अर्थ—विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न रोगोंको विरेचन (दस्तकराना) दूरकरता है तथा वमन करना और शमनकर्ता औषध नष्ट करती है । एवं उस विरुद्धपदार्थजन्य व्याधिके होनेसँ प्रथम ही हितसेवन करे तो विरुद्धदोष शमनहोवे । तहां बलवान्का वमन विरेचन द्वारा रोग शांति करे । और हीनवलीका शमन औषधसँ शमनकरना चाहिये ॥

(विरुद्धभोजनकरनेपरभीकिसीकोरोगनहीहोयहकहतेहै)

सात्म्यतोऽल्पतया वापि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च ।

स्निग्धव्यायामबलिनां विरुद्धं वितथं भवेत् ॥

अर्थ—जो अपने सात्म्यते अल्प भोजन करते है—अर्थात् जिसका थोडा २

साल, प्रियकसाल, चंदन, स्यंदन, सैर, कंदर, सतवन, कोह, विजैसार, अरिमेद, तित्तुक, किणही, शमी, शुक्ति, सीसव, सीरीम, वंजुल, धान्यरू, और महुआ, ए बीस सारसै वननेवाली मारासव है ॥

१ गरमद्रव्यमें चीनी बुरा शीतल डलना विरुद्ध होनेपरभी विकारनही करे । २ विरुद्धपदार्थजन्यरोगोंको विरेचन दूरकरता है अतएव विरुद्धभोजन जन्य कुष्ठरोगकोभी दूरकरे है इसँ यह सिद्धहोआकि विरेचन कुष्ठरोगका शत्रु है ॥

अभ्यास कराहो ऐसी द्रव्य तथा जिसकी दीप्ताग्निहै, और जो तरुण है एवं जो स्निग्ध ओर दृढकसरत करनेमें बलिष्ठ है अथवा जो दृढकसरत करते है और बली है अंसें प्राणियोंके विरुद्धभोजनभी निष्फल होजाता है । अर्थात् रोग नहींकरे ॥

व्यायामशीलो बलवान्शिशुश्च स्निग्धोऽग्निमांश्वा-
पिमहाशनश्च । आमोतिरोगान्नविरुद्धजातान् अभ्यासतो वालपतया च जन्तुः ॥

अर्थ—जो दृढकसरत करा कर्ता है, बलीपुरुष, बालक, स्निग्ध देहवाला, प्रबल जठराग्निवाला, अत्यंत भोजन करनेवाला, तथा जिसने जिसविरुद्ध वस्तु का अभ्यास करलीना होवे तथा वह विरुद्ध पदार्थ बहुत अल्प स्नायतो वह प्राणी विरुद्धभक्षणजन्य रोगोंको नहीं प्राप्त होवे ॥

अब इस अध्यायकी समाप्तिमें वातके गुणकहते है तहां हितकारीभी पवन दिशाओंके संयोगसे अहितकारी होजाती है अतएव उनके पथक २ गुण कहते है ।

पूर्वपवनके गुण

पूर्वः समधुरः स्निग्धो लवणञ्चैव मारुतः । गुरुर्विदाह-
जननो रक्तपित्ताभिवर्द्धनः ॥ क्षतानां विषजुष्टानां
व्रणिनःश्लेष्मलाश्चये । तेषामेव विशेषेण सदा रोग-
विवर्धनः ॥ वातलानां प्रशस्तश्च श्रान्तानां कफशो-
पिणाम् । तेषामेव विशेषेण व्रणक्लेदविवर्द्धनः ॥

अर्थ—पूरवकीपवन मीठी, स्निग्ध, और निमकीनहै; भारी, दाहउत्पन्नकरता, ओर रक्तपित्तके बढ़ाने वाली है, घाववाले और विषसँपीडित तथा जिसके फोडेहो एवं कफसें व्याप्त है उनको यह पूरवकी पवन सदैव रोगके बढ़ाने वाली है । वादीवाले, श्रांत (थकेहुए) और जिनका कफ सूखगया है उनको विशेष करके पूरवकी पवन अति उत्तम है । तथा यह घावोंमें सदैव क्लेदके बढ़ाने वाली है ॥

पद्म, उत्पल, नलिन, कुमुद, सौगंधिक, शतपत्र, मधुक, त्रियंगु, धायके फूल, ये पुष्पासव है इक्षु, कांडेक्षु, इक्षुवालिका, पुंड्रक, ए छालकी आसव है और शर्करा मव इस प्रकार आसवोंके भेद ८४ है ॥

॥ इति यज्जःपुरुषीयाऽध्यायः ॥

दक्षिणपवनकेगुण

मधुरश्चाविदाही च कषायानुरसो लघुः । दक्षिणो मारुतः श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्द्धनः । रक्तपित्तप्रशमनो न च वातप्रकोपनः ॥ विशदो रूक्षपरुषः खरः स्नेहबलापहः ।

अर्थ—दक्षिणकीपवन मधुर है, दाहनही करे, और कपेले रसवाली हलकी है, तथा नेत्रोंको हितकारी, बलको बढ़ाने वाली, रक्तपित्त रोगको हरणकर्त्री, और वातको कुपित नहीं करे, विशद, रूक्ष, कठोर, तीखी, चिकनाईके बलको नाशक है, और उत्तम है ॥

पश्चिमकीपवन

पश्चिमो मारुतस्तीक्ष्णः कफमेदोविशोषणः ॥
सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ।

अर्थ—पश्चिमकी पवन तीखी, कफ और मेदाको शोषणकरने वाली है, तथा सद्यप्राण नाशिनी, और प्राणियोंके देहको सुखाने वाली है ॥

उत्तरकीपवन

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव चाकषायानुरसः शीतो
दोषाणामप्रकोपनः ॥ तस्माच्च प्रकृतिस्थानां क्लेदनो बलवर्द्धनः । क्षीणक्षयविपार्तानां विशेषेण तु पूजितः ॥

अर्थ—उत्तरकी पवन चिकनी, नम्र, मीठी, और कुछ कपेली है, शीतल दोषोंको कुपितनहींकरे, इसी कारण जो प्रकृतिस्थ अर्थात् नैरोग्य पुरुष है उनको आर्द्रकरे और बलको बढ़ावे है । तथा जो प्राणी क्षीणहै स्वईरोगवाले और विपरीगी उनको प्राय माननीय है ॥

॥ इति हिताहितीयाध्यायः समाप्तः ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालतनय दत्तरामप्रणीते आयुर्वेदोद्धारे

बृहन्निघण्टुरत्नाकरे मिश्रप्रकर्णम् समाप्तम् ॥

समाप्तोऽयं मिश्रखंडः

ॐ

आयुर्वेदोद्धारान्तर्गतवृहन्निघण्टुरत्नाकरे

चिकित्साखण्डः।

—ॐ—

हिंदीभाषानुवादसमेतः

तथाच विविधरोगाणामतिप्रशस्तचिकित्सापरिपूर्णः

पाठकज्ञातीयमथुरानिवासिश्रीकृष्ण-
लालमाथुरतनयदत्तरामेण

संकलितःस्वकृतभाषाटीकाविभूषितः संशोधितश्च

—ॐ—

स च

श्रीकृष्णदासात्मज-

गंगाविष्णु, खेमराजाभ्यां

मुंबय्यां

स्वकीये “श्रीवैकटेश्वर” मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः

संवत् १९४७ शके १८१२

बृहन्निघण्टुरत्नाकरके चिकित्साखण्डकी अनुक्रमणिका ।

विषय.	पत्रांक.	विषय.	पत्रांक.
चिकित्साखण्डप्रारम्भः ।		त्रिविधवैद्य " " १०	
चिकित्सा विषयमें प्रश्नोत्तर ३		ठगवैद्यके लक्षण.... " " ११	
चिकित्सा " " ११		सिद्धसाधित वैद्यके लक्षण.... " " ११	
सुश्रुतका प्रमाण " " ११		सद्वैद्यके लक्षण " " ११	
अंधान्तरका प्रमाण.... " " ११		दशप्राणायतनीयाध्यायः ।	
क्रियाके लक्षण " " ४		प्राणोंके दशस्थान " " ११	
चिकित्सा और उसका प्रयोजन " ११		द्विविध वैद्यवर्णनम् " " १२	
चिकित्साके नाम " " ११		प्राणाभिसर वैद्यके लक्षण.... " " ११	
अंधान्तरसँ चिकित्साके नाम " ११		लक्षणांतर " " १३	
चिकित्साके भेदमें प्रश्नोत्तर ५		तथा " " ११	
निदान रोग विपरीत और तदर्थकारिणी		तथा " " १४	
चिकित्सा " " ११		तथा " " ११	
दैवोमानुषी और राक्षसी चिकित्सा		तथा " " १५	
तथा " " ११		६ प्राणनाशक वैद्य अर्थात् रोगाभिसर	
चिकित्सामे कौन २वस्तु जानना यह		वैद्यके लक्षण.... " " १४	
प्रश्न और इसका प्रत्युत्तर		मूर्ख वैद्योंके लक्षण.... " " १७	
चिकित्साके अंग.... " " ११		वैद्यके पालनीय नियम " " १८	
चिकित्साके पादचतुष्टय " ११		तथा " " ११	
पाठांतर " " ११		७ तथा " " १९	
वैद्यविना पादत्रयको निष्फलत्व " ११		तथा " " ११	
पादत्रय विनाभी वैद्यको मुख्यत्व.... " ११		तथा " " २०	
पादचतुष्टयमें वैद्यको प्राधान्यता " ११		प्रसंगवत्स कलियुगिया वैद्योंका सिद्धांत २१	
प्रथम वैद्यके लक्षण " ८		बहुश्रुत वैद्यकी प्रशंसा " " २३	
वैद्य शब्दकी व्युत्पत्ति " ११		निदान औषधी और साध्यासाध्यज्ञाता	
वैद्यके नाम " " ९		वैद्यको कर्मकी सिद्धि " ११	
वैद्यके लक्षण.... " " ११		शास्त्र और क्रियाज्ञाता वैद्यकी प्रशंसा ११	
वैद्यके गुण चतुष्टय " " ११		चतुर्विध ज्ञानवान् वैद्यको राजात्व.... २३	

पद्गुणयुक्त वैद्यकी प्रशंसा	२४	शास्त्रादि विशोधन	३१
वैद्यशब्दप्राप्तीका कारण	”	शास्त्र और बुद्धि द्वारा चिकित्सा करनेकी	”
गुरुमुख पठित वैद्यको वैद्यत्व	”	आज्ञा	”
जीवदान श्रेष्ठत्व कथन	२५	चिकित्सा पादत्रयका अधिपति होनेके का-	”
परोपकारत्व कथन....	”	रण वैद्यको कुशल होनेकी आवश्यकता	”
वैद्यको दानित्व कथन	”	वैद्यको चतुर्विधवृत्ति	”
तथा	”	देवताओं करके वैद्यपूजनीयत्वकथन	३२
चिकित्साकरनेका पुण्य	”	चिकित्सा सिद्धा योग्य वैद्य	”
तथा	२६	शास्त्र पठित वैद्यको चिकित्साका अधिकार,	”
अथान्तरका प्रमाण	”	अन्नजल और चिकित्सादानकाफल	”
प्रमाणांतर	”	राजाको वैद्यादि चतुष्टयोंका नित्यदर्शन	३३
सर्वत्र वैद्य वृत्तीका कथन....	”	ज्योतीषी वैद्य और ब्राह्मणों द्वेष करनेका	”
तथा	२७	फल	”
रोगके अंतमें वैद्य पूजन	”	विनाशास्त्र प्रायश्चितादि कथनमें ब्रह्महत्या-	”
रोगके अंतमें वैद्य पूजनमें कथन	”	के पापकी प्राप्ति	”
चिकित्साका फल	”	गुणयुक्त पादचतुष्टयोंकी प्रशंसा	३४
तथा	”	शास्त्र और बुद्धिद्वारा कर्म करनेकीआज्ञा,	”
वैद्यकोशिक्षा	२८	उत्तम वैद्यके लक्षण	”
तथा	”	निदान रहित वैद्यको कर्मकी प्रसिद्धि	३५
प्राणीको वैद्यशब्दकी प्राप्ति	”	विनापठित वैद्यकी निंदा	”
वैद्यमात्रको द्विजत्व	”	मूर्ख वैद्यका उपहास	”
वैद्यकेप्रतिरोगीकावक्तवि	२९	वैद्याभिमानी मूर्ख वैद्यकी निंदा	”
कहकरनदेनेमें अधर्मित्व	”	निदान विनाजाने चिकित्सा करनेमें वैद्यको	”
वैद्यके धर्म	”	दंडनीयत्व कथन	३६
रोगीकी पुत्रके समान रक्षाकरना	”	केवल शास्त्रज्ञाता और औपयज्ञान	”
रोगीको पिताके समान वैद्यपूजनीय	”	रहित वैद्यकी निंदा	”
आयुर्वेदको धर्मार्थपरता	३०	शास्त्र पठित और क्रिया रहित वैद्यको	”
वैद्यकोदयावान् होना	”	भीरुत्व कथन	”
वैद्यको लोभ त्यागकी, आज्ञा	”	विनापठित वैद्यको राजसँ दंडनीयत्व कथन,	”
वृत्त्यर्थे चिकित्सा करनेका निषेध	”	कर्त्तव्यमें मूर्ख वैद्यकी निंदा	३७
एकमी रोगी अच्छेकरनेका फल	”	मूर्ख वैद्यके दोष	”

तथा ३७	शरीराश्रित त्रिविध औषधी ४४
चिकित्सा अन्यथा करनेमें वैद्यको	अतः परिमार्जन ४६
अधर्मित्व ३७	बहिः परिमार्जन ३१
वैद्यको स्वयं तर्ककरनेको आज्ञा ३७	शस्त्र प्रणिधान ३१
निषिद्ध वैद्य ३८	त्रिविध औषधी ३१
वैद्यको पाक कारित्वमें प्रमाण ३१	जंगमादिभेदसँ त्रिविध औषध ४६
अन्य जातिकेकरे पाक भोजनमें प्रायश्चित्त,	जंगमद्रव्य ३१
वैद्यशास्त्र और ज्योतिषको प्राधान्यता ३९	भौमद्रव्य ३१
चोरी कपट और बल पूर्वक विद्या ग्रहणमें	उद्भिज औषध ३१
दोष ३१	औद्भिज गण ४७
मरण पर्यंत चिकित्सा करनेकी, आज्ञा ३१	औद्भिज औषधोंकी गणना ३१
तथा ३१	औषध ज्ञानको दुर्ज्ञेयत्व ३१
	औषधोंके रूप और योग ज्ञाता वैद्यकी
रोगीके लक्षण ४०	प्रसंशा ३१
चिकित्साके योग्य रोगी ३१	तथा वैद्यको उत्तमत्व कथन ४८
तथा ३१	ज्ञाताज्ञात औषधोंके गुणागुण ३१
तथा ३१	अज्ञात और दुःप्रयोजित औषधकी निंदा, ३१
रोगीके गुणचतुष्टय ४१	युक्त और अयुक्त औषधके गुणागुण ३१
उत्तम रोगी ३१	युक्तिपूर्वक औषधको मुख्यत्व ४९
मूर्खरोगी ३१	मूर्ख वैद्यके हाथकी औषध नलेना.... ३१
रोगकी उपेक्षा करनेमें आयुकी हानी ३१	अज्ञानी वैद्यसँ भाषण करनेमें पाप कथन ३१
बिनापीडाके शास्त्र और वैद्यमें अविश्वास ३१	शरणागत रोगीसँ द्रव्या दिलेनेका निषेध ३१
त्याज्यरोग ४२	मूर्ख वैद्यसँ यत्न करना निषेध ९०
	वैद्यको वैद्यके गुणसँखनेकी आवश्यकता ३१
भैषज्य लक्षण ४३	उत्तम औषध और वैद्य ३१
उत्तम औषध ३१	उत्तम प्रयोग और उत्तम वैद्यकी प्रसंशा ९१
औषधके चारगुण ३१	परिचारकके गुण ३१
प्रसंगवश औषधके त्रिविधभेद चरकसँ ४४	परिचारकके लक्षण ३१
दैव व्यपाश्रय ३१	आयु विचार ९२
युक्ति व्यपाश्रय ३१	आयुका प्रमाण ३१
सत्वावजय ३१	द्रव्यम् ९३

व्याधेर्लक्षणं ६३

व्याधिसमुद्देशीयाध्यायः

द्विविध व्याधि	११
त्रिविध व्याधि	१४
सप्तविधव्याधि	११
आदेबल प्रवृत्तव्याधि	१९
जन्मबल प्रवृत्तव्याधि	११
दोषबल प्रवृत्तव्याधि	११
संघातबल प्रवृत्तव्याधि	१६
कालबल प्रवृत्तव्याधि	११
दैवबल प्रवृत्तव्याधि	११
स्वभावबल प्रवृत्तव्याधि	११
व्याधियोंमें वातादि दोषोंको मुख्यत्व			१७
हीन दोषोंसे व्याधियोंके अनेकविधत्व			१८
दोषद्रूप्य सज्ञालक्षणकरके होती है			११
रसमन्य विकार	१९
रूपिरजन्य विकार	११
मांसजन्य विकार	११
मेददोषज विकार	६०
अस्थि दोषज विकार	११
मज्जादोषज विकार	११
शुक्रजन्य विकार	११
मलापान विकार	११
इन्द्रिया यत्र दोष	६१
चिकित्सा विधि का उपदेश	११
वैद्यशास्त्रके	६२
रोग और औषध परीक्षा के चिकित्सा			११
करनेकी आज्ञा	११

त्रिविधरोग विज्ञानीयाध्यायः

त्रिविध रोग ज्ञानका उपाय	६२
आप्तलक्षण	११
प्रत्यक्षके लक्षण	११
अनुमान	६३
प्रत्यक्ष	११
कर्णइन्द्री	११
नेत्रइन्द्री	११
जिह्वा इन्द्री	६४
नासिका इन्द्री	११
स्पर्शेन्द्री	११
अनुमान ज्ञान	११
रोग ज्ञानानंतर चिकित्सा	६५
सर्वरोगोंके नामनजाननेमें अलज्जत्व	६६
अनुक्त दोषोंमें लक्षणद्वारा चिकित्सा			११
असाध्यरोगीकी चिकित्सा करनेका निषेध			११
उत्पन्न होनेकी चिकित्सा करनेका हेतु			११
औषधकी आवश्यकता	६७
औषधके फलमें तुच्छता करनेका निषेध			११
बिना औषधके रोगी रहनेमें दृष्टांत			११
बिना चिकित्साके अथवा मृत्युमें पवनदी-			११
पकवाहृष्टांत	११
तथा	६८
वैद्यपुरोहितको रानाया रक्षण करनेकी			११
आज्ञा	११
रोगज्ञानमें अम्पामको मुख्यत्व	११
दुष्टाचारनादि त्रिविध व्याधि	११
दोषरमेतादि त्रिविध व्याधि	६९
द्रूप्य देशादि निश्चयानंतर चिकित्सा करने			११
की आज्ञा	११
अन्यथा दृष्टगत व्याधिमें वैद्यको सावधान			११

औषधजन्यज्वर योग	८६	उत्तरापाद	९१
भीतिज्वरयोग	११	श्रवण	११
प्राणज्वर योग	११	धनिष्ठा	११
यमघंट योग	११	शतभिषा	११
सुखयोग	११	पूर्वाभाद्रपद	११
असाध्य नक्षत्र	८७	उत्तराभाद्रपद	११
साध्यनक्षत्र	११	रेवती	९४
कष्टसाध्य नक्षत्र	११	नक्षत्रहवनकी विधि तथासभिषा	११
कष्टावली	८८	गंध	११
		फूल	११

प्रत्येक चरणका फल

आश्विनी	९०
भरणी	९१
कृत्तिका	११
रोहिणी	११
मृगशीर	११
आर्द्रा	११
पुनर्वसु	११
पुष्य	९२
अश्लेषा	११
मघा	११
पूर्वा फाल्गुणी	११
उत्तरा फाल्गुणी	११
हस्त	११
चित्रा	११
स्वाती	११
विशाखा	११
अनुराधा	९३
ज्येष्ठा	११
मूळ	११
पूर्वाषाढ	११

ज्वररोगकाकर्मविपाक

कर्मनव्याधिके लक्षण	९६
जन्मांतरके पापकोव्याधिरूपत्व और उसकी शांतिका यत्न	११
सर्व ज्वरे कर्मविपाक	९६
शांति	११
गार्ग्यका प्रमाण	११
शतज्वरका कर्मविपाक	९७
उसका शमन	११
ज्वरवालेके दैविक उपचार	११
तथा	९८
गणेश्वरादि देवोंका पूजन	११
उष्णज्वरका कर्म विपाक और उसकी शांति	११
सर्वज्वर परकुंभदान	११
कुंभदानका मंत्र	९९
अन्यप्रमाण	११
ज्वरोत्पात्ति	१००
तथा	१०१
अनेक प्राणियोंमे ज्वरके नामभेद	१०२

ज्वरके आठ भेद १०३	बलरूप संप्राप्तिके लक्षण ११६
धीमत्सज्वरका स्वरूप १०४	कालरूप संप्राप्तिके लक्षण ११६
त्रिशिराज्वर १०४	निदान पंचकका उपसंहार ११७
फापिलज्वर १०५	संनिष्ठ निदान ११७
भस्मविक्षेपक ज्वरका स्वरूप १०५	रोगका रोगनिदानकथन ११७
त्रिपदाज्वरका स्वरूप १०६	रोगोंको हेतुर्थ कारोपना ११७
पिङ्गलज्वरका स्वरूप १०६	रोग रोगका हेतुर्थकारी होना और न
महोदर ज्वरका स्वरूप १०६	होना ११८
ज्वलद्विग्रहज्वरका स्वरूप १०६	इस निदान ग्रथ पढ़नेकी आज्ञा ११८
सुश्रुतका प्रमाण १०६	
ब्राह्मण ज्वरके लक्षण १०७	
क्षत्रीज्वरके लक्षण १०७	
वैश्य ज्वरके लक्षण १०७	
शूद्रज्वरके लक्षण १०७	
ज्वरके नाम १०७	

निदानपंचक

मंगलाचरण १०८
ग्रंथकी उत्तमता १०९
रोग जाननेके पांच उपाय ११०
निदानके पर्याय वाचक शब्द १११
पूर्वरूप ११२
रूप ११२
उपशय ११३
उपशय प्रदर्शक चक्र ११३
अनुपशयके लक्षण ११४
संप्राप्तिके लक्षण ११५
संप्राप्तिके भेद ११५
संख्या रूप संप्राप्तिके लक्षण ११६
विकल्परूप संप्राप्तिके लक्षण ११६
प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण ११६

ज्वर निदान

ज्वरकी प्राधान्यतामें चक्रका प्रमाण .. ११७
ज्वरकी उत्पत्ति ११७
ज्वरकी संप्राप्ति ११९
ज्वरके लक्षण १२०
ज्वरका पूर्वरूप १२०
ज्वरके विशिष्ट पूर्वरूप १२१

ज्वरचिकित्सा

वैद्यको साधारण क्रियाकी आज्ञा .. १२१
ज्वरकी सामान्यचिकित्सा १२२
ज्वरके आदिमध्य और अन्तमे कर्तव्य .. १२२
लंघन १२३
लंघनकरानेमें प्रमाण १२३
लंघनके गुण १२४
बलनाशक लंघनका निषेध १२४
उत्तम लंघनके लक्षण १२४
अतिलंघनके दोष १२४
लंघनके अयोग्य रोगी १२४
लंघन सहन करनेमें कारण १२४
स्नेहन और मशोघनअयोग्योंको लंघनकी

आज्ञा	१२४	तरुण ज्वरमे परिपेकादिका निषेध	११
ज्वरके पूर्वरूपमें लघनकी आज्ञा....	१२५	तरुण ज्वरमें परिपेकादि सेवनसे उपद्रव ..	११
लघनकी अवधी	१	परिपेकादि प्रत्येकके दूषण हारीतसे ..	१३२
—			
वमनकराने अयोग्य	११	ज्वरकी तरुणादि अवस्था	११
अवस्थाविशेषमें वमन कराना	११	ज्वरके अष्टमदिन पचनमें हेतु	११
उक्त अवस्थाके विनावमन करना निषेध ..	११	ज्वरपाककी अवधी	११
ज्वरमें प्रथमकर्त्तव्य कर्म	१२६	तथा	११
चरकका प्रमाण	११	औपध देनेका काल	१३३
ज्वरमें पित्त विरुद्धाचरण निषेध	११	तथा औपध देनेका समय	११
—			
जल			
जलके गुण	११	वृद्ध वाग्भटका प्रमाण....	११
उष्णजलके गुण	१२७	यवारगूँआदि देनेका समय	११
ऋतुविशेषमें जलकायके नियम....	१२८	औपध देनेका काल	१३४
रात्रिमें सेवित उष्ण जलके गुण	११	काठि देनेका समय	११
उष्णोदकका प्रयोग	११	दिनांतमें अल्प और लघु भोजन करानेकी ..	११
उष्ण जल योडापीना	११	आज्ञा	११
शृतशीत जलके गुण	१२९	तरुण ज्वरमें रात्रिके भोजनादिका निषेध ..	११
उष्णजलकी विधि	११	विदेहका प्रमाण	११
अधिकजलपीनेके दोष	११	अन्नदेनेका काल	१३५
शर्बत ...	११	औपधादिके अजीर्णमें अन्नके अग्राह्यत्व ..	११
वर्षा और शृतशीत जलके गुण....	१३०	जर्णि औपधके लक्षण	११
दिनमें ओंटे जलको रात्रिमें और रात्रिमें	११	औपध ग्रहणका मुहूर्त्त	११
ओंटे जलकोदिनमें पीनानिषेध	११	औपध ग्रहणमें मंत्र	१३६
जल शोधन विधि	११	औपध ग्रहणकी विधि	११
तरुण ज्वरमें काढा देनानिषेध	११	गंडूप वर्जन	११
इसमें दृष्टांत	१३१	क्वाथ, कल्क, स्वरस, अंजन, चूर्ण, सुरमा,	११
कपायकी संज्ञा	११	गुड, लेह, घृत, तेलआदि पदार्थोंकी श-	११
नवीन ज्वरमें काठे देनेके अवगुण	११	क्तिवीर्य नष्टकालवर्णन	१३७
अजीर्णादिमें औपध पीनेसे आमकी वृद्धि ..	११	वातज्वरके लक्षण	११
		गुडुच्यादि पाचन	१३८
		शठचादि काढा	११
		श्रीपण्यादि पाचन	१३९

पिप्पल्यादि पाचन १६१	कणादि काढा १६८
क्षौद्रादि काढा १६२	मुस्तादि काढा १६९
पिप्पल्यादिचूर्ण ११	
कट्फलादिलेह ११	
कट्फलादिचूर्ण ११	
निर्गुड्यादि काढा ११	
यवान्यादि काढा १६३	
वासादि काढा ११	
निंवादि काढा ११	
मरीच्यादि काढा ११	
निदग्धिकादि काढा ११	
भांग्यादि काढा १६४	
मानुलुंगादि काढा ११	
त्रिफलादि काढा ११	
पिप्पल्यादिगण ११	
पंचकोल १६५	
पटोलादि काढा ११	
वोजपूरादि काढा ११	
भूर्निवादि काढा ११	
कटुक्यादि काढा ११	
त्रिकंटकादि काढा १६६	
कुष्ठादि काढा ११	
त्रिकलादि काढा ११	
सप्तष्टदादि काढा ११	
आमलक्यादि काढा ११	
निक्तादि काढा १६७	
मुन्नादि काढा ११	
चपलादि काढा ११	
पिचुर्मदादि काढा ११	
वासादि काढा ११	
वेदस्यादि काढा १६८	
	वातपित्तज्वर
	वात पित्त ज्वरलक्षण ११
	नीलोत्पलादि हिम ११
	निदग्धिकादि काढा १६९
	विश्वादि काढा ११
	नीलोत्पलादि काढा ११
	आरग्वधादि काढा ११
	द्राक्षादि काढा १७०
	पंचमूलादि काढा ११
	मुद्गादि यूप ११
	मुद्गादि योग ११
	मधुकादि कपाय ११
	पंचभद्र कपाय १७१
	दुरालभादि कपाय ११
	मुर्निवादि कपाय ११
	त्रिफल्यादि कपाय ११
	मधुनादि फांट ११
	द्राक्षादिक० १७२
	व्याघ्रादिक० ११
	मुद्गादि काढा ११
	चलादि काढा ११
	रसायन ११
	वातकफज्वर
	वातकफ ज्वर लक्षण ११
	चिकित्सा ११
	यूप ११

दोषजनित कालमर्यादा	१८८	विषाद्युद्धूलन	१९६
कट्फलादि पाचनम्	१८८	चल्काद्युद्धूलन	१९६
दशमूलादि मंड	१८८	चटनी	१९६
दुस्पर्शादि सिद्धात्र	१८८	लंघन विधि	१९६
लाजसत्तुक	१८९	लंघन	१९६
पित्त शमन करनेके कारण	१८९	अति लंघनके विचार	१९६
शीतोदक सेचनका निषेध	१८९	लंघितको अन्न	१९६
शिरिषाद्यंजन	१८९	पंचमुष्टिक यूप	१९७
कस्तूरिकाद्यंजन	१९०	सप्त मुष्टिक यूप	१९७
लंघन	१९०	कंपादिककी चिकित्सा	१९७
शीतजलपान निषेध	१९०	अभ्यंजन	१९७
वालुका स्वेद	१९०	वर्त्तकादि रस	१९७
सैन्धवादि नस्य	१९०	सन्निपाती मांसनिषेध	१९७
मातुलुंगादि नस्य	१९१	सुवर्णादि छेप	१९८
कल्पतरु नस्य	१९१	चिकित्सा प्रक्रिया	१९८
द्राक्षादिलेप जिह्वापर	१९१	अन्य सन्निपात	१९८
आर्द्रकादिक बलग्रह	१९१		
अष्टांगावलेह	१९२	वातोल्बण	
कट्फलादि अवलेह	१९२	वातोल्बण सन्निपात	१९९
आर्द्रकादि स्वरस	१९२	वातोल्बण सन्निपातकी चिकित्सा	१९९
मधु निषेध	१९३	मुस्तादि कादा	१९९
प्रक्रिया	१९३	कट्फलादि कादा	१९९
दूसरा प्रकार	१९३		
लघनका असहन	१९३	पित्तोल्बण	
एक कालमें दो प्रकारकी औषध देनेका निषेध	१९४	पित्तोल्बण सन्निपात निदान	२००
अन्य प्रतीकार	१९४	पित्तोल्बण सन्निपात चिकित्सा वादा	२००
कंठकायोदि पाचन	१९४	चंदनादि पानी	२००
मन-शिलादि अंजन	१९४	मुस्ताद्यष्टादशांग	२००
भूनिवादि मर्दन व उद्धूलन	१९४	किरानादि कादा	२०१
यवानिकाद्युद्धूलन	१९५	शन्धादि कादा	२०१

कफोल्बण

कफोल्बण संनिपात निदान	२०१
कफोल्बण चिकित्सा	२०२
कफोल्बणोंपर काथ	”

त्र्युल्बण

त्र्युल्बण संनिपात	”
नागरादि काढा	”
व्योपादि काढा	”

वात पित्तोल्बण

वात पित्तोल्बण संनिपात	२०३
वातपित्तोल्बण चिकित्सा	”

वातश्लेष्मोल्बण

वातश्लेष्मोल्बण	”
चिकित्सा	”

पित्त कफोल्बण

पित्त कफोल्बण	२०४
चिकित्सा	”
हीनवात मध्यपित्त वर श्लेष्माधिकसं०	”	”
हीनवात मध्यकफ व पित्ताधिक संनि०	”	”
हीनपित्त मध्यकफ व वाताधिक सं०	”	”
हीनपित्त मध्यकफ श्लेष्माधिकसंनि	२०५	”
हीनकफ मध्यवात व पित्ताधिक संनि०	”	”
हीनकफ मध्यपित्त व वाताधिक संनि०	”	”
छहोंकी एक श्लोकसं चिकित्सा	”	”

प्रबलदोषकी शांति होनेसे अन्यहीन दोषों-		
की शांति कथन	२०६
द्वात्रिंशांग काथ	”
अष्टादशांग काढा	२०३
द्वादशांग काढा	”
संनिपात पर रेचन	२०७
संज्ञानाश चिकित्सा	”
बिल्वादि काढा	”
शुंक्खादि काढा	”
अर्कादि काढा	२०८
तिक्तादि काढा	”
त्रिदोषपर	”
दाव्याद्यष्टादशांग	२०९
गुडूच्यादि काढा	”
अमृतादि काढा	”
विश्वादि काढा	”
त्र्युपणादि काढा	२१०
दशमूलादि काढा	”
आटरूपादि काढा	”
कटूफलादि काढा	”
किरातादि काढा	२११
अष्टादशांग काढा	”
पंचतिक्तक काढा	”
दाव्यंबुदादि काढा	”
ग्रंथ्यादि काढा	२१२
छशुनादि काढा	”
दशमूलादि काढा	”
पंचमूलादि काढा	”
अर्कादि काढा	२१३
मृतसंनोवनी वटिका	”
त्रिनेत्र रसः	”

भस्मेश्वरो रसः २१४	रास्नादि काढा २२३
अग्निकुमार रसः १	क्षारादि परिमाण १
पंचवक्त्र रसः २१५	संधिकपर लंघन १
दूसरा प्रकार १	
उन्मत्त रसः २१६	अंतक
कनकसुंदर रसः १	अंतक संनिपात निदान २२४
तन्द्रा २१७	अंतके रोटिका बंधनम् १
अमुरादि अंजन १	मृतसंजिवनी रसः १
लोहांजन २१८	पथ्यादि काढा २२५
सैधवादि अंजन १	असाध्यत्व १
ज्योतिष्मतीनस्य १	अंतकमें मुख्य औषध १
जातीपुष्प नस्य १	
द्राक्षाद्यवलेह १	रुग्दाह
संनिपात प्रकोप कारण २१९	रुग्दाह संनिपात निदान २२६
संनिपातोंके नाम १	जलधर काढा १
उनकी मर्यादा १	अभयादि काढा १
साध्यासाध्य.... २२०	ब्राह्मादि काढा १
	उशीरादिपडंग काढा.... १
संधिक	धान्यक काढा २२७
संधिक संनिपात १	अगुर्वादि धूप १
संधिकारी रसः १	दध्यादि लेप १
संनिपातानल रसः १	बदर्यादि लेप १
निर्गुड्यादि धूप २२१	राजतर्पण १
दूसरानिर्गुड्यादि धूप १	स्त्रीका आर्लिगन २२८
देवदारुकाढा १	पथ्यावलेह १
मुस्तादि काढा २२२	भैरवी गुटी १
वचादि काढा १	
रास्नादिकाढा.... १	चित्तभ्रम
अमृतादि काढा १	चित्तभ्रम संनिपात २२९
ग्रंथ्यादि काढा २२३	मध्यादि काढा १
पंचमूल्यादि काढा १	द्राक्षादि काढा १

बाह्यचादि काढा	”
पथ्यादि काढा	२३०
हरीतक्यादि काढा	”
कणाद्यंजन	”
कुंभोद्भवस्य	”
धूप	२३१
संनिपात गजाकुश	”
प्राणेश्वर रस	”
मेरेश्वर रस	”

शीतांग

शीतांग संनिपात निदान	”
शीतांगकी चिकित्सा	२३३
अर्कादि काढा	”
मातुलुंगादि काढा	”
कर्कोटाद्यहर्त्सन	”
श्रीवेष्टादि घूर्ण	”

तद्रिक

तद्रिक संनिपात निदान	२३४
तद्रिक परीक्षा	”
भारंग्यादि काढा	”
दूसरा प्रकार	”
अमृनादि काढा	२३६
रास्नाद्यंजन	”
नुरंगलाला अंजन	”
कृष्णादि नस्य	”
मरिचादि नस्य	”
क्षुद्रादि नस्य	२३६

कंठकुब्ज

कंठकुब्ज निदान	२३६
शृंग्यादि काढा	”
त्रिकट्वादि कपाय	”
फलत्रिकादि काढा	”
किरातादि काढा	२३७
कृष्णादि नस्य	”
सिद्धवटी	”

कर्णक

कर्णक संनिपात निदान	”
रास्नादि कपाय	२३८
रास्नादि काढा	”
मरिचादि काढा	”
भारंग्यादि काढा	”
दशमूलादि काढा	”
इंगुद्यादि लेप	२३९
प्रलेप	”
व्रण चिकित्सा	”
कुलित्वादि लेप	”
गैरिकादि लेप	”
प्रियंग्वादि लेप	२४०
अर्कादि लेप	”
दंत्यादि लेप	”
नागरादि लेप	”
निशादि लेप	”
बोजपूरादि लेप	२४१
वज्रमुष्ट्यादि लेप	”
सिद्धार्थादि लेप	”
रोहोत्तक्यादिलेप	”

मरिचादि नस्य २४२	रक्त ष्ठीवी
कर्णकपरनस्य २४२	रक्तष्टीवी संनिपात निदान २४५
सामान्य उपचार २४२	पर्पटादि काढा २४६
कांजिकादिलेप २४२	जलदादि काढा २४६
उपचार २४२	रोहिपादि काढा २४६
अन्न २४३	पद्मादि काढा २४६
	मधुकादि काढा २४६
	दूर्वादि नस्य २४६
	आम्नादि नस्य २४७
	चिकित्सा २४७
	रक्तष्टीवि चिकित्सा २४७
	सोमपाणि रसः २४७
	प्रलापक
	प्रलापक संनिपात निदान २४८
	मुस्तादि काढा २४८
	तगरादि काढा २४८

बृहन्निघण्टुरत्नाकरके तिसरेभागकी अनुक्रमणिका-

समाना ।

“श्रीविंकेटेश्वर” छापाखाना (बंबई.)

ॐ

श्रीशंभुदे

श्रीनिकुंजविहारिणे नमः

आयुर्वेदोद्धारांतर्गत बृहन्निघंटुरत्नाकरे

चिकित्साखण्ड प्रारम्भः

शिष्य—चिकित्साकिसकोकहते है ?

गुरु—शरीरमें धात्वादि विकृत दोष समान करनेवाले कर्मको चिकित्सा कहते है जैसे—वाग्भटमें लिखाहै ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।

सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां मतम् ॥

अर्थ—जिनक्रियाओंकरके देहमें रसरक्तादि धातु समानहोवे वही रोगोंकी चिकित्साहै, और वैद्योंका वही कर्मकहाहै ॥

सुश्रुतेऽपि

चतुर्णां भिषगादीनां सस्तानां धातुवैकृते ।

प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थां चिकित्सेत्याभिधीयते ॥

अर्थ—सुश्रुतमेंभी लिखाहै कि उत्तम वैद्यादे (वैद्य, रोगी, सेवक, और औषध) चतुष्टयोंका विकृत (कुपित) धातुके समान करनेके लिये जो प्रवृत्ति है उसको (चिकित्सा) ऐसे कहते है ॥

अन्यच्च

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते ।

दोषधातुमलानां या साम्यकृतसैवं रोगहृत् ॥

अर्थ—अन्यत्रभी लिखाहै कि जो क्रिया व्याधिके हरण करने वाली है उसको चिकित्सा कहते हैं। जो चिकित्सा दोष (वातादि) धातु (रसरक्तादि) और मलादिकोंको समान करती है वही रोगहरणकर्ता जाननी। क्रिया शब्द करके इसजगे कर्मका ग्रहणहै ॥

क्रियाकेलक्षण

यात्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।

सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

अर्थ—जो बंदीहुई व्याधिको शमनकरे परंतु अन्य व्याधिको प्रगट न करे उसीको क्रिया (चिकित्सा) कहते हैं। और जो एकव्याधिको हरणकरे और तत्काल दूसरी व्याधिको प्रगटकरदे उसे क्रिया नहीं कहते। (क्रिया) शब्द करके इसजगे (चिकित्साका) ग्रहणहै। जैसे “ आरंभो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणं । उपायः कर्मचेष्टा च चिकित्सा च नवक्रियाः ” यह अमरकोषमें नो नाम चिकित्साके कहे हैं ॥

चिकित्सा औरउसका प्रयोजन

यद्वाधिनिर्घातकरंवक्ष्यतेतच्चिकित्सितम्

चिकित्सितार्थएतान्विकाराणांयदौषधम्

अर्थ—जोव्याधि अर्थात् रोगका नाशकरे वहीचिकित्सा जाननी—उस चिकित्साका प्रयोजन इतनाही है कि विकारोंकी औषधि करना ॥

चिकित्साकेनाम

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम्

प्रायश्चित प्रशमनप्रकृति स्थापनं हतम् ॥

विद्याद्वेषजनामानि ।

अर्थ—अत्र प्रथम चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित-प्रशमन-प्रकृतिस्थापन-और हत ये भेषज (औषधी और चिकित्सा) के नाम हैं ॥

उपचारास्तूपचर्या—चिकित्सासकप्रतिक्रिया

निग्रहोवेदना निष्ठाक्रियाचोपक्रमश्रमाः

अर्थ—ग्रंथातरसे चिकित्साके नामकहते है जैसे—उपचार, उपचर्या—चिकित्सा— रुक्मंतिक्रिया—निग्रह—वेदनानिष्ठा—उपक्रम और श्रमये चिकित्साके नाम

प्रायश्चित्त प्रशमनं चिकित्सा शांतिकर्मच

पर्यायास्तस्यनिर्दिष्टा

अर्थ—सुश्रुतमे भीलिखाहै जैसे—प्रायश्चित्त, प्रशमन, चिकित्सा, और शांतिकर्म ये चिकित्साके पर्यायवाचकशब्द है ॥

शिष्य—चिकित्सा कितने प्रकारकी है ?

“गुरु—चिकित्सा दो प्रकारकी है जैसे—लिखाहै “ चिकित्सितं कर्षणवृद्धणाख्यं ” अर्थात् चिकित्सा दो प्रकारकी है एककर्षण—दूसरी वृद्धणं । परंतु किसी आचार्यके मतसे तीन प्रकारकी है । जैसे—लिखाहै ॥

(निदानरोगविपरीत और तदर्थकारिणी चिकित्सा)

निदानविपरीता च विपरीतारुजस्तथा ।

तदर्थकारिणीचेति चिकित्सा त्रिविधा मता ॥

अर्थ—निदानविपरीत—और रोगविपरीत तथा निदानरोगविपरीत अंसे चिकित्सा तीनप्रकारकी है निदान विपरीत चिकित्सा जैसे विषभक्षणजन्य गरमीमें दूध घृतका पान करना, रोगविपरीत चिकित्सा जैसे अतीसार रोगमें दस्तोंका बंद करना, उसीप्रकार निदान और रोगविपरीतचिकित्सा जैसे—शीत कफज्वरमें सोढाकाकाढा—परंतु एतानोप्रकारकी चिकित्सा जन्ही पूर्वोक्त कर्षण वृद्धणके अंतर्गत है ॥

दैवीमानुषीऔरराक्षसीचिकित्सा

रसादिभिर्याक्रियते चिकित्सा दैवीति वैद्यैः परिकीर्तिता सा ।

सा मानुषी याऽथ कृताफलाद्यैः सा राक्षसी शस्त्रकृताभवेद्या ॥

अर्थ—जो रसादिकरके चिकित्सा करीजावे उसको दैवी चिकित्सा वैद्यकहते है, और जो फलमूलादि करके करीजावे उसे (मानुषीचिकित्सा) तथा शस्त्रकृत अर्थात् चीरने फाड़नेको (राक्षसी चिकित्सा कहते है) यह अधमहै ॥

१ जो दोषभातमलादिकों को क्षीणकरदे उसको कर्षण चिकित्सा कहते जैसे—वमन विरेचन, लंघनादि । २ जो दोषघातमलादिकोंको बढाकर रोगको दूरकरे उसको वृद्धण चिकित्सा कहते है अर्थात् निसमें रोगीका देहभी यथायं वगार है और रोग दूर होजाय इस चिकित्साको प्राय हकीम और डाक्टर लोग बहुतमसन्न करते है ।

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता ।
शस्त्रैः कषायैर्लोहाद्यैः क्रमेणात्यासुपूजिता ॥

अर्थ—चिकित्सा—आसुरी, मानुषी, और दैवी, इन भेदोंसे तीनप्रकारकी है तहां शस्त्रसै अर्थात् चीरना फाडना, काटना आदि चिकित्साको आसुरी (राक्षसी) कहते है । और काढे, चूर्ण, गुटिका, आदिकरके जो चिकित्सा करीजाय वो मानुषी चिकित्सा है । और जो सुवर्ण, चांदी, और लोह आदि शब्दसै पारा, गंधक, रसोपरस, रत्नोपरत्न, और विषादिकसै चिकित्सा करीजावे वो दैवीचिकित्सा कहलाती है । इनमें अंतकी चिकित्सा अर्थात् दैवी चिकित्सा माननीय है ॥

शिष्य—चिकित्सामें कौन २ वस्तु जानने योग्य है ।

गुरु—चिकित्साकरने वालोको प्रथम चिकित्साके अंगोंका जानना आति आवश्यक है ।

शिष्य—तो आप कृपापूर्वक चिकित्साके अंगोको कहिये ।

गुरु—जैसे अंगहीन मनुष्य अच्छा नही इसी प्रकार अंगहीन चिकित्सा कीभी शोभा नही अतएवमें उन अंगोको कहता हूं ।

अथचिकित्साङ्गानि

रोगी दूतो भिपग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः ।

सदौपयं चिकित्साया इत्यंगानि वृथा जगुः ॥

अर्थ—रोगी, दूत, वैद्य, दीर्घआयु, द्रव्य, उत्तममेवक, और उत्तम औषधी ये चिकित्साके अंग विद्वानोंने कहे है । जैसे—अंगहीन मनुष्य अशोभितहोता है उसीप्रकार चिकित्साभी अंगहीन उत्तमनहीं कहलाती ॥

शिष्य—आपने “घतुर्णाभिपगादीनां” इसश्लोकमेंजो वैद्यादिचतुष्टय कहे उन का चिकित्सामें क्याप्रयोजन है और उनको क्याकरते है ॥

गुरु—वो चिकित्साके पादचतुष्टय है अर्थात् चिकित्साके चारपैर है इनके बिना चिकित्सा चलनहीं सक्ती यहीप्रयोजन है ॥

चिकित्साकेपादचतुष्टय

भिपग्द्रव्याण्युस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।

गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥

अर्थ—वैद्य,—द्रव्य (औषधि) रोगीका सेवक,—और रोगी, ये चिकित्सा केचारपैरहै । यह पादचतुष्टय उपयुक्त गुणसंपन्न होनेसे रोगशांतिकरनेको समर्थ होते है ॥

पाठांतरं

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।

एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥

अर्थ—वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक (सेवक) ए चिकित्साकेचार पैर-कर्मसाधनके हेतुहै; अर्थात् इनके बिना चिकित्सा कर्म नहीं होसक्ता ॥

वैद्यविना पादत्रको निष्फलत्व

वैद्यहीनास्त्रयः पादागुणवंतोऽप्यपार्थकाः ।

उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथा ध्वर्युंविनाध्वरे ॥

अर्थ—वैद्यरहित चिकित्साके अन्य तीनपाद गुणवान्भी निरर्थक है, जैसे—यज्ञमें विना अध्वरी (उपाध्याय) के उद्गाता, होता, और ब्रह्मा, ए निष्फल है । जैसे अध्वरी—उद्गाता होता और ब्रह्माको पृथक २ कर्ममें युक्ति बताता रहता है उसीप्रकार वैद्य—रोगी सेवक और औषधमें युक्ति बताता रहता है ॥

पादत्रयविनाभीवैद्यकोमुख्यत्व

वैद्यस्तुगुणवानेकस्तारयेदातुरानसदा ।

छवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधारइवार्णवम् ॥

अर्थ—गुणवान् अकेला वैद्यही रोगियोंको सदैव उद्धार करता है अर्थात् रोगसे निर्मुक्त करता है जैसे प्रतितर (भीतरभरे हुए जलके उलीचने वालों करके) हीन नावको अकेला मछाह (कवटिया) पार लगाता है ॥

पादचतुष्टयमें वैद्यको प्राधान्यत्व

कारणषोडशगुणंसिद्धौपादचतुष्टयं । विज्ञाता शासिता योक्ता प्रधानं भिषगत्र तु । पक्तौहि कारण पक्ष्यथा पात्रेधनानलाः ॥ विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि च । आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाकारण संज्ञिताः ॥ वैद्यस्यातश्चिकित्सायां प्रधानं कारणंभिषक् ।

मृद्वंडचक्रसूत्राद्याः कुम्भकारादृतेयथा ॥ नावहांति गु-
णं वैद्यादृतेपादत्रयं तथा ।

अर्थ—चिकित्साकी सिद्धीमें सोलहगुण संपन्न पादचतुष्टय कारण है, तथा चिकित्साके पादचतुष्टयोंमें जानने वाला, आज्ञा करनेवाला, युक्ति बताने वाला वैद्य है, इसीसँ वैद्यको मुख्यत्व है। इनको दृष्टांत देकर समझाते हैं कि जैसे रसोई करने वाले प्राणीको रसोईके करनेमें पात्र, ईंधन, और अग्नि ये कारण हैं तथा जीतनेकी इच्छा करने वाले राजा को जीतनेमें जैसे पृथ्वी, फौज, और हथियार कारण है। इसी प्रकार वैद्यको चिकित्साकी सिद्धीमें अनुरादि (रोगी आदि) तीनपाद कारण है, इसीसँ चिकित्सामें प्रधान कारण वैद्यहै। ओर दृष्टांत देते हैं कि जैसे मिट्टी (जिस्से वरतन बनते हैं) दंड (चाक फिरानेकी लकड़ी) और वासन तयार होनेपर काटनेका डोरा इत्यादि सब वस्तु धरी हैं परंतु बिना कुल्लार (बनाने वाले) के वोअपने २ गुणोंको नहीं करते [मिट्टी स्वयं वासनरूप नहीं बनती, लकड़ी स्वयं चाकको घुमाती नहीं है, और डोरा-काटता नहीं है, तात्पर्य यह है कि जैसे मिट्टी, लकड़ी, और डोरा उस कुल्लार के आधीन हैं वो उनसँ काम लेसक्ता है] इसीप्रकार रोगी-औषधी और सेवक ये वैद्यके आधीन हैं बिना वैद्य कुछ नहीं करसक्ते परंतु वैद्य सब कार्य करा सक्ता है ॥

तहांप्रथमवैद्यकेलक्षण

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते ।

सच यादृक् समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते ॥

अर्थ—जो चिकित्साकरे उसको चिकित्सक कहहे है वो वैद्य जैसा उच्चम उसको लिखते है ॥

वैद्यशब्दकीव्युत्पत्ति

पंचतत्त्वात्मकं सर्वं वेत्ति यस्मादशेषतः ।

तस्माद्वैद्य इति ख्यातो तस्यनामानि कथ्यते ॥

अर्थ—संपूर्णब्रह्मांडके पदार्थोंको पंचतत्त्वात्मक जाननेसँ इसको वैद्य कहते हैं अथवा (विद्वाने) इस धातुसँ वैद्य पद सिद्ध होताहै इससँ संपूर्ण-त्रिस्कंधात्मक आयुर्वेद तथा अन्य व्याकरण-न्याय-ज्योतिषादि संपूर्ण शास्त्रोंके आशर्थोंको तथा लौकिकके संपूर्ण व्यवहारोंको जाननेसँ इसको वैद्य ऐसा कहते हैं] अब उस वैद्यके नामोंको कहते हैं ।

वैद्यकेनाम

वैद्यः श्रेष्ठोऽगदंकारो रोगहारी भिषग्विधिः ।

रोगज्ञो जीवनो विद्वान् आयुर्वेदी चिकित्सकः ॥

अर्थ—वैद्य, श्रेष्ठ, अगदंकार, रोगहारी, भिषक्, विधि, रोगज्ञ, जीवन, विद्वान्, आयुर्वेदी, और चिकित्सक, ये वैद्यके संस्कृत नाम हैं इसी प्रकार गदहा-गदारि, माणाचार्य, माणद, और वैद्यराज, इत्यादि औरभी अनेक नाम वैद्यके हैं

वैद्यकेलक्षण

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती । लघुहस्तः

शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्दीमान्

व्यवसायी प्रियंवदः।सत्यधर्मपरो यश्च वैद्यईदृक् प्रशस्यते ॥

अर्थ—जिसने यथायोग्य आयुर्वेदशास्त्र अध्ययन कर उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम अर्थात् हृद्रत करलियाहो, अन्यवैद्यके करेहुए छेदनादि और स्नेहपाकादि क्रियादि चिकित्साको अनेकवार देखचुकाहो, स्वयं चिकित्सामें कुशल, तथा जिसका हलकाहाथहो, अर्थात् छेदनादि क्रियामें जिसका हाथ कांपे नहीं । पवित्राचार, (वाहरभीतरसै शुद्ध) शूर (खेदरहित)नवीन तयार करीहुई औपययुक्त, तथा अग्नोपहरणीयाध्यायमें पठित यंत्र शस्त्रादि युक्त, तात्काल स्फुरणवाली बुद्धि, अर्थात् वादकी किसी अवस्थामें मोहित न हो । बुद्धवान् (जो अनुक्त और दुरुक्त ग्रहण करनेवाली और त्यागनेवाली बुद्धिवाला) उद्योगी (रोगीकी विगडीहुई अवस्थामेंभी यत्नकरनेमें मोहित न हो) प्रियवचन बोलने वाला, कोई प्रियंवदकेस्थानमें (विशारद) ऐंसा पाठ कहते हैं तहां विशारद कहिये शास्त्रके कठिन शब्दोंको देखकरभी न घबडावे, सत्य और धर्ममें तत्पर ऐंसा वैद्य उत्तम कहाहै ॥

वैद्यकेगुणचतुष्टय

श्रुतेपर्यवदातृत्वं बहुशो दृष्टकर्मता ।

दाक्षंशौचमितिज्ञेयं वैद्येगुणचतुष्टयम् ॥

अर्थ—शास्त्रमें प्रवीणत्व तथा अनेक प्राचीन वैद्यकी कर्मसिद्धीको जिसने अनेक बारदेखाहो, चतुर औ पवित्र ये वैद्यमें चारगुण जानने ॥

अथ प्रसंगवत् चरकस्यै त्रीण्यप्रकारके वैद्योको यहाँपरवर्णन करतेहै ॥

त्रिविधवैद्य

भिषक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धिसाधिताः ।

सन्ति वैद्यगुणैर्युक्ता स्त्रिविधा भिषजो भुवि ॥

अर्थ—इस पृथ्वीमें तीनप्रकारके वैद्यहै—जैसै कि छद्मचर (कपटी) वैद्य, दूसरे सिद्धसाधित,—और तीसरे वैद्यगुणोकरके युक्त अर्थात् उत्तम वैद्य है ॥

ठगवैद्यकेलक्षण

वैद्यभांडौपधैः पुस्तैः पल्लवै रवलोकनैः ।

लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रातिरूपकाः ॥

अर्थ—वैद्योंके पात्र,—औपधि,—पुस्तक और पत्तेआदिके देखनेसँ जो भिषक (वैद्य) शब्दको प्राप्तहोते है वो वैद्य मूर्खहै, उनको प्रातिरूपक अर्थात् ठगिया कपटकेवने वैद्यजानने चाहिये, तात्पर्य यहहै कि जो मूर्खवैद्य ठगियाहोते है वोअनेक शीशी,—अमृतवान् आदि पात्रोंसे और झूठी औपधि, पोथी, रूखडीआदिसँ अपने स्थानको सजायेहुए रखते है कि जिससँ रोगियोंको यह मालूम होवेकि ये कैसे बडेभारीवैद्य हैं, परंतु अँसे दुष्टवैद्य रोगियोंको त्यागदेने चाहिये ॥

सिद्धिसाधितवैद्यकेलक्षण

श्रीयशोज्ञानसिद्धीनां व्यपदेशादतद्विधा ।

वैद्यशब्दं लभन्ते ये ज्ञेयास्ते सिद्धिसाधिताः ॥

अर्थ—चिकित्साश्री और यशोज्ञान कहिये चिकित्साक्रियाकी सिद्धी इनके भिससँ जो वैद्य शब्दको प्राप्त होते है परंतु उनमें उक्तगुण होवे नहीं उनको सिद्धि साधित वैद्य कहतेहै । अर्थात् विना चिकित्साकरे और विना चिकित्साकी क्रियाके करे जिनका संसारमें यह नाम होजावे कि अमुक वैद्यकी चिकित्साके बराबर दूसरेकी चिकित्सा (इलाज) नहीं है, और वो इसकर्ममें अत्यंत निपुणहै उसको सिद्धसाधित वैद्य शास्त्रमें कहाहै । [अँसे वैद्य क्या काम करते है कि किसी नवीन सहरमें जाकर आप वैद्यवन बैठते है, और उसीसहरके अथवा दशवीस अन्य सहरके घूर्त्त मनुष्योंको कुठ लोभदेकर अपना नाम इसप्रकार प्रसिद्ध कराते है कि वो उस सहरमें जाकर यह प्रसिद्धी करतेहै कि भाईहो ये नए वैद्य आएहै इनका भगवान् मंगलकरे कि मेरे फ्योंसँ कोढ़का रोग था सो हन्दीने दश-

ही दिनमें दूर कर दिया । दूसरा मनुष्य कहताकि मेरे महिनोके पुराने ज्वरको दोतीन पुडियोमें खोय दिया । तीसरा कहताहैकि मेरे दमेके रोगको जो बडे र वैद्य और डाक्टरोसँ अच्छा न होसका उसको इन्होने थोडेहीदिनमें बिलकुल जडसै उखाड दीना परमात्मा इनकी जयकरे, इसी प्रकार कोई कुछ और कोई कुछ रोगका नामलेते है । वस इन दुष्टमनुष्योके वचनरूप जालमें फसकर उससहरके भोले भाले मनुष्य इनवनेहुए सिद्धसाद्रक वैद्योके पास खिचेहुअँ चलेजाते है । और जब ठगा जाते है तब पश्चात्ताप करते उन दुष्टमनुष्योकी निंदा करते हुए (जोकि उन वैद्योकी बडाई करतेथे) चुपहो बैठ रहते है ।]

सद्वैद्यकेलक्षण

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसुखप्रदाःः

जीविताभिपरास्तेस्युर्वैद्यत्वन्तेष्ववस्थितम् ॥

अर्थ—प्रयोग (औषध प्रयोग करण) ज्ञान (शास्त्रज्ञान) विज्ञान (लोक व्यवहारज्ञान) सिद्धि (चिकित्साकर्मकी सिद्धी) इन करके जो विख्यातहै । और रोगियोको सुखकेदेनेवाले वो प्राणाभिपर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य है ये रोगियो करके उपादेय है अर्थात् अँसे वैद्योसँ अपनी चिकित्सा करानी चाहिये ॥

अथ प्रसंगवसचरकसँ द्विविध वैद्यवर्णनके वास्ते दशप्राणायतनीया ध्यायकावर्णन करते है ॥

अथातोदशप्राणायतनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ—अबहम दशप्राणायतनीय अध्यायकी व्याख्याकरैगे अर्थात् प्राणोके रहनेके दशस्थान जिस्मेंकहे अतएव उसका वर्णन इस अध्यायमें कराजायगा ॥

दशैवायतनान्याहुः प्राणोगेषुप्रतिष्ठितः ।

शङ्खमर्मत्रयंकण्ठोरक्तशुक्रौजसीगुदः ॥

तानीन्द्रियाणिविज्ञानं चेतनाहेतुमामयम् ।

जानीतियः सविद्वान्वै प्राणाभिसरुच्यतेइति ॥

अर्थ—जिनमें प्राणरहतेहै वो दशस्थान कहे है जैसे—दोनोकनपटी, तीनमर्म, कंठ, रुधिर, शुक्र, ओज, और गुदा, इनदशस्थानमें प्राणरहाकरते है—इनको

और इन्द्रियोंके विज्ञानको तथा चेतनाके हेतुको और रोगको जो जानता है उस विद्वान् वैद्यको प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य जानना ॥

अब इसजगे यह जिज्ञासाहुई किप्राणाभिसर किसका नाम है इसवास्ते कहते है ॥

द्विविधवैद्यवर्णनम्

द्विविधास्तुखलुभिपजोभवंत्याग्निवेश-
प्राणानामेकेऽभिसराहन्तारोरोगाणा-
मेकेऽभिसरारोगाणांहन्तारःप्राणिनामिति ।

अर्थ—अब चरकके मतसे दोप्रकारके वैद्य कहते है । महर्षिआत्रेय प्रिय-
शिष्य अग्निवेशको संबोधन देकर बोलेकि हेवत्स ! इसपृथ्वीमें दोप्रकारके चि-
कित्सक (वैद्य) है, एक प्राणाभिसर अर्थात् प्राणोंके रक्षक और रोगोंके नाश-
क । दूसरे रोगाभिसर अर्थात् रोगोंके रक्षक और प्राणोंके नाशकर्त्ता ॥

एवं वादिनं भगवन्तमात्रेयमाग्निवेशउवाच । भगवंस्ते
कथमस्माभिर्वेदितव्याभवेयुरिति । भगवानुवाच । ये
इमे कुलीनाः पर्यावदात्तश्रुताः परिशिष्टकर्माणो द-
क्षाः शुचयोजितहस्ता जितात्मानः सर्वोपकरणवन्तः
सर्वेन्द्रियोपपन्नाः प्रकृतिज्ञाः प्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणि-
नामभिसरा हन्तारो रोगाणाम् ॥

अर्थ—इसप्रकार आचार्यके वाक्यको श्रवणकर अग्निवेश बोलेकि हेभगवन्
ये दोप्रकारके जो वैद्य आपने वर्णनकरे उनको हम किसप्रकार जाने, अतएव
अनुग्रह करके उनके लक्षण कहो । तब महर्षि बोले किहेवत्स ! श्रवणकर अबमें दो-
नोप्रकारके वैद्योंके लक्षण वर्णन करताहूँ । उत्तम कुलमें जन्म जिन्होंका शुद्ध
शास्त्रज्ञान संपन्न, कृतकर्मा (जिन्होंने वैद्यकी क्रिया स्वयं करलीनीहो) कर्म-
करनेमें चतुर, -पवित्र, -जितहस्त (चोरीआदि दुष्टकर्ममें रहिन) जिती है आ-
त्मा जिन्होंने, -सर्व चिकित्साकी सामग्री करके युक्त, - सर्व इन्द्रीन् करके युक्त
(अर्थात् फाँगा, -भैड़ा, -लूटा, -जगड़ा, -टोंडा, -इत्यादि लक्षण युक्त नदी)
रोगियोंकी प्रकृतिसे जानने वाला, -और प्रतिपत्तिवेत्ता अर्थात् ज्ञानी अंगवैद्य
रोगियोंके प्राणोंके रक्षक और रोगोंके नाश करनेवाले होते हैं ॥

तथाविधाहि केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिवृत्तिज्ञाने-
प्रकृतिविकारज्ञाने च निःसंशयाः सुखसाध्यकृच्छ्रसा-
ध्ययाप्यप्रत्याख्येयानां च रोगाणां समुत्थानपूर्व-
रूपलिङ्गवेदनोपशयविशेषविज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ—उसीप्रकार जो शारीर विज्ञान और प्रकृति तथा विकृतिके नियम वि-
षयमें भलेप्रकार जानने वाला, सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य तथा असाध्यरोग
समस्तकी उत्पत्ति, पूर्वरूप, लक्षण, पीडा और उपशयज्ञानमें संदेहशून्यहो,

त्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्य ससंग्रहव्याकरणस्य सत्रिवि-
धौषधग्रामस्य प्रवक्तारः सर्वेषां मूलफलानां चतुर्णां
महास्नेहानां पंचानां लवणानामष्टानां च मूत्राणा-
मष्टानां च क्षीराणां क्षीरत्वक्वृक्षाणां च पण्णां शि-
रोविरेचनादेश्च पंचकर्माश्रयस्यौषधगणस्याष्टाविंश-
तेश्च यवागूनां द्वात्रिंशत्तश्च सर्वेषां जूर्णप्रदेहानां प-
ण्णां विरेचनशतानां पंचानां च कषायशतानामि-
तिस्वस्थवृत्तौ च भोजनपाननियमस्थानचक्रमणश-
य्याशनमात्राद्रव्यांजनघूमनावनाभ्यंजनपरिमार्जन-
वेगविधारणाविधारणव्यायामसात्म्येन्द्रियपरोक्षोप-
क्रमसद्वृत्तकुशलाः चतुष्पादोपगृहीते च भेषजे-शोड-
पकले सविनिश्चये सस्त्रिपर्येपणे-सवातकलाकलज्ञाने
व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ—जिसका संग्रह तथा व्याकरण एवं त्रिविध (वृद्धिप्राप्तदोषके घटाने-
वाली, घटेहुएरोगकी बढानेवाली, तथा समभावावास्थित दोषोके संरक्षक) औष-
धसहित त्रिस्कंध (हेतु, लक्षण, और औषधज्ञानात्मक) आयुर्वेदमें विशिष्टज्ञान-
संपन्न सर्वप्रकारके मूल, फल, चतुर्विधमहास्नेह, पांचप्रकारके निमक, आठमूत्र,
आठ प्रकारके दूध, त्वचामें क्षीरवाले वृक्षोंके तथा छः प्रकारके शिरोविरे-
चन पंचकर्म संबंधी २८ औषधमसूह, और ३२, प्रकारकी यवागू-सर्वप्रकारके-
चूर्ण, और प्रदेहमस्त, छः सौ विरेचन और पांचसौ कषाय (काष्ठ) आदि

द्रव्यगण, स्वस्थावस्था भोजन, और पानके नियम, अवस्थान डोलना फिरना, शयन, बैठना द्रव्यादिकोंका परिमाण अंजन, धूमपान, नस्यविधि उवटना, देहकापोंछना उपस्थितरोगका धारण, और अधारण, व्यायाम सात्म्यता, उसीप्रकार, इन्द्रियोंके अप्रत्यक्षस्थलमें क्रिया संपादनका नियम उत्तम आचरणमें इत्यादि सर्वविषयोंको जाननेमें कुशल, पाद चतुष्टयोपगृहीत, औषध तथा सोलहकला करके निश्चित त्रिश्रैपणाका ज्ञाता सवात कलाकल ज्ञानमें संदेहरहित हो॥

चतुर्विधस्यच स्नेहस्य-चतुर्विंशत्युपनयस्य चतुःषष्टि-पर्यंतस्य व्यवस्थापयितारो बहुविविधविघ्नान युक्तानां च स्नेह्यस्वेद्यवम्यवि रोध्यौषधोपचाराणां कुशलाः

अर्थ—चार प्रकारकेस्नेह चौबीसप्रकारके उपनय तथा चौसठ पर्यंतका स्थापन करनेको भलेप्रकार जानताहो ! अनेक प्रकार विधिकेसाथ स्नेहनीय, स्वेदनीय, वमनीय, और विरेचनीय औषध समस्तोंके प्रयोग विषयमें कुशल !

शिरोरोगादेश्च दोषांशविकल्पज्ञस्य व्याधिसंग्रहस्य संक्षयपीडकाविद्रधेः सर्वेषां च शोफानां बहुविधशोफानुबंधानामष्टचत्वारिंशत्तश्च रोगाधिकारिणां चत्वारिंशस्य च नानात्वजस्य व्याधिशतस्य तथा विगर्हितातिमलातिकृशानां सहेतुलक्षणोपक्रमाणां स्वप्नस्य च हिताहितस्यास्वप्नातिस्वप्नस्य च सहेतूपक्रमस्य पण्णांचलंघनादीनामुपक्रमाणां संतर्पणापतर्पणज्ञानां रोगाणांस्वरूपप्रशमनानां शोणितज्ञानां च व्याधीनां मदमूर्च्छासंन्यासानां च सकारण रूपौषधानां कुशलाः कुशलाश्च ।

अर्थ—शिरोरोग, दोषोंके अंश, विकल्पजात, आदिव्याधिसंग्रह, क्षय, पिडका, विद्रधि, समस्त प्रकारकी मूजन, संपूर्ण सोथोंके १४८ अनुबंध मुख्यरोग४०, तथा अनेक प्रकारकी १०० व्याधि, तथा दुष्ट मल, अतिकृशोंके सहेतु लक्षणक्रमोंका जानने वाला, स्वप्नका शुभाशुभ ज्ञाता, सोना तथा अत्यंत सोना इनके सहेतु चिकित्साका ज्ञाता अनुबंध, लंघनादि छः वस्तुओंका उपक्रम, संतर्पण, और

अपतर्पण मद मूर्च्छा और संन्यास, इत्यादि सकल रक्तजन्य व्याधि एवं इनके निदान, लक्षण, और प्रशमक औषध समस्त विषयमें विशेष विज्ञान शाली

आहारविधिविनिश्चयस्य प्रकृत्याहिततमानामाहार-
विकाराणामध्यसंग्रहस्यासवानांच चतुरसृते द्रव्यगु-
णविनिश्चयस्य रसानुरससंस्त्रयस्य सविकल्पकवैरो-
धिकस्य द्वादशवर्गाश्रयस्य चान्नपानस्य सगुणप्र-
भावस्य सान्नपानगुणस्य नवविधार्थसंग्रहया आहा-
रगतेश्च हिताहितोपयोगविशेषात्मकस्य च शुभाशु-
भविशेषस्य धात्वाश्रयाणां च रोगाणामौषधसंग्रहा-
णांच दशानां च प्राणायतनानां यं च वक्ष्याम्यर्थे द-
शमहामूलीयं त्रिशततमाध्याये तत्र च कृत्स्नस्य च
तंत्रोद्देशलक्षणस्य तंत्रस्य च ग्रहणधारणविज्ञानप्र-
योगकर्मकार्यकालकर्तृकरणकुशलाः कुशलाश्च ।

अर्थ—आहारकी विधिका निश्चय, प्रकृतिके हिततम आहारविकारोंका ज्ञा-
ता, अग्निसंस्कारसें बने चौरासी आसवोंके, द्रव्यगुणोंका निश्चय, रसानुरससंश-
य सविकल्प और उनके विरोधी तथा द्वादशवर्गाश्रित अन्नपानका सगुणप्रभा-
वका तथा अन्नपान आहारगतीके हिताहित उपयोग विशेष शुभाशुभका ज्ञाता,
धातु संश्रित रोग सकलकी औषध प्रयोग विषयमें निपुण, तंत्रोक्त निखिल ल-
क्षण और तंत्रका ग्रहण धारण विज्ञान तथा प्रयोगादि विषयमें भलेप्रकार जा-
ननेवाला,

स्मृतिमतिशास्त्रयुक्तिज्ञान आत्मनः शीलगुणै रवि-
संवादनेन संपादनेन सर्वप्राणिपुचेतसो मैत्रस्य
मातृपितृगानृबंधुवदेवं च परंरूपालव इत्येवं बहुवि-
धगुणयुक्ता भवंत्यग्निवेश प्राणानामभिसराहन्ता-
रोरोगाणामिति ।

अर्थ— स्मृति, बुद्धि, युक्ति और शास्त्रज्ञान संपन्न, एवं सर्वप्राणीमात्रमें मा-
तापिता भैयाकें और पांडवोंके समान परम छपाकरने वाला, इत्यादि समस्त

और इसीप्रकार अन्यान्यवहुगुणविशिष्ट वैद्य प्राणरक्षक और रोगनाशक कहाताहै.

प्राणनाशकवैद्यकेलक्षण

अतो विपरीता रोगाणामभिसरा हन्तारः प्राणिनामि-
ति तेभिषक्छद्म प्रतिछन्ना राज्ञां प्रमादाच्चरन्ति राष्ट्रा-
णि तेषामिदं विशेषविज्ञानमत्यर्थं वैद्यवेशेन श्ला-
घमानाविशिखान्तरमनुचरन्ति कर्मलोभात् श्रुत्वा च-
कस्यचिदातुर्यमभितः परिपतन्ति गृध्राइव मांसलो-
भात्, संश्रवणे चास्यात्मनो वैद्यगुणानुच्चैर्वदन्ति यश्चा-
स्य वैद्यः प्रतिकर्मकरोति तस्य च दोषान् मुहुर्मुहुर्-
दाहरन्त्यातुरमित्राणि च प्रहर्षणोपजापोपसेवाभिरि-
च्छन्त्यात्मीकर्तुमल्पेच्छतां चात्मनः ख्यापयन्ति क-
र्मचासाद्य मुहुर्मुहुर्वलोकयन्ति दाक्ष्येणाज्ञानमात्मन-
श्छादयितुं कामा व्याधितं चापवर्तयतुमशक्नुवन्तो-
व्याधितमेवानुपकरणमपचारिकमनात्मवन्तमुद्दिशं-
ति अन्तगतं चाभिसमीक्ष्यान्यमाश्रयन्ति देशमपदे-
शमात्मनः कृत्वा प्राकृतजनसन्निपाते चात्मनः कौश-
लमकुशलवद्वर्णयन्ति अधीरवच्च धैर्यमपवदन्ते विद्व-
ज्जनसन्निपातं चाभिसमीक्ष्य प्रतिभयमिव कान्तार-
मध्वगाः परिहरन्ति। न चैषामाचार्याः शिष्यावा स ब्र-
ह्मचारी वैवादिको वा कश्चित्प्रज्ञायते इति ॥

अर्थ—अब दुष्टवैद्यके लक्षण कहते हैं—कि जो लक्षण कह आएहै इस्से विप-
रीत लक्षण वाले वैद्यको रोगाभिसर अर्थात् रोगोंका रक्षक और प्राणोंका नाशक
जानना। अैसे कपटीवैद्य छिपेहुए राजाके प्रमादसँ (राजाके बंदोवस्तु न कर-
नेसँ) नगर सहरोंमें फिरते है [इसकहने सँ यह प्रयोजन है कि एसे दुष्ट वैद्योंको रा-
जा अवश्य दंडदेवे जिससँ ए बंदे नही] अब इन दुष्टवैद्योंके जाननेके लिये कुछ
लक्षण कहते है। कि ये दुष्ट-वैद्यवेशको धारण करे रहते है। और अपनी बडाई
आप अत्यंत करते है, और कुछ कर्म वैद्योंकेसे कराकरते है, एवं किसी मनु-

प्यको रोगी मुनकर इसप्रकार उसके ऊपर गिरते है जैसे मांसके लोभी गी-
 थ गिरते है, [इससे यह दिखायाकि गीथ केवल मांसके लोभसे गिरताहै उसी-
 प्रकार ए छलिया वैद्य द्रव्य और उसरोगीके प्राणहरण करनेको जाते है] म-
 त्येक उपायोंको करके उसरोगीके पास पहुच उसको प्रसन्न करते है,—उसके
 मुनते ऊंचे स्वरसे पुकारकर अपने वैद्यगुणोंको कहते है,—यदि कोई दूसरावैद्य
 उसरोगीकी चिकित्सा करताहोवे तो उसके वारंवार दोषोंको कहे अर्थात् इस
 वैद्यमें ये ये अवगुनहै,—और रोगीके मित्र बांधवोंको अनेक प्रसन्नता—जप—सेवा-
 दि कर्मकरके अपनाय लेनेकी चेष्टा करे । और इसप्रकार अपनेको बेपरवाही
 दिखामें कि रोगीके बांधवोको यह प्रतीत होजावेकि इनको इसके चिकित्सा
 करनेका कुछ आग्रह नहीं है,—केवल हमारे कहनेसे छाचारहोकर करते है,—
 जब रोगी इन दुष्टवैद्योंके हस्तगत होजाताहै तब किसीक्रिया प्रयोगके विगडने-
 से वारंवार क्रियाके फलको देखते है [अर्थात् हमने यह रोगविचारकर इसरोगी-
 को यह औषधदीनी परंतु यह विपरीत गुणवाली क्यों होगई,] इसचिंतामें डूब-
 जाते है । जब रोगी अच्छा न होसके तब अपने दोष छिपानेके निमित्त रोगी-
 को उपकरण विहीन कहै,[अर्थात् हमक्याकरे जो वस्तु रोगीको चाहिये वोतो
 इसके यहां नहींथी] और यह रोगी अत्याचारी है [पथ्यसे नहीं रहता]
 और सच्चसून्य है, इस प्रकार उस रोगीको दोष देते है । रोगीके मरनेपर अ-
 पनेऊपर विपत्यके भयसे छलकरके दूसरे देशमें चलेजाते है [अर्थात् रोगीके म-
 रनेपर उसके बांधव कहीं सरकारमें रपठ न करेदेवे, अथवा लडनेको तयार न
 होजावे, इसकारण परदेशको चलेजाते है] और ये सामान्यमनुष्योंके समीप
 अकुशलके समान अपनी कुशलता और अधीरके समान अपने धैर्यको मगठ
 करते है । विद्वानोंके समूहको देखके जैसेरास्ता चलनेवाला मनुष्य घोर बनको
 त्याग देताहै उसीप्रकार ये दुष्टवैद्य उस विद्वानोंके समाजको देखकर चलेजातेहै
 इन दुष्टोंके न आचार्य (गुरु) जाने जावे, न शिष्य न सहाध्याई न विवादक-
 र्त्ताजाने जावे ॥

मूर्खवैद्योकेलक्षण

भिषक्छद्मप्रतिछद्मा व्याधितांस्तर्कयन्ति ये ।

वीतंसमिव संश्रित्य वने शाकुन्तिको द्विजात् ॥

श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्राज्ञानबहिष्कृताः ।

वर्जनीया हि ते मृत्योश्चरन्त्यनुचरा भुवि ॥

वृत्तिहेतोर्भिपङ्मानपूर्णान् मूर्खविशारदान् ॥

वर्जयेदातुरो विद्वान् सर्पास्ते पीतमारुताः ॥

अर्थ—जैसे वधिकलोग (अहेरकरनेवाला) जाल आदिको लेकर वनमें जाय एकांतमें बैठकर वधार्थ पक्षी (पखेरुओं) की खोज करता है । उसीप्रकार ये कपटी दुष्टवैद्य किसी सहरमें प्रवेशकर उसजगे रोगी मनुष्योंको ढूंढते हैं । इन दुष्टवैद्योंने किसीगुरुके समीप रहकर कभी किसीचिकित्साका विशेष विवरण सुना नहीं है । कभी किसीकी चिकित्सा देखी नहीं चिकित्साका समय नहीं जानते । औषधादिकी मात्राका ज्ञाननहीं ये संपूर्ण इस वैद्यकविषयमें मूर्ख हैं । ये मृत्युके दूतस्वरूपहोकर पृथ्वीमें विचरते हैं । ये जिविके हेतु, वैद्याभिमानी, मूर्खतामें कुशल, द्रव्यकेलोभी, अंसे वैद्य बुद्धिवान् रोगियोंको त्याग करने योग्य हैं । तथा पवनभक्षक सर्पके समान भयंकर हैं ॥

अववैद्यकेकुछपालनेयोग्यनियमकहतेहैं

भिपजा सर्वथा सर्वप्राणभृतां शर्माशासितव्यम् । अह-
रहरुत्तिष्ठताचोपविशता च सर्वात्मना चातुराणामारो-
ग्ये प्रयतितव्यम्, जीवितहेतोरपि चातुरानदोग्धव्याः ॥

अर्थ—अव वैद्यके अवश्य प्रतिपालनीय कितनेक नियम वर्णन करते हैं—
जैसे कि चिकित्सक (वैद्य) सर्वतो भावसे (सबप्रकारसे) संपूर्ण प्राणियोंके मंगलकी आकांक्षा करे [यह न कहे कि कब मनुष्योंके रोगउठे और कब हमारी जीविका चेत] उठते बैठते अनेक प्रकारके भावकरके और आप छेशोंको सहकर सर्वप्रयत्नसे देह मनवाणी करके रोगीके आरोग्यके निमित्त निरंतर यत्नशील होवे । अपने प्राणभी जाते हो तथापि आतुर (रोगी) को क्लेशित (दुःखित) करके उससे धन हरण न करे,

मनसापि च परस्वम् निभृतवशेपरिच्छेदेन भवितव्य-
म् श्लक्ष्णशुल्कधर्म्याशम्य धन्यसत्यहितमितवचसा-
देशकालविचारिणास्मृतिमताज्ञानोत्थानोपकरणसं-
पत्सुनित्यं यत्नवतानकदाचिद्राजद्विष्टानामहाजन-
द्विष्टानां वाप्यौषधमनुविधातव्यम् ॥

अर्थ—परस्व(परायाधन)ग्रहण और पराईस्त्रीको धर्षणादि चिंतवन्को मनकरकेभी

न करे । वैद्यको शांतवेश धारणकर्ताहोना चाहिये, तथा जडता रहित, निःसंदेह, निर्दोष, धर्मात्मा, मशंसायुक्त, सत्य, हित, और परिमाणका बोलनेवाला होना चाहिये, उसीप्रकार देश, कालकाविचारवान् और स्मृतिमान् होकर सर्वदा ज्ञानके बढ़ानेका उद्योगी होवे, राजा और महात्माआदिके शत्रु मनुष्योंकी कदाचिद् चिकित्सा न करे ॥

**एवंसर्वेषामत्यर्थं विकृतदुष्टदुःखशीलाचारोपचाराणां
सुमूर्षतां तथैवासन्निहितस्वराणांस्त्रीणामनध्यक्षाणां-
वा विशेषतस्तु युवतीनां नप्रति कर्तव्यम् ॥**

अर्थ—जो अत्यंत विकृत होगए हो दुष्ट, दुःशील, तथा दुराचारी आदि-का एवं जो मरनेकी इच्छा करताहो, तथा अपनास्वामी (मालिक) अथवा जो अध्यक्ष (सरदारपुरुष) है उनके परोक्षमें (हाजिर न रहते) उनकी स्त्रियोंकी चिकित्सा न करे, और विशेष करके जो स्त्री युवा अवस्था वाली अर्थात् थोड़ी उमरकी है उनके रोगकी चिकित्सा उनके स्वामीके न होनपर कदाचिद् न करे ।

**आतुरकुलं चानुप्रविशता विदितेनानुमतप्रवेशिना-
साद्धं पुरुषेणसुसंवातेनावाक्शिरसास्मृतिमतास्ति-
मितेनावेक्ष्यावेक्ष्यबुद्ध्यासम्यगनुप्रवेष्टव्यं अनुप्रवि-
श्यचवाङ्मनोबुद्धीन्द्रियाणिनकचित् प्रणिधातव्या-
नि अन्यत्रातुरोपकारार्था दातुरगतेष्वन्येषुवाभावेपु
नचातुरकुलप्रवृत्तयो वहिर्निश्चारयितव्याः ॥**

अर्थ—बिना आज्ञाके रोगीके घरके भीतर न जावे, रोगीका कोईभी सुहृद् संबंधीकी आज्ञाहोय तब घरके भीतर जाय, जब रोगीको देखने जावे तब वैद्यको उचितहै कि शुद्ध ओर उज्ज्वल कपडे पहन देहको ठककर और म-

१. ऐसी स्त्रियोंके इलाजकरनेमें वैद्यको अपलांछनका भय रहता है । २. बिनाकिसी मालिकके कहे घरके भीतर वैद्य जाय और उसको कोई वस्तु गुप्त रखनी हो अथवा घरमें स्त्री आदि अंग खोलें बैठी होतोउस वस्तु उनको वो बहुत दुरात्नगताहै अथवा कोई कारण वस उस रोगीको लाकर बाहरही वैद्यको दिखादेते है यदि अंगे मौकेपर भीतर जावेतो सिवाय मानिहानिके और वो क्या प्रातिकरसकहै ।

स्तकको नीचा झुकाके-स्मृतिमान, शांति स्वरूप, स्थिरबुद्धि, और रोगसंबंधी शास्त्रका चितवन करने वाला होना चाहिये । रोगीके घरकी कोईभी छिपी-हुई वात बाहर निकलके किसीके आगे कहे नहीं

हसितंचायुषः प्रमाणंनवर्णयितव्यम् जानतोपित-
त्रयत्रोच्यमानमातुरस्यान्यस्यवाप्युपघातायसंपद्य-
ते तेनैतदप्यवश्यंचितनीयं यज्जीवनाशाच्छेदात्प्रा-
णिनां धैर्यगांभीर्यादि प्रभृष्टाः परंशोचनीयतांया-
न्ति अपिचनकश्चिज्जगत्यप्रमत्तो विद्यते, कदाचि-
त् व्याधेः साध्यत्वेऽप्यसाध्यताभ्रांतिस्तद्वत् व्या-
ख्यानात् तद्वचनप्रतीतोह्यातुर आयुष्मानपिविप-
द्यते अतोनानिवार्यहेतुंविनारिष्टलक्षणंप्रकटनीयम् ।
ज्ञानवतापि चनात्यर्थमात्मनोज्ञानेकथितव्यम् । आ-
प्तादपिकथमानादत्यर्थमुद्विजंत्येके ॥

अर्थ—तथा रोगीके आगे अथवा रोगीके किसी आत्मीय बांधवके आगे जिससँ उनको दुःख होय अँसी रोगीकी भावी (होनहार मृत्यु) को जानकर-भी न कहे, क्योंकि कहनेसँ उस रोगी और उसके बांधवोंकी धैर्यता जाती रह-ती है, और वो घबडा जाते है अतएव इस बातको अवश्य याद रखना चाहिये । इस मनुष्य की जीवनआशा टूटीमुनतेही धीरज और गांभीर्यतादि गुण तत्काल घलयमान होजाते है, और वो घोर शोकसागरमे डूब जाते है, इसीसँ उसदुष्ट-वैद्यकी बराबर दूसरा प्रमत्त और कौन होगा । दूसरा कारण यह है किजिस रोगी-को वैद्यने भ्रमसँ असाध्य बताया यदि वो साध्य होय तो उस वैद्यके वा क्यका विश्वास जाता रहता है । और जिसको वैद्यने भ्रांतीसँ साध्य बताया है

३ देहदकने और मस्तक नीचाकरने सँ वैद्यकी साधुत्वता प्रगट होती है अन्यथा उद्धत और बेकूफ तथा बदमास जाहिरहोता है । ४ जब वैद्य रोगीके घरमें जाता है तो उसके घरकी सबीभली और बुरीबात इसको जाहिरहो जाती है उस वस्तु बा-हर आनके उसकी धूरनउढावे यह बडे भारी ऐवकी बातहै । ५ यदि वैद्यको उस रोगीका अशुभ कहनेकी ही आतिआवश्यकताहो तो उसके किसी बुद्धिवान् बांधवको एवा-समें ले जाकर कहदेवे ॥

और जो रोगी मरजावे तो फिरभी-मनुष्योंको उसके कहनेका विश्वास नहीं रहता अतएव जब तक यह वैद्य अरिष्ट लक्षणोंको भलेप्रकार न विचार लेवे तब तक भला और बुरा कुछभी न कहे। यद्यपि आप विशेषज्ञानवान्भी है परंतु अपनी बहुत प्रशंसा आप न करे क्योंकि यथार्थ विद्वान और बहुदर्शीके भी मुखसे आत्म-श्लाघा सुननेसे बहुतसे मनुष्य उस से विरागलेआते है अर्थात् फिर उनकी वो श्रद्धा नहीं रहती है। ये वैद्यकोही क्या मनुष्य मात्रको अपनी बड़ाई आप-करना एक तुच्छता दिखानेकाकारण होता है इससे अच्छे मनुष्यको आत्म श्लाघा करना त्याज्य है ॥

प्रसंगवसकलियुगियावैद्योंकासिद्धांत
स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्ति किञ्चन ।
कातरादीर्घरोगाश्च भिषजां भाग्यहेतवः ॥

अर्थ—स्वस्थ (रोगरहित) और असाध्यरोगवाले प्राणियों, करके कुछ नहीं है, किंतु जो कायर (डरपोक) और दीर्घरोगी है वो प्राणी वैद्योंके भाग्यके कारण है। तात्पर्य यह है कि रोगरहित देनेहीका क्या है और जो असाध्य है वो जानता है कि अवमंभङ्गातो सही फिर इन वैद्योंके ठगाने से क्या हासिल है। परंतु डरपोक प्राणी तत्काल ही वैद्यके दावमें आजाते है। एवं जो बहुत दिनका रोगी है वोभी नित्य प्रति वैद्यको बुलायेगा तो जबतक पढा रहेगा तबतक कुछन कुछ वैद्यको छीजता ही रहेगा ॥

नातिधैर्यं प्रदातव्यं नातिभित्तिश्च रोगिणम् ।
नैश्चिन्त्यान्नादिमे दानं नैराश्यादेव चांतिमे ॥

अर्थ—वैद्यको उचितहै कि रोगीको अत्यंत धीरजभी न देय, और न बहुत भयही दिखालावे, क्योंकि यदि अत्यंत धीरज बघाय देवेगा तो वो रोगी यह विचारके कि अवमें अच्छातो होयही जाऊंगा वैद्यको क्यों ठगाऊं। और अत्यंत भयदिखाने से वह रोगी मनमें विचारेगा कि अवमें बचनेका तो कोई नहीं फिर इस वैद्यको देकर क्यों घरखूका करे जो बचेगा तो बाल बच्चोंके ही काम आवेगा, अत एव अत्यंत धीरज और अत्यंत भय वैद्य रोगीको न देवे जैसे रूपे हाथ आवे वो युक्ति करे ॥

चैत कार भूले फिरे पटवारी और वैद ।

“वैद्यानां शारदीमाता पितातु कुसुमाकरः” ॥

भेषज्यं तु यथाकामं पथ्यं तु कठिनं वदेत् ।

आरोग्यं वैद्य महात्म्यादन्यथात्वमपथ्यतः ॥

अर्थ—वैद्यको उचित है कि रोगीको जो मनमें आवे वोही (धूल, खाक,) की पुडिया बांधके देदेवे, परंतु उसके ऊपर पथ्य कठिन बतावे (जो रोगीसे न बन आवे) यदि ऐसा करनेपर उस रोगीको आराम होगया तो वैद्यका माहात्म्य अर्थात् वैद्यने अच्छा करा है, और आराम नहोवे तो कहि देवे कि हम क्या करे तुमने पथ्यतो किया हिं नहीं [हमनेतो रामबाण दवाई दीनी भाग्य तुझारा]

निदानं पूर्वरूपाणि सात्म्यासात्म्यचिकित्सिते ।

सर्वमप्युपदेक्ष्यन्ति रोगिणः सद्ने स्त्रियः ॥

अर्थ—कदाचित् मूर्खवैद्य अपने मनमें यह विचार करे कि मेंकुछ पढातो हूँ ई नहीं वहाँ रोगीके रोगका निदान और दवाई क्याकरूंगा उसको कहते है कि भाई तुम बुलानेवालेके साथ जायके उसरोगीके घरमें रोगीके समीप चुपके थोड़ीदेर बैठतो जाऊ फिर तो रोगका निदान (कारण) तथा पूर्वरूप, एवं रोगीका हिताहित, और चिकित्सा (डलाज) ये सब उसके घरकी स्त्री (औरत) अपने आप तुमको बताय देवेगी [क्या आपको जानेंमेंभी आलस्य आता है भला ऐसी मुफ्तकी जीवका तुमको कवहाथ लगनेकी है] ॥

जृम्भमाणेषु रोगेषु म्रियमाणेषु जन्तुषु ।

रोगतत्त्वेषु शनैर्व्युत्पद्यन्ते चिकित्सकाः ॥

अर्थ—जब चारो तरफसे रोग मूं फैलाते है अर्थात् फैलते है और हजारोंप्राणी मरते है तब वैद्य धीरे २ रोगतत्त्वोंमे बुडियुक्ति होते है । तात्पर्य यह है कि तब तक रोग बढ़ते नहीं ओर विशेष मरी नहीं चेतते तब तक वैद्य एकदोही दीखते है और जहां रोगबढे तथा मरी चेतती फिरतो वैद्यका वजारचेता और सँकडो नए नए वैद्य प्रगट होजाते है ॥

प्रवर्त्तनार्थमारंभे मध्येत्वौपधहेतवे ॥

बहुमानार्थमन्तेच जिहीर्षन्ते चिकित्सकाः ॥

अर्थ—प्रथमरोगीका यत्नआरंभ करनेको भेट आदि लेते है, फिर बीचमे कहते है कि अब हमारे पास दवाई नहीं रही यदि कुछ देऊतो दवाई बनावे अँसे कहकर लेते है, और जब अच्छाहोगया तब अंतमें बहुमानार्थ अर्थात् अपनी विदाईके वास्ते वैद्य धनको हरण करते है । रोगी के पास वैद्यके आनेकी देरी है

क्या ए वैसेको छोडते है । कभी नहीं ? परंतु इनकेभी गुरू घंटाल हकीम और डाक्टर है "दुलहामरोचहिये दुलहन मेरा टका तो मोयदे" ॥

बहुश्रुतवैद्यकीप्रशंसा

स्वतंत्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्ववहिष्कृतः ।

वैद्यो ध्वजइवाभाति नृपतद्विधपूजितः ॥

अर्थ—जो वैद्य वैद्यनिधामें कुशल है और अन्य ज्योतिष व्याकरणादिमें अ-
बहिष्कृत (थोडा २ जाने) है, वो वैद्य ध्वजाके समान प्रकाश करता है । इसी-
प्रकार अन्यमजाओं करके पूजित राजा शोभित होता है ॥

(निदान औपधी और साध्यासाध्यज्ञातावैद्यकीकर्मकीसिद्धि)

यस्तुकर्मविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।

साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥

अर्थ—जो वैद्यके कर्ममें विशेष जानता है और संपूर्ण औपधोंके योग अयो-
गमें कुशल है, तथा साध्यासाध्य विभागके विधानको जानने वाला है उसको
चिकित्साकी सिद्धि हाथमें है अर्थात् वो तत्काल आराम करसक्ता है ॥

शास्त्र और क्रियाज्ञातावैद्यकीप्रशंसा

दृष्टकर्माच शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात् सिद्धिभागसौ ।

एकाङ्गहीनोऽलाध्य एकपक्ष इवद्विजः ॥

अर्थ—जो छेदन भेदन आदि कर्म देखचुकाहो और शास्त्रभी पढाहो वो चि-
कित्सासिद्धीका भागी है परंतु जो एकही वस्तुको जानता है अर्थात् कर्म ओ
र शास्त्र इनमेंसँ एकके जाननेवाला वैद्य प्रसशाके योग्य नहीं है । जैसे एक पां
स्रका पखेरु तात्पर्य यह है कि एक पंखसँ जैसे पक्षी नहीं उडसके उसीप्रकार
एकवस्तु जाननेवाला वैद्य चिकित्सा नहीं करसक्ता ॥

चतुर्विधज्ञानवान्वैद्यकोराजात्व

हेतौ लिंगप्रज्ञाने रोगाणामपुनर्भवे ।

ज्ञानं चतुर्विधं यस्य सराजादुर्भिपकृतमः ॥

अर्थ—रोगोंकाहेतु (आदिकारण) रोगोंके लक्षण, और उनरोगोंका नाश क
रना, तथा जैसे नाशहुए रोग फिर इसप्राणीकी देहमें कभी प्रगट नहो अंसा उ-
पाय करना ये चार प्रकारका जिसको ज्ञानहै वह सब वैद्योंका राजा है ॥

षड्गुणयुक्तवैद्यकीप्रसंशा

विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया ।
यस्यैते षड्गुणा स्तस्य नसाध्यमतिवर्तते ॥

अर्थ—विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मरण, और उसीकर्ममें तत्पर होजाना एवं क्रिया यह षड्गुणसंपन्न वैद्यसँ साध्यव्याधि कंदाचित् नहीं रहती अर्थात् तत्काल दूर करदेताहै ॥

वैद्यशब्दप्राप्तीकाकारण

विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः ।

वैद्यशब्दाभिनिपत्तावलमेकैकमप्यदः ॥

यस्यत्वेतेगुणाः सर्वेसन्तिविद्यादयः शुभाः ।

सवैद्यशब्दंसद्भूत मर्हन्प्राणिसुखप्रदः ॥

अर्थ—विद्या, मति, कर्मदृष्टी, वैद्यकर्मका अभ्यास तथा उसकर्मकी सिद्धि और आश्रय ये एक २ वैद्य शब्द प्राप्तहोनेमें बल कहिये कारण है जिसवैद्यमें ये संपूर्ण विद्यादिगुण है वो वैद्यशब्दको प्राप्तिहो प्राणियोंको सुखदाई जानना । इसश्लोकका तात्पर्ययही है किजो विद्या विनयआदि गुणयुक्त है उसीको वैद्यकहनाठीक है मूर्खको नहीं बोजनमें है कि “ वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदरः । यमस्तु हरातिप्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानिच ” ॥

गुरुमुखपठितवैद्यकोवैद्यत्व

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णं मादायोपास्य चासकृत् ।

यः कर्मकुरुते वैद्यः स वैद्यो ऽन्ये तु तस्कराः ॥

अर्थ—जो गुरुमुखसँ शास्त्रको पढके और उसके तात्पर्यको विचारके अथवा उसके कर्मोंको सीखकर जो कर्म कर्ता है वो वैद्य है और बाकीके चोर है अँसा जानना ॥

पूज्यवैद्यकेलक्षण

शीलवान्मतिमान्युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः ।

प्राणिभिर्गुरुवत्पूजः प्राणाचार्यः सहि स्मृत ॥

अर्थ—शीलवान् और बुद्धिवान् द्विजाती तथा शास्त्रमें पारंगत ऐसा वैद्य प्राणियों करके गुरुके समान पूज्य है क्योंकि ऐसा वैद्य प्राणोंका आचार्य है ।

जीवनदानको श्रेष्ठत्वकथन

धर्मार्थं सदृशस्तस्य दातानेहोपलभ्यते ।

नहि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ और कामका दाता उसके वरानही है कि जिसने जीवनदानकर । कारण यह है कि जीवन दानके समान दूसराकोई भी दान नहीं है ।

परोपकारत्वकथन

परोभूतदयार्धम इति मत्वा चिकित्सया ।

वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यंतमश्नुते ॥

अर्थ—प्राणियोंके दया धर्म पर यह वैद्यकशास्त्र है असाविचारके जो चिकित्सामें वर्तता है वह सिद्धार्थ है और अत्यंत सुखको भोगे है ॥

वैद्यकोदानित्वकथन

धर्मस्यार्थस्य कामस्य त्रैलोक्यस्याभयस्य च ।

दातासंपद्यते वैद्यो दानाद्देहसुखायुषाम् ॥

अर्थ—देह सुख, और आयु इनके देनेसे धर्म, अर्थ, काम, और त्रिलोकी को अभय का दाता वैद्य कहलता है ॥

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम् ।

छित्वा वैवस्वतान्पाशान् जीवितंच प्रयच्छति ॥

अर्थ—दारुणोंगोंकरके यमपुरीको खींचे हुए मनप्यकी जमफासोंको छेदन कर यह वैद्य इन प्राणियोंको जीवनदेता है । अतएव इस वैद्यके समान धर्मार्थका दाता दूसरानही है क्योंकि जीवनदानसे बढकर संसारमें दूसरा दानकौ नसा है ॥

चिकित्साकरनेका पुण्य

कपिलाकोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम् ।

तस्मात्कोटिगुणंपुण्यं मेकातुरचिकित्सया ॥

अर्थ—करोड कपिलागौदान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उससे भी करोड गुणा अधिक पुण्य एक रोगीकी चिकित्सा (इलाज) करनेसे होता है ॥

अन्यत्र

धर्मार्थकाममोक्षाणां मारोग्यमूलमुत्तमम् ।

तस्मादारोग्यदानेन नरोभवति सर्वदः ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टयोंका मूलकारण आरोग्यताहै । इसीसे आरोग्य दान करके यह प्राणी सब वस्तुकी दाता होता है । चाहिये सब दानकरो और चाहिये तो रोगीका यत्न करो दोनोंका फल बराबर है ॥

ग्रन्थांतरेच

अप्येकं नीरुजीकृत्यव्याधितं भेषजैर्नरः ।

प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥

अर्थ—एकभी रोगीको औपधी करके रोगरहित करनेसे यह प्राणी अपने सात कुलोंको संग लेकर ब्रह्मलोकको जाताहै । तात्पर्य यह है कि वैद्य आप तो तरताही है परंतुचिकित्साके प्रभावसे अपनी सात पीढी (पुस्तों) को तार देताहै

अपिमूलेनकेनापि मर्दनाद्यै रथापिवा ।

सुस्थीकृतं लभेन्मर्त्यः पूर्वोक्तं लोकमुत्तमम् ॥

अर्थ—किसीएक जड़ीबूटीसे अथवा तैलादि मर्दनसे जो वैद्य रोगीको अच्छा कर्ता है वह पूर्वोक्त उत्तम लोक (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होता है ॥

प्रमाणांतर

धर्मार्थौ कीर्ति मर्त्यर्थं सतां ग्रहणमुत्तमम् ।

प्राप्तुयात्स्वर्गवासंच हितमारभकर्मणा ॥

अर्थ—जो वैद्य प्राणियोंका चिकित्सा करता है वह धर्म अर्थ—कीर्ति—और महात्माओं करके ब्राह्म स्वर्गवासको प्राप्तहोता है ॥

सर्वत्रवैद्यवृत्तिकाकथन

नदेशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः ।

अतः सर्वत्रवैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥

अर्थ—ऐसाकोईसाभी देशनहीं है जो मनुष्यों से रहित हो और जहां २ मनुष्य है वहां २ वो रोग रहितनहीं है, अर्थात् घोड़े और बहुत अवश्यरोगीहोवेगे इसी कारण सर्वत्र वैद्यकी वृत्ति तो सिद्ध है अर्थात् बनीबनाई तयार है कहीं जाओ

न प्राणिरहितो देशो न च प्राणिनिरामयः ।

तस्मात्सर्वत्रभिषजांकल्पिता एववृत्तयः ॥

अर्थ—ऐसा कोई सा देश नहीं है कि जहाँ प्राणी (मनुष्य) नहीं रहते, और प्राणी रोगरहित नहीं है अर्थात् सर्वत्र मनुष्य रोग पीडित है, इसी कारण वैद्योंकी वृत्ति सर्वत्र कल्पित है अर्थात् सर्वत्र मौजूद है [जिसदेशमें जायगा उसीदेशमें वैद्यकी चाहै] ॥

रोगके अंतमें वैद्यपूजन

चिकित्सितशरीरं योननिष्क्रीणाति दुर्मति ।

सयत्करोति सुकृतं तत्सर्वभिषगश्नुते ॥

अर्थ—जो दुष्टबुद्धि रोगी अपने चिकित्सित शरीरको धनादि दान देकर उन्नयन नहीं करता, वह जो कुछ सुकृत (पुण्य) करता है वह सब वैद्यको प्राप्त होता है । अतएव रोगीको उचित है कि इस लोक और परलोक की भलाईकेवास्ते अपनी यथा शक्ती धन, रत्न, वस्त्रादिक देकर वैद्यको प्रसन्नकरे । अन्यथा वह कृतघ्नोंकी गणनामें है ॥

योरोगीभिषजं सम्पक् रोगशांतौ न पूजयेत् ।

तस्यार्जिं तस्य पुण्यस्य प्राप्नोत्यर्द्धं भिषग्वरः ॥

अर्थ—जो रोगी रोग शांतहोनेपर वैद्यका पूजन नहींकरे, अर्थात् धनवस्त्रादि देकर संतुष्ट नहीं करता उसके संचितपुण्यका आधाभाग वैद्यको प्राप्तहोता है । यदि रोगी कुछ नदेवे तो हे भिषग्वरहो! तुम इसी वाक्यपर संतोषकरो ॥

चिकित्साकाफल

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मःक्वचिद्यशः ।

कर्माभ्यासः क्वचिच्चापिचिकित्सानास्तितनिष्फला ॥

अर्थ—कहीं अर्थ (धनकीप्राप्ति) कहीं मित्रता, कहीं धर्म, कहीं यशकी प्राप्ति, और कहीं चिकित्सा करनेसे कर्मकाही अभ्यास होता है—इत्यादि कारणोंसे चिकित्सा निष्फल नहीं है किंतु सफलही है ॥

चिकित्साकाफल

सनातन त्वाद्देदाना मक्षर त्वात्तथैवच ।

तथादृष्टफलत्वाच्च हितत्वादपि देहिनाम् ॥

वाक्समहार्थविस्तारात्पूजितत्वाच्चदेहिभिः ।

चिकित्सितात्पुण्यतमं न किञ्चिदापे सुश्रुमः ॥

अर्थ—वेदोंके सनातन और अविनाशी होनेसँ—तथा प्रत्यक्ष फल दिखानेसँ और प्राणीमात्रको हितकारी होनेसँ—तथा वाणीसमूहोंके कारण एवं हेहधारी-योंको माननीयहोने सँ हम चिकित्सासँ बढकर दूसरा पुण्यतम वस्तुनहीं सुना-यह सुश्रुतमें लिखा है ॥

वैद्यकोशीक्षा

स्त्रीभिः सहास्यं संवादं परिहासं च वर्जयेत् ।

दत्तं च ताभ्यो नादेय मन्नादन्यद्विषग्वरैः ॥

अर्थ—वैद्यका उचित है कि स्त्रियोंके साथ एक जगे बैठना उनसँ बातचीतकरना एवं उनसँ हंसी ठटोरी करना त्यागदेवे। तथा अन्नके सिवाय और कोई-सी वस्तुस्त्रियों सँ न लेवे, तात्पर्य यह है कि रोगीके यहाँ स्त्रियोंके साथ बैठना हांसीठटोरी करना और कोई वस्तु लेनेसँ अन्य मनुष्यको यह प्रतीत होगी की इस रांडसँ इस वैद्यकी कुछ सटलग रही है ॥

नसुप्याद्रोगिसदने नभुंजीयात्कदाचन ।

विनाह्वानं न गच्छेच्च न ब्रूयान्मरणं भिषक् ॥

अर्थ—वैद्यको कदाचित् रोगीके घरमें न सोना चाहिये, और नरोगीके घर में भोजनकरे, एवं विनाबुलाए रोगीके यहाँ कदाचित् न जावे, तथा रोगीका मरण जानकरभी न कहे [ये पूर्वोक्त कर्म वैद्यकी प्रतिष्ठा हानि कारक है] ॥

प्राणीकोवैद्यशब्दकीप्राप्ति

विद्यासमाप्तौ भिषजो द्वितीयाजातिरुच्यते ।

अश्नुते वैद्यशब्दं हि न वैद्यपूर्वजन्मना ॥

अर्थ—इस भिषक्को विद्याकी समाप्तिमें द्विजाती जाति कहते है, अर्थात् दुसरी जातिहोजाता है, तब यह वैद्य शब्दको प्राप्तहोता है किंतु जन्मलेने मात्रसँही वैद्य नहीं कहलाता ॥

वैद्यमात्रकोद्विजत्व

विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्वमार्प मयपि वा ।

ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद्वैद्यो द्विजस्मृतः ॥

अर्थ—आयुर्वेद विद्याकी समाप्तिमें ज्ञानहोनेके कारण इस-प्राणीमें ब्राह्मसत्त्व अथवा ऋपिसत्त्व अवश्य प्राप्त होता है अतएव इस वैद्यको शास्त्रमें द्विजकहा है

वैद्यकेप्रतिरोगिकावर्ताव

नाभिध्याये न्नचाक्रोशेदहितैर्न समाचरेत् ।

प्राणाचार्यम्बुधः कश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम् ॥

अर्थ—इस वैद्यका किसी प्रकार दृष्टचितवन न करे, न गालीदे, तथा जिसमें वैद्यका अहितहोवे सो कर्मभी न करे, क्योंकि यह प्राणाचार्य है । अतएव आयुकी इच्छा करने वाला बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको सदैव प्रसन्नराखे ॥

कहकरनदेनेमेंअधर्मित्व

चिकित्सितस्तु संश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः ।

नोपाकरोतिवैद्याय नास्ति तस्येह निस्कृति ॥

अर्थ—जोरोगी वैद्यको देनाकरके नहीं देता अथवा किसीप्राणीको जो वस्तु देनी कहके नहीं देता, अर्थात् देनेसे उद्गणनही होता उस अधर्मके पापकी निष्कृति कहीं नहीं है ॥

वैद्यकेधर्म

मिषगप्यातुरान्सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान् ।

आवाधेभ्योऽहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम् ॥

अर्थ—अववैद्यके धर्मकहते हैं कि वैद्यभी उत्तम धर्मकी इच्छा करता, संपूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान रोगोंसे रक्षाकरे ॥

अनाथान् रोगिणो वैद्यः पुत्रवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ—अनाथ रोगियोंको वैद्य अपने पुत्रके समान चिकित्सा करे । अर्थात् यदि उनके पास भोजनको न होवेतो भोजनको देय, और औषधको द्रव्य न होवे तो आप उस औषधको मगायके देवे ॥

प्राणाचार्यश्च पितृवत्संपूज्यः शक्ति भक्तितः ॥

अर्थ—रोगी-रोगनिमुक्त होनेपर प्राणाचार्य (वैद्य) को अपने पिताके समान अपनी यथा शक्तिसँ पूजनकरे [कि जिससे वैद्य प्रसन्नहोकर और आशीर्वाद देवे जिससे फिर रोगी नहो] ॥

धर्मार्थिनार्थकामार्थं आयुर्वेदोमहर्षिभिः ।

प्रकाशितो धर्मपरै रिच्छद्भिः स्थानं मुत्तमम् ॥

अर्थ—धर्मपर महर्षियोंने उत्तमलोककी इच्छा करके यह आयुर्वेदशास्त्र धर्मार्थ प्रकाशकरा है किंतु कामनाके अर्थ नहींकरा, अतएव सब वैद्योंको उचित है कि इस अमूल्य पदार्थको तुच्छ कामनाओंमें लगावे] ॥

नार्थार्थं नापिकामार्थं अथभूतदयांप्रति ।

वर्ततेयश्चिकित्सायां ससर्वमतिवर्तते ॥

अर्थ—यह आयुर्वेद शास्त्र—धनएकत्र करनेको अथवा इसके द्वारा अनेक काम भोगना—इसके वास्ते नहीं है किंतु जो चिकित्सामें प्राणियोंकीदया विचारके यत्न करता है वह वैद्यसबमें श्रेष्ठ है ॥

नैवकुर्वीतलोभेनचिकित्सापण्यविक्रयम् ।

ऐश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थतुदत्तये ॥

अर्थ—इस वैद्यको उचित है कि जो ऐश्वर्य संपन्न अर्थात् सेठसाहूकार राजा बाबू है उनसे अपने वृत्तिके लगनेको लोभके बसहो चिकित्साका पण्यविक्रय (दुकानदारी) नकरे अर्थात् इसरोगीसे इतनेही रुपालेकर यत्न (इलाज) करेंगे। क्यों कि बड़े आदमी साले क्या देवेंगे, उनसे द्रव्यलेना अंमहै जैसे जवाहिरको कोठियोंमें बेचना ॥

वृत्यर्थचिकित्साकरनेकानिपेध

कुर्वते येतुवृत्यर्थचिकित्सापण्यविक्रयम् ।

तेहित्वाकाञ्चनंराशिं पांशुराशिमुपासते ॥

अर्थ—जो प्राणी वृत्ति (जिविका) के अर्थ चिकित्साकी विक्रीकरते हैं वो सुवर्णकी रासको छोड़के धूलमिट्टी कीरासको ग्रहण करते हैं ॥

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् ।

आयुर्वेदप्रसादेन किं नदत्तं भवेद्भुवि ॥

अर्थ—वैद्य आयुर्वेदके प्रतापसे जैसे जैसे एकभी रोगीको नैरोग्यकरता है उसने या पृथ्वीमें क्या वस्तु नहीं दीनी, अर्थात् वो सब वस्तु दे चुका अब कुछ भी देना चाकी नहीं रहा 'आयुर्वेद प्रसादेन' इस पदके धरनेसे यह प्रयोजन

है। कि आयुर्वेद पढ़कर रोगोंका निश्चय करके जिसने यत्नकरा उसको सर्वदा नीकी पदवी प्राप्त होसकती है किन्तु मूर्ख वैद्य भलेही सैंकड़ों रोगियोंका यत्न करके अच्छा करदे परंतु अधर्मकाही भागी होगाक्योकि विना पदसे चिकित्सा कराना निषेध लिखाहै ॥ सो आगे कहेंगे “ औपधं मूढ वैद्यानामित्यादि ” ॥

शास्त्रादिविशोधन

शस्त्रं शास्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये ।

मात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां चिकित्सार्थं विशोधयेत् ॥

अर्थ—शास्त्र, शास्त्र, जल, ये मात्राकी अपेक्षाकरते है अतएव इनको गुण-दोषकी प्रवृत्तिके अर्थ और चिकित्साके अर्थ वैद्य शोधनकरे। तहां शास्त्र, शास्त्र और जलको चिकित्साकेवास्ते शुद्ध(उज्वल) करे। एवं गुणदोष प्रवृत्तिके वास्ते प्रज्ञाका शोधन करना चाहिये।

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।

ताभ्यांभिषक् सुयुक्ताभ्यांचिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ—ज्योति प्रकाशार्थं शास्त्र-और आत्मकीबुद्धि दर्शनकेअर्थ-इन दोनो (शास्त्र और बुद्धि) करके युक्त होकरजो वैद्य चिकित्साकरता है वह चिकित्सा कर्ममें कदाचित् नही चूके अर्थात् उसकी चिकित्सा ठीकहोती है ॥

चिकित्सितेत्रयः पादा यस्माद्द्वैद्यव्यपाश्रयाः ।

तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्भिषक्स्वगुण संपदि ॥

अर्थ—चिकित्साके तीनो पैर वैद्यके आश्रित है अतएव वैद्यकोभी उचित है कि वह अपनेगुण संपत्तिमें यत्नपूर्वक स्थित रहै। तात्पर्य यह है किं रोगी दूत और औपधी ये सब वैद्यके आधीन है यदि वैद्यही मूर्ख हुआ तो फिरये कुछ कामके नही है इसी सैं वैद्य-विद्या और वैद्यकर्ममें कुशलरहे ॥

वैद्यकीचतुर्विधवृत्ति

मैत्रीकारुण्यमार्तुषु शक्येप्रीतिरुपेक्षणम् ।

प्रकृतिस्थेषु भूतेषुवैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥

अर्थ—अब वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति कहते है कि रोगियोंमें मैत्रभाव और करुणा-करे, तथा जो प्रकृतिस्य प्राणी है अर्थात् रोगहीन है उनमें प्रीति और सावधानीसे देखना ॥

अश्विनावग्निरिन्द्रश्चवेदेषुसुतरांस्तुताः ।

वैद्यावित्यश्विनौदेवौपूज्येतेविबुधैर्गपि ॥

अर्थ—वेदमें अश्विनीकुमार—अग्नि—और इन्द्र—निरंतर स्तुति करे गए हैं। वे अश्विनीकुमार वैद्य हैं सो देवता ओंकरकेभी पूजेजाते हैं। फिर औरोंको तो अवश्य पूजने चाहिये ॥

अजरै रमरैर्नित्यं सुखितैरेवमादृतैः

व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।

किंपुनर्भिषजोमर्त्यैः पूज्याःस्युर्नात्मशक्तितः ॥

अर्थ—जब अजर अमर और सदैव सुखित देवता ओंकरके वैद्य पूजे जाते हैं तो फिर व्याधि, मोत, और वृद्धावस्था करके ग्रसित दुखिया और सुखकी इच्छा करने वाले जैसे मनुष्योंको वैद्य अपनी शक्तिके माफिक क्या नहीं पूजने चाहिये किंतु सर्वथा पूजनेही चाहिये ॥

चिकित्सासिद्धीयोग्यवैद्य

यस्तुरोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।

देशकालविभावज्ञस्तस्यसिद्धिर्नसंशयः ॥

अर्थ—जो वैद्य रोग विशेषोंको जानता है अर्थात् संपूर्ण रोगोंको जानता है और संपूर्ण औषधोंके बनानेमें चरतु है तथा देशकालके विभागोंको जानने वाला है उसको चिकित्सा कि सिद्धिमें कुछभी संशय नहीं अर्थात् ऐसे वैद्यको तो सिद्धिअवश्यहीहोती है ॥

(वैद्यशास्त्रपठितको चिकित्साकरनेका अधिकार)

आयुर्वेदं ततोऽधीत्य सकाशात्सद्गुरोर्भिषक् ।

चिकित्सारोगिणांकुर्यादन्यथा पाप भाग्भवेत् ॥

अर्थ—वैद्य—गुरुसै आयुर्वेद शास्त्रको पढकर रोगियोंकी चिकित्साकरे अन्यथा पापका भागी होता है [तात्पर्य यह है कि केवल अमृतसागर आदि बांचकरही वैद्य मत बनो भाइयों कुछ गुरुमुखसैभी पढो जिस्सैं ज्ञान और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति हो] ॥

अन्नजलऔरचिकित्सादानकाफल

अन्नदो जलदश्चैव आतुरस्यचिकित्सकः

त्रयस्ते स्वर्गमायांति विनायज्ञेनभारत ! ॥

अर्थ—हेभारत ! अन्नदाता जलदाता और रोगीकी चिकित्सा करने वाला एतीनोप्राणी विनायज्ञकीये ही स्वर्गकोजाते है । तात्पर्य यह है इन तीनों प्राणियों को विनायज्ञ करने परभी यज्ञ करनेका फलप्राप्तहोता है।यह प्रमाण भारतके शांति-पर्वमें लिखा है, फिर न मालूम वडेरे पंडित, वैद्यवृत्तीकोक्यो दोषारोपण करतेहै।

राजाकोवैद्यादिचतुष्टयोंकानित्यदर्शन

वैद्यःपुरोहितो मन्त्रीदैवज्ञश्चचतुर्थकः ।

दृष्टव्याः प्रातर्गैतेनित्यंश्रेयोविवृद्धये ॥

अर्थ—औरभी लिखा है कि राजा अपने कल्याणकी वृद्धिके लिये नित्यप्रातःकाल उठकर वैद्य-पुरोहित-मन्त्री-और चतुर्थदैवज्ञ (ज्योतिषी) का दर्शनकरे । येभीप्रमाण धर्मशास्त्रका है-देखोंमित्र ? इसश्लोकमें भीप्रथम वैद्यका दर्शन करना लिखता है, इसीसँ आयुर्वेदमें इस वैद्यका नाम प्राणाचार्य लिखा है जोप्राणोंसँद्वेपकराचाहै वोवैद्यमें भलेही द्वेपकरे जैसेनीचेके श्लोकमें लिखते है ॥

गतश्रीर्गणकान् द्वेष्टि गतायुश्चचिकित्सकान् ।

गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टिभारत ॥

अर्थ—गई है श्री (संपत्य वा शोषा)जिसकी वो ज्योतिषियोंसँ द्वेप (वैर)करता है। गतायु अर्थात् गई है आयु जिसकी (मरणासन्न) वोवैद्यों सँ द्वेप (वैर) करता है । और हेभारत ! गतश्री और गतायु असांप्राणी ब्राह्मणोंसँ द्वेपकरता है (हमब्राह्मण उसीको कहेंगे कि जो ब्राह्मणवंशमें प्रगटहुआ हो और विद्यापटा हो) केवलविद्याभ्यासी अथवा केवल ब्राह्मण कुलमें जन्म होनेसँ ब्राह्मणनही होता तथापि विद्याहीन ब्राह्मण सँ पढा हुआ क्षत्री वैश्य उत्तम है तथा शूद्रभी वनिस्वत विना पढेसै पढाहुआ उत्तम है ॥

(विनाशास्त्रप्रायश्चित्तादिकथनमेंब्रह्महत्याकेपापकीप्राप्ति)

प्रायश्चित्तं चिकित्सांच ज्योतिषं धर्मनिर्णयम् ।

विनाशास्त्रेणयोन्नूयात्तमाहु ब्रह्मघातकम् ॥

अर्थ—प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्योतिष, और धर्मकानिर्णय इनको जो विनाशास्त्रप्रमाणके कहता है, उसको वडेरे मुनीश्वर ब्रह्महत्याराकहते है । तहां प्रायश्चित्त उसको कहते है कि जो पापीके वास्ते दंडकल्पना (कृच्छ्रवांद्वायणादि) है

चिकित्सा उसको कहते हैं जो रोगिके आरोग्य करनेको निर्णय करी जावे जैसे औषध और चीरनाफाटना आदि। ज्योतिषकरके इसजगे ग्रहादिकों का फल तथा प्रणनादिक जानने। और धर्मनिर्णय (एकादशी जन्माष्टमी आदि व्रतों का निर्णय आदि) जानना। इनके उदाहरण दिखाते हैं। जैसे किसी पुरुषने चांडालादिकका अन्न भोजन करा अवशास्त्रसे तो उसका निश्चयन करा किंतु जो जातीमें पंच है उन्होने कह दिया कि १०० रूपे हमको देउ हम तुझको जातमें लेलेवेगे, वस जहाँ उनको रूपे दिये और उन्होने कही जा मूंड मुंडाय जनेऊ पलट अमुक देवके आगे दिया धर आ, और जात जिमाय दे, तो यह शास्त्र विरुद्ध प्रायश्चित्त हुआ। एवं विनारोगका और औषधका निर्णय हुए औषध देना ये शास्त्र विरुद्ध चिकित्सा हुई। एवं विनाग्रह गोचर दशांतर्दशाके कह देना कि तुझको मारकेश है अथवा अटकलपंजे प्रणवताने लगे वा तिथिवार वताने लगे, तो यह शास्त्र विरुद्ध ज्योतिष हुआ इसी प्रकार विनाशास्त्रके जाने मूतकादिका निर्णय करना ये शास्त्र विरुद्ध धर्मनिर्णय हुआ ॥

गुणयुक्तपादचतुष्टयोंकी प्रशंसा

गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थो गुणवान् भिषक् ।
व्याधिमल्पेन कालेन महांतमपि साधयेत् ॥

अर्थ—गुणवान् तीन पैर (रोगी, औषधि, और परिचारक) करके और चौथा गुणवान् वैद्य घोर व्याधिको भी शीघ्र ही साधन कर सक्ता है, अर्थात् बड़ी हुई भी व्याधिको शीघ्र रोक सके है ॥

शास्त्र और बुद्धिद्वारा कर्म करनेकी आज्ञा
प्रदीपभूतशास्त्रेण दर्शिता विपुलामतिः ।
ताभ्यां भिषक्तुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ—शास्त्र है सो दीपक रूप है उसने विशेष बुद्धि दिखाई है। अर्थात् जैसे दीपक अंधकारकी वस्तुको दिखाता है उसी प्रकार शास्त्रने अज्ञानांधकारसे दकी हुई बुद्धिको बढायके दिखाई, इन दोनों अर्थात् शास्त्र और बुद्धिसे भले प्रकार मिलकर जो चिकित्सा करता है वो कदाचित् नही चूके ॥

उत्तमवैद्यके लक्षण

येतु शास्त्रविदोदक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।
जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यकृते नमः ॥

अर्थ—अब उत्तमवैद्यकी प्रसंसा करते हैं कि जो शास्त्रज्ञ, चतुर, पवित्र, चिकित्साकार्यमें निपुण, जितहस्त, और जितो है आत्माजिन्होंने अंतें उत्तम वैद्योंके अर्थ हमारी नित्य नमस्कार है ॥

निदानरहितवैद्यको कर्मकी असिद्धि ।
यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् ।
अप्यौषधविधानज्ञ स्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥

अर्थ—जो रोगकी परीक्षाके बिना चिकित्सा करता है यद्यपि वो औषध विधानमें प्रवीणभी है परंतु फिरभी उसको सिद्धीकी यथेच्छा है अर्थात् चिकित्सा करनेसे रोगी अच्छा होय चाहिये नहोवे ॥

विनापठित वैद्यकी निंदा
अविज्ञायतु शास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक् ।
यमएव सविज्ञेयः मर्त्यानां मर्त्यरूपघृक् ॥

अर्थ—जो विनाशास्त्र पढे औषध करता है वो मनुष्योंमें मनुष्यका रूप धारणकर्ता साक्षात् यमराज है ।

मूर्खवैद्यकाहास्य

पाणिचाराद्यथा चक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ।
नौमरुतवशे वाज्ञा भिषक्चरति कर्मसु ॥

अर्थ—विनानेत्रके अंधापुरुष हाथपैरोंको जैसे डरता हुआ धीरे धीरे धरता है और जैसे पवनके प्रबल वेगसे नौका (जिहाज) जैसे समुद्रमें मारा १ डोलता है उसी प्रकार मूर्खवैद्य चिकित्साकार्यमें चलता है ॥

वैद्याग्निमानीमूर्खवैद्यकी निंदा
यदृच्छया समापन्न मुत्तार्यनियतायुषम् ।
भिषग्मानी निहंत्याशु शतान्यनियतायुषम् ॥
तस्माच्छस्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने ।
भिषक्चतुष्टये युक्तः प्राणाभिपरउच्यते ॥

अर्थ—मूर्खवैद्य यदृच्छा पूर्वक प्राप्तहुए पूर्ण आयुवालेको रोगसे बचायके मारे अभियानके अनेक अनियतायुषी अर्थात् जिनकी आयुका कुछ ठीक नहीं अंतें

सैंकड़ो प्राणियोंको यह वैद्याभिमानी दुष्टवैद्य मारताहै। इसीकारण इस प्राणीको शास्त्र और शास्त्रके अर्थ ज्ञानमें तथा उस वैद्यकर्मकी प्रवृत्ती एवं उसकर्मोंके देखने में प्रवृत्तहो तथा चतुष्पाद संपत्तियुक्तहो जो चिकित्सा करताहै वो प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य कहलाता है ॥

(निदान विनाजाने चिकित्सा करनेमें वैद्यको दंडनीयत्व कथन)

भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम् ।

वैद्यकर्म सचेत्कुर्याद्ब्रधमर्हति राजतः ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल औषध देना जानताहै किंतु रोगोंकोनहीं जाने कि इस रोगीके क्या विकार है यदि वो वैद्य कर्म (चिकित्सा) करे तो वो राजासँ वधके योग्य है। अर्थात् अँसै वैद्यको राजा, फाँसी देदेवे. इससँ वैद्यको उचित है कि प्रथम निदानका आभ्यास करके फिर चिकित्साकरे ।

(केवल शास्त्रज्ञाता और औषधज्ञान रहित वैद्यकी निंदा)

यस्तु केवलशास्त्रज्ञोभेषजेष्वविचक्षणः ।

तं वैद्यं प्राप्य रोगीस्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्र पढाहै परंतु चिकित्सा करनेमें अकुशल (मूर्ख) है, उस वैद्यको प्राप्तहो रोगीकी अँसी दशा होती है, जैसे विना केवटिया (मलाह) के बीच धारमें नावकी गति ॥

(शास्त्र पठित और क्रियारहित वैद्यको भीरुत्व कथन)

यस्तु केवलशास्त्रज्ञः क्रियाष्वकुशलो भिषक् ।

समुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुरिवाहवम् ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्रको जानता है किंतु उस शास्त्रकी क्रियाओंमें अकुशल (मूर्ख) है वह वैद्य रोगीको देखके अँसँ घबडाताहै कि जैसे भीरु (बायरमनुष्य) संग्राम (लडाई) को प्राप्तहोकर घबडाता है ॥

(विनापठित वैद्यको राजसँ दंडनीयत्व कथन)

यस्तुकर्मसु निष्णातो धाष्ट्याच्छास्त्रवहिष्कृतः ।

स सत्सु पूजां नाप्नोति वयमर्हति राजतः ॥

अर्थ—जो वैद्यके कर्ममें तो निपुणहै परंतु दीटतासँ शास्त्र बहिष्कृत अर्थात्

शास्त्रको नहीं जाने वो सत्पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता, किंतु राजसैं वध (मृत्यु) को प्राप्त होताहै ॥

(कर्तव्यमें मूर्ख वैद्यका निंदा)

छेद्यादिध्वनभिज्ञो यः स्नेहादिपु च कर्मसु ।

स निहंति जनं लोभात्कुवैद्यो नृपदोपतः ॥

अर्थ—जो वैद्य छेदन भेदनादि कर्ममें मूर्ख है, तथा घृत तैल आदिके बनाने-मेभी मूर्ख है वह दुष्टवैद्य राजाके दोषसैं प्राणियोंको लोभवश होकर मरता है— [यदि राजाही एसे दुष्टवैद्योंकी परीक्षा कियाकरे तो ये इतने बयो बढे, और हजारों अनाथके समान प्राणी यमपुरकी यात्रा बयो करे] धन्यरे अंगरेजी राज तू धन्य है !!!

मूर्खवैद्यकेदोष

लोभयंत्यातुरं मूर्खा विचित्रैः कर्मकौशलैः ।

तेभ्योरक्षेत्सदात्मानमात्मायस्मात्सुदुर्लभः ॥

अर्थ—मूर्खवैद्य अपनो चित्रविचित्र कर्मकौशल (अर्थात् चालाकी) सैं रोगी को लोभित करते है । उन दुष्ट वैद्योंसैं मनुष्यको सदैव सावधानी केसाथ अपनी आत्माकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि इस संसारमें आत्मा अत्यंतही दुर्लभ है॥

तेघुणाक्षरवत्किंचिदुत्थाप्यनियतायुपम् ।

घ्नंतिवैद्याभिमानेन शताननियतायुपान् ॥

अर्थ—जो घुणाक्षरन्यायसैं अनितायुपीप्राणीको रोगसैं बचायके वैद्याभिमाने हो अनेक अनियतायुपी प्राणियोंको नाश करते है ॥

ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षंते स्वलंति वा ।

खादंति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥

अर्थ—जो वैद्य क्रियाको विक्रिया करते है अथवा जिस समय क्रिया करने-का कालहै उसकी उपेक्षाकरदेते अथवा चिकित्सामें चूकजाते है वो दुष्टवैद्य दूसरे के प्राणों को और अपने सुकृतको खाते है ॥

वैद्यकोस्वयंतर्ककरनेकीआज्ञा

नचैकांते न निर्दिष्टे शास्त्रेनिर्विशते तुषः ।

स्वयमप्यत्रभिपजातर्कनीयं चिकित्सता ॥

अर्थ—शास्त्रमें सब कहा है तथापि वैद्य सब जानता है अंसा नहीं होता, इसीसे वैद्यको स्वतः तर्कचलायके चिकित्साकरे । तात्पर्य यह है कि शास्त्रमें भी कुछ हगनी मूतनी छोटीर वात नहीं लिखी है । अतएव वैद्यको उचित है कि कुछ अपनी बुद्धिसे विचारकरकेवलशास्त्रके भरोसे ही न रहे ॥

निषिद्धवैद्य

कुचैलः कर्कश स्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ।

पंचवैद्यानपूज्यंते धन्वंतरि समा अपि ॥

अर्थ—मलिन कपडेको धारणकर्ता, कर्कश, गर्ववाला (अभिमानी) ग्रामीण (गंमईका रहनेवाला) और जो विनावुलाए आयाहो, ये पांच वैद्य धन्वंतरिके भीसमान होवे तथापि पूजे नहीं जाते । अर्थात् असे वैद्योंका कोई सत्कार नहीं करता ॥

वैद्यकोपाककारित्वमें प्रमाण

अन्यजातिकृतः पाकोह्यस्पृश्यः सर्वजातिभिः ।

इतिविज्ञाय भतिमान् वैद्यं पाकेनियोजयेत् ॥

अर्थ—अन्य जातिका करापाक सब जातियोंको अस्पृश्य (छूने योग्य नहीं) है, अंसा जानके बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको पाक करनेपर नियुक्त करे । तात्पर्य यह है कि अपनी २ जातिका करा पाक सब स्वातेहै दूसरी जातिका किया कोई नहीं छूता, और वैद्यके हाथका करा मव साते है अतएव पाककर्ता वैद्यही होना चाहिये ।

(अन्यजातिकेकरेपाकभोजनमें प्रायश्चित)

मोहाद् द्विजातिवर्णाद्यैः पाचितं खादितेसति ।

प्रायश्चित्तीभवे च्छूद्रो जातिहीना भवेद् द्विजः ॥

अर्थ—जो प्राणी मोहवश ब्राह्मण आदिके करे हुए पाकको भक्षण (भोजन) करता है । यदि वह शूद्र होवे तो प्रायश्चित्ती होवे, और ब्राह्मण होयतो जातिमें रहित अर्थात् जात बाहर होता है । यह प्रमाण पृथ्व और बंगालदेशमें है परंतु हमारे पश्चिमोत्तर देशमें प्रमाणिक नहीं है । क्योंकि मव पुराणोंमें राजा महाराजाओंके ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके राजा महागजा भोजनकरते रहते हैं । फिर हमारे देशमें भी प्राय पकी ग्मोई भोजनका व्यवहारहै कश्चीका नहीं ॥

वैद्यशास्त्र और ज्योतिशास्त्रको प्राधान्यता
अन्यानिशास्त्राणिविनोद मात्रं न किंचिदेषां तु विशि-
ष्टमस्ति चिकित्सितं ज्योतिषमंत्रवादाः पदे पदे प्र-
त्यय मावहन्ति ॥

अर्थ—अन्य (व्याकरण न्यायआदि) शास्त्रकेवल विनोदमात्र अर्थात् बालकोकेसेखेल है उन व्याकरणादि शास्त्रोंमें कुछ विशेषता नहीं है, परंतु चिकित्सित (वैद्यविद्या) ज्योतिष और मंत्रवाद ये तीनोंशास्त्र पैड पैडमें विश्वासदेते है तात्पर्य यह है कि व्याकरण, छंद, काव्य, अलंकार, प्रहसन, आदि, ये सब खेलनेके समान है, जैसे खेलकी वस्तुसँ खेले और धरदानी इसी प्रकार ये अन्य शास्त्र है, परंतु प्रत्यक्षपरचादिखाने वाले ये तीनही शास्त्र है, जैसे वैद्यक, ज्योतिष, और तंत्रशास्त्र, इनमें भी हमको तो वैद्यशास्त्रमें विश्वास है। क्योंकि इसकी जितनी क्रिया है सब प्रत्यक्ष है। और ज्योतिषमें हम गणितभागको प्रत्यक्ष फलदायक मानते है। रहामंत्रशास्त्र उसमें हमसंदेह युक्त है तथापि वाममार्ग तो सर्वथा दुष्ट पापरोका निर्मित प्रतीत होता है अस्तु ॥ “ जिस गामहीन जाना उसके फोश गिनना व्यर्थ ”

(चौरी कपट और बलपूर्वकविद्या ग्रहणमें दोष)

विद्यां गृहीतुमिच्छन्ति चौर्याच्छद्मबलादिना ।

न तेषां सिद्ध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥

अर्थ—जो प्राणी विद्याको चौरीसँ कपटसँ और जबरदस्तीसँ गृहण करनेकी इच्छा करता है उनको मणिपरीक्षा, मंत्र और औषधकी सिद्धि ये कोईभी फली भूत नहींहो ॥

मरणपर्यंत चिकित्सा करनेकी आज्ञा

यावदुच्छसिति प्राणी यावद्रेषजमत्तिच ।

तावच्चिकित्साकर्तव्यादैवस्य कुटिलागतिः ॥

अर्थ—जवतक यह प्राणी श्वासलेता है और जवतक औषध भक्षण करसके तावत्कालपर्यंत वैद्यको उस प्राणीकी चिकित्सा करनी ही चाहिये। क्या कि दैव (विधाता) कीगति कुटिल (टेडी) है अर्थात् मालूमनहींपडे नमालूमवस वक्तभी औषध देनेसँ रोगी जीउठे ॥

यावत्कंठगताः प्राणायवन्नास्तिनिरिन्द्रियः ।

तावच्चिकित्साकर्तव्या दैवस्यकुटिलागतिः ॥

अर्थ—यावत् कंठमें प्राणहो और जबतक यह प्राणी इन्द्रीरहित न होवे तव-
त् पर्यंत रोगीकी चिकित्साकरनी चाहिये क्योंकि दैवकीगति कुटिल है [कदा-
चित्त इस अवस्थामेंभी औषध देनेसे रोगी बचजावे]

रोगीकेलक्षण

रोगीयस्यास्तिरोगीस सचिकित्स्यस्तुयादृशः ।

यादृशश्चाश्चिकित्स्योपिव क्ष्यमाणोनिश्च्यताम् ॥

अर्थ—अब चिकित्साके दूसरे पादका अर्थात् रोगीके लक्षण वर्णन करते हैं
जैसे कि जिसके रोग हुआहो वो रोगी कहलाता है, तहां जैसे रोगी की चि-
कित्सा करनी चाहिये और जैसे की चिकित्सा नहीं करनी उन दोनोके लक्षण
में आगे कहताहूं उनको सुन ॥

चिकित्साकेयोग्यरोगी

निजप्रकृतिवर्णाभ्यांयुक्तः सत्वेन चक्षुषा ।

चिकित्स्योभिपजारोगीवैद्यभक्तोजितेन्द्रियः ॥

अर्थ—जो रोगी अपने प्रकृति, वर्ण, धैर्य, बल, और नेत्र, इनकरके युक्त है,
तथा जो वैद्यका भक्त और जितेन्द्री है, वो वैद्यको चिकित्सा करनेके योग्य है ॥

आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि ।

चिकित्स्योभिपजारोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥

अर्थ—जो रोगीदीर्घायु, धैर्ययुक्त, साध्य, द्रव्यवान्, और वैद्यकी आज्ञापा-
लन करनेवाला एवं अस्तिक ऐसे रोगीकी चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये ॥

आढ्योरोगीभिपग्वशयोज्ञापकः सत्ववानपि ।

वैद्यशास्त्रेचविश्रब्धः कृतज्ञः पथ्यकारकः ॥

अर्थ—जो रोगी धनवानहो, वैद्यके वशीभूत, अपनीप्रकृतिको यथार्थ कहने
वाला धैर्यवान्—तथा चिकित्सा और शास्त्रमें विश्वासरसने वाला—उपकारक
माननेवाला और पथ्य करनेवाला ऐसा रोगी उत्तम जानना ॥

रोगीकेगुणचतुष्टय

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापिच ।

ज्ञापकत्वं चरोगाणामातुरस्थ गुणाः स्मृताः ॥

अर्थ—स्मरणवान्, वैद्यकी आज्ञाका पालन करनेवाला—निर्भय और अपने रोगको वैद्यको बतानेवाला येचारगुण रोगीके है ॥

उत्तमरोगी

प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्ने बाह्येनाभ्यन्तरेणवा ।

कर्मणालभतेशर्म शस्त्रोपक्रमणेनवा ॥

अर्थ—बुद्धिमान् रोगी रोग उत्पन्न होतेही बाहरके यत्नसे अथवा भीतरके यत्नसे कल्याणको प्राप्तहोताहै, अथवा शस्त्रोपक्रम (चीरना फाटनाआदि) से कल्याणको प्राप्तहोताहै—तात्पर्य यह है कि चतुररोगी रोगको प्रगट होतेही बाहरभीतरकी चिकित्सा अथवा चीरना फाटनेआदिसँ तत्काल उसे नष्टकर सुखीहोता है ॥

मूर्खरोगी

बालस्तु खलुमोहाद्वा प्रमादाद्बान्बुध्यते ।

उत्पद्यमानं प्रथमं रोगंशत्रुमिवाबुधः ॥

अर्थ—बाल (मूर्खरोगी) मोहवस अथवा प्रमादसे उस उत्पन्न हुए रोगको नहींजानता, जैसे मूर्खमनुष्य प्रगटहुए अपने शत्रुको नहींजानता ॥

अग्राहिप्रथमंभूत्वारोगः पश्चाद्विवर्द्धते ।

सजातमूलोमुष्णातिबलमायुश्च दुर्मतेः ॥

अर्थ—प्रथम रोग अग्राह्यहोकर धीरे २ बढ़ता है जब वो जड़बद्ध होजाता है तब इस दुर्बुद्धीकी बल और आयुको हरणकरे है ॥

न मर्त्यो लभते श्रद्धां तावद्यावन्नपीड्यते । पीडितस्तु

मर्ति पश्चात् कुरुते व्याधिनिग्रहे । अथ पुत्रांश्च

दारांश्चजीर्तींश्चाहूय भापते । सर्वस्वेनापि मे कश्चि-

द्विपगानीयतामिति । तथाविधं च कः शक्तो दुर्वलं

व्याधिपीडितम् ॥ क्लृप्तं क्षीणेन्द्रियं दीनं परित्रातुं

गतायुषम् । सत्रातारमनासाद्य बालस्त्यजति जी-
वितम् । गोधालाङ्गूल वद्धे वा कृष्यमाणा बलीयसा।
तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा । भेषजैः
प्रतिकुर्वीत यइच्छेत्सुखमात्मनः ॥

अर्थ—जबतक यह प्राणीदुखीनही होता तबतक वैद्य और औषधीमें श्रद्धा-
नहींलाता । और जो रोगोंसे पीड़ितहुआ कि, फिर रोगनाशकरनेमें बुद्धि करता
है । तब अपने पुत्रोंको स्त्रियोंको और अपनेकुटुंबके मनुष्योंको बुलायके उनसे
कहता है किमेरा सर्वस्वभीदेकर वैद्यको लाओ [और जैसेहो तैसे मुझको वचा-
ओं में तुम्हारीशरणहूं अबके वचगयातो आपलोगोंका उपकार जन्म भर नहीं भू-
लूंगा] परंतु फिर उस असाध्य- दुर्बल, कृश, क्षीणेन्द्रि, दीन, और मरणासन्न
रोगीके वचानेको कौन सामर्थ्य है । बस; इसीप्रकार पुकारता २ अपने वचाने
वालेको न प्राप्तहो कर यह मूर्खरोगी अपने प्राणोंका त्यागदेना है । जैसे गोहकी
पूछ बंधीहुई हो और वो जब चले उसी वक्तवली मनुष्य उसको खीचलेता है
इसप्रकार यमराज इसप्राणीको खीचलेता है । अतएव यदि अपने आत्माको सु-
खचाहेतो रोगोंसे प्रथमही अथवा तरुणरोगोंमेंही औषधद्वारा उस रोगको
शांति करना चाहिये ॥

त्याज्यरोगी

चंडः साहसिकोभीरुः कृतघ्नोव्यग्रएवच । शोकाकुलो-
मुमूर्षुश्चविहीनकरणैश्चयः ॥ वैरीवैद्यविदग्धश्च श्रद्धा-
हीनश्च शंकितः । भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्यभिप-
ग्निधः । एतानुपाचरन् वैद्योवहून् दोषानवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो अत्यंतक्रोधी-साहसी (अर्थात् विनाविचारे करनेवाला) दरप-
नेवाला-कृतघ्न (वैद्यके उपकारको न माननेवाला) व्यग्र (व्याकुल) शोकार्त,
मरनेकी इच्छा करनेवाला गतेन्द्री (जिसकी इन्द्रियोंकी शक्ति नष्टहो गईहो)
वैर करनेवाला वैद्यपनेका अभिमान रसनेवाला, अविश्वासी, और शंका रसने-
वाला-स्वतः औषधका जाननेवाला और वैद्यके स्वाधीन न रहनेवाला इत्यादि
गुणवाले रोगीकी चिकित्सा करेतो वैद्यको अनेक दोष लगते हैं ॥

जारं चौरं तथाम्लेच्छं ब्रह्मघ्नं मत्स्यघातिनं द्वेषारं ग्रा-

मकूटंचवद्धकंमांसविक्रिणम् । एतेसुव्याधिनाग्रस्ता-
नकुर्याच्छमनक्रियाम् । तेषां जीवातिसंजाताद्वैद्यो-
भवतिपापभाक् ॥

अर्थ—जार (परस्त्रीगामी-वा-रंडीवाज) चौर-म्लेच्छ-ब्रह्महत्यारा-मछ-
लीकोमारनेवाला (धीवर) ग्रामकूट (गामकोदुखदाई) वद्धक (जिवोंको
बांधनेवाला) और मांसका बेचने वाला जैसे प्राणी यदि रोगीहोवेतो उनको
वैद्य औषध न देवे, क्योंकियदि इन प्राणियोंको औषध देनेसे प्राणवचने परये
जो हत्या आदि पातककरेगे वो पापवैद्यकोलगेगा ॥

भैषज्यलक्षण

वैद्योव्याधिंहरेद्येनतद्रव्यंप्रोक्तमौषधम् ।

तद्यादृशमवश्यंस्याद्रोगघ्नंतादृशंब्रुवे ॥

अर्थ—अब चिकित्साके तीसरे पादका अर्थात् औषधके लक्षण कहते हैं ।
जिससे वैद्य रोगहरणकरे उस द्रव्यको औषध कहते हैं वो रोगनाशक औषध वै-
द्यको जैसी लेनी चाहिये उसके लक्षण कहते हैं ॥

उत्तम औषध

प्रशस्तदेशसंजातंप्रशस्तेऽहनिचोद्धृतम् ॥ अल्पमात्रं-

बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमधि-

कंनविकारियत् ॥ समीक्ष्यकालेदत्तंचभेषजंस्याद्गुणावहम् ॥

अर्थ—उत्तम स्थानमें प्रगट और शुभादिनघड़ी मुहूर्तमें उखाड़ीगई-अल्पमात्र
(थोड़ी दीजावे) और बहुतगुण दिखावे, तथा यथायोग्य गंध वर्ण और रस-
करके युक्त वातादि दोषोंके नाशकरनेवाली, तथा जोग्लानि और अधिक अत्र-
गुणकारी नहोवे, तथा रोगोंको विचारके तथा समयपरदीनी एसी औषध परम-
गुणदायक होती है ॥

औषधकेचारगुण

बहुतातत्र योग्यत्व मनेकविधकल्पना ।

सम्पञ्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणांगुणउच्यते ।

अर्थ—बहुता तत्रयोग्यत्व (रोगानुसारी) अनेक विधि कल्पना अर्थात् जिसकी कल्पना अनेक प्रकारसे होवे और संपत्ती (रसादि संपत्ति) एचारगुण द्रव्यों के कहे है ॥

प्रसंगवश औषधोंके भेद चरकसें लिखते है

त्रिविधऔषध

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्रयं-युक्तिव्यपाश्रयं-
सत्त्वावजयश्च॥

अर्थ—औषध तीनप्रकारकी है जैसै कि-१ दैवव्यपाश्रय-२ युक्तिव्यपाश्रय
३ सत्त्वावजय अब इनके पृथक् २ लक्षण कहते है ॥

दैवव्यपाश्रय

तत्रदैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधिमणिमङ्गलनियमप्राय-
श्चित्तोपवास स्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि ॥

अर्थ—तहां-मंत्रजाप-औषधी धारण-मणियोंका धारण-मंगल कर्म (पुण्या-
ह्वाचन आदि) नियमधारण-प्रायश्चित्तकरण-उपवासादि व्रतधारण-स्वस्ति वा-
चन-देव गुरुवृद्धोंको प्रणाम करना और तीर्थोंमें गमन ये सब दैवव्यपाश्रय औ-
षधकहलाती है ॥

युक्तिव्यपाश्रय

युक्तिव्यपाश्रयंपुनराहारौषधद्रव्याणांयोजना ॥

अर्थ—युक्तिव्यपाश्रय औषध वो है जो युक्ति पूर्वक भोजनादिक और औषध
आदि द्रव्योंकी योजना करना ॥

सत्त्वावजयः

सत्त्वावजयः पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ॥

अर्थ—सत्त्वावजय औषधी वो है जैसै दुष्टकर्मसें अपने मनको रोककें उत
म शुभकर्ममें लगाना अब औरभी औषधोंके भेद कहते है ॥

शरीराश्रितत्रिविधऔषधी

शरीरदोषप्रकोपेखलुशरीरमेवाश्रित्यप्रायशस्त्रिविध-
मौषधमिच्छन्ति अन्तःपरीमार्जनं-वहिःपरिमार्जन-
शस्त्रप्रणिधानंचेति

अर्थ देहमें दोषोंके कोप होनेसे वो दोष शरीरके आश्रित होकर वैद्यप्राम्य त्रिविधऔषधकी इच्छा करते है—जैसे— १ अंतःपरिमार्जन—वहिः परिमार्जन ३ शस्त्रप्रणिधान, अब इन प्रत्येकके लक्षण आगे पृथक् २ कहते है ॥

अंतःपरिमार्जन

तत्रान्तः परिमार्जनं-यदंतःशरीरमनुप्रविश्यौषधमाहारजातव्याधिन् प्रतिमार्ष्टि ।

अर्थ—तहां जो औषध शरीरके भीतर प्रवेशकर भोजनजनित व्याधियोंको दूर करे उसको अंत परिमार्जन औषध कहते है उदाहरण जैसे काय, चूर्ण गुदिका, रस, पाक आदि जानने ॥

वहिःपरिमार्जन

यत्पुनर्वहिः स्पर्शमाश्रित्याभ्यङ्ग स्वेदप्रदेह परिषेको-
न्मर्दनाद्यै रामयान्प्रमार्ष्टि तद्वहिः परिमार्जनम् ।

अर्थ—जो औषध बाहर त्वचाके स्पर्शके आश्रित हो उबटना, पसीने निकालना, तरडा देना, मालिश करना, इत्यादि कर्मद्वारा जो रोगोंको नष्ट करे उसे वहिःपरिमार्जन औषध कहते है, उदाहरण जैसे—तैलका लगना—लेपकरना—अंजन, मंजन, आदिजानना ॥

शस्त्रप्रणिधानं

शस्त्रप्रणिधानं पुनच्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनो-
त्पादनप्रच्छन्नशीवनैषणक्षारजलौकाश्चेति

अर्थ—शस्त्रप्रणिधान चिकित्सा जैसे छेदन, भेदन, व्यधन, दारण, लेखन, पाटन, प्रच्छन्न-शीवन-एषण-क्षार और जलौका आदिकर्म जो अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय और क्षारकर्म तथा जलौका वचारणअध्यायमें लिखआए है वो जानने

त्रिविधऔषधी

किंचिद्दोषप्रशमनं किंचिधातुद्रूपणम् ।

स्वस्थवृत्तौ हितं किञ्चिद्द्रव्यं त्रिविधमुच्यते ॥

अर्थ—द्रव्य तीनप्रकारकी है कोई दोषनाशक, कोई धातुको द्रूपणकर्ता, और कोई स्वस्थ वृत्ति अर्थात् आरोग्य प्राणीको हितकारी ॥

जंगमादि भेदसै त्रिविध औषध

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जाङ्गमौद्भिदपार्थिवम् ।

अर्थ—फिर वो पूर्वोक्त द्रव्य तीनप्रकारकी है जैसे जंगम, औद्भिद (स्थावर) और पार्थिव ॥

जंगमद्रव्य

मधूनिगोरसाः पित्तवंसामजासृगामिषम् ।

विष्मूत्रंचर्मरंतोऽस्थिस्नायुरङ्गं खुरानखाः ।

जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशालोमानिरोचना ॥

अर्थ—सहत, गोरस (दूध-घी) पित्ता (मोर-मछली-आदिका पित्ता) वसा (चर्बी) मज्जा-हृदिर-मांस-विष्टा- (गोवर-लीद) मूत्र-चाम-वीर्य (मगर आदिका) हड्डी-स्नायु-अंग-खुर और नख (नाखून) तथा केश (बाल) लोम (रुआं) और गोलोचन ए जंगम (पशु-पक्षी-मनुष्यादि) के लियेजाते हैं, ये जंगम द्रव्य जानना ॥

भौमद्रव्य

सुवर्णंसमलाः पंचलोहाः सप्तिकतासुधा ।

मनः शिलाले मणयोलवणं गैरिका ज्जने ।

भौममौषधमुद्दिष्टं ॥

अर्थ—सुवर्ण और अपनेरमल अर्थात् कीटीसहित पांचो लोह, धूल-चूना-मनशिल, हरताल-मणी-निमक-गेरू-और सुरमा इत्यादि भौम औषध अर्थात् पृथ्वी संबंधी औषध जाननी ॥

औद्भिदंतुचतुर्विधम्

वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तथौषधिः ॥

अर्थ—औद्भिद अर्थात् स्थावर संबंधी औषध चारप्रकारकी हैं जैसे-वनस्पति, वीरुध, वानस्पत्य, और औषधी, इनप्रत्येकके लक्षण आगे कहते हैं ॥

फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यफलैरपि ।

औषध्यः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः ॥

अर्थ—जिनमें केवल फलही लगते हैं फूल नहीं लगते उनको वनस्पति कहते हैं, जैसे गूलर-पीपर-बडआदि । और जिनमें फल फूल दोनों लगे उनको वान-

स्पत्य कहते है, जैसे आम-जामुन-आदिके वृक्ष । और जो फलके आनेसे पककर नष्ट हो उनको औपधी कहते है, जैसे जो-गेंहु-चना आदि । और जो बेलके माफिक प्रतान वाली है उनको वीरुध कहते है, जैसे गिलोय, पान, आकाशबेल आदि । कोई औपधके पांचभेद कहता है वो हम इसके निघंट भागमें लिखेगे ॥

औद्भिदगण

मूलत्वक्सारनिर्यासनाज्यस्वरसपल्लवाः । क्षाराक्षरिंफ-
लंपुष्पंभस्मतैलानिकंटकाः । पत्राणिशुक्लाकन्दाश्चप्र-
रोहाश्चौद्भिदोगणः ॥

अर्थ—तहां जड, त्वचा, सार, गोद, नाडी, स्वरस, नवीन पत्ते, क्षार-दूध-फलफूल, भस्म, तेल, कांटे, पत्ते शुक्ल (कली) कंद और प्ररोह (अंकुर) ये औद्भिद गण है अर्थात् वृक्षादिकोंसे इतनी वस्तु ग्रहण करी जाती है ॥

उद्भिदजऔपधोंकीगणना

मूलिन्यः पौडशैकोनाः फलिन्योविपरीतकाः । महा-
स्नेहाश्चत्वारः पञ्चैवलवणानिच । अष्टौमूत्राणिसं-
ख्यातान्यष्टावेवपयांसिच । शोधनार्थाश्चपड्वृक्षाः पु-
नर्वसुनिदर्शिताः । यएतानवेत्तिसंयोल्लंघिकारेपुसवेदवित् ॥

अर्थ—जडवाली रूखडी मुख्य १६ है, फलवाली १९ है, महास्नेह ४ है, पांच प्रकारके निमक है । आठप्रकारके मूत्र, आठप्रकारके दूध, और शोधनकरनेके अर्थ छः वृक्ष है, येपुनर्वसु आत्रेयने कहे है । जो इनको विकरोमें देना जानता है वो आयुर्वेदका ज्ञाता है असा जानना । इन सबका खुलासा चरककी प्रथमाध्यायमें लिखाहै सो देख लेना ॥

औपधज्ञानकोदुर्ज्ञेयत्व

ननामज्ञानमात्रेणरूपज्ञानेनवापुनः ।

औपधीनांपरांप्राप्तिकश्चिद्रेदितुमर्हति ॥

अर्थ—औपधोंका यथार्थज्ञान केवल नामज्ञान मात्रसे, अथवा रूपज्ञान करके ही नहीं होताकिन्तु रूप और नाम दोनेजाननेसे होता है ॥

(औपधोंकेरूपऔरयोगज्ञातावैद्यकीप्रसंशा)

योगज्ञः स्तस्यरूपज्ञस्तासांतत्वविदुच्यते ।

किंपुनर्योविजानीयादौषधीः सर्वदाभिषक् ॥

अर्थ—जो वैद्य औषधोंके योगको और उनके रूपको जानता है उसको तत्त्ववेत्ताकहते है और जो सदैव औषधों जानता रहता है उस वैद्यका तो क्या कहना है ॥

तथावैद्यकोउत्तमत्वकथन
रूपंतासांतुयोविद्यादेशकालोपपादितम्
पुरुषंपुरुषंवीक्ष्यसविज्ञेयोभिषक्तमः ॥

अर्थ—देशकालोपपादित औषधोंके रूपको मत्येक पुरुषोंके प्रति जो देना जानता है वह संपूर्ण वैद्योंमे श्रेष्ठ है ॥

ज्ञाताज्ञातऔषधोंकेगुणागुण
यथाविषं यथाशस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतंयथा ॥

अर्थ—जैसेविष, जैसेशस्त्र, जैसे अग्नि, जैसेवज्रपात, प्राणीके प्राणहारकहोते है । उसीप्रकार विनाजानी औषध प्राणोंको हरण करती है, और जो जानीहुई औषध है वो अमृतके तुल्य प्राणदायक जाननी ॥

अज्ञातऔरदुःप्रयोजितऔषधकीनिंदा
औषधं ह्यनविज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः ।
विज्ञातं वापि दुर्युक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ॥

अर्थ—जो औषध नाम-रूप-और गुण इन तीनोंकरके विना जानीहुई है अथवा जो इनतीनों प्रकार करके जानीभी है परंतु अविधिसै उसका प्रयोग क रा है, वो युक्तिरहित औषध अपना गुण नहीं करे ॥

युक्तऔरअयुक्तऔषधकेगुणागुण
योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् ।
भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण विषभी, योगके साथ उत्तम औषधी रूप होजाता है, और उत्तम औषधीभी दुष्टयुक्तीके साथ देनेसँ घोर विषके समान प्राणहरण कर्ता-हाती है ॥

युक्तिपूर्वकऔषधकोमुख्यत्व

तस्मान्नभिषजायुक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ।

धर्मता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकांक्षिणा ॥

अर्थ—इसीसै जीवन और आरोग्यकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान रोगीको युक्तिवाह्य औषधका प्रयोग कदाचित् नहीं करना चाहिये । अर्थात् मूर्खवैद्यकी औषधका ग्रहण न करे ॥

मूर्खवैद्यकेहातकीऔषधनलेना

कुर्यान्निपतितं मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः ।

सशेषमातुर कुर्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥

अर्थ—रोगी—अपनेमस्तकपर वज्रपात गिरना अगीकारले, रोगयुक्त रहना अंगीकार करलेवे, परन्तु मूर्खवैद्यकी अनुमती सै दीहुई औषधको कदाचित् अगीकार न करे ॥

अज्ञानीवैद्यसंभाषणकरनेमेंपापकथन

दुःखिताय शयानाय श्रद्धधानाय रोगिणे । यो भेष-

जमविज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति ॥ तस्य च मृत्युदू-

तस्य दुर्मतेस्त्यक्तधर्मणः । नरो नरकपातीस्यात्त-

स्य संभाषणादपि ॥

अर्थ—दुःखिया, पडेहुए, श्रद्धावाले रोगीको जो पंडिताभिमानी वैद्य बिना जानी औषधको देवा है, उस मृत्युके दूत दुष्टमतिवाले अधर्मके संभाषण (बो लने) सै यह प्राणी नरक गामी होता है । अर्थात् अैसे दुष्टवैद्यसै भाषणभी न करे, परन्तु इसवातको कौन देखता है । भला पिताबुलाये और थोडेसैमें सुमी होने वालेभी तो येही वैद्य हैं, भलेही प्राणचलेजावे परन्तु धनतो बचजायगा—धन्यरे दुष्ट समय तू धन्य है ॥

शरणागतरोगीसैद्रव्यादिलेनेकानिषेध

वरमाशीविमविषं कथितं ताम्रमेव वा । पीतमत्यग्नि-

सन्तसा प्राशितावाप्ययोगडाः । नतु श्रुतवतावेशंवि-

अत्ता शरणागतात् ॥ ग्रहीतमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥

अर्थ—सर्पका हलाहल विष पीलेना, आँटाहुआ ताम्र पीलेना, तथा अग्नि सैं दहकते हुए लोहेके गोलेको खायलेना उत्तम है, परंतु पंडित वेपधारी होकर शरणागत रोगीसैं अन्नजल अथवा द्रव्य ग्रहण करना कदाचित उचितनही है ॥

मूर्खवैद्यसैयत्नकरानानिषेध

वरं दस्यौ वरंव्याले वरं यादोविभीषणे । सागरे जीव-
नोत्सर्गः सुघोरेवापि धन्वनि ॥ नाधीतशास्त्रे नाभ्य-
स्ते कर्मण्यखिलवैरिणि । न कार्यं दुर्मतौ पापे भिष-
जात्मसमर्पणम् ॥

अर्थ—चौरके हाथसैं, हिंसकजीव (सिंह व्याघ्रादि) सैं, मगरआदि जलके जीवोंसैं समाकुल घोर समुद्रमें अथवा घोर मारवाडकी भूमिमें, अपने प्राणोंको त्यागदेना परमोत्तम है, परंतु विना शास्त्रपढेहुए और विना अभ्यस्त कर्मवाले, सबकेवैरी, दुर्बुद्धी, पापात्मा वैद्यके, हस्तगत अपना आत्म सर्पण करना कदापि उचित नहीं है ॥

वैद्यकोवैद्यकेगुणसीखनेकीआवश्यकता

भिषकबुभूर्धुर्मतिमानतः स्याद्गुणसम्पदि ।

परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदः स्याद्यथा नृणाम् ॥

अर्थ—अतएव इत्यादि उक्त करणोंसैं बुद्धिमान् प्राणी वैद्यहोनेकी इच्छा रखनेवाला वैद्य गुणसंपत्तिमें परम यत्नपूर्वक स्थितहोवे, क्योंकि यह वैद्य प्राणियोंको प्राणका देनेवाला है ॥

उत्तमऔपधऔरवैद्य

तदेवमुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।

सचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

अर्थ—वही औपधी उत्तम है जो रोगियोंको आरोग्यकरे । औरवही वैद्योंमें श्रेष्ठ है जो रोगियोंको रोगोंसैं मुखावे ॥

उत्तमप्रयोगऔरउत्तमवैद्यकीप्रसंशा

सम्यक्प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्यातिकर्मणाम् ।

सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणै र्युक्तं भिषक्तमम् ॥

अर्थ—उत्तम प्रयोग संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धिको प्रगटकरे है, और सर्वगुणयुक्त वैद्यको कर्मसिद्धी विख्यात करती है ॥

परिचारककेगुण

उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागंचभर्तारि ।

शौचंचेतिचतुष्कोऽयंगुणः परिचरेजने ॥

अर्थ—अब चिकित्साके चतुर्थपाद अर्थात् परिचारक (सेवक) के गुण लिखते हैं—जैसे कि उपचारज्ञता (अर्थात् रोगीकी सेवाके नियमोंका जानने वाला,) चतुर, और अपने स्वामी (मालिक) में अनुराग, तथा पवित्रता ए चारगुण सेवकके है। तहाँ चारगुण वैद्यके, चारगुण रोगीके, चारगुण औपधके, और चारगुण सेवकके ये संपूर्ण सोलह गुण चिकित्साकी पोटश कला कहलाती है। अर्थात् चिकित्साके वैद्य आदि चार पादहै, और एक एक के चारगुण अंसें सोलहगुण सोलह कला कहलाती है।

परिचारककेलक्षण

स्निग्धोऽजुगप्सुर्वलवान्युक्तोव्याधितरक्षणे । वैद्यवा-

क्यकृदश्रांतोयुज्यतेपरिचारकः । अनुरक्तः शुचिर्दक्षो

बुद्धिमान्परिचारकः ॥

अर्थ—स्नेह रखनेवाला, अनिंदित, बलवान्, रोगीके संरक्षण करनेमें चतुर-वैद्यकी आज्ञापालन करनेवाला, निरंतर परिश्रम करते २ न थके, छपाळ, शुद्ध, कुशल, और बुद्धिमान् अंसा सेवक रोगीके समीप रहना चाहिये।

अब चिकित्साके चार्यों पैर और शोडप कलाओंको कहकर चिकित्साके अंग कहते है। तहाँ रोगी, दूत, वैद्य, सेवक, और उत्तम औषधोंके लक्षणके अब शेषोंको कहते है।

आयुविचार

भिषगादौपरीक्षेतरुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।

ततः आयुषिविस्तीर्णेचिकित्सासफलाभवेत् ॥

अर्थ—वैद्य प्रथम रोगीके आयुकी परीक्षा करे कारण यह है कि यदि आयु बर्बा होयगी तो चिकित्साभी सफल होता है, अन्यथा निष्फल होता है परंतु दीर्घा युके लक्षण इस बृहन्निघण्टुरत्नाकरकी प्रथम जिल्दमें अर्थात् शरीर भागमें लिख आए है, इस वास्ते यहांपर नहीं लिखे है ।

आयुकाप्रमाण

जलजानवलक्षास्तु दशलक्षास्तुपक्षिणः । रुद्रलक्षा-
स्तुकुम्याद्यास्थावराणांचविंशतिः ॥ त्रिंशलक्षंगवा-
दीनां चतुर्लक्षास्तुमानवाः ।

अर्थ—जलज (जलमें होने वाले) १००००० नौलाख है, पक्षी १०००००० दशलखा है कृमि (कीड़े) ११००००० ग्यारहलाख यो, स्थावर (वृक्षादिक) है नि २०००००० बीस लाख है, गवादि (अर्थात् गौ भैसवकरी आदि) योनि ३०००००० तीसलाख है, और मनुष्य योनि ४०००००० चार लाख है ॥

शतायुपुरुषश्चैववृक्षाणांतुसहस्रकम् । द्वात्रिंशश्चतुरं-
गाणां शतंकुंजरसिंहयोः ॥ व्याघ्राणांचचतुःपष्टिः स-
हस्रंफणिकाकयोः । जम्बुकानांषोडशाब्दं शुनांद्वाद-
शवंत्सरं ॥ चतुर्विंशतिरुक्तंगोमहिष्योः सूकरस्यच ।
अजानांद्वादश प्रोक्तंमत्स्यानामयुतंतथा ॥ कुक्कुटानव-
वर्षाणि मृगाणांविंशतिर्भवेत् । पक्षिणांद्वादशवर्षाणिख-
राणांद्वादशद्वयम् ॥ चतुर्विंशतिरुष्ट्राणां रासभानांतथैवच ।

अर्थ—पुरुष (मनुष्य) की १०० सौवर्षकी आयु है, वृक्षोंकी १००० हजार वर्षकी, घोड़ोंकी ३२ बत्तीस वर्षकी है। सिंह और हाथीकी उमर १०० वर्षकी है बघेरे की आयु ६४ वर्षकी है। सर्प (सांप) और कौआ इनकी १००० वर्षकी आयु है। स्वार (गोदड़) की आयु १६ वर्षकी है। कुत्तेकी उमर १२ वर्षकी

है । गौ-भैप-और सूअरकी उमर २४ वर्ष की है * बकरी की उमर १२ वर्ष की * मछली की उमर १०००० दशहजार वर्षकी है * मुरगेकी ९ वर्ष की मृग (हिरण) की उमर २० वर्ष की है * पक्षि (तोता मेंना चिडिया आदि) की उमर दशवर्ष की है । गद्धेकी उमर २४ वर्ष की है * ऊँटकी उमर २४ वर्ष की और खिच्चरकी आयु २४ वर्ष की जाननी, ये इनकी परमायु है परंतु कोई २ इस्सै अधिकभी जीते है ॥

अथद्रव्यम्

सर्वेद्रव्यमपेक्ष्यंतेरोगीप्रभृतयोयतः ।

विनावित्तंनभैपज्यंचिकित्सांगंततोधनम् ॥

अर्थ—रोगीसैं आदिले संपूर्ण द्रव्यकी इच्छा करते है, विना धनके औपधी नहीहो सकती, इसीसैं चिकित्साका मुख्य अंग धनहै ।

शिष्य—रोग और आरोग्य किसको कहते है ॥

गुरु—दोषोंकी विपमावस्थाको रोग और समानावस्थाको आरोग्य कहते है जैसे वाग्भटमें लिखा है ॥

व्याधेर्लेक्षणंवाग्भटे

रोगस्तुदोषवैपम्यंदोषसाम्यमरोगता ।

रोगादुःखस्यदातारोज्वरप्रभृतयस्तुते ॥

अर्थ—दोषोंकी विपमता (समान न रहनेको) रोग कहते है—और समाना व-स्थाको आरोग्य कहते है तहां दुखदाई रोग वे ज्वर प्रभृति अर्थात् ज्वरादिक जानने ॥

अथातो व्याधिसमुद्देशीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम व्याधिसमुद्देशीयाध्यायकी व्याख्या करैंगे ॥

द्विविधा व्याधयः शस्त्रसाध्याः स्नेहादिक्रियासाध्या-

श्च । तत्र शस्त्रसाध्येषु स्नेहादिक्रिया न प्रतिपिध्यते ।

स्नेहादिक्रियासाध्येषु शस्त्रकर्म न क्रियते ॥

अर्थ—इस संसारमें दोप्रकारकी व्याधि है एक शस्त्रसाध्य (शस्त्रकर्मसैं अ-

च्छी होनेवाली है) दूसरी स्नेहादि क्रियासाध्य, अर्थात् घृत-तैल-क्वाथ-चूर्णादि
सैं अच्छी होनेवाली तहां अष्टविध शस्त्रसाध्यव्याधियोंमें स्नेहादिक्रिया करना
सिद्धि कारक नहींहोती, जैसे भगंदरादि रोग चीरनेफाडनेयोग्य है उनपर तै-
लादि लगानेसैं कुछ फायदा नहींहोता । और जो स्नेहसाध्य व्याधि है उनपर
शस्त्रकर्म न करे, क्योंकि तैलक्वाथादिसैं अच्छे होसके जैसे वातव्याधि और
ज्वरादिरोगमें चीरना फाडना केवल दुःखदायक है ॥

**अस्मिन् पुनः शास्त्रे सर्वतन्त्रसामान्यात्सर्वेषां व्या-
धीनां यथा स्थूलमवरोधः क्रियते ॥**

अर्थ—तहांशल्यतंत्रमें शस्त्रक्रियाकोही मुख्यत्व है, स्नेहादि क्रियाको नहीं है
इसशंकासैं दोनों क्रियाओंका अधिकार दिखाते हैं । इस सौश्रुत शल्यतंत्रमें शा-
लाक्यादि तंत्रोंको समान होनेसैं संपूर्ण व्याधियोंका स्थूलदृष्टीकरके ग्रहण किया है

**प्रागभिहितं तद्दुःखसंयोगो व्याधिरिति—तच्च दुःखं
त्रिविधमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकमिति
तत्र सप्तविधे व्याधाबुपनिपतति ॥**

अर्थ—इस सुश्रुतकी प्रथमाध्यायमें लिखआए है कि शरीरी और शरीरका
अथवा शरीर और मनके दुःख संयोगको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं । तहां
वो दुःखतीनप्रकारका है १ अध्यात्मिक २ आधिभौतिक, ३ औरआधिदैविक-
यही त्रिविधदुःख सात प्रकारकी व्याधियोंमें विभाजित किया है अर्थात् सात-
प्रकारसैं बांटा है ॥

**ते पुनः सप्तविधा व्याधयः । तद्यथा-आदिवलप्रवृत्ता-
जन्मबलप्रवृत्ता-दोषबलप्रवृत्ताः-संधातबलप्रवृत्ताः-का-
लबलप्रवृत्ताः-दैवबलप्रवृत्ताः-स्वभावबलप्रवृत्ता-इति ॥**

अर्थ—वो सातप्रकारकी व्याधि इसप्रकारसैं हैं जैसें—१आदिवलप्रवृत्त, २जन्म

१ आदिशब्दसैं स्वेदन, वमन, विरेचनादि जानने । २ आत्मशब्दसैं मनकरके
सहित शरीरका ग्रहणहै । नातपित्त और कफसैं उत्पन्न शरीरमें होनेवाली तथा रजोगुण
तमोगुणसैं होनेवाली व्याधियोंको आध्यात्मिक कहते हैं । ३ भूतप्राणियोंकी भूतोंमें
अधिकारकरके जो बरें उसको अधिदैव कहते हैं । ४ देव, अमुर, मृत, प्रेत, इ-
त्यादिसैं होनेवाले रोगोंको अधिदैव कहते हैं

बलप्रवृत्त, ३ दोषबलप्रवृत्त, ४ संघातबलप्रवृत्त, ५ कालबलप्रवृत्त, ६ दैवबलप्रवृत्त, और ७ स्वभावबलप्रवृत्त, अब इन प्रत्येकका वर्णन नीचे करते हैं ॥

तहांआदिवलप्रवृत्तव्याधि

तत्रादिवलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शः
प्रभृतयः । तेऽपि द्विविधा मातृजाः पितृजाश्च ॥

अर्थ—तहां पूर्वोक्त सप्तविधव्याधियोंमें जो आदिवल प्रवृत्त व्याधिहैं वह येहैं जैसे जो दुष्टशुक्र और दुष्टरुधिरसैं उत्पन्न होते हैं—अंसे कोढ़, बवासीर, प्रंघृति । वोभी दोषकारके हैं—एक माताके रुधिरसैं और दूसरे पिताके वीर्य दोषसैं जो होते हैं ॥

जन्मबलप्रवृत्तव्याधि

जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात्पङ्कुजात्यन्धवाधिरमू-
कमिण्मणवामनप्रभृतयो जायन्ते । तेऽपि द्विविधा
रसकृता-दौहृदापचारकृताश्च ।

अर्थ—जन्मबल प्रवृत्त वह रोगहैं जो मातापिताके शुक्रशोणितकी दुष्टीके बिनाभी गर्भावस्थामें माताके दुष्टआहार और आचार करनेसैं पांगुरा, जन्मांध, बहरा, गूंगा, गिनगिनाके बोलने वाला, बोना, आदि रोगहोते हैं । वोभी जन्म-बलप्रवृत्तरोग दोषकारके हैं, एक रसकृत, दूसरे दौहृदके अपचार करनेसैं होतेहैं॥

दोषबलप्रवृत्तव्याधि

दोषबलप्रवृत्ता य आतङ्कसमुत्पन्ना मिथ्याहाराचार-
भवाश्च तेऽपि द्विविधा आमाशयसमुत्थाः पक्वाशय-
समुत्थाश्च पुनश्च द्विविधाः शरीरा मानसाश्च त एत
आध्यात्मिकाः ॥

अर्थ—दोषबल प्रवृत्त जो व्याधि होती है वो मिथ्या आहार विहारसैं होती है, अर्थात् जो वातपित्त कफ—और रज तमकी शक्तिकरके रोग प्रवृत्त (उत्प-न्न) होते हैं—वो दोषकारके हैं एकआमाशयसैं प्रगट होनेवाले, दूसरे पक्वाशय-सैं उत्पन्न होनेवाले, फिर वो आमाशय और पक्वाशयसैं उत्पन्नहोनेवाले रोग दो

१ प्रभृति शब्दसैं प्रमेह, क्षय, आदिजानने । २ गर्भवती माताके चतुर्थादिमा-
सोंमें इन्द्रियोंकी इच्छाको दौहृद कहते हैं ।

प्रकारके है। एकशारीरक अर्थात् शरीरसँ उत्पन्न होनेवाले, दूसरे मानसिक अर्थात् मनमें प्रगटहोनेवाले, इन्ही दोषवलप्रवृत्त रोगोंको आध्यात्मिक कहते है ॥

संघातवलप्रवृत्तव्याधि

संघातवलप्रवृत्ता ये आगन्तवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात्तेऽपि द्विविधाः शस्त्रकृता-व्यालादिकृताश्च । एते आधिभौतिकाः ॥

अर्थ—संघातवलप्रवृत्तव्याधि वोहै जो आगंतुक और दुर्बल मनुष्यका बलवान्‌सँ लडना, फिर वो दोप्रकारकी है १ पहली शस्त्रकृत, और दूसरीव्यालादि (सर्पादि) कृत, इन्हीको आधिभौतिक व्याधिकहते है ॥

कालवलप्रवृत्तव्याधि

कालवलप्रवृत्ता ये शीतोष्णवातवर्षाप्रभृतिनिमित्तास्तेऽपि द्विविधा व्यापन्नर्तुकृता अव्यापन्नर्तुकृताश्च ॥

अर्थ—कालवलप्रवृत्तव्याधि वो हैं जैसे—शरदी, गरमी, पवन, वर्षा, आदि ऋतुओंके निमित्तसँ होती है। वोभी दोप्रकारकी है एक व्यापन्नर्तुकृत, दूसरी अव्यापन्न ऋतुकृत ॥

दैववलप्रवृत्तव्याधि

दैववलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिश्स्तका अथर्वकृता उपसर्गकृताश्च-तेऽपि द्विविधा विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च पुनश्च द्विविधाः संसर्गजा आकस्मिकाश्च ॥

अर्थ—दैववल प्रवृत्त अर्थात् देवशक्तिसँ होने वाले रोग वो है जो देव (देवता, गौ, गुरु, सिद्ध, इनसँ द्रोहकरने) सँ होते है। तथा अभिश्स्तक अर्थात् ऋषियोंके शापदेनेसँ, अथर्वकृत (अथर्वणवेद प्रणीत अभिचारिकमंत्रोंकरके होनेवाले मारण, मोहनादि व्याधि) और उपसर्गज (अर्थात् झूतकेरोग जैसें ज्वरवालेके पास रहनेसँ वो ज्वर उडकर दूसरेको लगजाता है इत्यादि)। फिर

१ ऋतुके दूषित होनेसँ रोगहोते है वो व्यापन्न ऋतुकृत कहते है। २ और जो उत्तमऋतुमें दूषित औषध जलके सेवनसँ होनेवाली व्याधि होती है वो अव्यापन्न ऋतुकृत जाननी।

वो देवबलप्रवृत्त रोगभी दोप्रकारके हैं-एक विजली और अशानिकृत दूसरा पिशाचादिकृत । फिर इसके दोभेद है एकसंसर्गज, दूसरा आर्कस्मिक ।

स्वभावबलप्रवृत्त

स्वभावबलप्रवृत्ताः क्षुत्पिपासाजराभृत्यु निद्राप्रभृत्य-
यस्तेऽपि द्विविधाः, कालकृता-अकालकृताश्च तत्र
परि रक्षणकृताः कालकृता-अपरि रक्षणकृता अका-
लकृता एते आधिदैविकाः ॥ तत्र सर्वव्याध्यवरोधः॥

अर्थ—स्वभावबल (अर्थात् प्रकृतिकी शक्तिसँ) उत्पन्न होनेवाले जैसे भू-
खं, प्यास, बुंढापा, मौत, निद्राआदि बोभी दोप्रकारके है एक कालकृत, और
एक अकालकृत, तहां रक्षाकरने परभीहोय वो कालकृत रोग है, और बिना रक्षा
करने सै जो होवे वो अकालकृत जानने । इन्हीको आधिदैविक कहते है ।
तहां इन्ही आदि बलप्रवृत्तादि सात प्रकारकी व्याधियोंमें संपूर्ण व्याधिमात्र
अंतर्गत जाननी ॥

कदाचित् कोई कहे कि सबव्याधियोंका कैसे इन्हींमें संग्रह होसक्ता है इस
वास्ते कहते है ॥

सर्वेषाञ्च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लि-
ङ्गत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च तथाहि कृत्स्नं विकारजा-
तं विश्वरूपेणावस्थितं सत्त्वरजस्तमांसि न व्यतिरि-
च्यन्ते । एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणाव-
स्थितमव्यतिरिच्यवातपित्तश्लेष्माणो वर्तन्ते ॥

अर्थ—संपूर्ण व्याधियोंके आदिकारण वातपित्त और कफहै । कारण किं

१ लताके आकार तिरछी गिरे वो विजली गिरी कहाती है । २ और अग्निके
समान गोला रूप गिरे उसको अशानी अर्थात् (वज्रपात) कहते है । ३ आदि
शब्दसँ मृत, भ्रत, ब्रह्मराक्षसादि जानने । ४ देवद्रोहकरके मनुष्योंके आपसमें मिछ-
मेंसे जो महामारी आदि रोग होते है । ५ बिना ससर्गके जो पूर्व जन्मोंपार्जित
कर्मकरके होनेवाले । ६ इसीसँ कालरोगोंकी चिकित्सा नहीं करी ।

सर्व व्याधिमात्र तल्लिङ्गत्व होनेसे, तथा दृष्टफलत्व होनेसे, और शास्त्रप्रमाण होनेसे, तथा यह संपूर्णविकार समूह विश्वरूप करके स्थित है अर्थात् जाग्रत रूपकरके स्थित है। इसीसे यह सतीगुण, रजोगुणसे पृथक् नहीं है। इसी प्रकार यह संपूर्ण विकारजात विश्वरूपकरके स्थित अर्थात् रोगसमूहकरके स्थित पृथक् नहीं है ॥

फोड़ अश्रकरेकि तीनदोषोंसे आदिवल प्रवृत्तादि अनेक व्याधि कैसे होती है तहां कहते है ॥

दोषधातुमलसंसर्गादायतनविशेषान्निमित्ततश्चैषां विकल्पा भवन्ति ॥

अर्थ—दोष धातु मल इनके संयोगसे आयतन विशेषसे और निमित्तसे व्याधियोंके अनेक भेद होते है ॥

दोषद्वयसंज्ञालक्षणाकरकेहोतीहै

दोषदूषितेष्वत्यर्थं धातुषु संज्ञाक्रियते रसजोऽयं शोणितजोऽयं मांसजोयं मेदोजोऽयमस्थिजोऽयं मज्जजोऽयं शुक्रजोऽयं व्याधिरिति ॥

अर्थ—दोषोंकरके दूषित धातुओंकी संज्ञाकरी जाती है यह रसजन्यव्याधि

७ तल्लिङ्ग कहिये वातादिदोषोंके लक्षण रूक्ष, अल्प, और स्नेहादिक तथा तोद दाह और खुजली आदि कार्यजानने। ८ दृष्टफलत्व कहिये वातादिकका शमन होना प्रत्यक्ष देखाजाताहै। ९ शास्त्रमें भी लिखाहै कि ११२० ग्यारहसौबास व्याधियोंके कार्यभूत वातपित्त और कफही कारण है। १० विकार इसजमे २३ महदादिक जानने ११ संयोग जैसे। वातादिदोष, रसधातु, मल, मूत्रादिके संयोगसे अतीसारादिरोगहोते है। वातादिदोष रक्तधातु इनके संयोगसे विद्रधि और रक्तगुरुमादि रोग होते है। तथा वातादिदोष और रसधातुके संयोगसे ज्वरादिक रोग होते है। रसादि दूष्य और मलमूत्र आदिके संयोगसे बीसप्रकारकी प्रमेह होती है। १२ स्थानभेदसे रोगोंके भेद जैसे सातस्थानोंमें ६५ मुखरोग है। नेत्ररोग ७० इत्यादिजानने १३ निमित्त कहिये वातादिसभी रोगोंके अनेकभेद होजाने है—जैसे वातादि ज्वर तीन—संनिपातका अक—द्वंद्व—जनीन—आगतुज आठवाँ इमीप्रकार और भी भेद अनेक जानने ॥

है—यह रुधिरजन्य है—यह मांसजन्य है—यहपेदाजन्य है—यह अस्थिजन्य है—यह मज्जाजन्य है और यह व्याधि शुक्रजन्य है ॥

जैसे यह धीसँ जलगया तेलसँ जलगया—तामेसँ जलगया—लोहसँ जलगया इत्यादि—जैसे धी—तेल—तामा और लोहमें अग्नि कारण है उसी प्रकार रसरक्तादिजन्य रोगोंमें वातादि दोष कारण है ॥

अब चिकित्सा विशेष विज्ञानार्थं सुखसान्यत्वादि कर्मके बोधार्थं प्रत्येक रसादि धातु विकारोंको दिसाते हैं ॥

रसजन्यविकार

तत्रान्नाश्रद्धारोचकाविपाकाङ्गमर्दज्वरहृष्टासतृप्तिगौरवहृत्पाण्डुरोगमार्गोपरोधकार्श्यं वैरस्याङ्गसादकाल्वलिपलितदर्शनप्रभृतयोरसदोषजा विकाराः ॥

अर्थ—तहां अन्नमें अश्रद्धा, और अन्नमें अरुचि (नफरत) विपाक, अंगोंमें फूटन, ज्वर, हृष्टास, तृप्ति (पेटभरेके समान) देहमें भारीपना, हृदयरोग, पाण्डुरोग, छिद्रोंका बंद होजाना, कृशता, सुखमें विरसता, अंगोंमें उत्साहरहितपना, विना समय बुढापा, और वालोंका सपेदहोजाना, इत्यादि रसदोषजन्य विकार हैं ॥

रुधिरजन्यविकार

कुष्ठविसर्पपिडकामशकनीलिकातिलकालकन्यच्छ-
व्यङ्गेन्द्रलुप्तष्ठीहविद्रधिगुल्मवातशोणितार्शोऽर्बुदाङ्ग-
मर्दासृग्दररक्तपित्त प्रभृतयो रक्तदोषजा गुदमुखमेद-
पाकाश्च ॥

अर्थ—कोष्ठ, विसर्प, पिडका, मस्से, निलिका, तिलकालक (तिल) न्यच्छ-
(लहसन) व्यङ्ग (झाँड़) इन्द्रलुप्त (जिसमें मूँडके धारजाते रहे) ग्रीह (तिष्ठी)
विद्रधि, गोला, वातरक्त, बवासीर, अर्बुद, अंगमर्द (अंगोंका टूटना) असृग्दर
(रक्तप्रदर) और रक्तपित्तआदि ये रुधिरदोषजन्यबीमारी हैं । तथा गुदा, मुख
और भगलिंगका पकना येभी रुधिर जन्यविकार हैं ॥

मांसदोषजविकार

अधिमांसार्बुदांशोऽधिजिह्वोपजिह्वोपकुक्षगलशुण्डि-

कालजीमांससंघातौष्ठप्रकोपगलगण्डमालाप्रभृतयो
मांसदोषजाः ॥

अर्थ—अधिमांस, अर्बुद, ववासीर, अधिजिह्व, उपजिह्व, उपकुश, गलगुंठी,
अलजी-मांससंघात, ओष्ठप्रकोप, गलगण्ड, गण्डमाला आदि मांसदोषज विकार हैं

मेददोषजविकार

अस्थिवृद्धिगलगण्डार्बुदमेदोजौष्ठप्रकोपमधुमेहातिस्थौ-
ल्यातिस्वेदप्रभृतयो मेदोदोषजाः ॥

अर्थ—गांठ, अंघ्रिवृद्धि, गलगण्ड, अर्बुद, मेदरोग, ओष्ठप्रकोप, मधुमेह, अति-
स्थूल, और अतिपसीनोकाआना आदि मेददोषजविकार हैं ॥

अस्थिदोषजविकार

अध्यस्थह्यधिदन्तास्थितोदशूलकुनखप्रभृतयोऽस्थि-
दोषजाः ॥

अर्थ—अधिक हड्डीका होना, अधिदंत (दाँतकेऊपर दाँतका आना) हड-
डियोंमें चमकाचलना, और हड्डीका दर्द, तथा कुनख आदि अस्थिदोषज वि-
कार अर्थात् ए विकार हड्डीके हैं ॥

मज्जादोषजन्यविकार

तमोदर्शनमूर्च्छाभ्रमपर्वगौरवस्थूलमूलोरुजङ्घाने-
त्राभिस्यन्दप्रभृतयो मज्जादोषजाः ॥

अर्थ—अंधकार दर्शन-मूर्च्छा-भ्रम-स्थूलमूलवाले फोटानका पर्वों (जो-
हों) में होना-भारीपना-ऊरु (जांघ) और पीठरी इनमें पीढा-तथा नेत्राभि-
स्यन्द आदि मज्जादोष जन्य विकार जानने ॥

शुक्रजन्यविकार

ह्रैव्याप्रहर्षशुक्राश्मरीशुक्र मेहशुक्रदोषादयश्चतद्वोषजाः ॥

अर्थ—नपुंसकता, स्त्रीसंगमें रुञ्जान रहना, वीर्यकी पथरी शुक्रप्रमेह, और
शुक्रदोषादिक शुक्रके विकार जानने अर्थात् येदोष शुक्रके दोषसे होते हैं ॥

मलायतनविकार

त्वग्दोषाः सङ्गोऽतिप्रवृत्तिर्त्रिमलायतनदोषाः ॥

अर्थ—कुटसे आदिने त्वचाके विकार, मलमूत्रादिकाका रुकजाता, अथवा

अत्यंत उत्तरना, तथा कान्-मुख-नाक-नेत्रादि मार्गके रुकनेको संग श्लेसा-
कहते है ॥

इन्द्रियायतनदोष

इन्द्रियाणामप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वेन्द्रियायतनदोषाः ।
इत्येवं समासउक्तो विस्तरनिमित्तानि चैषां प्रति रोगं
वक्ष्यामः ॥

अर्थ—इन्द्रियोंका अपने २ कार्यमें प्रवृत्तनहोना-अथवा कुछका कुछकरना
ये इन्द्रियायतन दोष है । तहां दोषधातु मल संगर्गादिदोषव्याधियोंके कारणजो
पूर्वकहआए तथा आयतनविशेष दूसरा व्याधिहोनेका कारण ए दोषोको संक्षेप-
से कहकर ॥

अब तीसरे निमित्तजन्य कारणको कहते है कि निमित्त (वातादि) कारण
जैसे बलवान्से विरोधकरना-और मिथ्याप्रयुक्त श्लेहादिक से होनेवाले अतिसा
रादिरोगोंको प्रत्येक रोगोंके प्रति पृथक् २ कहेंगे ॥

भवन्ति चात्र ॥

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावतां ।

यत्र सङ्ग स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥

अर्थ—शरीरमें विचरनेवाले कुपित दोषोंका जिस मार्गमें विगाड होनेसे रु-
केगे वही रोग उत्पन्न करते है ॥

इति

चिकित्साविधिकाउपदेश

जातमात्रश्चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतयागदः ।

बन्दिशत्रुविपैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥

अर्थ—व्याधि उत्पन्नहोतेही उसकी चिकित्सा करे, किंतु यह अल्पहै क्या
विगाडकरेगी इसप्रकार उपेक्षा न करदेवे । क्योंकि उपेक्षा करनेमें यह अल्पही
व्याधि जमि-शु-और विपके तुल्य विकार करने वाली होजातीहै । जैसे अ-
ग्निकी चिनगरी बड़े २ महलोंको फूंक देतीहै, छोटासा शत्रु कालपायके मर्दाना-
शकरेहै । एवं थोडामाभी विष प्राण हरण करताहै, उमीप्रकार अल्पव्याधि मा-
णताश करे है ।

वैद्यकाकर्तव्य

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।

एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

अर्थ—व्याधिका भलेप्रकार जानना और उस व्याधिजनित पीडाका नाशकरना यही वैद्यका वैद्यत्वहै किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहींहै अर्थात् आयुका मालिक नहीं । परंतु कोई आचार्य इसश्लोकको इसप्रकार लगाते है कि व्याधिका पथार्थ ज्ञान करना और पीडाकी शांति करनाही वैद्यका वैद्यपना नहींहै, किंतु सौ आगंतु मृत्युओंको हरणकरेहै इसवास्ते वैद्य आयुका प्रभुहै

रोगमादौपरीक्षेत ततोन्तरमौषधम् ।

ततः कर्मभिपक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

अर्थ—वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे, रोगज्ञानके पश्चात् औषधकी परीक्षा करे, जब रोग और औषध दोनोंको परीक्षा करचुके तब सावधानीकेसाथ कर्म (औषधदेना आदि चिकित्सा) का प्रारंभकरे । असावधानीसे चिकित्सा न करे

अब प्रसंगवश रोगोंके जाननेके वास्ते चरकसे त्रिविधचिज्ञानीयाध्यायको मापा लिखते है ॥

अब हम त्रिविध विज्ञानीयाध्यायका वर्णन करते है ॥

तहां रोगकाविज्ञान तीन प्रकारसे होता है । जैसे १ उपदेश, २ प्रत्यक्ष, और २ अनुमान, ॥

तहां आप्तवचनको उपदेशकहते है । अब यह जिज्ञासा हुई कि आप्त किसको कहते है तहां आप्तोंके लक्षण कहते है ॥

आप्तलक्षण

जो तर्करहित स्मृतविभागके जानने वाले और विना प्रीतिके परदुःससे आप्त दुस्तीहोवे उन महात्माओंको आप्त अंसा कहते है । उनका गुणसंयुक्त वचन प्रमाण है अर्थात् ग्रहणकरने योग्य है ॥

और मत्त (सिद्धी पागल) उन्मत्त (मद्यादिपीनेभै पागल) मूर्ख, विना विचारकेहने वाला, इनका वचन अप्रमाण है अर्थात् अमाननीय है ॥

प्रत्यक्षकेलक्षण

जो यस्तु अपने नेत्रादि इन्द्री और मनकरके ग्रहण करीजावे वो प्रत्यक्ष है ॥

अनुमान

तर्क और युक्तिकी जिसमें अपेक्षा होवे उसको अनुमान कहते हैं इस (उपदेश, प्रत्यक्ष, और अनुमान) त्रिविध ज्ञानसमुदायसँ प्रथम रोग परीक्षा कराहुआ रोगी चिकित्साकरनेमें संशय रहित होता है ॥

संपूर्ण ज्ञान केवल ज्ञानके एकदेश जाननेसँ कदाचित् नहीं होता किन्तु संपूर्ण ज्ञानके अंगोंके जाननेसँ होता है ॥

इन तीनोंप्रकारके ज्ञानमें प्रथम आक्षेपदेश ज्ञान मुख्य है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा निश्चय करना कहा है ॥

परन्तु वादी शंकाकर्ता है कि हम आक्षेपोंको नहीं जानते । इस वास्ते हम प्रत्यक्ष और अनुमान ए दोही परीक्षा ओंको मुख्य करके मानते हैं, इसीसँ अब ज्ञानवालोंको दोही परीक्षा करना मुख्य है, प्रत्यक्ष और अनुमान; परन्तु बहुतसँ बुद्धिमान पुरुष इनदोनों परीक्षाओंके साथ उपदेश प्रमाणको मानते हैं अर्थात् इन दोनोंमें आप्तवचन संमतजो होवे वो प्रमाण है ॥

जैसे एक रोग, दोषोंकाप्रकोप, रोगोकीयोनी, आत्मा, अंधिष्ठान, वेदना संस्थान, शब्द, स्पर्श-रूप-रस-गंध-उपद्रव-वृद्धिस्थान, क्षययुक्त इनका प्रसर और इनकेनाम इत्यादियोग आप्त वचनसँ जानना अर्थात् मवृत्ति अथवा निवृत्ति है यह आप्तवचनसँ जाना जाता है ॥

प्रत्यक्ष

रोगतत्त्वको प्रत्यक्ष जानना होवेतो सब इन्द्रियोंसँ रोगीके देहगत सबइन्द्रियार्थ (शब्द स्पर्शादिको) की परीक्षा करे, विना जिह्वाद्वारा परीक्षाके । तात्पर्य यह है कि वैद्य नेत्र, कान, नासिका, और हाथोंसँ परीक्षाकरे और सवाद जानना जिह्वा इन्द्री द्वारा होता है परन्तु इसको जिह्वा इन्द्रीसँ नहीं करते अत एव यहां वर्जित है ॥

तहां इन्द्रीयद्वारा जो परीक्षा करीजाती है उसको लिखते हैं ॥ पोरुजों

कर्णइन्द्री

जैसे आँतोंका बोलना, संधियोंका चटकना और उंगलीके पूर्वोंका चटकना इत्यादि और जो शरीरमें जव्द होनेवाले धर्म हैं उनको कर्ण इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

नेत्रइन्द्री

देहकावर्ण, ऊंचा, नीचा, छाया, शरीरकी प्रकृति, पांहरोगआदि विकार, और जो नेत्रविषयक ज्ञान है उनको नेत्र इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

जिह्वाइन्द्री

जिह्वाइन्द्रीका ज्ञान जैसे—रोगीके मलमूत्रका और देहको स्वारा मीठा जाय का यह अनुमानसँ ही जानलेवे, यह रसनेन्द्री ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा नहीं होता है; इसीसँ रोगीसँ प्रश्नद्वारा करना चाहिये अर्थात् आपके मुखका जायका कैसा, है जब मल मूत्र करते हो उसँ पर मक्खी बहुत बैठती है या थोड़ी और इसीप्रकार देहपर मक्खियोंकेँ बैठनेसँ देहमें मिष्टताका अनुमान करना और यदि जूँआँ आदि जीव देहपर बैठे तो जाननाकि इसरोगीके देहमें विरसता है॥

अब रक्तपित्तकी परीक्षामें यह परीक्षा करना कि इसके यह जलहीरुधिरमि-
छा लाल २ गिरे है अथवा रक्तपित्त गिरता है । तहां उस रुधिरको कौआ कु-
त्ते आदि भक्षणकरे तो जाननाकि रुधिर मिला जलगिरता है । और यदि कु-
त्ते कौआ आदि नखावेतो जाननाकि इसरोगीके रक्तपित्त गिरतां ॥

इसी प्रकार औरभी स्वटे चरपरे आदि इसप्रमाणिके देहगतरसोंकी परीक्षा
वैद्य अपनी बुद्धिके बलसँ करे ॥

नासिकाइन्द्री

रोगीके देहमें दुर्गंध आती है या सुगंध आती है, और दुर्गंध सुगंध किसप्र-
कारकी आती है, इत्यादि प्रकृतिविकार जन्य गंधको नासिकाइन्द्रीसँ सूँघकर जानै

स्पर्शनेन्द्री

हाथोंसँ प्रकृति और विकृतियुक्त यह कठोर है यह नम्रहै यह गरम और शी-
तल इत्यादि परीक्षा स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष और अनुमानके अेकदेश द्वारा जाननी

अवअनुमान ज्ञानको कहते है

अर्थ—अब आगे जो भाव कहते है इनमें आदिले औरभी अनुमानसँ वैद्योंको
जाने जाते है जैसे-पचनेकी शक्तिद्वारा जठराग्निका मंदतीक्ष्णादि ज्ञान होता है । इं-
द्रकसरत-डोलने फिरनेसँ बलका अनुमान होता है । शब्दादिग्रहणसँ प्राणीके
धुननेकी शक्तिका ज्ञानहोता है । व्यभिचारसँ मन और मनके अर्थोंका निश्चय
होता है । व्यापार आदिसँ विज्ञानका निश्चय होता है । संगतिसँ रजोगुणका नि-
श्चय होता है । ज्ञानसँ मोहका निश्चय होता है । द्रोह (वैरभाव) करनेसँ क्रो-
धका निश्चय होता है । दीनता करनेसँ शोकका निश्चय होता है । प्रसन्नता
(खुशबखती) सँ हर्षका निश्चय होता है । संतुष्टतासँ प्रीतिके ज्ञानहोता है । घब-
डाहटसँ भयका ज्ञानहोता है । स्वस्थचिन्तिसँ धैर्यका ज्ञानहोता है । उत्साहद्वारा-
धीर्यका निश्चय होता है । विना भ्रमके स्थितिका निश्चय होता है । अभिमायसँ

श्रद्धाका निश्चय होता है । ग्रहण धारणसँ मेधाका निश्चयहोता है । नाम ग्रहण-सँ संज्ञाका निश्चय होता है । स्मरणसँ स्मृतिका ज्ञान होता है । लज्जायुक्त होनेसँ लज्जा (शर्म) का बोध होता है । सुशीलोंके आचरणसँ शीलताका ज्ञान होता है । र्चाजित करनेसँ द्वेषका ज्ञान होता है । अनुबंधनसँ उपाधिका निश्चय होता है । चंचलता रहित होनेसँ धृतिका निश्चय होता है । आज्ञाके अनुसार चलनेसँ वशीभूतपनेका निश्चय होता है । काल-देश-उपशय-और पीडा इनसँ अवस्था-भक्ति (भोजनक्रिया) सात्म्य-और व्याधिइनका निश्चय होता है । जिसव्याधिके लक्षण छिपेहुए है उसका ज्ञान उपशय और अनुपशय द्वारा होता है ॥

तथा दोषोंका प्रमाण-अपचार-आयुकीक्षीणता ए अरिष्टद्वाराजाने जाते है ग्रहणीका मृदु और दारुणत्व-दुःस्वप्नदर्शन, अनपेक्षितवस्तुओंमें अभिप्राय-सुख दुःख इनसबका रोगीसँ प्रणयकरनेसँही निश्चय होता है ॥

इसीवास्ते मात्रेय महर्षि कहते है आप्तोपदेश प्रत्यक्षइन्द्रियोंसँ और अनुमान-द्वारा चतुर वैद्य व्याधियोंकी परीक्षाकरे ॥

अर्थवेत्ता वैद्य यथा संभव सबको सर्वथा ज्ञानबुद्धिरूप दीपकसँ देखकर कार्य करता है वह तत्ववेत्ता है ॥

प्रथम तत्व विचारकरे फिर कार्य करके उसको जाने । जो कार्य तत्वमें विशेष ज्ञाता है वह परीक्षा विषयमें मोहको नहीं भास होता है । और बुद्धिमानकी उत्तम फल प्राप्त करताहै । जो वैद्य केवल ऊपरहीसँ रोगकी परीक्षा करता है । और ज्ञान बुद्धि दीपकसँ रोगीके अंतःकरणका विचारनहीं करता वह चिकित्सा-करनेका अधिकारी नहीं है ।

इस प्रकार संपूर्ण रोगविशेषोंका त्रिविधज्ञानसंग्रह है-जैसे आप्तउपदेश करते है और जैसे मृत्युक्ष ग्रहणकरा जाताहै एवं जैसे अनुमानसँ रोगजाने जाते है उनको उदार बुद्धि वैद्य जाने इसप्रकार त्रिविधरोगविज्ञानीय विमानमें भावोंका मुनिने वर्णन करा है ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्गारे बृहन्नघंठुरत्नाकरे त्रिविधरोग विशेषविज्ञानीयं समाप्तम्

रोगज्ञानानंतरचिकित्सा

आदावंते रुजाज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः ।

१ जिस औषध अन्न और बिहारसँ रोगीको सुखहो उसको उपशय और सात्म्य कहते । और इससँ विपरीतको अनुपशय और असात्म्य कहते है ॥

भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा में यत्नकरे फिर औषधोंके विधान करके चिकित्सा करना चाहिये ।

सवरोगोंकेनामनजाननेमेंअलज्जत्व

विकारनामाकुशलो नजिह्वियात्कदाचन ।

नहि सर्वविकाराणां नामतोस्ति धुवास्थितिः ॥

अर्थ—वैद्य रोगका नाम न जाननेपर कदाचित् लज्जा न करे, क्योंकि संपूर्ण रोगोंकी नामकरकेही परीक्षा नहीं करी, अर्थात् अनेकानेक रोग इससंसारमें विना नामके दीसते हैं ।

(अनुक्तदोषोंमेंलक्षणद्वाराचिकित्साकीआज्ञा)

नास्तिरोगोविनादोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ।

अनुक्तमपिदोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

अर्थ—विनादोषोंके रोग नहींहो इसीसँ वैद्य, जो दोष शास्त्रमें नहीं कहे उन दोषोंको रोगीके उपद्रवोंसँ जानके चिकित्साकरे ।

असाध्यरोगीकीचिकित्साकानिपेध

येनकुर्वत्यसाध्यानां चिकित्सा ते भिपग्वराः ।

अतो वैद्यः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥

अर्थ—जो असाध्य रोगीका यत्न नहीं करते वोही वैद्योंमें श्रेष्ठ हैं अतएव वैद्यको उचित है कि साध्यासाध्यकी परीक्षामें श्रम करे ॥

उत्पन्नहोतेही चिकित्साकरनेकाहेतु

यथास्वल्पेनयत्नेन छिद्यते तरुण स्तरुः ॥

सएवातिप्रवृद्धस्य छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः ॥

अर्थ—जैसे तरुणवृक्ष अर्थात् नवीनोत्पन्नवृक्ष थोड़े यत्न करने परही काटा जासक्ता है, परंतु जब वोही बढकर शास्ताप्रशास्ताओंकरके बढजाता है तब उसका काटना बढाकठिन हो जाता है, उसीप्रकार रोग प्रगटहोते ही कुछ थोड़ीसी चिकित्सासे दूरहोसक्ता है परंतु जब रोगबढके बढमूल होजाता है फिर उसका दूरकरना बढा कठिन है ॥

औषधकीआवश्यकता

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजां विना ।

भेषज न पुनार्जीवेत्स एवाहि निरामयः ॥

अर्थ—जिसकी दीर्घावस्थाहै यदि वो रोग ग्रस्तहो औषध न करे तो वो दुःख सहित जीता है, और यदि वही औषध करे तो रोगरहित हो आनंदसँ जीवे। तात्पर्य यह है कि दीर्घआयुवाला विना औषधके दुखी रहता है। और औषध के करनेसँ रोग रहित जीवन पाता है ॥

नचौषधीनामपिसर्वथैव प्रभावहानिःपरिकल्पनीया ।

फलंप्रयात्पूर्वमधस्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्यनसिद्धिमेतत् ॥'

अर्थ—इसभाणीको उचित है कि औषधोंमें सर्वथा [कल्पितोपसँ] प्रभाव हानीकी कल्पनाकरे [अर्थात् अब कल्पियुगमें ये औषध अपना प्रभाव नहीं दिखाती एसाविचार कदाचित् न करे] क्योंकि भ्रमफलके स्वानेसे उलटी होती ही है। और निसोथस्वानेसँ दस्तहोते यहवात प्रत्यक्षमें किसको सिद्धनहीं है? अर्थात् सबजानते हैं तथा जमालगोटा, इन्द्रायनके फल, चोक ये सब औषध अपना फलदिखाती हैं इसी कारण औषधोंके गुणमें किसीको भी संदेहनहीं करना ॥

यदि जो औषधके गुण हैं वो गुणनहोवे तो जानना कि कितो ये दवाई पुरानी है अथवा इसके प्रयोगमें कुछनकुछ विपरीतता आगई है या इसप्राणीकी प्रकृति के अनुसारनहीं है इत्यादि कारणोंमें औषध गुणनहीं करती परंतु मूर्खमनुष्य अपने मूर्खता परतो देखते नहीं व्यर्थ औषधको दोषदेते हैं ॥

सतिचायुषिनोपायंविनोत्थातुंक्षमोरुजी ।

दर्शितश्चात्रदृष्टांतः पंकमग्नोमहागजः ॥

अर्थ—आयुष्यवान्भी रोगी विना उपायके रोगसँ नहीं उठसके, इसमें दृष्टांत है कि जैसे कीचमें फसा हुआ हाथी विना यत्नके नहीं निकलसक्ता उसीप्रकार रोगीविना यत्नके अच्छा नहीं होता। यहा रोगी है सो हाथी है, और रोगहै सोई कीचड है, उसमें फसेको औषध देना मानों उस कीचडसँ निकालनेका उपाय है ॥

सतिचायुषिनष्टःस्यादामयैश्चचिकित्सितः ।

यथासत्यपितैलाद्वादीपोनिर्वातिवात्ययाः ॥

अर्थ—दीर्घावस्थावालाभी रोगीरोगकी विना चिकित्सा (इलाज) करे नष्ट होजाता है इसमें दृष्टांत है कि जैसे तेल और वत्ती होनेपर भी हवाके वेग करके दीपक बुझ जाता है, यहां मनुष्यकी देहही दीपक है और आयु रूप तेल है समय रूपवत्ती तामें जीवरूप ज्योति है और रोगरूप पवन इस जीवरूप-पदीपकको बुझाय देती है जैसे उस दीपकको रक्षामें रखनेसें नहीं बुझे इसीप्रकार इस देहकी रक्षा करनेसें अकाल मृत्यु नहीं हो ।

यथासत्यपितैलादौदीपनिर्वापयेन्मरुत् ।

एवमायुष्ययुक्तंचहिंसत्यांगंतुमृत्यवः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त वाक्यको दृष्टांतदेकर फिर पुष्टकरते है जैसे तैलवाती आदि रहनेपर भी दीपकको पवन बुझादेती है इसीप्रकार दीर्घ आयु होनेपरभी आंगंतु ज मृत्यु इसप्राणीको नाशकर देती है ॥

दोषांगंतुनिमित्तेभ्योरसमंत्रविशारदौ ।

रक्षेतांनृपतिंनित्यंयत्नाद्द्वैद्यपुरोहितौ ॥

अर्थ—इसीवास्ते शास्त्रमें लिखा है कि दोष जन्यव्याधि और आंगंतुज व्याधियोंसें रस और मंत्रके ज्ञाता (जाननेवाले) वैद्य और पुरोहित राजका रक्षा करे ॥

रोगज्ञानमेंअभ्यासकोमुख्यत्व

अभ्यासात्प्राप्यतेद्याष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।

रत्नादिसदसज्ज्ञानं नशास्त्रादेवजायते ॥

अर्थ—अभ्यास (यारंवार चिकित्साकर्ममें प्रवृत्त होने) से कर्मसिद्धि प्रकाशकरता दृष्टी होती है, अर्थात् चिकीत्सा करनेका ज्ञान होना है, इसमें दृष्टांत है कि जैसे हीरापन्ना आदि रत्नोंके मचे छूटेका ज्ञान जैसे शाय्रके पढनेसेंहीं नहीं होता किंतु उसमें अभ्यास करनेसें होता है इसीप्रकार वैद्य विविधव्याधि चिकित्सामें जाने ॥

दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।

तत्संकगद्भवत्यन्योव्याधिरेवंत्रिधास्मृतः ॥

अर्थ—यव त्रिविध व्याधियोंको कहते है तहां कोई व्याधि दृष्टापचारज (इस लोकमें व्याधिके कारणोंसें होनेवाली) है । और कोई पूर्वापराधज (पूर्वज

जन्मके करे अशुभ कर्मोंसे हुए) है । और तीसरे इनदृष्टापचारज और पूर्वाप-
राधजके मिलने से होते है इसप्रकार रोगतीतनप्रकारके है ॥

यथानिदानंदोपोत्थेः कर्मजोहेतुभिर्विना ।

महारंभोलपकेहेतावातंकोदोपकर्मजः ॥

अर्थ—तहां दोपजन्यरोग अपने २ निदानसे प्रगट होते है (जैसे वातके
रूक्ष लघु आदि कारण है इनसे जो रोग प्रगटे वो वातजन्य जानना इसीप्रकार
पित्त और कफ जन्य रोगोको भी समझना चाहिये) और जो दोषोंके कारण
विनाही प्रगट होवे वो कर्मजन्य रोग जानना । और जिसमें थोडे दोषोंके कुपि-
त होनेसे बड़ीभारी व्याधि प्रगट हो उसको दोपकर्मज व्याधिकहते है ॥

दृष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः सत्वं सात्म्यं
तथा हारभवश्चाथपृथग्विधाः ॥ सूक्ष्मासूक्ष्माः समी
क्ष्यैषा दौषौपधनिरूपणे । यो वर्तते चिकित्सायां न
सस्खलति जातुचित् ॥

अर्थ—दोषऔपध निरूपणमें जो वैद्य दृष्य, देश, बल, काल, अग्नि, प्रकृति
अवस्था, सात्म्य, आहार, और दृष्यादिकोंकी सूक्ष्म और बड़ी अवस्थाको देख
(विचार) कर चिकित्सा करता है वह कटाचित नही स्वलन होता अर्थात्
कदाचित नहीं भूले ॥

गुर्वल्पव्याधिसंस्थानंसत्वदेहबलावलात् ।

दृश्यतेप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितोभवेत् ॥

अर्थ—वैद्य, सत्व-देह-और बलावलाके कारण गुरु और अल्प व्याधियोको
आकृति अन्यथा दीखती है उसमें सावधान होवे । जैसे अधिक सत्व और उत्कृ
ष्ट देहबलावाले प्राणीके होने वाले भारी भी रोग हलके मालूम होते है कारण
कि उसके देहमें सत्व बल ए अधिक है । इसीप्रकार हीन सत्व, हीनदेह ही-
नबल वालेके उत्पन्न हुई व्याधि हलकी भी बड़ी भारी दीखे है ॥

गुरुलघुमितिर्व्याधिं कल्पयंतुभिपग्भ्रुवः ।

अल्पदोषाकलनयापथ्ये विप्रतिपद्यते ॥

अर्थ—जो कुत्सित वैद्य है वो व्याधिके संस्थान (स्वरूप, मात्रके देखते ही

भारी रोगको हलका समझते हैं, जब हीन दोष समझा तो मात्रा भी हलकी देते हैं अतएव वो मात्रामें मोहको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार हलकी व्याधिको बड़ी भारी विचारके मात्रा देनेमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥

ततोल्पमल्पवीर्यंवा गुरु व्याधौप्रयोजितम् ।

उदीरयेत्तरारोगान् संशोधनमयोगतः ॥

अर्थ—अब कहते हैं कि अल्प मात्र—अल्पवीर्य—असी संशोधनरूप औषध प्रबल रोगोंमें दीनीहुई हीन योग होता है, इसवास्ते रोगोंको अत्यंत बढ़ाती है । इससे तो औषधन देनाही ठीक है जैसे पुत्रके कार्य न करनेसे अपुत्र कहाता है उसीप्रकारका अयोग ही हीनयोग कहलाता है ॥

शोधनत्वतियोगेनविपरीतंविपर्यये ।

क्षिणुयान्नमलानेव केवलं वपुरस्यति ॥

अर्थ—लघुव्याधिमें विपरीत शोधन अर्थात् अत्यंत वीर्यवान् ओर अधिक औषधीदेवे, वह अतियोगके वस मलोंको ही नहीं क्षीणकरे है किंतु देहको भी नष्टकरे है ॥

अतोभियुक्तः सततंसर्वमालोच्यसर्वथा ।

यथायुंजीतभैषज्यमारोग्याययथाधुवम् ॥

अर्थ—इसकारण अर्थात् रोगोंकी गति दुर्विज्ञेय होनेसे निरंतर आयुर्वेद पठन पाठन अनुष्ठानमें तत्पर वैद्य सब दृष्यादि वस्तुओंको विचार इसप्रकार औषध देवे कि जैसे आरोग्य अवश्य होवे ॥

दर्शन-स्पर्शन-प्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधामतम् ।

दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नाडिकादिभिः ।

प्रण्यैः दूतादिवचना दितित्रेधासमुच्यते ॥

अर्थ—रोगका ज्ञान तीनप्रकारसे होता है जैसे—दर्शन (देखना) स्पर्शन (छूना) और मण्य (पूछना) तहाँ मूत्र और जिह्वा आदिशब्दसे मल-देहकी आकृति आदि देखने करके जाने । नाडी आदिको छूनेसे जाने । और दूतादिके वचन पूछने करके वैद्यजाने इस प्रकार परीक्षा तीन प्रकारकी है ॥

शारीरामानसागंतुसहजाव्याधयोमताः ।

शारीराज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्यामानसामताः ।

आगंतवोभिशापेत्या सहजाशुनृपादयः ॥

अर्थ—तहां व्याधि चारप्रकारकी है १ शारीरी २ मानसी ३ आगंतु-और ४ सहज । तहां ज्वरकुष्ठादिक शारीरी व्याधि है । क्रोध-लोभादिक मानसिक व्याधि है । अभिशापजन्य व्याधि आगंतुज है और भूखप्यास-निद्राआदि सहज व्याधि कहलाती है ॥

रोगोकेभेद

तेचस्वाभाविकाः केचित्केचिदागंतवः स्मृताः ।

मानसाःकेचिदाख्याताःकथिताःकेऽपिकायिका ॥

अर्थ—उनरोगोंमेंकोई स्वाभाविक रोगहै । कोईआगंतु और कोईमानसिक एवं कोईरोग कायिक अर्थात् देहसे संबंध रखते है ॥

त्रिविधव्याधि

कर्मजाः कथिताः केचिदोपजासंतिचापरे ।

कर्मदोषोद्भवाश्चान्येव्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ॥

अर्थ—व्याधी तीन प्रकारकी हैं—जैसे एकतो कर्मज (जो पूर्वजन्मो पाजित कर्मसे होती है) दूसरी दोषज (जो वातादि दोषोंके कुपित होनेसे) होती है और तीसरी कर्म और दोषदोनों करके त्रिविधव्याधियोंकी चिकित्सा होने वाली, ये तीनभेद है ॥

त्रिविधव्याधियोंकीचिकित्सा

कर्मक्षयात्कर्मकृतादोषजाः स्वस्वभेपजैः ।

कर्मदोषोद्भवायांतिकर्मदोषक्षयात्क्षयम् ॥

अर्थ—कर्मकृतव्याधि कर्मके जीर्ण होनेसे शांति होतीहै । दोष जन्य व्याधि

१ स्वाभाविक रोग भूखप्यास, निद्रा, श्रद्धावस्था, और मृत्यु आदिहै, अपना अपने स्वभावसे उत्पत्ति होवे उसके स्वाभाविक कहिये सहज रोग, वो जन्मांवादिंक जानने । २ जो किसी प्रकारकी चोट लगनेसे होवे वो आगंतुज है । ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता, पिशुनता, शोक विषाद, हर्ष, इर्ष्या अमृषा और मात्सर्यादिक ए मानसि व्याधिहै । ४ नपना उन्माद, अपस्मार, भ्रम, मोह, तप्त संन्यासादिक जानने । * पूर्वजन्मो पाजित दुष्टकर्म जन्यव्याधि ॥

अपनी २ पृथक् २ औपध करनेसे शांति होती है, और कर्मदोष दोनोंसे प्रगट व्याधिकर्म और दोष दोनोंके क्षय होनेसे दूर होती है ॥

पुनः त्रिविधव्याधि

साध्यायाप्याअसाध्याश्चव्याधयस्त्रिविधाःस्मृता ।

सुखसाध्यकष्टसाध्यो द्विविधः साध्यउच्यते ॥

अर्थ—साध्य—याप्य और असाध्य असें व्याधितीन प्रकारकी है । अब कहते है कि साध्यव्याधिके दोभेद एक सुखसाध्य—दूसरी कष्टसाध्य ॥

याप्यकेलक्षण

यापनीयंतुतंविद्यात्क्रियांधारयतेहियत् ।

क्रियायांतुनिवृत्तायांसद्यो यश्चविनश्यति ॥

अर्थ—अबयाप्यके चिन्ह कहते है कि जो चिकित्साकी क्रियाको धारण करे उसको याप्यअर्थात् दूर होने योग्य व्याधि जाननी । और औपधोपाय न चले तो वोरोगी शीघ्रमरे उस रोगीको याप्यजानना ॥

प्राप्ताक्रियाधारयतिसुखिनंयाप्यमातुरम् ।

प्रपतिष्यदिवागारंस्तम्भोयत्नेनयोजितः ॥

अर्थ—याप्य रोगीको प्राप्तहुई क्रिया धारण करती है अर्थात् जब तक उर सका यत्नहुआ करेगा तबतकरोगी नहीं मरे, जैसे गिरतेहुए घरमें अडवार अथवा किसी पत्थर वगेरहकानीचे सहारा लगादेनेसे वह घर नहीं गिरे ॥

साध्यायाप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा ।

घ्नंति प्राणानसाध्यस्तु नराणामक्रियावताम् ॥

अर्थ—विना यत्नकरनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग याप्य होजाते है, और याप्यरोग असाध्य होते है, एवं असाध्य रोग इन प्राणियोंकेप्राणोंको हरण करते है [इसीसे मनुष्य मात्रको उचित है कि रोगके उत्पन्न होते ही उसकायत्न द्वारा निवारण करे] ॥

याप्यत्व

याप्यःकेचित्प्रकृत्यैवकेचित्प्राप्याउपेक्षया ।

प्रकृत्याव्याधयोऽसाध्यकेचित्साध्याउपेक्षया ॥

अर्थ—कोई रोगतो प्रकृतिसंही याप्यहोते है और कोई रोगनी उपेक्षाकरने

सैं हांते है । कोई व्याधि प्रकृतिसै ही अर्थात् उत्पन्न होते ही असाध्य होती है और कोई उपेक्षाअर्थात् उसका यत्नही करनेसैं होती है ॥

साध्योयमितियःपूर्वनरोरोगमुपेक्षते ।

सकिंचित्काल मासाद्यमृतएवावदृश्यते ॥

अर्थ—यह रोग अभीतो साध्य है इस प्रकारजो उसकी उपेक्षा करदेता है, वह थोड़ेही कालमें मरगया असादीखता है ॥

सप्तविधव्याधि

स्वभावजाश्वदोषोत्थाः सहजाश्वापचारजाः ।

आगंतवःप्रभावोत्थाः कालजाश्वेतिसप्तधा ॥

अर्थ—१ स्वभावज २ दोषज ३ सहज ४ अपचारज ५ आगंतुज और ७ कालज एसैं व्याधिसात प्रकारकी है ॥

स्वभावजाः समाख्यातावाद्धिक्याक्षुत्पादयः । दोषो
त्थाश्चाऽनृताहाराविहारादिसमुद्भवाः ॥ सहजारक्त-
रेतस्थदोषसंभारसंभवाः । गर्भेपचारजास्तेस्युः कु-
ब्जावामनतादयः । आगंतवोऽग्निवाय्वादिभूतावे-
शादिसंभवाप्रभावोत्थासुरक्षोणीसुरगुर्वादिशापजाः ॥
वर्षाशीतातपाद्युत्थाव्याधयःकालजामताः ।

अर्थ—तहां भूखप्यास और बुढापाआदि स्वभावजरोग है । मिथ्याआहार-
सैं प्रगट होनेवाली व्याधि दोषज कहाती है । मातापिताके रुधिर और वीर्यदोष-
सैं जो रोगप्रगट होवे वो सहजव्याधि कहलाती है । गर्भवतीके विरुद्धाचरणसैं
जो कुबडा-बौनाआदि व्याधि है उनको अपचार जन्यकहते है । अग्नि-पवन
आदि और भूतावेशसैं होनेवाली व्याधियोंको आगंतव कहते है, ब्राह्मण-देवता-
गुरुआदिके शापसैं होनेवाली व्याधियोंको प्रभावोत्थ कहते है और वर्षा (बार-
श) सरदी और गरमीसैं जो प्रगट उन व्याधियोंको कालजन्य कहते है ॥

उपद्रवकेलक्षण

रोगारंभकदोषस्यप्रकोपादुपजायते ।

योऽन्योविकारः सवुधैरुपद्रवइहोदितः ॥

अर्थ—जो रोगके उत्पन्न करने वाले वातादिदोष हैं उनके कृपित होनेसैं

जो रोगमेंभी दूसरा विकार उत्पन्न होता है उसको उपद्रव कहते हैं । उदाहरण-
जैसे ज्वरमें तृषा-अनिद्रा आदि उपद्रव होते हैं ॥

अरिष्टकेलक्षण .

रोगिणोमरणंयस्मादवश्यंभाविलक्ष्यते ।

तल्लक्षणमरिष्टस्याद्रिष्टंचापितदुच्यते ॥

अर्थ—जिन लक्षणोंसे रोगोंका मरण अवश्य सूचितहो उनको अरिष्ट अथवा रिष्ट अैसे कहते हैं ॥

नजंतुकश्चिदमरः पृथिव्यामेवजायते ।

अतोमृत्युरवार्यस्यात् किंतुरोगान्निवारयेत् ॥

अर्थ—इसपृथ्वीमें कोई प्राणीअमर (जोनमरे अंसा) नहीं है अर्थात् सब-
कंदिनमरेंगे इसीवास्ते मृत्यु निवारणनहीं होसकती किंतुरोग निवारण होसके
हैं । तात्पर्य यह है कि वैद्य रोगरहित करदेवे-जैसे मरते समय कंठमेंकफघटघटा-
ता है तो वैद्यकी चातुर्यता यह है कि ऐसी औषध देवे कि कफका बोलना बंद
हो जावे फिर वोरोगी चाहिये उसीक्षणमें मरजाय ॥

मृत्युसंज्ञाऔरकालसंज्ञा

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ।

तत्रैककाल संयुक्तः शेषास्त्वांगंतवः स्मृता ॥

अर्थ—अथर्वाण ऋषिने १०१ एकसों एक मृत्युकहीं है तिनमें एककाल सं-
ज्ञक मृत्युहै बाकी आंगतु संज्ञक मृत्युकहीं है । तहां कालसंज्ञक मृत्युआयुष्य-
के अंतमें प्राणियोंको अवश्य मारेगा-यह सब उपायोंसेभी अवार्य है तथा ब्रह्मा-
दिकोंकी भी आयु अंतमें हरण करता है जैसे लिंगपुराणमें कार्तिकेयके प्रति-
श्री शिवका वाक्य है ॥

ममायुर्ग्रसतेकालः कुतः पुत्ररसायनम्

अर्थ—हे पुत्र ! यहकाल मेरी भी आयुको ग्रसता है जिनको प्राणी रसायन
कहता है सो कहां है । अतएवजो काल संज्ञक मृत्यु है वह अवश्य होकररहती
है और जो आंगतुसंज्ञक जैसे-विषभक्षण अजीर्णमें अत्यंत भोजन दुष्ट देशका
जलपीना-अत्यंत बलवान्सें व्याघ्र-वनका भैसा-मतयाराहायी आदिसें लडना
सर्पके साथखेलना-अत्यंतऊंचे वृक्षपरचढना-हाथोंसें तैरकर बर्डीभारी नदीको
पारजाना, अकेला रात्रिमेंजाना-इत्यादि जानना ये यत्नकरनेसें रुकसक्ती हैं ॥

शितेशीतप्रतीकारमुष्णोष्णनिवारणम् ।

कृत्वा कुर्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥

अर्थ—शरदीके रोगमें शरदीके निवारण कर्त्तागरम और गरमीके रोगमें गरमीके निवारणकर्त्ता शीतल, औषध करके प्राप्तक्रियाको करे, किंतु क्रियाके समयको नष्ट न करे, अर्थात् जोसमय क्रियाकरनेका शास्त्रने निश्चय कियाहै, वह उसी समय क्रियाकरनी, आगे पीछे नहीं ।

विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रियालघ्वी गरीयसि ।

द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥

अर्थ—छोटेसे रोगमें बड़ीभारी क्रियाका करना अर्थात् अधिक और उत्कट औषधदेना, एवं बड़ेभारी रोगमें छोटी क्रिया अर्थात् थोड़ीदवा और अल्पगुण वाली देना, ये दोनों कर्म वैद्यकी मूर्खता सूचक है । कुशलता वैद्यकी उसीमें है कि यथा योग्य कर्मकरना ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।

पूर्वस्यां शांतिवेगायां न क्रिया संकरो हितः ॥

अर्थ—जो रोगीके प्रति क्रियाकरे यदि वह अपना गुण न दिखलावे तो दूसरी क्रियाकरें, अर्थात् दूसरी औषध देवे । परंतु जब पहली औषधका वेग शांति होलेवे तब दूसरीदेवे, क्योंकि संकर (विपरीत) क्रिया रोगीको हितकारी नहीं होती ॥

क्रियाभिरल्परूपाभिर्नक्रियासंकरोहितः ।

ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैवदुष्यति ॥

अर्थ—वैद्यको एकसी दोचिकित्सा एकही कालमें नहीं करनी चाहिये, वो हितकारी नहींहोती । परंतु यदि दोनो भिन्न २ रूप अर्थात् पृथक् २ रूप वाली होवेतो वो संकर दोषकारक नहीं होती ॥

उत्पद्यते च सावस्था दोषकालवलं प्रति ।

यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्मकार्यं विवर्जितम् ॥

अर्थ—देश, काल, बल, इनकी अवस्थादेसके वैद्य रोगीको औषध देनेमें यदि विकृति देखे तो वह औषध वैद्यको त्यागदेनी चाहिये । इसका यह तात्पर्य है कि बहुतसे रोगोंमें देश काल और बलके अनुसार कोई करनेयोग्य कार्यतो

न करने योग्य होजाता है, और न करनेयोग्य कार्य करनेयोग्य होजाता है ।
इसवातका विचार वैद्यको करलेना चाहिये ॥

अच्छेहोनेपरभीपथ्यकरनेकीआज्ञा

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिः स्वल्पेनायातिहेतुनाः ।

दोषैर्मागीकृतेदेहेशेषः सूक्ष्मइवानलः ॥

अर्थ—दोषों करके रास्ता करी हुई देहमें दूरहुईभी व्याधि थोड़ेसेभी कुप-
थ्य करने से फिर लौट आती है, जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निकी चिनगारी रहने पर
फिर प्रज्वलित आग होजाती है ॥

कर्मदोषजऔरदोषजव्याधि

पुण्यैश्वभेपजैशांतास्तेज्ञेयाः कर्मदोषजाः ।

विज्ञेयादोषजास्त्वन्येकेवलावाथसंकराः ॥

अर्थ—जो व्याधि पुण्य और औषधों करके शांति होवे वो कर्म और दो-
षजन्य जाननी अन्य व्याधि केवल दोषजन्यही होती है और कोई २ मिश्रित
व्याधि होती है ॥

दर्शनस्पर्शनप्रष्णैः परीक्षेतचरोगिणम् ।

रोगनिदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

अर्थ—दर्शन, स्पर्शन, और प्रष्णसे, रोगीकी परीक्षाकरे तथा निदान, पूर्व-
रूप, रूप, उपशय, और संप्राप्ति इस निदान पंचक द्वारा रोगकी परीक्षा वैद्य-
को करनी चाहिये ॥

अब रोगपरीक्षा करनेका क्रम लिखते है

वैद्यको उचित है कि एक ऐसी पुस्तक बनावे कि जिस्में ८ खाने हो ।
उनमें जिसरोगीका यत्र करे उसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखलिया करे ।

१ पहले खानेमें रोगीका नाम तथा उपनाम लिखे ॥

२ दूसरेमें उसकी अवस्था लिखे ॥

३ तीसरेमें ज्ञाति और वर्णन तथा उसका रुजगारलिखे ॥

४ चौथेमें विवादित है या कारा है वह लिखे ॥

- ५ पांचवेमें उसकाजन्म और वर्तमानमें रहनेका स्थान लिखे ॥
- ६ छठेमें रोगकानाम और उसके उत्पन्न होनेकी तिथिवार संवत् लिखे ॥
- ७ सातवेंमें रोगीके चिकित्सा आरंभका दिनलिखे ॥
- ८ आठवेंमें रोगीकी अवस्था आदि लिखनी ॥

अब लिखते हैं कि वैद्यको रोगीसँ यह पूछना चाहिये कि तुझारे यह रोग कबसँ हुआ है, और उत्पन्न होनेमें इसकी क्या व्यवस्था थी, अर्थात् यह रोग एकसाय बढ़ा है या धीरेधीरे तथा किस प्रकारबढ़ा ॥

दुसरे वैद्यको पूटना कि इसरोगीके कुलमें कोई पैतृज रोगतो नहीं है तथा इसके माता पिताकी मृत्यु कौनसी अवस्थायें हुई, और वो कौनसे रोगसँ मरे तथा इसकी जठराग्नि कैसी है और शीतला, फेंफड़ेके रोग हुए हो तो उनको भी पूछे, तथा स्त्रियोंमें ऋतुका हालपूछे अर्थात् ऋतु कुछ पीडाके साथ तो नहीं हो, एवं समय २ परहोता है कि कुछ हेरफेरसे होता है, और थोडाहोता है या अधिक ॥

फिर यहतलाशकरे कि प्रथम यह रोगकैसँ आया और किसकी दवाईकरी उस दवाईने क्या फायदा और नुकसान करा ॥

फिर रोगीकी अवस्थाकी परीक्षा एवं मल, मूत्र, जिह्वा, श्वास, त्वचा, स्वर, नेत्र, मुख बलावल, और नाडीआदि की परीक्षा सावधानीके साथकरे तो रोगका ज्ञान भलेप्रकार होवे इसमें संदेहनही है ॥

औषधं मंगलं मंत्रं मन्याश्रविविधाः क्रियाः ।

यस्यायुस्तत्रसिध्यंति नसिद्धयंतिगतायुपि ॥

अर्थ—औषधी मंगल (स्वास्तिवाचन पुण्याहवाचनादि) मंत्र और अनेकप्रकारकी क्रिया (जादू-टोना-टोटकाआदि) ये सब जिसकी आयुवाकी है उसजगे चलती है औरगतायु मनुष्य परनहीं चले ॥

आरोग्यलक्षण

मंगलाचारसंपन्नपरिवारस्तथातुरः । श्रद्धधानोऽनकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥ सत्वलक्षणसंयुक्तोभक्तिवैद्यद्विजातिपु । चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ॥

अर्थ—मंगलाचार संपन्न, परिवार (कुटुंब) के माणियों करके युक्त, श्रद्धावाला, अपने, अनुकूल बहुतसाद्रव्यसंग्रवाला, सतोगुणी, वैद्य और ब्राह्मणोंका

भक्त, और चिकित्सामें अरुचि नलाने वाला, असारोगी होवे तो जानना कि यह आरोग्य होयगा इसमें संदेहनही ॥

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापिवा ।

दृष्ट्वापथिनिरातंकं मरुत्वाब्रह्महाशुचिः ॥

अर्थ—जो वैद्य, मार्गमें तीव्ररोगसें ग्रस्त ब्राह्मण अथवा गौको रोगी देख उसकी विना चिकित्साकरे वैसेही चलाजावे उसको ब्रह्महत्याका पाप लगकर अपवित्र होता है ॥

॥ इति चिकित्सापाद चतुष्टय वर्णनम् समाप्तम् ॥



अथ

ज्वरप्रकरणम्



शिष्य—रोग कितने हैं ? ॥

गुरु—रोग असंख्यात अर्थात् वेशुमारी है परंतु उसमेंसे मुख्य २ जो प्राचीन आचार्योंने संग्रह करे है उनकोमें कहताहू तू सुन ॥

रोग संख्याहेमाद्रौ

ज्वरातिसारो ग्रहणीह्यर्शो जीर्णविशूचिका।सालसाच-
विलंबी च कृमिरूक्पांडुकामलाः ॥ इलीमकं रक्तपित्तं
राजयक्ष्मा उरः क्षतम् । कासो हिका तथा श्वासः
स्वरभेदस्वरोचकः ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च तथा
पानात्ययादयः । दाहारव्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारो
ऽनिलामयः ॥ वातरक्तमुरुस्तंभमामवातोऽथशूलरूक्
पक्तिजं शूलमानाहमुदावर्तोथ गुल्मरूक् । हृद्रोगो मू-
त्रकृच्छं च मूत्राघातस्तथाश्मरी ॥ प्रमेहो मधुमेहश्च पि-
डिकाश्च प्रमेहजाः । मेदो दोषोदरं शोथो वृद्धिश्च ग-
लंगंडकः । गंडमालापचीग्रंथीह्यवुदं श्लीपदं तथा
विद्रधिब्रणशोथौ च द्वौवणौ भग्ननाडिकौ । भगंदरो-
पदंशौ च शूकदोषास्त्वगामयः ॥ शीतपित्तमुदुर्दंश्चो
त्कोठकश्चाम्लपित्तकं विसर्पश्च सविस्फोटस्तथेव च
मसूरिका क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरस्त्रीवालकामयाः
विषं चेत्ययमुद्देशः संग्रहेस्मिन्प्रकीर्तित ॥

अर्थ— १ ज्वर २ अतिसार (दस्तोकी विमारी) ३ संग्रहणी (पेचित्त)
४ बवाशीर ५ अजीर्ण (बदहजर्भकारोग) ६ विशूचिका (हैजा) ७ अलस

८ विलांबिका (ये दोनो रोग उसी हैजाके भेद है,) ९ छमिरोग (देहके बाहर भीतर जो कीड़े पढजाते है) १० पांडुरोग (पीलियाका रोग) ११ हलीमक (पीलियाका भेद) १२ रक्तपित्त (जिस रोगमें मुख और गुदासँ खून गिरता है) १३ राजरोग (खई) १४ उरःक्षत (छातीका घाव) १५ खांसी १६ हिचकी १७ श्वास (दमाका रोग) १८ स्वरभेद (जिसमें आवाज घैठ जाती है) १९ अरुचि (भोजनमें नफरत होना) २० छर्दि (रद्द होनेका रोग) २१ वृष्णा (प्यासका रोग) २२ मूर्च्छा (बेहोशी) २३ पानात्यय (जो बहुत दारूके पीनेसँ होते है) २४ दाह (जलनकारोग) २५ उन्माद (पागलपना, २६ अपस्मार (मृगीका रोग) २७ वादीके रोग २८ वातरक्त (जिससँ देहमें काले र चकते पढजाते है) २९ (उरुस्तंभ जांघ रहकर जिससँ डोलना फिरना बंदहो जाता है) ३० आम वात (आंउका गिरना) रोग ३१ शूलरोग (पेटमें दर्द अँठेका चलना) ३२ परिणाम शूल (जो दर्द भोजन करनेके उपरांत होता है) ३३ अफरा ३४ उदावर्त्त (जो मलमूत्रादिके रोकनेसँ होता है) ३५ गुल्म (गोलेका रोग) ३६ हृदय (छातीका, रोग) ३७ मूत्रकृच्छ (पेमावका रुकना) ३८ मूत्राघात (पेसावका पीढाके साथ उतरना इसाकाभेद मुजाक का रोग है) ३९ अशमरी (पथरीका रोग,) ४० प्रमेह (जरियान्का रोग) ४१ मधुमेह (जिसमें पंमाव राहतके मार्गिद निकले) ४२ पिष्टिका (इसी प्रमेह रोगके कारण जो वदनमें फुंसी होती है ४३) मेदरोग (जिम्में यह मनुष्य बेसुमार मोटा होजाता है) ४४ उदर (जलंधर रोग) ४५ शोथ (मूजन परम) रोग ४६ वृद्धि (पांते छिटकना) ४७ गलगंड (घेंपारोग जो अकमर परसके देशोंमें देखाजाता है (४८ गंडमाला (जिममें नाडके चारचोतरफ गांठ और फोटे हो जाये) ४९ अपची (भरने फूटने वाली गांठ) ५० ग्रंथी (गांठकारोग) ५१ अर्बुद (बहुत दिनमें पकनेवाली गांठ) ५२ श्लीपद् (पीलपाजका भेद) ५३ विद्राधि (पेटका फोटा) ५४ मणशोथ (घावकी मूजन) ५५ व्रण (घाव) ५६ नाडीव्रण (नागूरका फोटा) ५७ भग्नरोग (हटरी आदिका टूटना) ५८ भग्नद्र (गुदाके ऊपर होनेवाला घाव) ५९ उपदंन (इन्दीकी विमारी) ६० शुकशोष । (छिगयदानेसँ होने वालारोग) ६१ रक्षा (जिन्दके कोट आदि रोग) ६२ शीतपित्त (पित्ती) ६३ उर्द (पिन्काभेद) ६४ उत्त्रांठ (चकनांका रोग) ६५ अम्लपित्त (जिम्में खटी रसारेसँ साथ मूमें मूत्रापानी आवे) ६६ विमर्ष (बहुतजल्दी फेचनेवाले फोटे) विस्फोट (फाँदेन्का रोग) ६७ ममृगिका (शीतत्याका रोग) ६८ क्षुद्ररोग (छोटे र रोग जैमें जिल्द मम्मं गान्त्रा आदि) ६९ मुम्बेक रोग, ७० पानेक रोग, ७१ नायके रोग, ७२ नेत्रके रोग, ७३ जिम्में

रोग ७४ स्त्री (औरतोंके) रोग, ७५ बालकोंके रोग, और ७६ विप (जहरसँ होने वाले) रोग, इतने रोग इस ग्रंथमें कहे हैं बाकी फिरगरोग, वदका रोग, न-पुंसक इत्यादि सब रोगोंका निदान चिकित्सा इस ग्रंथमें विस्तारपूर्वक कहा जावेगा ॥

रोगनाम

गदोरुजोव्याधिरपाटपाप्मारोगामयातंकमयोसघा-
तः । रुडंधमंगार्त्तितमोविकारग्लानिः क्षयानार्जवमृ-
त्युभृत्याः ॥

अर्थ—अवरोगके नाम कहते हैं. तहां गद, रुज, व्याधि, अपाट, पाप्मा, रोग, आमय, आतंक, मय, असघात, रुड, अंध, अंगार्त्ति, तम, विकार, ग्लानि, क्षय अनार्जव और मृत्युभृत्यये रोगके नामांतर है ॥

रोगीकेनाम

व्याधितोविकृतोग्लाण्णुग्लानोमंदस्तथातुरः ।
अभ्रांतोभ्रामितोरुग्णश्रामयाव्यपटुश्वसः ॥

(अर्थ—अव रोगीके नाम कहते हैं जैसें. व्याधित, विकृत, ग्लाण्णु, ग्लान, मंद, आतुर, अभ्रात, भ्रमित, रुग्ण, आमयावी, अपटु, ए रोगीके नामांतर है ॥

रोगीकेलक्षण

उत्साहीद्विजदेवभेषजभिषग्भक्तोऽतिपथ्येरतो धीरो-
धर्मपरायणः प्रियवचोमानीमृदुर्मानदः । विश्वासीक्र-
जुरास्तिकः सुचरितोदातादयालुः शुचिः।यःस्थात्का-
ममवंचकः सविकृतोमुच्येतमृत्योरपि ॥

अर्थ—उत्साही, ब्राह्मण-देव-औषध-और वैद्य इनका भक्त, अत्यंत पथ्यसँ चलने वाला, धीर, धर्मात्मा, मिष्टबोलने वाला, मान रहित, नम्रतायुक्त । औ-रको मानकादेने वाला, विश्वास रखने वाला, सरलस्वभावका, आस्तिक, प-वित्रचरित्र वाला, दाता, दयालु, शुद्धता सँ रहने वाला, और टगटुत्तिकरके रहित, असा रोगी मौतसँ भी बच जाता है; अतएव रोगीको उक्तगुण संयुक्त होना चाहिये ॥

आमव्याधिलक्षण

आलस्यतंद्राहृदयाविशुद्धिदोषाप्रवृत्त्याकुलमूलभावैः ।

गुरूदरत्वादरुचिसुप्तताभि रामात्वितंव्याधिमुदाहरंति ॥

अर्थ—आलस्य, तंद्रा, हृदयकी विशुद्धि अर्थात् चित्तमें अस्वास्थ्य, और म-
लमूत्रका अवरोध, पेटका भारीपना, अरुचि, अंगोंका रहजाना, इत्यादि लक्ष-
णोंसे आमयुक्त व्याधि जानना ॥

उसकायत्न

आमंजयेल्लघनकोष्णपेयाल्लघ्वन्नरूक्षोदनतित्त्यूषैः ।

निरूहणैः स्वेदनपाचनैश्चसंशोधनैरूर्ध्वमधस्तथाच ॥

अर्थ—लघन, मंदोष्णपेया, हलकेअन्न, रूखेअन्न, कहुएरस, मूंगकायूप-
आदि, निरूहवस्ती, शेक, पाचन, रेचन, और वांति, इत्यादि उपायोंसे आम-
व्याधिका नाश करे ॥

दोषत्रयकायत्न

कफंतुरिपुवतीक्ष्णैर्वातंस्नेहेनमित्रवत् ।

पित्तंजामातरमिव मधुरैः शीतलैर्जयेत् ॥

अर्थ—कफको शत्रुके समान तीक्ष्ण औषधोंसे जीते, वादीको मित्रके समान
स्नेहनद्रव्य से जीते, और पित्तको अपने जामाता (जमाई) के समान मधुर
और शीतल पदार्थोंसे जीते ॥

औषधकेनाम

भैपज्यंभेपजंजैत्रमगदोजायुरौषधम् ।

आयुर्योगोगदारातिरमृतंचतदुच्यते ॥

अर्थ—अब औषधके नाम कहते हैं जैसे—भैपज्य, भेपज, जैत्र, अगद, अजा
यु, औषध, आयुयोग, गदाराति, और अमृत, ये औषधके नामांतर हैं ॥

औषधकेदोभेद

भेपजं द्विविधंचतत्

स्वस्थस्योजस्करं किंचित्किञ्चिदार्तस्यरोगनुत् ॥

अर्थ—अब कहते हैं कि यह चिपित्ता अर्थात् औषध दो प्रकारकी है, ए-

क तो नैरोग्य पुरुषको तेज- (पुरुषार्थ) केकरने वाली, और दूसरी रोगीके रोगको नाश करनेवाली ॥

स्वस्थस्योजस्करंयत्तु तद्वृष्यन्तद्रसायनम् ।

प्रायः प्रायेण रोगाणां द्वितीयं प्रशमे मतम् ॥

प्रायः शब्दो विशेषार्थोऽस्युभयं स्युभयार्थकृत ।

अर्थ—अब दोनोंके भेदोंको कहते हैं कि जो स्वस्थ (नैरोग्य) पुरुषके तेज, बल, कांतिको, बढ़ावे वो वृष्य और रसायन है । वह इस चिकित्साखंडके अंतमें लिखेंगे) तथा दिनादिचर्याभी इसी ओजस्कर चिकित्सामें है यह प्रथम इस बृहन्नियंदुरलाकरके दूसरेभागमें लिखा आए है । और दूसरी रोगीके रोगहरणकारी चिकित्सा है वह इसीचिकित्साखंडके अत्येक ज्वरादिरोगोंमें पृथक् २ लिखी जावेगी ॥ प्राय यह शब्द विशेषार्थ वाचक है और उभयशब्द दोअर्थका वाचक है ॥

अभेषजंचद्विविधं बाधनंसानुबाधनम् ।

अर्थ—अभेषज (अर्थात् जो औषधनही है) वह दो प्रकारकी है एकबाधन और दूसरी सानुबाधन ॥

अभेषमितिज्ञेयं विपरितंयदौषधम् ॥

अर्थ—जो औषधसें विपरीत कर्मकरे उसकोअभेषज असें वैद्य कहते हैं ॥

शिष्य—प्रथम ज्वर कहनेका क्या प्रयोजन है ॥

गुरु—यह संपूर्ण रोगोंका राजा है अतएव प्रथम हम ज्वराधिकार कोही वर्णन करते हैं जैसे लिखा है ॥

यतः समस्तरोगाणां ज्वरोराजेतिविश्रुतः ।

अतोऽज्वराधिकारोत्रप्रथमंलिख्यतेमया ॥

अर्थ—संपूर्ण रोगोंमें ज्वर राजा है इस प्रकार सुना है अतएव प्रथममें इस जगे ज्वराधिकार लिखता हूं तहां प्रथम ज्योतिषके मतको कहते हैं ॥

पूर्वजन्मकृतं पापं ग्रहरूपेण वाधते ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके पाप इस प्राणीको ग्रहरूप होके बाधा करते हैं

ग्रहेषु प्रति कूलेषु नानुकूलं हि भेषजम् ।

तेभेपजानांवीर्याणिहरन्तिबलवंत्यापि ॥
प्रतिकृत्यग्रहाण्यादौ पश्चात्कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—ग्रह (सूर्यचंद्रादि) के प्रतिकूल (मारकादि) होनेसे प्राणीको औ-
पधी अनुकूल (हितकारी) नहीं होती, क्योंकि वो दुष्ट ग्रह बड़ी बलवान् औ-
पधोंके वीर्यको हरण करलेते है इसीसे वैद्यको उचित है कि प्रथम ग्रहोंको जप
दान, हवन पूजनादिसै शांति करके फिर चिकित्सा करे अत एव अव उनग्रहोंके
द्वारा ज्वर रोगका निर्णय कहते है ॥

ज्योतिः शास्त्रकाअभिप्राय

नीचस्थितस्य भानो दशाक्षिनाशो ज्वरः शिरोरो-
गाः । वंधनमहोग्रपीडाकुप्टस्य च दर्शनं चिन्हम् । एवं
क्षीणेन्दुदशायां परिचिंतनीयं ॥

अर्थ—नीचस्थितसूर्यकी दशामें नेत्रनाश, ज्वर, मस्तकरोग, वंधन, महा-
मय, कोढ़, रोग इत्यादि पीडाहोती है । इसीप्रकार क्षीणचंद्रकी दशामें भी
रोगहोते है ॥

सुहृद्वंधुसमायोगो भूनिमित्तं कलिर्भवेत् । देहपीडाज्व-
रोव्याधिः शिखिमध्यगते बुधे । शनिरंतर्गतेप्येवं ।
तद्वैरुतनिराकृतयेजपहोमादिकं कुर्यात् इति सारावल्यां ॥

अर्थ—केतुकी दशामें बुधकीदशाआनेसे सुहृद तथा वंधु इनका समागम, औ-
र पृथ्वीकेमध्ये झगडा, देहमेंपीडा, ज्वर, और व्याधि ये उपद्रव होते है । तथा
शनीकी दशामें बुधकीदशा आनेसे उक्तफलहोता है उस पीडाके दूरकरनेके
निमित्त जपहोमादिक करे यह मारावली ग्रंथमें लिखा है ॥

ज्योतिषकल्पतरौ

हेलिः पित्तश्चन्द्रमाश्लेष्मवातौ भौमः पित्तोज्ञः त्रिदो-
षप्रधानः । जीवःश्लेष्माकारकोभार्गवस्तु वातश्ले-
ष्मामास्करिवातकारी ॥

अर्थ—अशुभ सूर्य पित्तकेरोगोंको करे है, चंद्रमा कफवातके रोगोंको करे है,
मंगल पित्त, बुध त्रिदोष (सौनेपात) के रोगोंको, बुधस्पति कफके विकार,

शुक्र वातकफके विकार, एवं अशुभ शनिश्चर वादीके रोगोंको अपनी दशांतर्दशामें कर्ता है ॥

ज्योतिषहरस्येऽपि

योबलीत्रिकभावेशोदशाश्चांतर्दशास्वपि ।

सूर्यभौमार्किभिर्विद्धः सभवेज्वरदायकः ॥

अर्थ—त्रिकभाव ६-८-१२) पट्टेश अष्टमेश और द्वादशेश इनतीनोंमें जो ग्रह बली होय वही अपनीदशा और अंतर दर्शामें सूर्य, मंगल, और शनीश्चर, करके विद्धहोवे तो ज्वरको प्रगटकरे है ॥

यैदृष्टोरिपुभावेशस्तत्प्रकृतिजैर्गुणैः ।

ज्वरकृत्स्वदशामध्येवातपित्तकफादिकैः ॥

अर्थ—पट्टेशको जो जो ग्रह देखते है और उनकी जैसी २ प्रकृति है उसके माफिक अपनी २ दशामें वातपित्त और कफादिजन्य ज्वरको प्रगट करते है ॥

पैशाचिकज्वरकायोग

रिपुभावेश्वरोदृष्टोराहुकेतुशनैश्चरैः ।

दृष्टोवाव्ययभावेशो ज्ञेयः पैशाचिकज्वरः ॥

अर्थ—पट्टेशको अथवा व्ययेशको राहु केतु और शनीश्चर देखते होवे तो उस प्राणीको पैशाचिक अर्थात् भूतबाधाका ज्वर जानना ॥

स्वेदज्वरकायोग

मार्गाधीशोथवलवानराहुकेतुशनैश्चरैः ।

दृष्टेस्वेदज्वरोज्ञेयः इत्याहुर्भगवान्भृगुः ॥

अर्थ—मार्गाधीशबली यदि राहुकेतु और शनीश्चर करके वीक्षित होवे तो उसप्राणीके स्वेदज्वर होवे इस प्रकार भृगुऋषिभे कहा है ॥

ज्वरद्वारामृत्युकायोग

अष्टमेशोयदाभौमलग्नेनेत्यशालवान् ।

पित्तराशिगतौतौचेज्वरेणमृतिमादिशेत् ॥

अर्थ—मंगल यदि अष्टमेशहोके लग्नेशके साथ इत्यशाल योगकरता हो तथा अष्टमेश और लग्नेश दोनो पित्तराशिके होवे तो उसप्राणी की ज्वर रोग से मृत्यु होवे ॥

औषधजन्यज्वरयोग

प्रश्नलग्ने पित्तराशौ रोगेशेन समन्वितः ।

औषधाज्वररोगः स्यादथवा वैद्यचापलात् ॥

अर्थ—प्रणालग्नये पित्तराशिहो और रोगेश (पण्डेश) करके युक्त होवे तो उसरोगीको औषधसँ ज्वर जानना, अथवा वैद्यकी चपलतासँ ज्वर जानना ॥

भीतिज्वरयोग

भयाधीश दयाधीशा वेकस्मिन् भवने वली ।

चंद्रमानुषसंयुक्ते भीतिज्वरयुतो नरः ॥

अर्थ—भयाधीश और दयाधीश दोनो बलवान् होकर एकघरमें बैठेहो और चंद्रमा तथा बुधयुक्त होवेतो उस प्राणीको भीतिज्वर जानना ॥

शापज्वरयोग

धर्मेंशः पष्ठभवने पष्ठेशेन समन्वितः ।

रिपुदृष्ट्या चेत्यशाली शनिना शापतो ज्वरः ॥

अर्थ—धर्मेंश छटेघरमें पष्ठेशकके युक्तहोवे, तथा रिपुदृष्टीकरके शनीचरसँ इ-
त्थशाल करता होवेतो उस प्राणीको शापजनित ज्वर जानना ॥

यमघंटयोग

आदित्ययोगेनमघाविशाखाचंद्रेणयुक्ताकुजार्द्रयातु।

मूलंप्रबुद्धेगुरुकृत्तिकाचशुक्रेणरोहिण्यसितेनहस्तः ॥

एतान्बदंतिनिपुणायमघंटयोगान्व्याधिप्रपन्नमनु-

जोयदिपुण्ययोगात् । संजायतेमुदितमेवइति ॥

अर्थ—रविवारको मघानक्षत्र, सोमवारको विशाखानक्षत्र, मंगलवारको आर्द्रा
नक्षत्र, बुधवारके दिन मूलनक्षत्र, गुरुवारको कृत्तिकानक्षत्र, शुक्रवारको रोहिणी
और शनिवारको हस्त नक्षत्र, होनेसँ यमघंट संज्ञक योगहोता है यदि इसयोगमें
मनुष्यरोगी होवे तो वो पुण्ययोग सँ कदाचित् अच्छा होता है ॥

सुखयोग

दिनकरकरयुक्तः सोमसौम्येनवापितुरगसहितभौमः

सोमपुत्रे अनुराधा । सुरगुरुरपिपुष्येरेवतीशुक्रवारेदि-
नकरसुतयुक्तोरोहिणीसौख्यहेतु ॥

अर्थ—रविवारमें हस्तनक्षत्र, चंद्रवारमें मृगशिरनक्षत्र, मंगलवार अश्विनीनक्षत्रपुत्र
सुधवार अनुराधानक्षत्र करके युक्त, वृहस्पती पुष्यनक्षत्रपुत्र, शुक्रवार रेवतीनक्षत्र
युत, और रोहिणीनक्षत्रयुत शनिवार होवे वह सौख्य योग है यदि इस योगमें
रोगी विमारहोवे तो शीघ्र आराम होवे ॥

अथनक्षत्रयोगेनज्वरव्याधिःप्रजायते ।

साध्यासाध्यंचयाप्यंचवक्ष्यामिशृणुपुत्रक ॥

अर्थ—अब नक्षत्रयोगसँ जो साध्यासाध्य और असाध्य रोग प्रगट होतेहैं
उनको हे पुत्र! मैं तेरे आगे कहता हूँ सुन ॥

असाध्यनक्षत्र

मघा भरणिहस्तेषु मूलेवा ज्वरतोपिवा ।

मृत्युमापद्यते सोपि नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ—मघा, भरणी, हस्त, और मूल इन नक्षत्रोंमें यदि मनुष्य ज्वरपीडित
होवेतो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवे ॥

साध्यनक्षत्र

अश्विनीरोहिणीपुष्ये मृगज्येष्टापुनर्वसौ ।

एते साध्यास्तु विज्ञेया ज्वरिणां च विशेषतः ॥

अर्थ—अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, इतने नक्षत्र ज्वर
रोगीको साध्य है ॥

कष्टसाध्यनक्षत्र

पूर्वात्रयं स्वातितथापि चित्रा त्रयोत्तरा वा श्रवणं घ-

निष्ठाः । मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः साप्योनुराधा

सह ज्येष्ठया च ॥ एते सकष्टाः सहपीडितानां क्रुद्धा-

स्तु याप्यं कुरुते नरस्य ॥ तस्मान्नुविज्ञायबुधश्चसम्य-

क्लृजांविनाशंप्रतिकर्मभिश्च ॥

अर्थ—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, और पूर्वाभाद्रपद, स्वाति, चित्रा, तीनोंउ-

त्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका, अश्लेषा, अनुराधा, और ज्येष्ठा येनक्षत्र रोगीको कष्टसाध्य और याप्यकर्त्ता है [तहां कोई नक्षत्र कष्टसाध्य और कोई नक्षत्र याप्य जानना] इसीसैं यह वैद्य प्रथम शुभाशुभ नक्षत्रोंको विचारके फिर रोगनाशक औषधी देवे ॥

कष्टावली

अश्विन्यां चैकरात्रं तु भरण्यां मृत्युमादिशेत् । कृत्तिकानवरात्रं तु रोहिण्यां तु दिनत्रयं ॥ अश्विनीष्वपिषट्त्रात्रं सुखं भवति देहिनाम् । यमदैवे समुद्दिष्टं मरणं पंचमे ऽहनि ॥ कृत्तिका सुगृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्वरः । न मुंचेद्यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखं ॥ अत ऊर्ध्वं विपद्येत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ रोहिण्यामष्टरात्रेण मुच्येदेकादशे हनि ॥ मृगेण पडहं ज्ञेयं नवरात्रमथापि वा । आर्द्रया मुपसंसृष्टं पंचाहान्मृत्युमादिशेत् ॥ ऊर्ध्वं यद्यपि वर्त्तेत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ पुनर्वसूपसृष्टस्तु ज्वरेण परिपीडितः । त्रयोदशाहान्मुच्येत सप्तविंशेऽथवा हनि ॥ पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितं सप्तरात्रान्निवर्त्तते । नवरात्रं तथा श्लेषा मघाचेति यमालयम् ॥

अर्थ—अश्विनी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग १ रात्रि रहताहै । भरणी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग मृत्यु करता है । कृत्तिका नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग नौरात्रि रहे । रोहिणीमें तीनदिन जानना । अथवा अश्विनीमें प्रगट हुआरोग छःरात्रि रहकर फिर आनंद होता है, और भरणीमें प्रगटहोनेसैं पांचमें दिन रोगीका मरणहोवे । कृत्तिकामें हुआ ज्वर सातरात्रि रहता है । यदि सातदिनमें आराम नहोयतो फिर २१ दिनमें सुखहोवे । यदि इकीसदिनकेभीबाद आराम न होवे तो वह रोगी १॥ महिनेमें वचे अथवा मरजावे । रोहिणी नक्षत्रमें आठदिन रहकर ११ दिनमें रोगशांति होवे । मृगशिरमें छः दिनरहे अथवा नौरात्रिमें उतरे । आर्द्रामें हुआरोग पांचदिनमें मरणकरे । यदि पांचदिनके उपरांत रोगी वचजावे तो १॥ महिनेमें संशय कारकहोता है ॥ पुनर्वसुमें हुआज्वर १३ दिनमें छूटे अथवा २७ वे दिन ज्वर रहितहोवे । पुष्यनक्षत्रमें प्रगटहुआज्वर तीन रात्रिरहे

फिर क्रम २ सैं घटके सातवे दिन मुक्तहोवे । श्लेषानक्षत्रमें ज्वर ९ रात्रिरहे ।
और मघानक्षत्रमें रोगहोनेसे रोगीका मरण होय ।

अश्लेषासुभवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादथ । मघासुद्वाद-
शाहेनमृत्युर्भवतिदेहिनः ॥ ऊर्ध्वयातिमघायां
तुपुनरेवसुखीभवेत् । पूर्वामासत्रयंज्ञेयंउत्तरा पंचक-
त्रयम् ॥ पूर्वात्रयेत्रयोमासाः शुभाः ज्ञेयामनीषिभिः ।
पूर्वासुचोपसृष्टस्यफाल्गुनीषु भवेद्दश ॥ उत्तरासुतथा-
ष्टौचनवरात्रमथापिवा । एकविंशतिरात्राद्वाज्वरःश्वेत
सौख्यमृच्छति । एतेषांतुर्ध्र गेचांशेषदिरोगस्तदामृतिः ॥

अर्थ—अश्लेषानक्षत्रमें रोगहोनेसे ब्रह्मतादिनमें मृत्युहोवे । मघानक्षत्रमें १२ दिन-
सैंमरे । यदि १२ दिनसैं उपरांतवचजवितो फिरसुखी होय । पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा-
षाढ और पूर्वाभाद्रपद इनमें हुआरोग तीनमहिनेरहे और अच्छाहोजावे । पू-
फाल्गुनक्षत्रमेंहुआरोग १० रात्रिरहे । उ०फाल्गुनक्षत्रमें आठरात्रि अथवा नौरात्रिरहे
अथवा २१ रात्रिरहकर फिर आनंद होवे यदिउक्तनक्षत्रोंके चतुर्थ पादमें रोग-
होयतो रोगीनिश्चय मरे ॥

हस्तेनप्रथमेमोक्षश्चित्रायामष्टमेहानि । स्वातिः षोड-
शरात्रंतुविशाखाविंशरात्रिकं ॥ स्वातियोगेदशाहे-
नमुच्येत्पक्षत्रयेणवा । विशाखासुभवेन्मृत्युरेकविंश-
तिमेहानि । चानुराधापक्षमेकं ज्येष्ठादशदिनानितु ॥
ज्वरस्तुदिवसानष्टावनुराधासुवर्तते । अतऊर्ध्वंतुमु-
क्तिःस्यान्नास्तितस्याचिकित्सितम् ॥

अर्थ—हस्तनक्षत्रमेंप्रथमदिनहीरोगसैं मुक्तहोजावे । चित्रा नक्षत्रमें आठवेदिन ।
स्वातिनक्षत्रमें आठ रात्रिमें । विशाखानक्षत्रमें बीसादेनसैं रोगमुक्तहोवे । अथवा
स्वाति नक्षत्रमें १० दिनसैं अथवा १॥ महिनेमें छूटे । विशाखामें २१ दिनसैंमृत्यु
होय । अनुराधा नक्षत्रमें १५ दिनसैं । ज्येष्ठानक्षत्रमें दशदिनसैं रोग मुक्तहोवे
अनुराधा नक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर आठदिनरहे । यदि आठदिनसैं ज्यादाज्वर
रहे तो उस रोगीका मरण होवे उसका यत्नही है ।

ज्येष्ठायांपंचमेमृत्युरूर्ध्वंवाद्वादशात्सुखम् । मूलेन-
चोपसृष्टस्यदशरात्रंभवेज्वरः ॥ तदूर्ध्वंवर्तमानस्यचै-
कविंशेभवेत्सुखम् । पूर्वाषाढ्यांतुनवमेहानि रोगात्प्र-
मुच्यते । उत्तरासुत्वषाढासुमासंक्लिश्यत्यसंशयः ॥
अष्टौवानवमासानांततोऽस्यसुखामादिशेत् । श्रवणे-
नाष्टरात्रंतुक्लिश्यतेज्वरपीडितः ॥

अर्थ—ज्येष्ठानक्षत्रमें पांचवेंदिनमृत्युहो, यदिवचजावेतो १२ दिनमें सुखहोवे । मूलनक्षत्रमें प्रगटहुआज्वर दशरात्रि पर्यंतरहता है । यदिदशरात्रिमें रोगनहटेतो-
२१ दिनमें सुखा होय । पूर्वाषाढ नक्षत्रमें यदि रोग प्रगट होवे तो नौमैदिन अच्छा होय । उत्तराषाढमें रोगोत्पन्न हुआ १ माहिने पर्यंत कष्टकारक जानना फिर आठ माहिनेमें या नौ माहिनेमें रोग शांति होवे और श्रवण नक्षत्रमें यदि-
ज्वर प्रगट होवे तो बहुरोगी आठरात्रि पर्यंत क्लेशितरहता है ॥

मासत्रयंधनिष्ठासुशतभिक्षुदिनविंशकम् । नवरात्रंपूर्वा-
भाद्रे उत्तरापंचकत्रयम् ॥ दशाहरेवतीपीडासुच्यतेव्या-
धिभिस्ततः ॥ दशरात्रंधनिष्ठासुज्वरोभवतिदेहिनाम् ॥
पद्मात्रात्द्वादशाहंवाभवेच्छतभिषासुच ॥ तथाभाद्रप-
देस्वेवपूर्वासुमरणंभ्रुम् ॥ उत्तरासुभवेन्मोक्षोदिवसेऽर्द्ध-
चतुर्दशे ॥ चतुरात्राष्टरात्रंवारैवत्यांवर्ततेज्वरः ॥

अर्थ—धनिष्ठा नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग तीनमाहिने रहता है—शतभिषानक्षत्रमें । वीसादिन—पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग नौरात्रिरहता है—उत्तराभाद्रपदमें प्रगटहुआ रोग १५ दिनरहता है । रेवती नक्षत्रमें प्रगटहुई पीडा दशदिन रहकर नष्टहोती है । धनिष्ठानक्षत्रमेंज्वररोग होयतो दशरात्रिरहे । शतभिषानक्षत्रमें छःरा-
त्रि अथवा चार रात्रिरहे पूर्वाभाद्रपदमें ज्वर प्रगटहोयतो रोगीमरे । उत्तरा भाद्र-
पदमें ७ दिनरहे । एवं रेवतीनक्षत्रमें यदिज्वर होवे तो चाररात्रि अथवा आठरात्रि पर्यंत रोग रहता है ॥

अश्विनी

अश्विन्याःप्रथमेपादेनवरात्रंप्रकीर्तितम् । द्वितीयेपूर्ण-

माख्यातंतृतीयेसप्तवासराः । संप्रोक्तावासराः पूर्णाः
चतुर्थेह्येकविंशति ॥'

अर्थ—अवनक्षत्रके प्रत्येकचरणका फल कहते हैं । तदां अश्विनी नक्षत्रके प्रथम पादमें रोग होवे तो नौरात्रिरहे । दूसरेमें होयतो मृत्युकरे । तीसरेपादमें होयतो सातदिनरहे और अश्विनीके चतुर्थपादमें हुआ रोग २१ दिनपर्यंत रहता है ॥

भरणी

भरण्यांप्रथमेपादेचैकादशदिनानित् । द्वितीयेचत्वारिंशत्तृतीयेपूर्णमादिशेत् ॥ चतुर्थेरुद्रसंख्याकंदिनसंख्याप्रकीर्तिता ॥

अर्थ—भरणीके प्रथमपादमें हुआ रोग ११ दिनरहे—दूसरेमें ४० दिन—तीसरेमें मृत्यु और चतुर्थपादमें होवेतो १० दिन रोगरहता है ॥

कृत्तिका

कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम चरणमें पित्तजन्यज्वर उत्पन्न होवेतो वो दशदिनरहे । दूसरे चरणमेंभी दशहीदिन रहे । तीसरेचरणमें होयतो पांच दिनरहे ॥

रोहिणी

रोहिणीके प्रथम चरणमें ९ रात्रिपीडारहे । दूसरे चरणमें १८ दिनरहे । तीसरेचरणमें दशरात्रिपीडा जाननी ॥

मृगशिर

मृगशिरनक्षत्रके प्रथम चरणमें ७ दिनपीडारहे । दूसरे चरणमें १२ दिनरहे । तीसरेचरणमें २५ दिनपीडारहती है ॥

आर्द्रा

आर्द्रा नक्षत्रके प्रथमचरणमें १५ दिन । दूसरे चरणमें १२ दिन । और तीसरे चरणमें पीडाहोय तो रोगीकी मृत्यु होय ॥

पुनर्वसु

पुनर्वसु नक्षत्रके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो १५ दिनरहे । दूसरेमें ७ दिन और तीसरे चरणमें होयतो २५ दिन पीडारहे ॥

पुष्य

पुष्य नक्षत्रके प्रथम चरणमें ७ दिनपीडा रहते । दूसरेमें २० दिन और तीसरेमें २१ दिनपीडा रहती है ॥

अश्लेषा

अश्लेषाके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो तीन महिने रहे, और रोगी कष्टसँ जीवे । दूसरेमें—तथा तीसरेमें रोगीकी मृत्यु होय ॥

मघा

मघाके प्रथम चरणमें ७ रात्रिपीडा रहते । दूसरे चरणमें २७ दिन और तीसरे चरणमें ३० दिन पीडा रहती है ॥

पूर्वाफाल्गुणी

पूर्वा फाल्गुणीके प्रथम चरणमें ५ रात्रिपीडा रहती है । दूसरेमें १२ दिन और तीसरे चरणमें १ महिनेके बाद रोगी मरे ॥

उत्तराफाल्गुणी

उत्तरा फाल्गुणीके प्रथम चरणमें १४ दिनपीडा रहते । दूसरेमें सातरात्रि और तीसरे चरणमें ९ दिनपीडा रहती है ॥

हस्त

हस्त नक्षत्रके प्रथमचरणमें रोग होवेतो ७ रात्रिरहे । दूसरेमें होयतो ४ दिनरहे और तीसरेमें होवेतो ५ दिनपीडा रहती है ॥

चित्रा

चित्राके प्रथमचरणमें व्याधि होनेसँ रोगीकी मृत्युहोवे । दूसरे चरणमें तीन महिनेरोगीरहे और तीसरेचरणमें १३ दिनरोगरहता है ॥

स्वाति

स्वातिके प्रथम चरणमें रोग होवेतो २७ दिनरहे । दूसरे चरणमें बीस दिन और तीसरे चरणमें रोगहोयतो मृत्युहोय ॥

विशाखा

विशाखाके प्रथम चरणमें व्याधि होनेमें ४८ दिनरहे । दूसरे चरणमें होयतो पारहदिन रहे, और तीसरे चरणमेंभी १२ दिन पीडा रहती है ॥

अनुराधा

अनुराधाके प्रथम अंशमें पीडा उत्पन्न होयतो ७ दिन । दूसरेमें १५ दिन और तृतीय चरणमें ६४ दिन पीडा रहती है ॥

ज्येष्ठा

ज्येष्ठाके प्रथम चरणमें रोग होनेसँ तीन माहिने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन तथा तीसरेमें मृत्युहो ॥

मूल

मूलनक्षत्रके प्रथम द्वितीय तृतीय चरणमें रोगहोनेसँ १५ दिन पर्यंत पीडा रहती है ॥

पूर्वाषाढ

पूर्वाषाढके प्रथम चरणमें रोग होनेसँ ३ माहिने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन और तीसरे चरणमें मृत्यु होवे ॥

उत्तराषाढ

उत्तराषाढ नक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग होयतो १५ दिनरहे । दूसरेमें १२ दिन और हे महासुने ! तीसरेचरणमें रोग होयतो २० दिनरोग रहे ॥

श्रवण

श्रवणके प्रथम चरणमें ७ दिन—दूसरेमें २० दिन, और तीसरे चरणमें १६ दिनरोग रहे है ॥

घनिष्ठा

घनिष्ठाके प्रथम चरणमें २० दिन रोगरहे । दूसरे चरणमें ६० दिन । तथा तीसरे चरणमें रोगहोवेतो १६ दिनरहता है ॥

शतभिषा

शतभिषाके प्रथम चरणमें रोगहोवेतो १॥ माहिने घोर दुःखःदेवे, दुसरेमें छःमाहिने और तीसरे चरणमें रोग होनेसँ १६ दिन पीडा रहती है ॥

पूर्वाभाद्रपद

पूर्वाभाद्रपदके प्रथम—द्वितीय और तृतीय चरणमें रोगहोनेसँ मृत्यु होवे ॥

उत्तराभाद्रपद

उत्तराभाद्रपदके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसँ १५ दिन पीडारहे । दूसरे चरणमें २८ दिन दुःखरहे । और तीसरे चरणमें होनेसँ १५ दिन रोगरहता है ॥

रेवती

रेवती नक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसँ ८ दिन पीडारहे । दूसरे चरणमें होवेतो १३ दिन दुःखीरहे और तीसरे चरणमें रोग होनेसँ १० दिन पीडारहे पश्चात् शांति होती है ॥

एवंज्ञात्त्वानरः सम्यक्कुर्यात्प्रशमनक्रियाम् ।

नक्षत्रस्यत्रयोभागारात्रेयेणप्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—इसप्रकार नक्षत्रके और नक्षत्रके चरणोंका शुभाशुभविचारके शास्त्रोक्त (जो आगे कहते हैं) उसशांतिकर्मको करे—यद्यपिनक्षत्रके चार चरण होते हैं परंतु यहाँ परआत्रेयमहर्षिने तीनही चरणका फल कहाहै चतुर्थ चरणका फल जो संपूर्ण रोगका प्रथम कहाहै वह जानना ॥

(अवनक्षत्रहवनकीविधिकहतेहै-तहांप्रथम)

समिधा

आक, खैर, ढाक, बेर, नीम, दूब, छोंकरा, कुश, कांस, पीपल, बड, जटामांसी जामुन, आम, सोमवलकल, बहेडा, चंदन, अरनी, अगरवृक्ष, फटसरीया, सतावरी, सर्वांपधी, हलदी, दारु हलदी, ये सब होमकरनेके लिये समिधा है ॥

परंतु राज निवंदुमें सत्ताईस नक्षत्रोंके सत्ताईसवृक्ष कहे हैं उनकी समिधालेनी चाहिये ॥

गंध

चंदन, लालचंदन, गोरोचन, हरदी, गेरू, नीबू, बेल, पतंग, कदंब, केशर, कस्तूरी, कपूर, श्रोपर्णी, देवदारु, पीतचंदन, पधास, दारुहलदी, अगर, सीमों, और ढाक येगंध द्रव्य है ॥

फूल

फमल, बेल, तुलसी, दूब, कुश, काश, अरनी, छोकराकेपत्ते, जाक, ढाक, इनके फूलले ॥

घूपदीपादि अलंकारोंसे वास्तुमंडल अलंकृत करके ईशानादिक्रमसे नवग्रहोंको स्थापनकरे । तथा नक्षत्रोंको स्थापनकरे, प्रथम सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक, शनि, राहु, केतु इनका पूजनकरके क्रमसे इनकी समिधाका हवन करे फिर समिधाओंके दही, सहत, घृत इनमें ढवो २ के अभिन्यादि नक्षत्रोंका हवन करे तहां आककी समिधा लेकर, ' इदमभिनो ' इस मंत्रसे तथा ' विष्णोरराट् ' इनमंत्रोंसे—अभिन्यादि नक्षत्रोंका हवनकरे ॥

' इदंभरण्यो ' और ' मधुमाध्वी ' इसमंत्रसे वेरकी समिधा भरणी नक्षत्रकी शांतिके अर्थ हवनकरे ॥

' कांडात् कांडात् ' इस मंत्रसे नीमकी समिधा कृतिका नक्षत्रकी शांतिके अर्थ हवनकरे, एवं दूर्वा (दूव) कुशा, इनकीसमिधासै रोहिणी मृगशिर आर्द्रा-आदि नक्षत्रोंकी शांतिके अर्थ हवनकरे इसीप्रकार सवनक्षत्रोंका हवन पृथक् २ है सो शांतिसार, शांति कमलाकर, शांतिमयूष, आदि ग्रंथोंमें देखें ॥

फिर घृतसे पूर्णाहुती करे और ग्रहोंको अभिषेकस्नानकरावे । फिर रोगीको भस्मस्नान और मंत्रस्नानकराय सपेद कपड़े पहिनायके उसयज्ञमें वैठाल वे-वेदोक्त मंत्रोंसे उसका मार्जन करे तथा अपामार्जनसे उसे मार्जित करे आशी-र्वाद देवे । पश्चात् वह रोगी गोदान, बह्वदान, पृथ्वीदान आदि यथा शक्त्यनु-सार करे इस प्रकार हवनकरे तो सर्वग्रह-नक्षत्र और योगोंकी शांति होवे ॥

ज्वररोगका कर्मविपाक

यथाशास्त्रं तु निर्णीतं यथाव्याधिचिकित्सितः ।
नशमंयातियोव्याधिः सज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥

अर्थ—जिसव्याधिका शास्त्रानुसारनिर्णयकर उसव्याधिके अनुसार चिकित्साकरे फिरभीन शांतिहोवे उस व्याधिकी पंडितजन कर्मज जाने ॥

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण वाधते ।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैः जपहोमसुरार्चनैः ॥
तस्मात्कर्मविपाकोक्तप्रायश्चित्तादिसाधनैः ।
पूर्वपापक्षयात्क्षिप्रं व्याधिः शाम्येदसंशयम् ॥

अर्थ—जन्मांतरमें कियाहुआ पाप इसदेहमें रोगरूपहोकर दुखदेता है उसकी शांति आरधपान-दिव्योषध धारण-दानकरना-जप-होम-और देवताओंका पूजन इन कारणोंसे होती है। इसीसे कर्मविपाकोक्त प्रायश्चित्तादि साधनों करके पूर्वजन्मोपाजित पापोंके शांतिहोनेसे रोग निःसंदेह शीघ्र शमनहो जाते हैं। इसीसे पूर्वजन्म जनितपाप परिपाकसे उत्पन्न ज्वरके हेतु-और उनका यत्न कहते हैं ॥

येसंपूर्ण प्रायश्चित्त रोगानुमार बडा और छोटाकरे और इनमें वित्तशाठ्यन-करे अर्थात् जिसकी दशरुपे लगानेकीसामर्थ्य है यदिवो एकरुपा या दो रुपाही लगावे तो वोवित्तसाठ्य कहलाता है असाकरनेसे वो फलीभूत नहीं होता है। और न रोग शमनहो इसवास्ते अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रायश्चित्तकरे। और जो असामर्थ्य है उसको ऋणलेकर प्रायश्चित्तनहीं करना किंतु अपनी देहसे जो वनमके उसको करे जैसे विष्णुसहस्रनामका पाठ, गायत्रीजप, और मनमें परत्माका ध्यानआदि ॥

सर्वज्वरेकर्मविपाकमाह

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः । ज्वरो महा-
ज्वरश्चैव रौद्रो वैष्णवएव च ॥

अर्थ—अब सर्वज्वरका कर्मविपाक कहते हैं। जैसे देवद्रव्य हरण करनेसे अनेक प्रकारका ज्वर प्रगट होता है उन्होंने उष्णज्वर शिवसे, और महाज्वर- (शीतज्वर) विष्णुभगवान्से, प्रगट हुआ है ॥

अथास्यशांति

ज्वरे रुद्रजपं कुर्षान्महारुद्रं महाज्वरे ।
महारुद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्द्रव्यं जपेत् ॥

अर्थ—ज्वरके दूरकरनेको रुद्रजप, और महाज्वर दूरकरनेको महारुद्रजप कराना चाहिये। रुद्रज्वरवालेको महारुद्र और वैष्णवज्वरमें रुद्र और महारुद्रदो-नोको जप करावे ॥

गार्ग्यः

ये पुनः पूर्वजन्मनि क्रूराः पिशुनाः ततस्तेऽन्य जन्म-
नि सततं ज्वरिणः स्युः ॥

अर्थ—गर्गऋषिका पुत्रलिखता है कि जो मनुष्य पूर्वजन्ममें क्रूर तथा पिशुन (धुगली करनेवाले) होते हैं, वो उस पापकरके इसजन्ममें सततज्वरी होते हैं।

शीतज्वरकाकर्मविपाक

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापाः पिशुनचेतसः ।

ते भवेयुः सदाशीतज्वरवन्तस्तदेनसा ॥

अर्थ—जो कोई क्रूरकर्मकरनेवाले, पापी, धुगलखोर है वो पुरुष सदैव शीतज्वरसे पीडित होते हैं ॥

उसकाशमन

शांतयेऽयुतसंख्याकं प्रकुर्यात्प्रयतो जपं ॥ जातवेदस-
मंत्रेण ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥ सुरामांसोपहाराद्यै-
र्बलिः सर्वत्र शस्यते ॥ सहस्रकलशस्नानं शतभोज-
नमेव च ॥ शीतज्वरे पुनः कुर्यादभिषेकं हरेर्बुधः ॥

अर्थ—ऊपरकहेहुए शीतज्वरकी शांतिकरनेको (जातवेदस) इस मंत्रको दशहजार जप करावे, और ब्राह्मण भोजन करावे, अथवा मद्यमांस इनकीबलि-दानदे, किंवा सहस्रकलशाभिषेक करे, और १०० ब्राह्मणोंको भोजनकरावे, अथवा श्रीविष्णुभगवान्का अभिषेक करावे ॥

सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत् ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छत्त्याजपेद्वै जातवेदसं ॥

अर्थ—अन्यत्रभी लिखा है कि शिवकारुद्रीसें सहस्र कलशाभिषेक करावे, तथा यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे, और 'जातवेदस' इस मंत्रका जप करावे ॥

ज्वरवालेकेदैविकउपचार

वेदानां श्रवणं हितस्यचरणं विप्रस्यसंतर्पणं कृष्णस्य-
स्मरणंशुभस्यकरणंद्रव्यस्यसंतर्पणं ॥ अश्वत्थभ्रमणं-
सुरत्नधरणंदीनस्यसंरक्षणं हन्यादृष्टविषंज्वरंकुमादि-
नीनाथोयथोग्रंतमः ॥

अर्थ—अब ज्वरवान्को दैविक यत्न कहते हैं जैसे कि—वेदश्रवण, हिताचर-

ण, ब्राह्मणभोजन, कृष्णकास्मरण, शुभकार्य, द्रव्यदान, पीपलकीप्रदाक्षिणा, उत्तम २ रत्नोकाधारण, तथा दीनजनोका पोषण, ये उपचार अष्टविध ज्वरोंको जैसे चन्द्रमा घोर अंधकारका नाश करता है उसी प्रकार नाश करे ॥

सहस्रनेत्रस्य सहस्रबाहोः सहस्रवक्रस्य सहस्रमूर्धाः ॥

सहस्रपादस्य सहस्रनाम्नां सहस्रनाम्नां पठनं ज्वरघ्नं ॥

अर्थ—नेत्र, बाहु, मुख, मस्तक, पैर, हस्तादिअंग, तथा उसीप्रकार नाम ये जिसके अनेक है जैसे देवका सहस्रनाम (विष्णुसहस्रनाम) पाठ करेतो ज्वर दूर होवे ॥

गणेश्वरो वा गरुडेश्वरो वा गौरीश्वरो वा दिवसेश्वरो वा
महेश्वरो वा कुलदैवतं वा तत्पूजनं तज्ज्वरिणां प्रशस्तं ॥

अर्थ—गणेश, विष्णु, शिव, गौरी (दुर्गा) सूर्य जथवा कुलदेव इनका पूजन ज्वरवालेको हितकारी है ॥

मंगलेपुचकार्येषु सततं कोपवान्नरः ॥ उष्णज्वराभिभूतः
स्यात्तस्य पापापनुत्तये ॥ सहस्रकलशस्त्रानं रुद्रेणेशस्य-
कारयेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छत्तयाजपेद्देजातवेदसम् ॥

अर्थ—जो प्राणी मंगलकार्य (विवाहादिक) में क्रोध करता है वों प्राणी उष्ण ज्वरवाला होता है उस र करनेको सहस्रकलशाभिपेक परे और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन और " " इसमंत्रका जपकरा-

सुवर्णचयथाशक्त्यात्राहणायनिवेदयेत् ॥ तस्मैहूतव-
तेवृत्तश्रुतशीलायसत्कृतम् । मंत्रेणानेनविधिवत्पूज-
यित्वाज्वरीनरः ॥

मंत्र

महेश! देवदेवेश! देवदेव! परात्पर! ॥ कुंभेनानेनदाने-
नज्वरंक्षिप्रंविनश्यतु ॥ एकांतरंसन्निपातंतृतीयकच-
तुर्थकौ । पाक्षिकंमासिकंचैवसांवत्सारिकमेवच॥नाश-
येतंममक्षिप्रंवासुदेवमहेश्वरौ ॥

अर्थ—नवीन मिट्टीका कलश जो फूटा और जोजरा न होवे तथा पका होय और रंगमें लाल होवे उसको चावलके ढेर पर स्थापन करे चावल पांच द्रोण अर्थात् दो मन होवे परंतु (यह घनाढ्यके वास्ते आज्ञाहै गरीबको यथा शक्ति लेना) वो चावल विने और फटके हुए शुद्ध होने चाहिये । फिर उस कलशको सपेद बस्त्रसँ लपेटके उस घडेमें सहत घी, गुह, खांड, अथवा तैल इनमें किसी एकको भरे यदि इन वस्तुओंमें किसीके भरनेकी सामर्थ्य न होवे तो स्वच्छ जलसँ ही भरदेवे पश्चात् उसका सपेद फूल, फल गंध, धूप, दीप नैवेद्यादिसँ पूजनकर पूर्वोक्त विधिसँ हवनकरे उसमें समिधा घी और चल्को होमें पश्चात् उस हवन करनेवाले ब्राह्मणको कि जो वेद और वेदार्थको जानता हो तथा जिसका उत्तम आचार उसको यथा शक्ति इसमंत्रमें उसघटका ओर सुवर्णका दान करे

उस मंत्रका यह अर्थ है कि हे महेश! हे देव देवेश! हे देवोंकेदेव! हे परात्पर! इस कुंभं दानकरके मेरा एकाहिक, सन्निपातज्वर, तिजारी, चौथैया, पट्टहदिनमें आने वाला माहिनेमें आनेवाला एव वर्ष दिनमें आनेवाले सब ज्वरोंको हे वामुदेव महेश्वर शीघ्र नाश करो ॥

अन्यत्र

अपामार्जनकंस्तोत्रं हनुमत्कवचादिकं ।
पठेज्वरीचसततंसर्वज्वरनिवृत्तये ॥

१ जो ब्राह्मण व्यासग्णादिभी पढ़ाहो, और ब्रह्मर्षीहो, उसरो दानदे । किंतु नैमें पापा-
पुरोहित-दुराचारि, केवल सडमुसड, सुगामदी निरसर मद्याचार्य, परस्त्री गामी, आदिपा-
पीको दाननदे, इनको दानदेनामानी आपरो नरकका महमान बनानदि ॥

अर्थ—अन्यत्र ग्रंथोंमें लिखा है कि ज्वरवाला रोंगी ज्वर दूर करनेके लिये अपामार्जनस्तोत्र, हनुमानकवच, और आदिशब्दसँ नारायणकवच, विष्णुसहस्रनामादि का पाठ करे यदि अपनी सामर्थ्य न होवे तो अन्य ब्राह्मणको अपने पास बिठा कर पाठ करावे एवं दुर्गापाठ, शतचंडी, सहस्रचंडी, आपदुद्धारका पुरश्चरणभी करावे परंतु हम तो जाने सर्वोपर वेदपाठ और वेदमंत्र ('इयं वक्यं जामहे') इत्यादिका जपकराना उत्तम है, और जितनी अपनी सामर्थ्य हो मनसँ भगवत्का स्मरणकरे क्यो कि लिखा है 'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्,

शिष्य—अब आप ज्वर रोग की उत्पत्ती हमसँ कहो ॥

गुरु—ज्वर की उत्पत्ती चरकमें इसप्रकार लिखी है ॥

ज्वरोत्पत्ति

द्वितीये हियुगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितः । दिव्यं सहस्रं
वर्षाणामसुराभिदुद्बुधुः ॥ तपोविघ्नाशनाः कर्तुन्त-
पोविघ्नं महात्मनाम् । पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रेदक्षः
प्रजापतिः ॥ यज्ञेन कल्पयामास प्रोच्यमानः सुरैरपि ।
ऋचः पशुपतेर्याश्च शैव्य आहूतयश्चयाः ॥ यज्ञासिद्धि-
प्रदास्ताभिर्हीनं चैव स इष्टवान् ।

अर्थ—दूसरे (त्रेता) युगमें श्री शिव अक्रोधव्रतमें स्थित हो दिव्यहजारवर्ष तपकरनेका प्रारंभकरा उसममय महात्माओंके तपोविघ्न करनेवाले तपविघ्न ही है आहारजिनका जैसे दैत्य चाच्योतरफमें श्रीशिवके सन्मुख दोढे, उससमय श्रीशिव उनके मारनेको समर्थभी थे परंतु अक्रोध व्रतमें रहनेके कारण देखके जनकी उपेक्षा करदीनी । इसीकालमें दक्षप्रजापति देवताओंके कहने परभी पशुपति (शिव) मंत्र और शिवकी आहूती जो कि यज्ञकी सिद्धी करने वाली उन करके रहित यज्ञ करता हुआ ॥

अथोत्तिर्णिव्रतो देवो तु द्वादक्षव्यतिक्रमम् । रुद्रोरौद्रं पुर-
स्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ॥ स्पृष्ट्वा ललाटे च सुर्वद-
ग्ध्वा तानसुरान् प्रभुः । वाणं क्रोधाग्निं संतप्तमसृजच्छत्रु-
नाशनम् ॥ ततो यज्ञः स विध्वस्ता व्यधिताश्च दिवोक-
सः । दाहव्यथा परीताश्च भ्रांता भूतगणादिशः ॥ अथे

श्वरदेवगणाः सहस्रसर्पिर्भिर्विभुम् । तमृगिभरस्तुवन्
यविच्छिवेभावेशिवःस्थितः ॥

अर्थ—जब उस हजार वर्षके अक्रोधव्रतसे निवृत्त हुए और दक्षके करे हुए अपराधको जानके श्रीरुद्रभगवान् अपने रौद्रभावको धारणकर ललाटमें स्थित-सीसरे नेत्रका स्पर्शकर उसनेत्रसे निकली हुई अग्निसें जितने दुष्ट दैत्य तपके विघ्नकरने वाले उनसबको भस्म करते हुए । फिर उस क्रोधाग्नि करके संतप्त एक षाण शत्रुनाशक वनायके उस दक्षके धारनेको चलाते हुए, उसवाणनें उसयज्ञ-को विध्वंसकर संपूर्ण देवताओंको व्याकुलकरा । और प्राणीमात्रोंको तथा दि-शाओंको दाहकी पीडासे व्यथितकरा—उससमय सबदेवगण और सर्पों मि-लकर सर्व सामर्थ्ययुक्त—ईश्वरश्रीशिवकी ऋग्वेदके मंत्रोंसें प्रसन्न होने पर्यंत स्तु-तिकरते हुए ॥

शिवंशिवायभूतानांस्थितंज्ञात्वाकृताञ्जलिः । क्रोधाग्निरुक्त
वानदेवमहंकिंकरवाणिते ॥ तमुवाचेश्वरःक्रोधंज्वरीलोकेभ
विष्यसि । मनुष्याणांचजन्मादौनिधनेचमहतमः ॥

अर्थ—प्राणियोंके कल्याणार्थे श्रीशिव कल्याणरूपमें स्थित हुएको जान बही श्री शिवका क्रोधाग्नि हाथजोडकर बोला कि हे देव ! अरमें क्या आपकी आ-ज्ञाकर्म । उसके वचन सुनकर शिव उसअपने क्रोधसें बोलेकि तू आजसें सप्तारमें श्वर नामकरके प्रसिद्ध होगा । और मनुष्योंके जन्म समय और मरनेके समय हरीरहाकरेगा अर्थात् तेरेही प्रतापसे प्राणियोंका जन्म-मरण होवेगा ॥

तथा

मखेमखभुजांगणांकिलनिमंत्र्यदक्षःपुरा चराचरगुरुंहरं
मदभरादवाजीगणत् । ततस्तदलिकेक्षणादतिरुपा-
रुणात्पिगलस्त्रिमौलिरुद्रभूद्रणः सपादिवीरभद्राभिवः ।
भृशंसचपिशिंग दृक्त्वचमरेमृगस्योह्रसत्तुरुचंपरिदध-
ज्वलत्तनुरनुच्चजंवास्त्रयः । स्फुरत्पृथुतरोदरंस्त्रिपुरवै-
रिणंप्रांजलिर्जगादकरवाणिकितामिदमुग्रमुग्रोवदत् ॥

अर्थ—अब भ्रमातरमें ज्वरत्पति कहते हे कि, पहले दक्षमजापति अपने य-ज्ञमें सब देवताओंको निमंत्रण (नीता) कर चराचरके गुरुश्रीशिवका अभिमा-

नकरके तिरस्कारकर्ता हुआ, उस समय श्रीशिवके असंतक्रोध करके लाल २ तीसरे नेत्रसँ पीलेरंगका, और तीनमस्तकवाला, वीरभद्रगण तत्काल प्रगटहुआ। पीलेनेत्र, बाघंबरको ओढ़े हुए, अग्निकी कांतिको धारणकर्ता—छोटी देह, और तीनपैर, बड़ाभारी उदर जिस्का, ऐंसावो वीरभद्रगण त्रिपुरके वैरी शिवके सन्मुखहाथ जोडकरबोला कि हेप्रभो ! मेक्याकरुं तव उस घोर रूपवालेसँ घोर स्वरूपश्रीशिव यह बोले ॥

सर्वं कुरु निरुत्सवं स इति रुद्रतो निर्दयं निशम्य सम-
शीसमप्रथममेव वह्नित्रयम् । मरुद्गणमदुद्रवद्भव-
मतुष्टवद्यज्विनो मुनीनलमनीनमदमनभीतसन्नस्वनान्

अर्थ—कि दक्षके यज्ञोत्सवको विध्वंसकर इस प्रकार रुद्रसँ निर्दय आज्ञाको सुन प्रथम दक्षके यज्ञमें जो तीन अग्निहै उनको शांति करता हुआ। उस समय यज्ञमें आए ऐसे मरुद्गणको भजाता हुआ, श्रीशिवको प्रसन्न करता, दमनभयसँ रुके श्वासजिनके यज्ञकराने वाले मुनीश्वरको नीचा करता अर्थात् जीतता हुआ वीरभद्र श्रीशिवके सन्मुख प्राप्त हुआ ॥

इदंतमवदत्स्थितं पुररिपुः पुरस्ताद्यतोऽखिलं हविरिहकृतो
झाटिति जीर्णमेव त्वया । अतोऽस्य जगतो ज्वरो भवततः प्र-
भृत्युञ्जकैरयं ज्वरयति स्फुराद्विविधनामधेयैर्जगत्

अर्थ—इस प्रकार वैरीको जीतके सन्मुख सढे हुए उस वीरभद्रसँ श्रीपुररिपु (महादेव) बोले कि तैने गीघ इस यज्ञकी सामिग्रीको जीर्णकरी अर्थात् पचा-गया इसीसँ तू इसजगतमें ज्वरनामकरके विख्यात हो; वस उसी दिनसँ यह ज्वर अनेक नामोंकर इस जगतको अपने वेगसँ ज्वरवान् करता है ॥

ज्वरो नरिसपाकलालसहरिद्रतापेश्वराः गजोष्ट्रम
हिपार्वगोपथयथाक्रमं कीर्तिताः । तथैन्द्रमदस्वोर
कर्पभकपक्षपाताह्वयाः समस्ततिमिरासं भांशुजखगे
ष्वलर्कशुनाम्

अर्थ—तहां मनुष्योंके जो तापहोताहै उसको ज्वर ऐसा कहते हैं। दाधियोंमें इस ज्वरको पाकल कहते हैं। ऊंटोंमें इसको अलस कहते हैं। भेमाओंमें इसकी हरिद्र संज्ञाहै। घोडोंमें ताप कहलाताहै। गौओंमें ईश्वरनाम करके विख्यातहै सब मच्छलियोंकी जातिमें इन्द्रमद कहलाता है। गधाओंमें स्वोरक नाम करके

विल्यात है। कमलोंमें इसको ऋषभक नामसे पुकारते है। सब पक्षियोंमें अर्थात् पक्षेहओंमें पक्षपात नामसे पुकारते है। और कुत्तोंमें इसज्वरको अलर्कनामक कहते है।

**मृगामयाख्योमृगजातिषूक्तः प्रलेपकोऽजाविषुचूर्ण
कोन्ने । उष्णषिसंज्ञः ससरीसृपेषुपर्वाप्रसूनेषुचनीलिकासु**

अर्थ—वही ज्वर मृग (हरिणों) की जातिमें मृगामय कहलाता है। बकरी और भेड़ोंमें प्रलेपकनाम करके विल्यात है। अन्न (गेहू, चना, चावल आदि धान्यों) में चूर्णक कहलाता है। सर्पोंमें उष्णीसनाम ज्वरकी संज्ञा है। पुष्प (फूलों) में पर्वा नामसे कहाता है। और जलमें इसकी नीलिका संज्ञा है ॥

**कुंकुमकोगोधूमेज्योतिष्कस्त्वौषधीषुपर्वासु ।
ग्रंथिकसंज्ञोव्रततावित्यभिधानैर्ज्वराः कथिताः ॥**

अर्थ—गेहूधान्यमें कुंकुम नामज्वर की संज्ञा है। औषधियोंमें इसकी ज्योतिष्कसंज्ञा है। वेलोंमें इसकी ग्रंथिक संज्ञा है। इस प्रकार नामों करके ज्वरकहे है।

भूमेरूपरकः प्रोक्तोवृक्षाणांकोटरः स्मृतः ॥

अर्थ—पृथ्वीमें ऊपरनामक ज्वर कहलाता है अर्थात् जिसपृथ्वीमें सारपैदा होता है वो ज्वरग्रसित पृथ्वी जाननी। एवं वृक्षोंमें कोटरकहलाता है अर्थात्-वृक्षोंमें खोंतरका विकार है ॥

ज्वरकेआठभेद

**वीभत्सस्त्रिशिराज्वरोथकपिलोभस्मप्रहारस्त्रिपाद
पिंगाक्षोऽथमहोदरोऽथपरतोरौद्रोज्वलद्विग्रहः
शंभोः श्वाससमुद्भवाभयकरादक्षक्रतोर्ध्वंसका
घोराघर्घरनादिनोमुनिवरैः प्रोक्ताज्वरास्तेऽष्टधा**

अर्थ—वीभत्स, स्त्रिशिरा, कपिल, भस्म-प्रहार, त्रिपाद, पिंगाक्ष, महोदर, और ज्वलद्विग्रह ये श्रीशिवकी श्वाससे प्रगट, भयकारी-दक्षयज्ञ विध्वंसक घोर रूपवाले, और घर्घर नादकरनेवाले अैसे आठ ज्वर मुनिवरोंने कहे है ॥

वीभत्सज्वरकास्वरूप

वीभत्सोरुधिराणांस्वरवृतो गंधास्यमालावरो ।

रक्ताक्षः कृमिसंकुलस्त्रिनयनोदुर्गंधिपूर्णोऽनिशम् ॥

नग्नोरुद्रसमुद्भवोऽतिबलवान्कोपीजगद्घातकः ।

कृष्णाङ्गोमलिनोमदांधदमनः पूष्णोर्द्विजध्वंसकः ॥

अर्थ—रुधिरसँ रगे हुए बस्त्रोंको पहने, रुधिरकी गंधआवे, मुँडमालाको धारण करे, लालनेत्र, कृमिसँ संकुलदेह, तीननेत्रवाला, और दिन रात्रिदुर्गंध जिसकी देहसँ आवे, नग्न, और अतिबली, कोपयुक्त, जगत्काघातक, काली देहका, मलिनस्वरूप, मदमस्तोंको दमनकर्त्ता, और पूषा देवताके दातोंको तोडनेवाला ऐसाश्रीशिवसँ उत्पन्नहुए वीभत्सज्वरका स्वरूप है ॥

त्रिशिराज्वरकास्वरूप

अभूदक्षविध्वंसको रुद्रकोपात्रिशिर्षः स्त्रिपान्नंदनेत्रो-

ऽतिकायः॥चलज्जिन्हयासृक्कणीलेलिहंतो बृहद्भालजं-

घारुणाक्षोऽतिक्रोधी॥

अर्थ—श्रीरुद्रकेकोपसे दक्षका विध्वंस करने वाला तीनशिरका, तीनपैरका, नौनेत्रका, बडीदेहवाला, चलायमानजीभसँ होटोंके प्रातोंको चाटताहुआ, ल-वेतालके समान पीडरीवाला, लालनेत्रका, अत्यंतक्रोधी, ज्वरप्रगटहुआ इसका त्रिशिरा नाम है ॥

कापिलारव्यज्वरकास्वरूप

अभूद्भद्रकोपाज्वरः कापिलारव्योमुखाङ्गारपुञ्जोद्भिर-

न्तोऽतिकायः।मदाघूर्णिताक्षः स्फुरत्ताम्रकेशोमहामे-

घगर्जोमनोहर्षहर्ता ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसँ जो कापिलज्वर हुआ है वो अत्यंत ऊंची देहका मुखसे अंगोरोंके पुंजोंकोटोडता, मदसे चढे हुए नेत्र, ताम्रके समान, प्रकाश वाले बाल, घोरमेघकीगर्जनाका करनेवाला और मनकी प्रसन्नताका नाशकरै ॥

भस्मविक्षेपकज्वरकास्वरूप

अभूद्भस्मविक्षेपकोरुद्रकोपान्महाट्टाट्टहासोमुहुर्जंभ-

माणः ॥ चलत्सप्तजिन्हः करालोग्रदंष्ट्रः स्फुरत्तप्तता-

त्रारुणश्मश्रुकेशः ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसैं एक भस्मविक्षेपक ज्वरप्रगटहुआ वह घोर अट्टाट्टाहासका करनेवाला, बारंबार जंभाईकोलेताहुआ, और चलायमान सातजीभ, विकराल उग्रढाढावाला, और प्रकाशमान तपेहुएतामेंके समान लाल डइदी और केशवाला ऐसा जानना ॥

त्रिपादज्वरकास्वरूप

त्रिपादुद्रकोपाद्भूवारुणाक्षो भृगोः श्मश्रुविध्वंसक-
स्तब्धकर्णः ॥ ज्वरोदीर्घकायोमुहुः श्वासकर्तारणे-
नृत्यमानोद्गदाहीतृषार्तः ॥

अर्थ—रुद्रके कोपसैं तीन पैरका ज्वरप्रगटहुआ जिसके लालनेत्र और सडेहुएकान दीर्घदेहवाला-बारंबार श्वासको छोडनेवाला तथा संग्राममें नाचनेवाला अंगोंमें दाहका करनेवाला-और व्याससैं व्याकुल-तथा भृगुऋषिकी डाढीका उखाडने वाला जानना ॥

पिङ्गाख्यज्वरकास्वरूप

अमूर्द्धीरमद्देश्वरादुत्कटास्योज्वरपिङ्गनेत्रोऽल्पजंघो-
ऽग्निवर्णः ॥ तृषार्तोद्विजिह्वोनृसिंहद्वितीयश्चलती-
व्रकेशः कृशः शुष्कमांसः ॥

अर्थ—वीरभद्रेश्वरसैं टेढे मुखका, पीलेनेत्रवाला, छोटी २ पीडरीवाला, अग्निकेसमान लालवर्ण, तृषासैं व्याकुल, दोजीभमानो दूसरानृसिंहही है, चलायमान तीन वालोंवाला, कृशदेह, और सूखे मांसवाला, ऐसा पिङ्गनेत्रज्वर प्रगट हुआ ॥

महोदरज्वरकास्वरूप

वभूवातिदीर्घोदरोलंबकर्णोज्वलदग्निरूपश्चलद्रक्तनेत्रः ॥
तृषाश्वासजंभान्वितांगप्रमर्दोभटेशोज्वरोरक्तवर्णः प्रमत्तः ॥

अर्थ—श्रीशिवसैं एक बडेपेट और लंबेकानका प्रज्वलित अग्निके समानरूप, चंचल लालनेत्र तृषा श्वास जंभाकरके युक्त, अंगोंका तोडनेवाला, योद्धाओंकाराजा, तथा लाल वर्णका और मतवाला महोदरज्वर जानना ॥

ज्वलद्विग्रहज्वरकास्वरूप

ज्वलद्विग्रहोमुक्तकेशश्चलद्भ्रुविश्रुलासिहस्तोभुजंगे-

शपाशः॥ज्वरेशोऽतिवीर्योहरश्वासजातः कृशः शुष्क-
मांसोवलीभैरवेशः ॥

अर्थ—श्रीशिवजीके श्वाससें प्रगट अभिसमान देहवाला, सुलेहुएवाला, चला-
यमान भ्रकुटी, त्रिशूल, तलवार, सर्प, और फांसका धारण करनेवाला, सबज्व-
रोंका राजा, अति पराक्रमी, कृशदेह और शुष्कमांसका बलवान् भयानकामेंभी
श्रेष्ठ, अंसा ज्वलद् विग्रह ज्वरका स्वरूपजानना ॥

सुश्रुतेऽपि

रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः त्रिपाँदभस्मप्रहं-
रण त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलो-
ज्ज्वलविग्रहः । पिण्डक्षणेह्रस्वजंघो वीभत्सोवलवान-
यम् ॥ पुरुषो लोकनाशार्थमसौ ज्वर इतिस्मृतः ॥

अर्थ—ये आठज्वर जो हंसराज ग्रंथमेंलिखे हैं उनका मूलकारण यह सुश्रुत-
का वाक्य है । अर्थात् इसीके नामोंको लेकर हंसराजकविने अपनी कविता श-
क्ति दिसलाई है वास्तवमें ज्वरएकही है । तद्वारुद्रकोपाग्निसै प्रगट, सर्व प्राणि-
योंको सपानेवाला, तीनपैरका, भस्मप्रहरण, अर्थात् भस्महेति शस्त्रकाप्रहार
करता, तीनमस्तक, बड़ेभारीउदरवाला, व्याघ्रचर्मरूपवस्त्र, कपिल-ज्वलद्विग्रह-
पीलेनेत्रका-छोटीजांघका-वीभत्स-बलवान् अंसा पुरुषलोकनाशार्थं प्रगट करा
इसको ज्वर अंसा कहते हैं ॥

ब्राह्मणज्वरकेलक्षण

दंडीयज्ञोपवीतीचरौद्रोब्राह्मणरूपघृक्

अर्थ—श्रीरुद्रभगवान्मै प्रगट दंड-यज्ञोपवीत (जनेऊ) को धारणकरे और
ब्राह्मणरूप कियेहुए अंसा ब्राह्मणज्वर जानना । तथा छत्र-कमंडलु मृगचर्मादि
भूषित, पवित्र और शांतिवेश आदिजो ब्राह्मणोंके चिन्हहोतेहैं वो सब जानने ॥

क्षत्रिज्वरकेलक्षण

जपाकुमुभसंकाशोरौद्रदंष्ट्राकरालितः ॥

खड्गहस्तोमहारौद्रोमाहेन्द्रः क्षत्रियोमतः

अर्थ—जपा (गुदर) के फूलके समान लालरंगका, तीन्नी दादावाला, ख-
ड्गयोलिये महान् रौद्र, सब रुद्रज्वरोंका राजा, क्षत्री ज्वरजानना ॥

वैश्यज्वरः

चंपकप्रसवाभासः तप्तकांचनभूषितः ॥

दंडहस्तोमहावेगी वैश्योज्वरइतिस्मृतः

अर्थ—चंपके फूल समान पीतवर्ण, तपेदुये सुवर्णसे भूषित, दंडहायमें—महा-
वेगीअसा ज्वरवैश्यकहलाता है ॥

शूद्रज्वरकेलक्षण

कृष्णमेघांजनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्वलाननः ॥

त्रिनेत्रोज्वलनप्रख्यः कालः शूद्रोविजानता

अर्थ—काले बदल और काजलके आकार, तीखीढाढावाला, उज्ज्वलमुख-
का, तीननेत्र, अंग्रिके समानस्वरूप, कालेरंगका, असा शूद्रज्वरजानना विशेष
देखना होवेतो ज्वरपराजय—और ज्वरतिभिरभास्कर ग्रंथमें देखो ॥

ज्वरकेनाम

रोगः पाप्माज्वरोव्याधिर्विकारोदुःखमामयः

यक्ष्मातंकगदाबाधशब्दाःपर्यायवाचिनः

रोगादिकशब्द पर्यावाचक है—अर्थात् एक अर्थके ही देनेवाले है परंतु इनमें प्रत्यर्थभे-
दभीदीखता है जैसे—रोग (पीडादेनेसे इसको रोग कहते है) पाप्मा (पापोंके करनेसे
होता है इसीसे इसको पाप्मा असा कहते है) ज्वर (ज्याधांतु अवस्थाकी हानिमें बर्त्ते है
उसके आगेवर प्रत्ययलानेसे ज्वरशब्द सिद्ध होता है यह देह और मनको संतापकारक
होनेसे ज्वरकहाताहै) व्याधि (जो देहमें अनेक प्रकारके दुःख प्रगटकरे उसको व्याधि क-
हते है) विकार (मन-बुद्धि और इन्द्रियोंके विकृत करनेसे विकार कहाता है) दुःख
(उपतापक होनेसे दुःख कहते है) आमय (संपूर्ण रोगआमसे प्रगट होते है इस वास्ते
आमय कहते है अर्थात् संपूर्ण प्राणीमात्र चपलतासे अदेश अकालमें अपश्य—और अं-
त्यंत भोजनके सेवन करने वाले होतेहै इसीसे आमजन्यरोग प्रगट होते है) यक्ष्मा (सब
रोग और रोगोंके समूह होनेसे यक्ष्मा कहलाते है), आतंक (प्राणी रोगोंसे उपतप्तहो-स्त्री-
पान—भोजनादि त्याग—कठिनसे जीते है इस वास्ते उनको आतंक असा कहते है) गद
(अनेक कारण जन्य होनेसे ज्वरको गद असा कहाहै) आबाध (जो चारचो-तरफसे
देह और मनको बाधाकरे इस वास्ते इसको आबाध असा कहते है ॥

अर्थ—रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतंक
गद और आवाय येशब्द सब आपसमें पर्याय वाचकहै अर्थात् रोगके नामहै ॥

अथ निदान पंचकम्

मंगलाचरणम्

ग्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् । स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं
त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥ नानामुनीनां वचनैरिदानीं समा
सतः सद्भिपजां नयोगात् । सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निव
ध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २ ॥

अर्थ—जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (सुख)
अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणाम-
कर अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आ-

*शिष्य—*यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्यहै उनके
वाक्योंका निरादरकर मनुष्यरुत तुम्हारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति होवेगी? इसकारण
माधवाचार्यने “नानामुनीनां वचनैः” इस पदको धरा, अर्थात् अनेक मुनीश्वरोंके वचनों-
का आशयले मैने यह ग्रन्थ निर्माण कियाहै, किंतु मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहींहैं ।
शंका— पहलेही बहुत ग्रन्थ निर्माणकरे उपस्थितहैं फिर तुम्हारे इस ग्रन्थको कौन
पढ़ेगा? इसकारण माधवाचार्यने “इदानीम्” पद मूलमें धरा, इसपदका यह आशयहै—
कि हमहीं अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसा अलौकिक ग्रंथ रचतेहैं कि, पहिले कि-

१ प्रथम लिखआएहै कि “ दर्शनस्पर्शन.प्रणैसंपरीक्षेतरोगिणं । रोगनिदानमागूपलक्ष-
णोपशयासिभिः ” अर्थात् दर्शन, स्पर्श और प्रणयसे रोगीकी परीक्षा करे, तथा निदान,
पूर्वरूप, रूप, उपशय, और संमाप्ति करके रोगकी परीक्षाकरे तहां त्रिविधरोगीकी परीक्षा
तो प्रथम लिखआएहै अब हम रोगपरीक्षाके निमित्त निदानपंचकको रुषिनिश्चय ग्रंथसे
लिखते है तथा जिस रोगका निदान लिखेंगे उसीके साथ उसकी चिकित्साभी लिखीजायगी

ज्ञासैं अब में संक्षेपसैं रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना कर्त्ताहूं । जिसमें (उपद्रव,) (अरिष्ट,) (निदान,) और (चिन्ह) इनका लक्षण अच्छीरीतिसैं किया गयाहै ॥ १ ॥ २ ॥

सीआचार्यने अद्यापि नहीं निर्माणकरा । कोईवादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसिने नहीं पढातौ आपका ग्रन्थ निर्माण करना व्यर्थ होयगा. इसकारण माभवाचार्यने “सद्भिपजा नियोगात्” यह पद धरा इसपदका आशय यह है कि, हमारे पढ़नेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माणकरौ जैसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसैं इसग्रन्थकी रचना करी है शंका—श्रीमहादेवजीके हर मृड रुद्र शाम्भव इत्यादिनामोंको त्यागकर शिव इसनामको क्यों प्रणामकरा? उत्तर—इसरोगविनिश्चयग्रन्थके पठनपाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छाकर सर्वकामना देनेवाला कल्याणवाचक शिवनाम विचार इसाको ग्रन्थके आदिमें माभवाचार्यने प्रणामकरा ॥ १ ॥ २ ॥

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेघसाम् ।

सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

अर्थ—अन्यनिदान ग्रन्थोंसैं इसकी उचमता दिखातेहैं जैसेकि अनेकग्रंथोंके विचार करनेमें असमर्थ जैसे मन्दबुद्धिवाले वैद्योंके सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यहीग्रन्थ कारण होवेगा. क्यों कि रोगका जाननाही मुख्यहै सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखावीहै ।

(रोग जाननेके पांच उपाय उन्को कहतेहैं)

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

संप्राप्तिश्चेत्ति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥-४ ॥

अर्थ—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, और संप्राप्ति, ए पांच प्रकार पृथक्

१ उपद्रवो—रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्योविकारः । २ नियतमरणख्यापकलिंगमारिष्टम् । ३ निदानंरोगोत्पादकोहेतुः । ४ लिंगं—रोगख्यापकोहेतुः । तेनलिंग्यते व्याधिःअनेनेति व्युत्पत्त्यापूर्वरूप—रूपो—पशयसंप्राप्तयोविज्ञायते । ५ रोगमादौपरोक्षेनततोन्तरमौपर्वं ॥ ततः कर्मभिषक्पश्चाद्ज्ञानमूर्त्तमाचरेत् ॥ १ ॥ रोगज्ञानार्थमेवादीपत.कार्यो भिषग्वरैः ॥ सन्नि-
तस्मिन्क्रियारम्भः पुण्यापयशसेश्रिये ॥ २ ॥ प्रसंगवश रोगज्ञानकी विधि कहतेहैं जैसे रोग चारप्रकारमें जानाना है मत्स्य—अनुमान—उपमान—और शब्दसैं तथा चित्रकृष्णा-
दि व्याधि मत्स्य देखनेसैं प्रतीतहोती है, जरादि त्वकृन्दीमें जानेजाने है ॥

पृथक् और समस्तव्याधिके बोधक होतेहैं। इसप्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहाहै।

*इसश्लोकमें उपशयस्तथा यह जो पद धरा इसका यह आशयहै कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसै रोग जानाजायहै उसीप्रकार उपशयसै और सम्प्राप्तिसैभी रोग जाना-जाताहै (सम्प्राप्तिश्चेति) इसपदमें च और इतिके धरनेसै यह प्रयोजनहै कि रोगजाननेके इन पांचोसै विशेष और उपाय नहींहै। अब कहतेहैं कि रोगोंका निदान संनिऋष्ट समीप और विप्रऋष्ट दूर इन भेदोंसै दो प्रकारकाहै * संनिऋष्ट उसे कहतेहैं की जैसे वातादिक कुपित प्वरादिक रोगोंको प्रगटकरेहैं * और विप्रऋष्ट उसे कहतेहैं जैसे हेमंतऋतुमें संचितहुआ कफ वसंतऋतुमें कुपित होताहै * पूर्वरूप उसे कहतेहैं जैसे ज्वरमें आलस्यादिधर्म * रूप उसे कहतेहैं जैसे १८ के श्लोकमें लिखाहै * स्वेदावरोधइति * अर्थात् पसीनोका अवरोध होना इत्यादिक * उपशय उसे क-हतेहै जैसे वातरोग तैलादिक लगानेसै शान्ति होयहै। सम्प्राप्ति उसे कहतेहैं जैसे १० के श्लोकमें लिखाहै यथादुष्टेनदोषेण इत्यादि शंका—क्योंकी ए पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसै रोगका निश्चय होसकेहै फिर माधवाचार्यने पांचप्रकार व्यर्थ क्यों लिखे ! क्योंकि पांचोंका प्रयोजन केवल रोगका जाननाहै—उत्तर—तुमने कहा सो ठीकहै परंतु इन पांचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजनहै जैसे निदान सै यह प्रयोजनहै कि जिसवस्तुके खानेसे या लगानेसै रोग प्रगटहो उसका त्याग करनेसै रोग नहीं बढे किंतु उलटाशांतिही होताहै और*पूर्वरूप के जाननेसै यह प्रयोजनहै जैसे सुश्रुतमेंलिखा है कि, वातज्वरके पूर्वरूपमें घृतपानकरानेसै वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय*रूप के जाननेसै यह प्रयोजनहै कि व्याधि अर्थात् रोगका साध्याऽसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होताहै, जैसे—जिसरोगका अल्परूप होवे यह सुखसाध्यहै, और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्णरूप असाध्य इसप्रकार जाननेसै असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी औषधिकरनी उचित है*उपशयके जाननेसे यह प्रयोजनहै कि सुपरीक्षितव्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसै व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे, सो चरक में लिखाहै कि जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे। उसीप्रकार*सुश्रुत में लिखाहै जैसे उ-

१ अर्थात् नाडी नेत्र निःहामल मूत्र आदि परीक्षाओंसे रोगोंका ज्ञान यथार्थ नहीं हो।
 २ वातिकज्वरेपूर्वरूपेघृतपानमिति तथाच साध्यासाध्यत्वमपिज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे हैं—यथा—निमित्तपूर्वरूपाणारूपाणामध्यमेनलेइति । ४ गूढलिङ्गव्याधि-मुपशयाऽनुशयाभ्यांभुङ्क्षेत्इति ।

चटना, तेल लगाना, स्वेदन विधि, इत्यादिक कर्म करनेसे वातरोग शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने। और संप्राप्ति के जाननेसे यह प्रयोजन है कि संप्राप्तिके विना जाने पूर्वरूपादिकोकरके जानीभईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभी है परंतु अंशांश, विकल्प, बल, काल, आदिको जबतक नहीजाने तबतक चिकित्सा ययार्थ नहीं होसके, इसीसे वैद्य निदानपंचकका अवश्यही परिचय करे ॥

निमित्तहेत्वाऽऽयतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।

निदानमाहुः पर्यायैः

अर्थ—अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहै हैं—निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान, और कारण, ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्रव्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहतेहैं कारण इनके कहनेका यहहै। कि व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इनछहों शब्दोंमेंसे कोईशब्द आवे उसको निदान वाचकहीजाने ॥

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।

लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्ब्रथायीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस जंभाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् (पूर्वरूप) कहतेहैं फिर वो व्याधि दोष (वात पित्त कफ) में बहुधा अप्रगट होवे । * (शंका—यदि वातादिक दोषोंमें अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भवहै, क्योंकि कारण तो वातादिक दोषहैं जब दोषही नहीं तो रोग कैसे प्रगट होसकेहै । * (उत्तर—इसपदका यह अर्थहै कि दोष वातपित्त कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगटरूप होना अर्थात् थोड़ा थोड़ा होना. अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने अपने अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसातैसाही होतेहै अब कहतेहैं कि (पूर्वरूप) दोषप्रकारकाहै एक सामान्य दूसरा विशिष्ट सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहतेहैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) में दूषित धातु उसके विगडनेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिन्ह न मालूमहों जैसे “ श्रमोरतिर्विवर्णत्वामिति ” अर्थात् ज्वरमें श्रम, मनका न लगना, देहका विवर्ण, इत्यादि लक्षण हो और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उन्हींके चिन्ह तिसके एक अंशकी प्रतीतिहो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहतेहैं जैसे “ जृमात्यर्थ समीरणात् ” अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसेहीहै । इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उस-

१-अर्न्मंगलेहस्वेदाद्यैर्वातरूपो न शान्त्यति । विकारस्तत्रविज्ञेयोदृष्टमत्रास्ति शोणितमिति ।

का आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसैं औरभी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाईआदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तौ केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिन्ह है, इस वातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं । (दृष्टान्त) जैसे तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूम (धूआं) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसे ही शान्ति करसकतेहै, परन्तु जब अग्नि एकसाथ जोरसे प्रज्वलित होगई तब शान्ति नहीं होसकै ऐसैंही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसे शान्ति कर सक्ते है, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं होसकै हैं इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है * अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोमें कोई शारीरक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं शारीरक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना देह भारी, नेत्रसे जल गिरना, इत्यादिक * और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शान्ति न होना तथा स्वदे चरणरेपदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

तदेवव्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।

संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिन्हमाकृतिः ॥ ७ ॥

अर्थ—जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रकट होजाय तब उसको रूप ऐसैं कहते हैं । और संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, लक्षण, चिन्ह, और आकृति, यह छः शब्द रूपके पर्यायवाचक हैं ॥

उपशयके लक्षण

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।

औपधान्नविहारणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥

विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः ।

अर्थ—अब उपशयके लक्षणको कहते हैं—हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी हेतुव्याधि विपर्यस्तार्थकारी ऐसैं जो औपध अन्न (पच्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगके हेतुको सुखकारक जो औपधि पच्य आचरण उसको उपशय कहते हैं, और (व्याधिसात्म्य) ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है, सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि दाह और प्यामयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना

व्याधिका बढ़ानेवाला है इसमें शीतलजल सुखकर्त्ता न हुआ अतएव शीतलजलको उपशय न समझना चाहिये । परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

आगे अब क्रमसे उदाहरण दिखाते है

हेतुविपरीत औषध—जैसे शीत कफ ज्वरमें सोंठ, वो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि यहाँ हेतु कौन है कि वात (सर्दी) उस वातका शीतलधर्म है—तो अब शीत कफ यह कब शान्ति होय कि जब सर्दी और कफके विपरीत औषध मिले, ऐसी औषध कौन कि शुंठी ये सर्दीको और कफ दोनोंको शान्ति कर

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	श्रम और बादी-सैं प्रगटरोगपर मांसकोरस और भात	दिनके सोनेसैं प्रगट कफरोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधि-विपरीत	अतिसारमें दस्त बंदकरनेवाली औषधि पाठाआदि	दस्तोंमें दस्तके बंदकारक पथ्य मसूर	उदावर्त्तरोगमें शब्दपूर्वक अघोवायुका निकसना मंत्रऔषधधारण देव-गुरुकी सेवा करनी ॥
हेतुव्याधि-विपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका कादा वात और सूजन दोनोंको दूरकरनेवाला है	कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और संग्रहणीनाशक	स्निग्ध जो दिनके सोनेसे उत्पन्नत-द्रा तिसमें रूक्षतंद्रासे विपरीत और स्निग्धतानाशक रात्रिमें जागना-
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान ग्रणकी सूजनमें पित्तकारक उष्णपिंडीका बांधना	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना	जैमें वातसे पैदा उन्मादमें त्रासका देना
व्याधि-विपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफलआदि	अतिसाररोगमें दस्तकारक दुग्ध देना	छर्दिरोगमें हाथका अंगुठा गलेमें कर वा कमलनालआदिसैं उलटीका लाना
हेतुव्याधि-विपर्यस्तार्थकारी	जैसे अग्निजलेपर गरम अगरआदिलेप अथवा विपपर विप	जैसे मद्यपानके करनेसे प्रगट मदास्य रोगमें मदकारक फेर मद्य पीना	दंडकसरतसैं—प्रगट वातमें जलका तैरना रूपव्यायामका करना

हे तो शीत कफ ज्वरमें हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई ॥ १ ॥ ऐसैही (हेतुविपरीत) अन्न जैसे श्रम और सरदीसैं प्रगट ज्वरमें मांसका रस और चावल इसमें हेतु कौनाकि श्रम और सरदी, ये कब शान्ति होवे कि श्रम और सर्दी हरणकर्ता पथ्य मिले, ऐसी पथ्य कौनाकि मांसरस और चावलौका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीत हैं अर्थात् नाशकहैं ॥ २ ॥ ऐसैही (हेतुविपरीतविहार) कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसैं प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन हुआकि दिनका सोना, उससैं प्रगट दोष कौनाकि कफ, यह कफ कब शान्ति होयकि जिस हेतुसैं प्रगटभया उस हेतुसैं विपरीत आचरण कराजाय, तौ दिनके सोनेपर उलथा आचरण कौन कि रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरणभया । इसीप्रकार और उदाहरण व्याधि विपरीत आदिके पूर्व लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेंगे ॥

अनुपशयके लक्षण

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसाम्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो उपशयके लक्षण कहेहैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधीका * असात्म्य अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण

यथा दुष्टेन दोषेण यथाचानुविसर्पता ।

निवृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

अर्थ—दोष कहिये वातपित्त कफ इनका दुष्टहोना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके, जैसे कुपितदोष अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचरनेसैं जो रोग प्रगटहो उसको (सम्प्राप्ति) कहते हैं और (जाति) तथा आगति ये दोनो पर्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं * तात्पर्यार्थ ये हैं कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ दोष बढकर जैसे रोगको प्रगटकरैं उसीप्रकार उमको सम्प्राप्ति कहते हैं * उदाहरण—जैसे कुपितदोषोंका आमाशयमें प्रवेश होना और उमस्थानमें इतस्ततो गमन करना तथा रसकी बहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकना और पकाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहिर निकालना तथा उसी जठराग्निसैं सर्व देहके तप्तहोनेसैं ये ज्वर है, ऐसा जो निश्चय किया जाय है उसीको सम्प्राप्ति कहते हैं । जैसेही अतिमारादि रोगोंको सम्प्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद

संख्याधिकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अर्थ—अब सम्प्राप्तिके भेद कहतेहैं सा कहिये सो सम्प्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांचप्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्रधान्य ४ बल ५ काल इति ॥

संख्यारूपसम्प्राप्तिके लक्षण

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽऽद्यौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांचप्रकारकी खांसी है ऐसा कहेंगे अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

विकल्परूपसम्प्राप्तिके लक्षण

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ।

अर्थ—मिलेहुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूपसम्प्राप्ति कहतेहैं जैसे धूएके निकलनेसें ये पर्वत अभिवाहन है जैसेही ये रोगीके देहमें वातका अंश विशेषहै, काहेसें कि वातके अंश विशेष मिलनेसें इसी अनुमानको विकल्पसम्प्राप्ति कहतेहैं (उदाहरण—जैसें रूखी, शीतल, हलकी, और फैलनेवाली, इत्यादि गुणयुक्त जो पवन, उसका रौक्षादि गुणयुक्त कपेलारस वातको सर्वांशकरके बढ़ानेवालाहै उसीप्रकार कटुरस सर्वभावकरके पित्तका बढ़ानेवालाहै जैसे कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्वकरके हींग पित्त को बढ़ानेवालाहै उसीप्रकार मधुररस जैसें भैंसका दूध ये सर्वभावकरके कफको बढ़ानेवालाहै इत्यादि इसमें (दोषाणां) जो बहुवचनहै सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है, और (समवेतानाम्) ये पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहण-निमित्त धराहै ॥

प्राधान्यरूपसम्प्राप्तिके लक्षण

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधिः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वतंत्र और परतंत्रकरके व्याधिको प्राधान्यता है जैसे—स्वतंत्रज्वरको प्रधानताहै, और ज्वराधीन श्वास आदिरोगोंको अमघानताहै ॥

बलरूपसम्प्राप्तिके लक्षण

हेत्वादिकात्त्राविद्यैर्वलावलविशेषणम् ।

अर्थ—हेतु आदिशब्दमें पूर्णरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसें व्याधिको बलवान् जानना, और घोड़े लक्षण मिलनेसें निर्बल जानना.

जैसे-जिस रोगके प्रति जो निदान कहाहै वी निदान सम्पूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवाला है कि एकदेश * ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त अवयवों करके व्याधिका प्रकाशकहै या एकदेशसँ इत्यादि लक्षणोंसँ बलाबलका निश्चय करना ॥

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथा दोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेवढनेके हेतुका समय जाने*उदाहरण दिखाते हैं-जैसँ रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य, और अंत; तौ रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अंतभाग वातका है, ऐसँही दिनके वी तीन भाग करे तो पूर्वान्ह कफका, मध्यान्ह पित्तका, अपरान्ह वातका, ऐसँही ऋतु जैसँ वसंतऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त, और वर्षामें वात कुपित होतीहै ऐसँही भोजनका जैसँ-भोजनकरनेके समय कफका काल, और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल, और जब भलेप्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसकालके जाननेसँ यह प्रयोजनहै कि जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहाहै उसका उसी २ कालमें प्रावच्यता जानलेना कठिन मालूम नहीं होती ॥

निदानपंचकका उपसंहार

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—इति कहिये इस प्रकार संक्षेपप्रकारसँ जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक रोग २ के प्रति निदान पूर्वरूपादिकरके कहते हैं ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविवाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—अब पूर्व चतुर्थ श्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्नि कृष्ट और विप्रकृष्ट, तिसमें सन्नि कृष्ट, कौन वातादिक समीपके कारणकरके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं (सर्वेषामिति) । कुपितहुए जो मल (वात पित्त कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होतेहैं और उन् वात वित्त कफ दोषोंके कोपका कारण अनेकप्रकारका अपथ्यसेवन करना हैं ॥

१ केचन ऋत्वंशाः कतिपयारोरात्राणि कथयन्ति यदुक्तं वाग्भटे ऋत्वोरित्यादिगता-
दात्रुसंधिरितिस्मृतः ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।

तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥

रक्तपित्ताज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ।

श्रीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥

अर्शाभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ।

प्रतिश्यायादथो कासः कामात्संजायते क्षयः ॥ १८ ॥

क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोपस्याप्युपजायते ।

अर्थ—कोई प्रश्नकरे कि जो पूर्वकहाहैं येही निदानहै अथवा इसके व्यतिरिक्त-
और भी है इसलिये कहते हैं कि रोगका रोगभी निदान होता है । अर्थात् जो नि-
दानसे कार्य्य होताहै वोही रोगसे भी होताहै, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं (त
द्यथेति) जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रकट होताहै । और रक्तपित्तसे ज्वर, एवं
रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होताहै । और श्रीहके बढ़नेसे जैसे उदररोग, और उद-
ररोगसे मूजन, और ववासीरसे जैसे उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, एवं
पीनमरोगसे खांसी, तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होताहै । और ये
क्षयरोग राजयक्ष्मा जो सम्पूर्ण रोगोंमें राजा है उसको प्रगट करेहै ॥

ते पूर्व केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ—वो रोग प्रथम स्वतंत्रथे और जब बल मिलगया तो वोही हेत्वर्थकारी
अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ।

एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

अर्थ—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिस्तावे हैं जैसे
कोईएक रोग दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगटकर आप शांत हो-
जाताहै, जैसे पीनमरोग आप शांत नहीं होनेपाता और खांसी उत्पन्न होती है ।
और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगटकर आप जैसा का तैसा बना रहताहै, जैसे
ववासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग पैदा होबेहैं । इस प्रकार मनु
ष्योंके घोरकेशदायक मिलेहुए रोग दिसाई देते हैं विशेषकरके चिकित्सा विरुद्ध
होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होजाते हैं ॥

तस्माद्यत्नेन सदैवैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।

ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥

अर्थ—अब कहेहुये निदानादिपंचरूद्वारा रोग निश्चितरूप सिद्धीकी इच्छा करके अशय जानने योग्यको कहते हैं (तस्मादिति) इसीकारण उत्तम सिद्धी हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सदैवैर्योकी इच्छाहै उनको ज्वरादिरोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वो यत्नमें जानना चाहिये ॥

अथ ज्वरनिदानम्

—०१०—

अत्र सर्वदेहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेमें, बली देह इन्द्री मनको तपायमान करनेमें जन्म मरणका कारण होनेमें स्थावर जंगम प्राणीनमें स्थिति होनेमें सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चक्र सुश्रुतादि आचार्योंनि ज्वर गजा कहाई ॥

तदुक्तं चरके

देहेन्द्रियमनरतार्पा सर्वगंगाग्रजो बली ।

ज्वरः प्रयानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

अर्थ—देह इन्द्री मनको तपायमान करनेमें रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेमें प्रयान ज्वरको मर रोगोंमें प्रधानता बली है ॥

ज्वरकी उत्पात्ति

दक्षापमानमंशुद्धरुद्रनिःश्वामसम्भवः ।

ज्वरोऽष्टया पृथग्द्वंद्वमंचानां तु जः स्मृतः ॥ २ ॥

अर्थ—दक्षमत्तानदिके निरुपशर्म जोहित श्रीः अष्टभगवानने श्वामके ज्वर मर आठप्रकारका है जो निरुप कफ इतन ३, इंद्रल ३, सुप्रित्त ३, श्वाम आंग-तुज १ ऐसे निरुप मतेरमें ज्वर आठप्रकारका है ॥ २ ॥

इस अंशके [निःश्वामसम्भवः] में जो पद धरते सो श्वाम इस ज्वर को पदे मरका प्रकार करारे किन्तु ज्वरकी श्वामके ज्वरदि नहीं है जैसे (शु-श्रुते) निरुपदि कहा "इन्द्रकोऽपि प्रमदः सर्वमृत्प्रदायकः" इति अर्थमें जो

धित रुद्रेण ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्शकर आग्नेयवा-
ण निर्माण किया (तथा च चरके) “सृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा ता-
नसुरान्प्रभुः । बाष्णं कोधाग्निंसंतप्तमष्टजच्छत्रुनाशनम्” इत्यादिक वाक्योंसे ज्वर-
मात्रकी पित्तप्रकृति जाननी प्रयोजन यहै कि सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रि-
या न करे सो (वाग्भटने) कहाहै (यथा—“उष्मा पित्ताहते नास्ति नात्यु-
ष्माणं विना ज्वरः । तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम्” इति । अ-
र्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहींहोवै इसीसे
ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया न करै और पित्तज्वरमें विशेषकरके पित्तविरुद्ध क्रिया
स्याज्यहै ॥ अन्य आचार्य कहते है कि श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसे ज्वर देवता है
इस लिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होताहै जैसे (विदेहका वाक्य) है
“ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति” और ज्वरका स्वरूपभी (हरिवंशमें)
लिखाहै (यथा) “ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः पद्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो
रौद्रः कालान्तकयमोपमः॥” इति । अर्थात् ज्वरके तीन चरण तीन मस्तक छह
भूजा नवनेत्र भस्मप्रहेती है शस्त्रजिसका यह रौद्रकाल यमराजके समानहै ।

ज्वरसंप्राप्ति

मिथ्याहारविहाराम्भ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

वहिनिरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्या आहार (देश काल प्रकृति आदिसे विरुद्ध और संयोगविरुद्ध
भोजन) मिथ्याविहार (देहके पुरुषार्थसे विशेष कामका करना) इन कारणों-
से दुष्ट हुये जो दोष (वात पित्त कफ) सो नाभिस्तनके बीच आमाशयमें प्राप्त
हो रसको विगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहके वाहर
निकाल ज्वरके प्रगट करनेवाले होते है ॥ * ॥

ये संप्राप्ति शारीर रोगोंकीहै आगंतुनकी नहींहै क्यों कि आगंतू रोगोंका तो
व्यथापूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है जैसे (स्यूतमें) लिखाहै श्रम
और चोटके लगनेसे देहभारियोंके देहमें कुपित हुई वात सवदेहकों परिपूर्णकर ज्वर-
को पैदा करतीहै * और (चरक) में भी लिखाहै कि चोटके लगनेसे प्रगट वात

१ अकाले चातिमात्रं च असाध्यं यच्च भोजनम् । विपमाशनं च यदुक्तं मिथ्याहारः
स उच्यते ॥ १ ॥ इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाई है । २ अ-
शक्तः कुरुते कर्म शक्तिमात्रं करोति च । मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा चैव विनर्नयेत् ॥
३ नाभिस्तनान्तरं जन्वोरामाशय इति स्मृतः ॥

रुधिरको विगाड व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करती है * (शंका—त्रयौजी आगंतुभी शारीररोगही है क्योंकि आगंतुज्वरमें भी गरमी रहती है जैसे * “(उष्मा पित्ताहते नास्ति)” * इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे * उत्तर—ये जो तुमने कहा सो ठीक है * परंतु इस आगंतुरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसे ही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होती है यासे आगंतुरोगोंको शारीरत्व नहीं है ॥ * ॥ इस श्लोकमें (कोष्ठाग्नि) यह जो पद धरा है सो धातुकी अग्निके निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आय जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पचेविना ज्वर शांति नहीं होवेगा इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये (वहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम्) कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकरऐसा अर्थ करना चाहिये ।

ज्वरके लक्षण

स्वेदावरोधस्सन्तापः सर्वांगग्रहणं तथा ।

युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस रोगमें पसीना न आवै, देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समें हो उसको ज्वर ऐमें कहते हैं ॥ * (शंका—त्रयौजी पित्तज्वरमें तो पसीने आतेहैं इस श्लोकमें विरुद्धता आती है * इसपर जेज्जटादिक उत्तर लिखतेहैं कि स्वेदावरोध कहिये “ स्थित्यने अनेनेति स्वेदः इस व्युत्पत्ति करके स्वेद चाहिये अग्नि तिष्ठा अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेमें श्लोकांर्थमें विरुद्ध नहीं पडता ॥

ज्वरका पूर्वरूप

श्रमोरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनश्लवः ।

इच्छा द्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥

जृम्भांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।

अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्सति ज्वरे ॥ ६ ॥

अर्थ—कारण विनाही श्रम, कर्मकरनेमें उत्पन्न नहो, अथवा गेलनेमें अर्न्धी देहमें मलीनता, मुग्धमें विरमता, नेत्र अश्रुपान युक्त, मर्दी गरमी पवन इनकी चारचार इच्छा होना और चारचार द्वेष हो । इस्में जो (आदि) शब्दहो इस्में श्लव और अमिका प्रहण है अर्थात् इनकी चार २ इच्छा और द्वेष ये (नयक) वा मतहै तदुक्तं चरके—“ ज्वरानातपवाग्यंनुमक्तद्वेषाभिलाषिता ” इति । अन्यं तु

शैत्योष्णसाधर्म्याज्जलाऽनलो गृह्णाति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यते * अन्य आचार्य सर्दी गरमीके साधर्म्यते जल अग्निको कहते हैं और आदिशब्दसँ शयन आदिमानते है * जंभाई अंगोका दृटना, देहभारी, रोमांचोंका खडा होना, अन्नमें, अरुचि, अंधेरेका आना, आनंदकी निवृत्ति, सरदीका लगना, *(शंका) क्योंजी पूर्व कहआये कि सरदी गरमीका बार बार इच्छा और बार बार द्वेष फिर पुनः (शीत) पद क्यों धरा ? * उत्तर—इस पदके धरनेसँ सरदीकी आधिक्यता दिखाई, अर्थात् सरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व होतेहै ॥

ये माधवाचार्यने सामान्यपूर्वरूपके लक्षण (सुश्रुतोक्त) लिखेहैं विशिष्टपूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थान्तरसँ लिखतेहैं ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात् ।

पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥ ७ ॥

अर्थ—विशेषकरके वातज्वरमें जंभाइ बहुत आती है, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो, और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होती है, ये श्लोक क्षेपकहै परंतु बहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखा है इसवास्ते हमने भी मूलके साथ लिखदीना है ॥

अथज्वरचिकित्साप्रारंभः

इतिज्वराः समाख्याताः कर्मदानां प्रवक्ष्यते

अर्थ—इसप्रकार ज्वरोके निदान और लक्षण कहे अब सुश्रुत ग्रंथसँ उक्ता ज्वरोंकी चिकित्साकहते है ॥

वैद्यकोसाधारणक्रियाकी आज्ञा

दोषाणांचपरिज्ञानंयत्रसम्यक्नदृश्यते ।

क्रियांसाधारणांतत्रभिपक्षसम्यक्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—जिसरोगमेवातादि दोषोका ज्ञान अच्छीरीतिसँ नहोवे उस जगे वैद्य साधारण क्रिया (जों आगे लिखते है उसको) उत्तम रीतिसँ करे । अर्थात् यह साधारण क्रियाकिसी रोगमें करो उसरोगको नष्टहीकरे है बढाती नहीं है ॥

अंशांशंयत्रदोषाणां विवेक्तुं नैव शक्यतात् ।
साधारणीक्रियां तत्र विदधीत चिकित्सकः ॥

अर्थ—वैद्य जिस रोगमें दोषोंके अंशांशको न जान सके उसजगे साधारण क्रियाकी विधि करके यत्न करे ॥

ज्वरकी सामान्य चिकित्सा

ज्वरस्य पूर्वरूपे तु वर्तमाने सुबुद्धिमान् । पाययेत् घृतं स्वच्छं ततः सलभते सुखं ॥
विधिर्मरुतजे चैव पैतिकेतु विरेचनम् ॥
मृदुप्रच्छर्दनं तद्भृत्कफजे हि विधीयते ॥ सर्वद्विदोषजे पूक्तं यथा दोषं विकल्पयेत् ॥

अर्थ—ज्वरके पूर्वरूपमें यत्न कहते हैं । तहां वात ज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घृतपान करना चाहिये, पित्तप्रधान ज्वरमें मृदुविरेचन देना, और कफ प्रधान ज्वरमें हलफी वमन करानी—एवं द्विदोष और त्रिदोषमें उक्त दोनो—वा तीनों यत्न यथा संभव करने चाहिये ॥

(ज्वरके आदि मध्य और अंतमें कर्तव्य)
ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम्
ज्वरान्तैरेचनं दयमेतज्ज्वरचिकित्सितम् ॥

अर्थ—वैद्य रोगीको ज्वरके आदिमें लंघन करावे, और ज्वरकी मध्य अवस्थामें ज्वर पाचक औषध देवे, एवं जब ज्वर शांति होजावे तब उस रोगीको दस्त करावे, यह संक्षेपसे ज्वरकी चिकित्सा कही है ॥

लंघन

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात्

अर्थ—ज्वरमें प्रथम लंघन कराना वैद्यको उचित है परंतु क्षयज्वर, वातज्वर, भयज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर, शोकज्वर, परिश्रमजन्यज्वर, इनज्वरोंमें लंघन कदाचित् नहीं करना ॥

१ घातुसपत्न अथवा रानयश्नाज्वर । २ वातज्वरकहनेमें यदापर निरामघातया ग्रहण है यदि सामवातज्वर होवे तो लंघन अवश्य कराने चाहिये ॥

लंघनकरानेमेंकारण

आमाशयस्थोहत्वाग्निं सामो मार्गान्पिघापयन्
विदधाति ज्वरं दोषतस्मालंघनमाचरेत्

अर्थ—अवलंघन करानेमें कारण कहते हैं, जैसेकि आमसँ मिलेहुए दोष आ-
माशयमें स्थितजठराग्निको नष्टकर और देहके भीतरके मार्गोंके (नसनाडी आ-
दि) को ढकते हुए ज्वरको प्रगट करते हैं अतएव उस आमके पचानेको और
रुकेहुए मार्गोंके स्वच्छ करनेको वैद्य रोगीके वास्ते लंघन करावे । यहां जठ-
राग्नि करके जठराग्निकी उप्मालेनी समग्रजठराग्नि नहीं लेनी चाहिये ॥

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम्
ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम्

अर्थ—अपने २ स्थानपर नहींस्थित असे दोष और अग्निके विकार पचाने-
को लंघन कराने चाहिये लंघन ज्वरको नाशकरते हैं, अग्निको दीप्तकरे, भोजन-
की इच्छा, रुचि, और देहमें हलकापना करते हैं ॥

प्राणाविरोधिना चैवलङ्घनेनोपपादयेत्
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः

अर्थ—वैद्यको चाहिये कि रोगीका बलनष्ट हो इस प्रकार लंघन करावे क्यों-
कि आरोग्यता बलके आधीन है और उस आरोग्यताके अर्थ यह क्रियाका क्रम है

उत्तमलंघनकेलक्षण

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गो गात्रलाघवे ॥ हृदयोद्गारकंठा
स्य शुद्धौ तन्द्रा क्लमे गते । स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पि-
पासासहोदये कृतं लंघनमादेश्य निर्व्यथे चांतरात्मनि

अर्थ—अधोवायु, मल, मूत्र इनका यथा समय निकलना, शरीरमें हलकाप-
ना, (हृदयका भारीपना) आदि, कंठमें कफका लिहसारहना, मुखमें विरसता इत्या-
दिलक्षण रहित हृदय, कंठ, और मुखका शुद्धहोना, तन्द्रा, और ग्लानिका नाश,
पसीनोंका आना, रुचिका चलना, एवं भूखप्यासका एक साथलगना, और मनमें
किसी प्रकारकी व्यथाका न रहना ये लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥

अतिलंघनकेदोष

पर्वमेदोऽङ्गमर्दश्चकासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशो

ऽरुचिस्तृष्णादौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः । मनसः संभ्रमो-
ऽभीक्षणंमूर्द्धवातन्तमोहदि । देहाग्निवलहानिश्चलंघ-
नेतिरुतेभवेत् ॥

अर्थ—गांठोंमें पीडा, देहका दूटना, खांसी, मुखका सूखना, भूखका माराजा-
ना, अरुचि, प्यास, कर्णेंद्री और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनका डमाडोलहोना—ऊर्ध्ववा-
त (हिचकी, श्वास, कानोंमें शब्द, और जंभाई आदिका होना) मोह, देह, अ-
ग्नि—और वलका घटना, ये लक्षण अत्यंत लंघन करनेवाले रोगीके होते हैं ।
मुख्य लंघन करानेका हेतु आमपचानेके वास्ते है परंतु हमारे मथुरा आ-
दिके ढपोल शंख वैद्य सब ज्वर वालोंको लंघन कराते है, और फिरअंधेकी त-
रह उससैं पूछते हैकि कहे अभी तुमको भूखलगी है यानही यदि रोगीको भूख
भी लगी हो तथापि उसरोगीको लंघन ही कराते है कि जिससैं उसका वलनएहो
शीघ्रयमालयको चलाजावे, और रोगों सैं बचभी गयातो निर्बलके कारणसैं प्र-
त्येक समय रोगी होजावे ' हरीच्छा ! बलीयसी ' ॥

लंघनकेअयोग्यरोगी

नलंघयेन्मारुतजेज्वरेचक्षयोद्भवेचक्षुधितेचजन्तौ न-
गुर्विणीदुर्बलवालवृद्धान्भीतांस्तृपार्तानपिसोर्ध्ववातान्

अर्थ—निरामवात ज्वरमें, राजयक्ष्माके ज्वरमें, भूसमें, गर्भवती स्त्री, दुर्बल
मनुष्य, बालक, बुढ़डा, डरपोक, तृपार्त, और उर्ध्व वातवायारोगी, इनको वै-
द्यकदाचित् लंघन न करावे ॥

लंघनसहनकरनेमेंकारण

दोषाणामेवसाशक्तिर्लघनेयासहिष्णुता ।
नहिदोषक्षयेकश्चित्सहतेलंघनादिकम् ॥

अर्थ—लंघनका करना ये केवल दोषों ही की सामर्थ्य है, क्योंकि दोष क्षी-
ण होनेपर कोईभी प्राणी लंघनको नही सहसकता, अतएव जघनक इमको लंघ-
न करनेकी सामर्थ्य रहे तभीतक वैद्य लंघन करावे ॥

अस्नेहनीयोऽज्ञोध्यश्चसंयोज्योलंघनादिना ।
रूपप्रायूपयोविद्यान्नात्वंवह्निधूमवत् ॥

अर्थ—जो स्नेहन करनेके अयोग्य है. और जिनको बमन विरेचनमें शोधन

नहीं करसकते, उनको लंघनादिक करानाही उत्तम है। तथा रूप और पूर्वरूपका अग्नि और धूआंके समान अनेक विधत्व वैद्यजाने: अर्थात् जैसे धूआंहोनेसे अग्निकी संभावना होती है उसी प्रकार पूर्वरूपसे रोगके रूपकी संभावना जाननी अव्यक्तरूपेषुहितमेवांतेनापतर्पणम् ।

आमाशयस्थेदोषेतुसोत्क्लेशेवमनंपरम् ॥

अर्थ—ज्वरके पूर्वरूपमें केवल लंघनादिक कराना । जो आमाशयमें दोष हो-य और जी मचलाता होवे उसको वमन कराना हित है ॥

लंघनकीअवधी

आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावंतः कालमातुरः ।

कुर्यादनशनंतावत्ततः संसर्गमाचरेत् ॥

अर्थ—जबतक यह रोगी वातादिदोष अथवा वात मल मूत्रादिसै घिरारहे, अर्थात् अधोवायु, मल, मूत्रसाफ न उतरे तबतक लंघनकरे फिर मिलेहुए अर्थात् औषधादि और लंघनादि दोनोउपाय करने चाहिये ॥

वमनकरानेयोग्यरोगी

सद्योभुक्तस्यवाजातेज्वरेसंतर्पणोत्थिते

वमनंवमनार्हस्य शस्तमित्याहवाग्भटः

अर्थ—तत्कालभोजन करनेवालेके ज्वर प्रगटहुआहो, अथवा संतर्पण कर्म-करनेसे यदि ज्वर प्रगट हुआ होवे, तथा जो वमन करानेके योग्यरोगी है उनको वमन करना उत्तमहै अंसे वाग्भटाचार्य कहता है ॥

(अवस्थाविशेषमेंवमनकरानाकहतेहै)

कफप्रधानानुत्कृष्टान्दोषानामाशयोत्थितान्

बुध्वाज्वरकरान्काले वम्यानावमनैर्हरेत्

अर्थ—चरकऋषि लिखते हैं कि जिन रोगोंमें कफ प्रधान है, और हृष्टासादि करके जो बाहर निकलाचाहे तथा जो दोष आमाशयसे उठेहुए है, और जो ज्वरके करने वाले दोष है, एवं जो वमन कराने योग्य है उनको वमनके समय वमन करा कर दोष दूरकरने चाहिये ॥

(उक्तअवस्थाकेविनावमनकरानानिषेध)

अनुपस्थितदोषाणांवमनंतरुणज्वरे

हृद्रोगंश्वासमानाहंमोहंचकुरुतेभृशम्

अर्थ—वमन करनेको नहींउपस्थित अैसें दोषोंमें और तरुणज्वरमें यदि वमन (रद्द) करावे तो वह हृदयरोग, श्वास, अफरा, और मोहको करे है । यह भी चरकमें लिखाहै ॥

निर्वातभवनावासमुष्णवारिनिषेवणम्

अभूरि जल्पनिः क्रोधं कामशोकंच रोगिणम्

कुर्यादारोग्य संपन्नंशीघ्रं वैद्यो विचक्षणः

कफमेदोऽनिलामघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम्

अर्थ—जिसमें पवन न आती हो अैसें मकानमें रहना, गरमजलपीना, थोड़ा बोलना, क्रोध का न करना, कामदेव, शोककरना, इन सबको रोगी त्यागदे कि जबतक आरोग्य न होवे असा करनेसें कफ, मेदा और वादी नष्ट होवे, एवं अग्नि दीपन हो, और वस्ती शुद्धि होती है । सर्वत्र रोगोंके यत्नमें लिखा है कि 'निदान परिवर्जनम्' इसकारण ज्वरमे जो निदान त्याज्य है उसको कहते है ॥

चरके

नवज्वरेदिवास्नापस्नानभोजनमैथुनम् ।

क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ—नवीन ज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, भोजन करना, मैथुन करना, क्रोध, हवाका स्नाना, व्यायामकरना और काढा आदिका देना निषेध कहा है ॥

उष्मापित्तादृतेनास्तिज्वरोनात्युष्मणोविना

तस्मात्पित्तविरुद्धानित्यजेत्पित्ताधिकेधिकम्

स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्चपरिपेकांश्चवर्जयेत्

अर्थ—विनापित्तके गरमी नहीं, और ज्वर विना गरमीके नहीं होता, अतएव सबज्वरोंमें पित्तके विरुद्ध चिकित्सा नहीं करना. और पित्तज्वरमें तो विशेष करके पित्तविरुद्ध चिकित्सा त्याज्य है । तथा स्नान, मालिम, लेपन और जल आदिका तरढा देना वर्जित है ॥

जलकेगुण

पानीयंशीतलंरूक्षंहन्तिपित्तविषभ्रमम् । दाहाजीर्णं

श्रमच्छर्दिमोहमूच्छा मदात्ययान् ॥ मूच्छापित्तोष्म
दाहेषुविपेरक्ते मदात्यये । भ्रम क्लमातिसारेषुमार्गोत्थ-
वमथौतथा ॥ उर्ध्वगेरक्तपित्तेचशीतमंभः प्रशस्यते ।

अर्थ—जल-शीतल और सूखा है, तथा पित्त, विष, भ्रम, दाह, अजीर्ण,
श्रम, छर्दि, मोह, मूच्छा, मद्यपानके विकार, इनको नष्टकरे है ॥

मूच्छा, पित्तकी गरमी, दाह, विषजन्यरोग, रुधिरकी विमारी, मदात्यय,
भ्रम, क्लम, अतिसार, मार्गचलनेसे हुआ परिश्रम, मद्यवाय, उर्ध्वगतरक्तपित्त इन
सब रोगोंमें वैद्यरोगीको शीतलजल देवे ॥

उष्णजलकेगुण

यत्काथ्यमानंनिर्वेगंनिष्फेनंनिर्मलंभवेत् । अर्द्धावशि-
ष्टंभवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ कफमेदोनिलामघ्नदी-
पनंबस्तिशोधनम् ॥ कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकंसदा ॥
तसंपाथः पादभागेनहीनं पथ्यंप्रोक्तंवातजातामघ्नं ।
अर्धांशोनंनाशयेद्वातपित्तं पादप्रायंतलुदोपत्रयघ्नम् ॥

तसायर्षिड संसिक्तलोष्टनिर्वापित्तंजलम् ।

सर्वदोषहरं पथ्यंसदानैरुज्यकारकम् ॥

उष्णोदकंश्रेष्ठतमंवदंतिविश्वायवानीसहितंक्रमेण ।

कफेचवातेनचपित्तरोगेसर्वेषुरोगेषुनशीतलाम्बु ॥

अर्थ—जो ओंटाजलसे निर्वेग, ज्ञागरहित, निर्मल और आधारदृजावे उसको
उष्णोदक कहते है, यह कफ, मेदा, वादी, आम, श्वास, सांसी, ज्वर इनको दू-
रकरे, दीपन है, और वस्तीको शुद्धकरे है, उष्णोदक प्राणीको सदैव पथ्य है ।
तहां चतुर्थांश जलाहुआजल वातके रोगोंमें पथ्यहै, आधाजला हुआजल वा-
तपित्तविकारोंको नष्टकरे, और जो जलकर चौथाई रहगया हो अंसा जलत्रि-
दोष नाशक जानना । लोहेके गोलेको अग्निमें लाल करके अथवाईटको अग्निमें
लाल करके जलमें बुझाय देवे, वह जलसर्व दोष हरण कर्ता, पथ्य तथा स-
दैव आरोग्यकारी है । सौंठ अजमायनको ढालके ओंटायाहुआ जल सर्वोत्तमहै,
तहां सौंठढाला जलकफरोगमें और अजमायनढाला हुआ वादीके रोगमें पथ्य

है, परंतु ये दोनो जल पित्तरोगमें हितकारी नहीं है एवं सब रोगोंमें शीतलजल पथ्यनही है ॥

ऋतुविशेषमेंजलकाथकेनियम

शारदंचार्धपादोनंपादहीनंतुहैमतम् । शिशिरेचवसं-
तेच ग्रीष्मेचार्धविशेषितम् । विपरीतेऋतौतद्व्यावृ-
प्यष्टावशेषितम् ॥

अर्थ—शरद ऋतुमें आठवा भागजला, हेमंत ऋतुमें चतुर्थांशजला—शिशिर वसंत आर ग्रीष्मऋतुमें अर्धविशेष एवं ऋतुके विपरीततामें और चौमासेमें अष्टावशेष जल पीना परम उत्तम कहाहे ॥

रात्रिमेंसैवितउष्णजलकेगुण

भिन्नतिश्लेष्मसंघातंमारुतंचापकर्षति । अजीर्णजर-
यत्यांशुपीतमुष्णोदकंनिशि ॥

अर्थ—रात्रिमें गरम जलपीया हुआ कफके समूहको वादीको और अजीर्णको नष्टकरता है ॥

उष्णोदककाप्रयोग

पार्श्वशूलप्रतिश्यायेवातरोगेगलग्रहे॥आध्याने स्ति-
मितेकोष्ठेसद्यः शुद्धेनवज्वरे । हिक्कायांस्नेह पीतेच-
शीताम्युपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—पसवाढेके, दर्दमें मरेकमां, वादीका रोग, गलग्रह, अफरा, कोठेकी अशुद्धी, जो वमन विरेचन द्वारा नत्काल शुद्ध हुआ हो, नवीनज्वर, हिचकी, और जिसने छेद पान करारो, इन सबको शीतल जलपीना वर्जित है ॥

उष्णजलयोडापीना

अरोचकेप्रतिश्यायेप्रसेकेश्वयशुक्षये । मंदाग्रावुदरं
कोष्ठेज्वरनेत्रामयेतथा । व्रणेचमद्युमेहेचपानीयंमंदमाचरत् ॥

अर्थ—अरुचि, मरेकमां, प्रमेक, मृजन, क्षय, मंदाग्नि, उदररोग, कोठेका रोग, ज्वर, नेत्ररोग, व्रणरोग, और मद्युमेह इन रोगोंमें इस प्राणीको पानी थोडा पीना चाहिये ॥

शृतशीतजलकेगुण

गुल्माशोग्रहणीक्षयेषुजठरे मंदानलाध्मानके शोफे
पांडुगलग्रहे व्रणगदेमेहेचनेत्रामये । शतारुच्यतिसा-
रकेकफयुतेकुष्ठेप्रतिश्यायके उष्णवारिसुशीतलंशृत-
हिमंस्वल्पंप्रदेयंजलम् ॥

अर्थ—गोला, ववासीर, संग्रहणी, क्षय, उदररोग, मंदाग्नि, अफरा, सूजन-
पांडु रोग, गलग्रह. व्रणरोग, प्रमेह, नेत्ररोग, वादीका रोग, अरुचि, कफाति
तिसार, कोष्ठ, पीनस, इन सब रोगोंमें ओंटेहुए जलको शीतल करके थोडा २
पीनेको देवे ॥

अथउष्णजलविधिः ।

आमंजलंजीर्यतियाममात्रंतदर्धमात्रंशृतशीतलंच ।
तदर्धमात्रंतुशृतंकदुष्णंपयप्रपाके त्रयएवकालः ॥

अर्थ—विना ओंटाजल १ प्रहरमें पचता है, और ओंटापकर शीतलकराहु-
आ जल आधे प्रहरमें पचता है, एवं ओंटापके कुछ २ गरम पीनेसैं चौथाई प्रह-
रमें पचता है, ये जलपचनेके तीनही काल है ॥

अधिकजलपीनेकेदोष

जलाधिक्यान्मनुष्याणामामवृद्धिःप्रजायते । आमवृद्ध्या
तुमंदाग्निर्मंदाग्रौचाप्यजीर्णता । अजीर्णेनज्वरोत्पत्ति
ज्वराद्वै धातुनाशनम् । धातुनाशात्सर्वरोगाजायंते
चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ—अधिक जलपीनेसैं मनुष्योंके आम बढती है, आमके बढनसैं मंदा-
ग्निहोती है, मंदाग्निसैं अजीर्ण—अजीर्णसैं ज्वरकी उत्पत्ति—ज्वरसैं सब धातुओंका
नाशहोता है, धातुनाश होनेसैं संपूर्ण रोग एकके पीछे दूसरा होता है अतएव
अधिकजल पीना वर्जित है ॥

शर्वत

शर्करासहितंनारं कफकृत्वपवनापहम् सितासितोप-
लायुक्तंशुक्रलं दोषनाशनम् । सगुडंमूत्रकृच्छ्रग्रंपित्तश्ले-

षमकरंभवेत् ॥ स्निग्धंस्वादुहिमं हृद्यं दीपनं वस्तिशोध-
नम् । वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नालिकेरोदकं लघु ॥

अर्थ—शरवत पीना कफकरे और वादीको हरे है, सपेद चीनीका सर्वत वीर्य-
को बढावे और दोषोका नाश करे है । गुडका सरवत मूत्ररुच्छूको नष्टकरे
और पित्तकफको करे है । नारियलका जलचिकना, स्वादु, शीतल, हृदयको
हितकारी दीपन और वस्तीको शुद्धकरे है, वीर्यवर्द्धक-पित्त, और प्यासको न-
ष्टकरे एवं हलका है ॥

धारापातेन विष्टंभिर्दुर्जरं पवनाहतम् ।

शृतशीतं त्रिदोषघ्नं वाह्यान्तर्भावशीतलम् ॥

अर्थ—वर्षाका जलविष्टंभी होता है, और पवनसे ताडितजल दुर्जर होता है, एवं
ओटायके शीतल कराहुआ जलत्रिदोष नाशक तथा बाहर भीतरसे शीतल होता है

दिवाशृतं तु यत्तोरत्रात्रैतद्गुरुतां व्रजेत् ।

रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥

अर्थ—दिनका ओंटाहुआ जल रात्रिमें भारी होजाता है, और रात्रिमें औ-
टायहुआ ज्वर दिनमें भारी हो जाता है, इसी कारण दिनमें ओटाहुआजल
दिनमें पीवे और रात्रिका ओंटाजल रात्रिमें पीवे ॥

जलशोधनविधि

जलके शोधनेको तीन लकड़ीकी और तीन खानेकी टिकटी धनवावे वो वा-
द्यमें छेदवाले हो उनमें क्रमसे छेददार चारघटा रक्खे ऊपरके घडेमें पक्रेकीले
भरके जल छोडदे, दूसरेमें पीली और चिमनी मिट्टीके कंकरभरे तीसरेमें बालु-
रेतभरे, और नीचेके घडेको खाली रखे, उसमें क्रमसे जल टपक टपककर जमा हो-
वेगाये शुद्धजल करने की विधि है ॥

(तरुणज्वरमें कदाचित् काढादेना निषेध)

न कषायं प्रशंसन्ति कदाचित् तरुणज्वरे

कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः

अर्थ—बुद्धिमान् वैद्य तरुण ज्वरमें कदाचित् काढादेना अच्छा नहीं कहते
क्योकि यदि तरुणज्वरमें कषाय दीनी जावे तो दोष व्याकुल हो जाते है उन
व्याकुल दोषोंका जीतना बडा कठिन है ॥

कषायं यः प्रयुंजतिनराणांतरुणज्वरे ।
ससुतं कृष्णसर्पंतुकराग्रेण परामृशेत् ॥

अर्थ—जो वैद्य, रोगी मनुष्योंको तरुण ज्वरमें काढापीनेको देता है वह सोते हुए कालियरसांपको उंगलियोंसे धूकर जगाता है। अर्थात् जैसे काला सांप इसप्राणीको मारडालता है, उसी प्रकार तरुण ज्वरमें काढा देना प्राणोंके हरण करता है ॥

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणांभसा ।
सकषायः कषायः स्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—जो सोलहगुने जलमें ओटाया और चार भागवाकी रहनेपर उतार लिया वह कषाय, कषाय कहलाती है इसको तरुण ज्वरमें देना वर्जित है ॥

नवज्वरे मलस्तंभात्कषायो विषमज्वरम्
कुरुतेऽरुचिद्वृत्तासहिध्माध्मानादिकानपि

अर्थ—नवीन ज्वरमें कषाय देनेसे वो मलका स्तंभन करती है, अतएव विषम ज्वरको करे है तथा अरुचि, दृष्टास, हिचकी, और अफरा आदि रोगोंको करे है

अजीर्णद्रवशूलद्व्यसामेतीव्रजिज्वरे
नपिवेदौषधं तद्विभूय एवाममावहेत्

अर्थ—अजीर्ण, द्रवपदार्थजन्यशूलमें, साम और तीव्रज्वरमें औषध कदाचि-
व नहीं पीवे, यदि पीवे तो वो नष्ट हुई आमको फिर प्रगट करती है ॥

परिपेकान्प्रदेहांश्चस्तानंसंशोधनानि च ।
दिवास्वापं व्यवायंचव्यायामंशिशिरंजलम् ।
क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥

अर्थ—जलका तरहा देना, चंटनादिककालेप, स्नान, वमन विरेचनद्वारा संशोधन, दिनमें सोना, मैथुन करना, दंडकसरत करना, शीतल जलका स्पर्श, क्रोध करना, हवामें बैठना, और भोजन करना इन सबकर्मोंको तरुण ज्वरवा-
ला त्याग देवे ॥

शोषच्छर्दिमदंमूर्च्छाभ्रमत्प्लाघरोचकान् ।
प्राप्तोत्पद्रवानेतान्परिपेकादिसेवनात् ॥

अर्थ—यदि तरुण ज्वरवाला उक्तपरिपेकादिकमौकोंकरे तो शोष, छर्दि, म-
द, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा, और अरुचिइत्यादि उपद्रवोंको प्राप्त होता है ॥

(परिषेकादिप्रत्येककेदूषणहारीतसै)

व्यायामाज्वरसंवृद्धिर्व्यवायात्स्तंभमूर्च्छनम् । मृत्ति-
श्वस्त्रेहपानात्तुमूर्च्छाछर्दिमदोरुचिः ॥ गुर्वन्नभोजना-
त्स्वप्राद्धिष्ठंभो दोषकोपनम् ॥ अग्निसादः खरत्वंच
स्रोतसांचाप्रवर्तनम् ॥

अर्थ—ज्वरमें दंड कसरत करनेसै ज्वरकी वृद्धि होती है, स्त्री संगकरनेसै स्तं-
भ, मूर्च्छा और मृत्यु होती है, घृतादिपान करनेसै मूर्च्छा, वमन, मस्तपना-
और अरुचि होती है, भारी अन्न भोजन करनेसै और दिनमें सोनेसै अफरा औ,
र घातादिदोषोंका प्रकोपहोता है, एवं अग्निका शांति होना, तथा खरत्व होना
एवं नेत्र नासिका आदिछिद्रोंका रुकना इत्यादि दुख होते है ॥

आसत्तरात्रात्तरुणज्वरमाहुर्मनीषिणः

मध्यंचतुर्दशाहंच पुराणस्यात्ततः परम्

अर्थ—सातरात्रि पर्यंत ज्वरकी तरुणावस्था पंडित जन कहते है, चौदह दि-
नपर्यंत ज्वरकी मध्यावस्था, और चौदह दिनके उपरांत पुराना ज्वर असै कह-
लाता है ॥

सप्ताहेनतुपच्यंतेसप्तधातुगतामलाः ।

निरामश्वाप्यतःप्रोक्तोज्वरःप्रायोष्टमेऽहनि ॥

अर्थ—सातदिनमें सात धातुओंके मल पचते है, अतएव प्राय आठवेदिन
ज्वर निराम कहलाता है ॥

ज्वरपाककीअवधी

वातजः सप्तरात्रेणदशरात्रेणपैतिकः ।

श्लेष्मजो द्वादशाहेनज्वरः पाकंप्रपद्यते ॥

अर्थ—वातजन्य ज्वरसातरात्रिकरके-पैतिकज्वर दशरात्रि करके एवं कफ-
जन्यज्वर वारह दिनमें पकताहै ॥

वातेद्वेपित्तजेचैकंकफेदिनचतुप्रथम् ।

सप्ताहंवातपित्तेच कफपित्तेदशस्मृताः ।

कफवातेद्वादशाहं त्रिदोषैचैवविंशतिः ॥

अर्थ—अब ग्रंथान्तरसे लिखते है कि वात जन्यज्वरदो दिनमें, पित्तजन्य १ दिनमें, कफजन्य ४ दिनमें, वातपित्तज्वर ७ दिनमें, कफ पित्तज्वर १० दिनमें, कफवातज्वर १२ दिनमें, एवं त्रिदोषज्वर २० दिनमें पचताहै ॥

सप्ताहादौषधंकेचिदाहुरन्येदशाहतः

केचिल्लघ्वन्नभुक्तस्थदेयमामोत्वणेतु ॥

अर्थ—किसी आचार्यका मतहै कि सात दिनमें औषध देना, कोई दशदिनमें औषध देना कहते है, कोई कहता है कि हलका अन्न देकर औषध देवे परंतु आमोत्वणमें औषध कदाचित् न देवे ॥

अपच्यमानंभैषज्यंभूयोजनयतिज्वरम्

मृदुज्वरोलघुर्देहश्चलितश्चमलोयदा

अचिरज्वरितस्यापिभेषजंयोजयेत्तदा

अर्थ—जो औषध नहीं पची वो फिर ज्वरको प्रगट करे है । अब औषध देनेका समय कहते हैं कि जिस रोगीका ज्वर धीमापडगया हो, देह हलकी हो, मल चलायमान होगए हो अैसे तत्काल आए हुए ज्वरवालेको भी औषधी वैद्य निस्संदेह देवे ॥

वृद्धवाग्भटे

षड्दशद्वादशाहेषुव्यतीतेषुक्रमेणैव

वातपित्तकफातङ्घ्नेष्वन्नकालाइमेत्रयः

अर्थ—छः, दश, बारह, इतने दिन व्यतीत होनेपर क्रमसे, वात, पित्त, और कफके ज्वरमें रोगीको अन्न देना ये तीन काल अन्नके देनेमें कहे है ॥

द्वंद्वजेसंनिपातेचव्याधवारोग्यदर्शने

सत्तियवागुयूपादिकल्पयेदतिनैपुणात्

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्मकुष्टकान्पाचनयूपहेतून्

हिताहितानांविहितांश्चपेयान्दद्याद्यवागूमपिपाचनैःस्वैः ॥

अर्थ—द्वंद्वज और संनिपात जन्य रोगोंमें जब आरोग्य हो जावे तब यवा-गू और मूषकी कल्पना वैद्य बुद्धिमानके साथ करे । मूंग, मसूर, चना, कुलथी

मोंठ, ये पाचनके हेतु हित और अहितोंको विचार जो हित हो असा पेया अथवा यवागूको तत्तद्रोगमें ग्राह्यको देवे ॥

औषधदेनेकाकाल

सप्तरात्रात्परंकेचिन्मन्यंतेदेयमौषधम् ।

दशरात्रात्परंकेचिदातव्यमितिनिश्चिताः ॥

अर्थ—कोई आचार्य सातरात्रिके पश्चात् औषध देना मानते है, कोई दशरात्रि व्यतीत होने पर औषध देना असा निश्चय करते है ॥

सर्वज्वरेषुदातव्यः कषायः सप्तमेऽहनि

अथ गालंघयेत्तावद्यावदारोग्यदर्शनम्

अर्थ—संपूर्ण ज्वरोंमें सातवे दिन काढा देना चाहिये, अथवा जबतक रोगी आरोग्य न होवे तबतक वैद्यको लंघन कराना चाहिये ॥

ज्वरितंज्वरमुक्तंवादिनान्तेभोजयेत्तद्यु

श्लेष्मक्षयेप्रवृद्धोष्माबलवाननलस्तदा

यथोचितेऽथवाकालेदेशसात्म्यानुरोधतः

प्रागल्पवन्दिर्भुजानोनह्यजीर्णनपीड्यते

अर्थ—ज्वरवाला हो अथवा ज्वर रहित हो परंतु रात्रिमें हलका भोजन करना चाहिये। जिसका कफ क्षीण हो गयाहो, गरमी बढी हुई हो, तथा जठराग्नि प्रबल होवे, और यथोचित काल हो, एवं देश, काल, और सात्म्य के अनुकूलमें, जठराग्निके शक्तिसँ न्यून भोजन करा असा प्राणी कदाचित् अजीर्णी नहीं होती है ॥

ननक्तंनगुरुप्रायंभुंजिततरुणज्वरी ।

नद्विवारन्नपूर्वाह्ने नाभिष्यंदिकदाचन ॥

अर्थ—तरुण ज्वर वाला रोगीद्विवार भोजन न करे, तथा पूर्वाह्णमें भोजन न करे, तथाकफकारी भोजन न करे, एवं रात्रिमें भोजन न करे, और भारी पदार्थ भी कदाचित् नखाय ॥

विदेहः

सर्वज्वरेषुसप्ताहेमात्रांचलघुभोजयेत्

वेगापायेऽन्यथातद्विज्वरवेगविवर्द्धयेत्

अर्थ—संपूर्ण ज्वरोंमें सातवे दिन अल्पमात्र हलका भोजन करावे, यदि सा तरात्रिके भीतर भोजन करावेगा तो दोपोका वेग बना रहनेसे वो ज्वरके वेग को बढाते है ॥

अन्नदेनेकाकाल

क्षुत्संभवतिपक्षेष्टुदोषधातुमलेषुच

कालेवायदिवाकालेसोन्नकालउदाहृतः

अर्थ—जब दोष धातु और मल पकजाते है तब इस प्राणीको भूख प्यास लगती है. यदि वह भूख भोजनके समय अथवा कुसमय लगे परतु वही अन्न-देनेका समय है ॥

(औषधादिकेअजीर्णमेंअन्नकोअग्राह्यत्व)

वीर्याधिकंभवतिभेषजमन्नहीनंहन्यात्थामयमसंशय-
माशुचैव ॥ तद्दालवृद्धयुवतीमृदवोनिपीताग्लानिंपरां-
सपमुयातिबलक्षयंच ॥

अर्थ—अन्नहीन औषध वीर्याधिकवाली होती है, वह रोगको निःसंदेहशीघ्र-दूरकरे है, यदिवही अन्नरहित औषधको बालक, वृद्ध, स्त्री, और नम्रमनुष्य पीवे तो ग्लानिको तथा बलक्षयको प्राप्तहोवे ॥

जीर्णऔषधकेलक्षण

अनुलोमोऽनिलस्वास्थ्यक्षुत्तृष्णासुमनस्कता ।

लघुत्वमथचोद्गारः शुद्धोजीर्णौषधाकृतिः ॥

अर्थ—पचनका अनुलोमगतिसे चलना, देहमें स्वस्थता, भूख, प्यासकाल-गना, मनका प्रसन्न होना, तथा देहमें हलकापन, और शुद्ध डकारकाबाना ये औषध पचजानेकेलक्षण है ॥

औषधग्रहणकामुहूर्त्त

भैषज्यंसल्लघुमृदुचरे मूलभेद्व्यंगलये ॥

शुक्रेन्द्रीज्येविदिचदिवसे चापितेपारवेश्व ॥

शुद्धेरिप्फद्युनिमृतिगृहे सत्तित्थौनोजनेर्भे ॥

अर्थ—लघु (ह, अश्वि, पुष्य, अभि.) मृदु (मृ, रे, चि, अनु,) चर (स्वा पुन, श्र, ध, श) मूल इननक्षत्रोंमें द्विस्वभावलग्न (मिथुन, कन्या, धन, मीन,) में शुक्र-चंद्र, गुरु, बुध, और रविवारमें तथा १२-७-और ८ स्थान शुद्धलग्नमें और उत्तम तिथिमें (अर्थात् रिक्ता, अमाआदि वर्जित तिथिमें) और जिसदिन जन्मका नक्षत्र न हो अंसें शुभसमयमें प्रथम औषध सेवन करना शुभ है ॥

परंतु यह मुहूर्त देखना साधारण रोगमें लेना और जो रोग होते ही घोर उपद्रवकारी शीघ्रबढनेवाले है जैसे हैजा आदि उनमें वैद्यको कदाचित् मुहूर्त नहीं देखना चाहिये ॥

औषधग्रहणमेंमंत्र

ॐअमृतंभक्षयामिस्वाहा ॥

अच्युतानंतगोविंदनामोच्चारणभेषजात्
नश्यंतिसकलारोगासत्यंसत्यंत्रवीम्यहम्

इनको प्रथम पढ़कर फिर औषध पीवे तो वह बहुत जल्दी गुणकरे है । तथा रोगी पढा २ इसश्लोकको मनमें जपाकरे तो रोग शीघ्र दूर होवे ॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च
प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः

औषधग्रहणविधिः

तत्रोपविश्यविश्रांतः प्रसन्नवदनेक्षणः औषधंहेमर-
जत मृद्भाजनपरिष्ठितम् । पिवेत्प्रसन्नवदनः पीत्वा-
पात्रमधोमुखम् । निक्षिप्यपात्रेसलिलंताम्बूलाद्यु-
पकल्पयेत् ॥

अर्थ—रोगी बैठकर, और पारिप्रमको दूरकर, प्रसन्न मुख और नेत्रकर सु-वर्ण, चांदी, अथवा मिट्टीके पात्रमें स्थित औषधको प्रसन्न मुखसें पीवे, और औषधको पीकर उसपात्रको अधोमुख रखदेवे फिर जलसें, दाय धोकर पानकी बी-डीआदिको चवावे ॥

गंडूपवर्जन

यमदूतपिशाचाद्यायक्षगंधर्वराक्षसाः ।

तेघ्नन्त्यौषधवीर्याणिततोगंडूषवर्जनम् ॥

अर्थ—यमके दूत, पिशाच (आदिशब्दसे भूत, प्रेत, वेतालादिक) यक्ष, गंधर्व, राक्षस ये सब औषधके पराक्रमको नष्टकरदेते हैं इसीसे औषधको पीकर कुरला न करे ॥

क्वाथस्यकल्कस्यरसस्ययामंभासत्रयंचाञ्जनचूर्णवीर्यम् ।

षण्मासकारुण्यगुडलेहवीर्यसंवत्सरं तैलघृतस्यवीर्यम् ॥

अर्थ—क्वाथ (काढा) कल्क, स्वरस इनमें १ प्रहर पर्यंत अपनी शक्ति रहती है, और अंजन-सुरमाआदि-चूर्ण- (हिंवाष्टकादि) इनकी तीनमहिने शक्ति रहती है, गुड (बाहुशालगुडादि) लेह (कल्याणावलेह आदि) इनमें छःमहिने पर्यंतवीर्यरहता, एवं घृत और तैलमें १ वर्ष पर्यंत वीर्य रहता है, उपरांत हीनवीर्य होजाती है ॥

वातज्वरके लक्षण

वेपथुर्विपमो वेगः कंठोष्टमुखशोषणम् ।

निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥

शिरोहृद्गात्ररुग्बक्रवैरस्यं गाढविट्कता ।

शूलाध्माने जंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ९ ॥

अर्थ—कंपहोना, ज्वरका विपमवेग, कंठ, होठ, मुख, इनका सूखना; निद्राका नाश, छींककानआना, देहकारुस्त्रापना, चकारसें नेत्र, विष्टा, मूत्र, इनका काला होना । और आचारी “ रौक्ष्यमेवच ” इसजगे “ श्यावांगमलमूत्रता ” ऐसा पाठ कहतेहैं और मस्तक हृदय गात्र इनमें पीडा । कोई (शंका) करे कि गात्र पदके धरनेसेही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फिर (मस्तक) और हृदय पद क्यों धरा ! (उत्तर—ये दोनों पदके धरनेसें इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय मुखका विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा, जम्भाई ये लक्षण वातज्वरके होतेहैं।

वातज्वरपरशुंठ्यादिपाचन

विश्वभेषजकैरात कुरुविंदगुडचिका । पाचनं स्मृतमे-
तेषां देयं पवनजे ज्वरे ॥

अर्थ—सोंठ, चिरायता, नागरमोया, और गिलोय, इनका काढा वातज्वरमें पाचनार्थ देवे ॥

गुडूच्यादिपाचनं

गुडूचिकोषणाजटामहौषधैश्च पाचनं ।

मरुज्वरे सलिंगके दिने च सप्तमे हितं ॥

अर्थ—गिलोय, पीपल, जटामांसी, सोंठ, इनका काढा वातज्वरका पूर्वरूप-होकर जाने उपरांत सातवेदिन हितकारकहै ॥

शठ्यादिकाढा

शठीनिशाद्रयंदारुशुंठीपुष्करमूलकं ॥ एलागुडूची
कटुकीपर्पटश्चयवासकः ॥ शृंगीकिराततित्तंचदशमू-
लंतथैवच ॥ काथमेपांपिवन्कृष्णासिंधुचूर्णयुतंनरः ॥
ज्वरान्सर्वान्द्रुतंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ—कचूर, हलदी, दारुहलदी देवदारु, सोंठ, पुहकरमूल, इलायची, गि-
लोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवासा, काकडासिंगी, चिरायता, कुटकी, और द-
शमूल, इनका काढा पीपल और सेंधानिमक ढालके देवे तो सर्वज्वरोंका शीघ्र
नाश करे, इसमें संशय नहीं है ॥

श्रीपर्ण्यादिपाचन

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटिद्रुकपाटलामूलैः ।

पाचनमुचितंमारुतजनितज्वरहारिवारिभिःकथितैः ॥

अर्थ—श्रीपर्णी, अरनी, बेलगिरी, टेंदू, पाडर, इनका काढा करके वातज्वर-
में देवे यह पाचनहै ॥

गुडूच्यादिकाढा

गुडूचीसारिवाद्राक्षावलाचांशुमतीतथा ।

एपोपिपरमः सिद्धोवातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ—गिलोय, सरिवन, दास, सिसरेटी, और शालपर्णी, इनका काढा वात-
ज्वरमें देवे. यह उत्तम है ॥

दर्भमूलादिकाढा

दर्भवलागोक्षुरकंपचेत्पादावशोपितं ।
शर्कराघृतसंयुक्तं पिवेद्वातज्वरापहं ॥

अर्थ—कुशकीजड़, खिरैटी, और गोखरू, इनका काढा चतुर्थांशकरके शीतल होनेपर मिश्री तथा सहत मिलायके देवे तो वातज्वरका नाशकरे ॥

त्रिफलादिकाढा

श्रीफलंसर्वतोभद्राकामदूर्तीचशोणकः ॥ तर्कारीगोक्ष-
रः क्षुद्रावृहतीकलशास्थिरा ॥ रास्नाकणाकणामूल-
कुपुंशुंठीकिरातकः ॥ मुस्तामृतामृतावालंद्राक्षायासः
शताण्डिका ॥ एषांक्राथोनिहंत्येवप्रभंजनकृतज्वरं ॥
सोपद्रवंचयोगोयसर्वयोगवरःस्मृतः ॥

अर्थ—बेलगिरी, छोटीकंभारी, लालपादर, टेंडु, जरनी, गोखरू, कटेरी, व-
डीकटेरी, पिठवन, सालपाणी, रास्ना, पीपल, पीपरामूल, कूट, सोंठ चिरायता,
नागरमोथा, गिलोय, खिरैटी, नेत्रवाला, दास, धमासो, और सतावर, इनका
काढा वातज्वरका नाश करे ॥

भूनिंवादिकाढा

भूनिंवमुस्ताजलकंटकारिद्वयामृतागोक्षुरनागराणां ।
सशालिपर्णीद्वयपौष्कराणांक्राथंपिवेद्वातभवज्वरार्तः ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, नेत्रवाला, कटेरीदोनो, गिलोय, गोखरू सोंठ
सालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पुहकरमूल, इनका काढा जिसके वातज्वर आता हो उसको
देवे, ॥

दुरालभादिकाढा

दुरालभानागरतिक्तपाठासंठीवृषैरंडजटाकपायः ।
तैः सशूलंशमयेज्वरंच सश्वासकासंपवनप्रसूतं ॥

धमासो, सोंठ, कुटकी, पाद, कचूर, अहूसो, और अंडकी जड़ इनका
शल. श्वास. खांसी. तथा वातज्वर इनका नाशकरे ॥

शुंठ्यादिकाढा

विश्वामृताग्रंथिकसिद्धितोयंमरुज्ज्वरः स्यात्पिबतः
कुतोयं । काथोथकुस्तुंबरुदेवदारु क्षुद्रौषधैः पाचन-
मत्रचारु ॥

अर्थ—सोठ, गिलोय, और पिपरामूल, इनकाढा पीनेवाले मनुष्योंके वात-
ज्वर कहां रहता है, और इस वातज्वरपर धनिया, देवदारु, कटेरी, और सोंठ-
के काढेका पाचन सुंदर है ॥

पंचमूलादिकाढा

पंचमूलीवलारास्नाकुलित्सहपौष्करैः ।
काथोहन्याच्छिरः कंपंपर्वभेदमरुज्ज्वरं ॥

अर्थ—पंचमूल, खरेटी, राम्ना, कुलथी, और पोहकर मूल इनका काढा
शिरःकंप, संधियोंकी पीडा, और वातज्वर इनका नाश करे ॥

कणादिकाढा

कणारसोनामृतवल्लिविश्वानिदग्धिकासिंदुकभूमिर्नि-
वैः समुस्तकैराचरितः कपायोहिताशिनाहंतिगदानि-
मांस्तु ॥ ज्वरंमरुत्कोपसमुद्भवंतथावलासजंचानल-
मंदतांच ॥ कंठावरोधंहृदयावरोधंस्वैदंचहिकांचहिम-
त्वमोहान् ॥

अर्थ—पीपल, लहसन, गिलोय, सोठ, कटेरी, सझाहू, चिरायता, और
नागरमोथा इनका काढा लेकर पथ्यसँ रहे तो वातज्वर, कफज्वर, मंदाग्नि, ग
ला तथा हृदयकारुकना, पसीने, हिचकी और शीत, मोह इनका नाश करे ॥

काकोल्यादिकाढा

कांकोलीवृहतीमुस्ताकुष्ठंदारुवृषामता ।
शुंठिकाथःसितायुक्तोहंतिवातज्वरंपरं ॥

अर्थ—कांकोली, कटेरी, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, अहूसा, और सोंठ, इ-
नका काढा मिश्रीडालकेँ देवे तो वातज्वर दूर हो ॥

अमृतादिकाढा

अमृतानागरंमुस्तानिशाव्हययवासकैः ।

वातज्वरेप्रदातव्यः कृष्णायुक्तकपायकः ॥

अर्थ—गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, हलदी, और जवासो इनका काढा पीपरका चूर्ण डालके वातज्वरमें देवे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा

ग्रंथिकंपर्पटोवासाभार्गीविश्वागुडूचिका ॥

पुभिःसुसाधितंतोयंतीव्रवातज्वरापहं ॥

अर्थ—पीपरामूल, पित्तपापरा, अहूसा, भार्गी, सोंठ, और गिलोय, इनका काढा तीव्रवातका नाश करे ॥

शालिपर्ण्यादिकाढा

शालिपर्णीविलाद्राक्षागुडूचीसारिवातथा ॥ आसांका

थंपिवेत्कोष्णंतीव्रवातज्वरच्छिदं ॥ काश्मरीसारिवा

द्राक्षात्रायमाणामृताभवः ॥ कषायःसगुडःपीतोवात

ज्वरविनाशनः ॥

अर्थ—शालपर्णी, सरिटी, दास, गिलोय, और सरिवन, इनका काढा कुछ गरम पीवे तो तीव्र वातज्वर दूरहो । कंभारी, सरिवन, दास, त्रायमाण, और गिलोय, इनके काढेमें गुड डालके पीवे तो वातज्वर नाश होवे ॥

गुडूच्यादिपाचन-

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैःपाचनंस्मृतं ॥

दद्याद्वातज्वरेपूर्णलिंगेसप्तमवासरे ॥

अर्थ—गिलोय, पीपरामूल, और सोंठ, इन तीन औषधोंका काढा ज्वर पूण दशमें आनेसे सातवें दिन देवे तो वातज्वर नष्ट हो ॥

किरातादिकाढा.

किराताव्दामृतोदीच्यवृहतीद्वयगोक्षुरैः ।

सास्थिराकलशविश्वैःकाथोवातज्वरापहः ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, नेत्रवाला, दोनो कटेरी, गोखरू पिठवन, सालपर्णी—और सोंठ, इनका काढा वातज्वर नाशकहै ॥

पिप्पल्यादिकाढा

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः ।

कृतः कषायः सगुडोहन्यात्पवनजंज्वरं ॥

अर्थ—पीपर, सारिवा, दाख, सौफ, रेणुकाकेबीज, इनका काढा कर गुड डालके देवे तो वातज्वर नष्ट हो ॥

उशिरादिकषाय

उशिरकलशीमहौपधकिरातकांभोधरस्थिराबृहति-

काद्रयामृतलतात्रिकंठैःकृतं । कषायकममुंपिवेत्प-

वनजज्वरव्याकुलःपुमान्दशशतच्छदछदमदग्रसलोचने ॥

अर्थ—हे कमलदललोचने ! नेत्रवाला, पिठवन, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा सालवन, कटेरी दोनो, गिलोय और गोखरू इनका काढा वातज्वरपीडितको देनेसे उनका ज्वर शांत होवे । यह वैद्यजीवनमें लिखाहै ॥

मरीच्यादिकाढा

मरीचंरुचकंशुंठीकिरातंचहरीतकी । पिप्पलीकटुकी-

चैववात ज्वरविनाशनं ॥

अर्थ—कालीमिरच, अंडकीजड, सोंठ, चिरायता, छोटी हरद, पीपल, कुटुकी, इनका चूर्ण, अथवा काढा पीनेसे वातज्वर दूर होवे ॥

त्रिफलादिचूर्ण

त्रिफलाव्योपगुडकंशर्करात्रिवृतार्पिकं । मोदकंभक्षयि-

त्वातु पिवेच्चोष्णजलंपुनः । पार्श्वशूलैरुचौकासेज्व-

रेचानिलसंभवे ॥

अर्थ—त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल. इनका चूर्ण गुडमें अथवा निशोधकं चूर्णमें दुगनी सांड मिलाय भक्षण करे, ऊपरमें गरम जलपीवे तो पार्श्वशूल, अरुचि. सांसी, और वातज्वर इनका नाश होवे ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण

तुल्यांशंमर्दयेत्खल्वेपिप्पलीहिङ्गुलंविषं ॥ द्विगुंजंमधु-
नादेयंवातज्वरविनाशनं ॥

अर्थ—पीपल, हिङ्गुल तथा सिंगियाविष ये समान भागले खरल करे, फिर इस चूर्णको २ रत्नी सहतके साथ देवे तो वातज्वरका नाश होय ॥

द्राक्षादिचूर्ण

द्राक्षादुरालभापथ्याचिक्कणीसमभागतः ।

एतागुडान्वितानूनं नाशयंत्यनिलज्वरं ॥

अर्थ—दाख, धमासा, छोटी हरड, तथा चिकनी मुपारी. इनको समभागले चूर्णकरै इसमेंसै २॥तोले गुडमें मिलायकर देवे तो वातज्वर नष्टहोय ॥

शतावरीस्वरसः

सद्योवातज्वरंहन्ति शतावर्यामृतारसः । समासात्सगु-
डः पीतो बलहीनस्यदेहिनः ॥

अर्थ—सतावर, गिलोय, इनका स्वरस गुडमिलायकर देनेसे निर्बल पुरुषका वातज्वर शांत होय

कल्पतरुसः

शुद्धं शंकरशुक्रमक्षतुलितंमारारिनारीरजस्तावतावडु-
मापतिस्फुटगललंकारवस्तुस्मृतम् ॥ तावत्येवमनः
शिला च विमलातावत्तथाटंकणं ॥ शुंठीद्वयक्षमिताक-
णाचमरिचंदिक्पाल संख्याक्षकम् । विपादिवस्तूनि-
शिलोपरिष्ठाद्विचूर्णयेद्वाससिशोधयेच्च ॥ ततस्तुखल्वे-
रसगंधकौचचूर्णचतद्यामयुगंविमर्द्य । कल्पतरुनाम-
धेयोयथार्थनामारसःश्रेष्ठः ॥ समीरणश्लेष्मगदान्हर-
तेमात्रास्यगुंजैका ॥ आर्द्रकेणसममेपभाक्षितोहंतिवा-
तकफसंभवंज्वरं । श्वासकासमुखसेकशीततावन्दिहमां-
द्यमरुचिंचनाशयेत् ॥ नस्येनाश्वेवहरति शिरोर्त्तिक-

फवातजाम् । मोहंमहांतमपिचप्रलापंक्षवथुग्रहम् ॥

अर्थ—पारा, गंधक, वच्छनागविप, मनसिल, सुहागा, प्रत्येक शुद्धकरे हुए एक एक तोले लेवे, उसमें सोंठ २ तोले, कालीमिरच ८ तोले, पीपल ८ तोले, इस प्रमाण ढालके वच्छनागादि औषधोंको वारीक कूट पीस कपड छनकर लेवे फिर पारेगंधककी कजलीकर उसमें उक्त औषधोंके चूर्णको मिलाय देवे सबको एकत्र कर दो ग्रह खरल करके जलसँ एक २ मासेकी गोली बनावे, तो यह कल्पतरु नामक श्रेष्ठ रस बनकर तयार हो, इसमेंसँ १ गोली प्रातःकाल सेवन करे तो वात कफके रोग दूर होवे इस रसको अदरखके रससँ खाय तो वात कफज्वरका नाश करे, तथा श्वास, खांसी, मुखसँ लारकावहना, शीत, मंदाग्नि, और अरुचि इनका नाशकहै—एवं इस रसकी नस्यलेनेसँ कफवातसँ प्रगट हुई मस्तक पीडाको हरणकरे । उसीप्रकार बढाभारी मोह, प्रलाप, और छीककान आना इनको नाश करे ॥

भैरवरसः

विषमहौषधिमागधिकोपण्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दि-

तम् ॥ क्रमविवर्द्धितमुद्रालितज्वरं हरतिभैरवणुपरसोवरः ॥

अर्थ—सिंगियाविप, सोंठ, पीपल, कालीमिरच, ये औषध प्रत्येक एकसँ दू-सरी अधिक भाग लेवे, सबको कूटपीस आकके दूध और अदरखके रससँ खर-लकर गोली बनावे तो यह भैरवरससिद्ध होवे, इसको बलावल देखकँ देवे तो घोर वातज्वरको दूर करे ॥

शीतभंजीररसः

पारदंरसकंतालंशिखितुथ्यंचटंकणम् । गंधकंचसमं-
पिष्ठाकारखेल्लरसैर्दिनम् ॥ ताम्रपात्रोदरेलेप्ययंत्रे-
पात्रंत्वधोमुखम् । दत्वारुध्वा विशोप्याथवलकलाभिः
प्रपूरयेत् ॥ पचेद्द्वार्वग्निनाचुल्यांताम्रपृष्ठगतायदा ।
स्फुटंतिव्रीहयः शुद्धोरसस्तंस्वांगशीतलम् ॥ ताम्र-
पात्रात्समुद्धृत्यचूर्णयेन्मरिचैः समं । शीतभंजीरसो-
नाम द्विगुंजवातकेज्वरे ॥ दातव्यः पर्णखंडेन तत्क्ष-
णान्नाशयेज्वरम् । त्रैदिनंविषमंतीव्रंएकाद्वित्रिचतुर्थकम् ॥

अर्थ—पारा, स्वपरिया, हरताल, लीलाशोया, मुहागो, और मंघक, ये औषध समभाग लेकर करेलेके रसमें १ दिन खरलकरे, फिर उस पिट्टीको तामेके पात्रके भीतर लेप करके और उस पात्रके ऊपर दूसरा अधोमुख तामेका पात्रमें ढावकर सात कपड पिट्टी कर धूपमें सुखाय चूल्हेपर रस वालूका यंत्रमें तीव्राग्नीसैं पचन करावे, जब वालूके ऊपर रखेहुए धान खिलजावे तब अग्नि मंद कर शीतल करे, और औषधको पात्रमेंसैं निकाल बराबरकी कालीमिरच मिलायके पीसै २ रत्ती यानमें धरके देवे तो तत्क्षण वातज्वर नाश होवे, तथा यह शीतमंजीर रस तीनदिन सेवन करे तो, तीव्र विषमज्वर, एकाहिक, ब्याहिक और चातुर्थिक ज्वरोंको शांत करे, ॥

मातुलंगादिगुटिका

मातुलंगफलकेसरोद्धृतःसिंधुजन्ममरिचान्वितोमुखे।
हंतिवातकफरोगमास्यगंशोषभाशुजडतामरोचकं ॥
शर्करादाडिमाभ्यांचद्राक्षादाडिमयोस्तथा ॥ कल्कं
विधारयेदास्येशोषवैरस्यनाशनं ॥

अर्थ—विजोरेकी केशर, सैधानिमक, कालीमिरच, ९ तीनों औषध एक प्र खरलकर गोली कर मुखमें रक्खे, इससै मुख संबंधी कफ वातरोग, शोष, जडता, और अरुचि, दूर होवे । खांड और अनार अथवा दास और अनार इनका कल्क शोष तथा मुखकी विरसता दूर होनेके लिये सेवन करे ॥

द्राक्षादिप्रतिसारण

द्राक्षामलकयोःकल्कंसघृतंवदनेक्षिपेत् ॥ तेनघृष्ट्वांमु
खस्यांतःकुर्वीतप्रतिसारणं ॥ जिब्हातालुगलांतस्थः
संशोषस्तेनशाम्यति ॥ सुरसंजायतेवक्रंरुचिर्भवति
भोजने ॥

अर्थ—दास और आमले इनका कल्क घीके साथ मिलाय उसको मुखके भीतर फेरे, उसको प्रतिसारण कहते है, यह करके उक्त दास आदिकी गोली मुखमें रखेतो जिब्हा, तालु, तथागला, इनका सूखना शांत होय और मुख सुरस होकर भोजनमें रुचि होवे, ॥

हरीतक्यादिगुटिका.

हरीतकीत्रिवृच्चैवदारुकाणांपृथग्भवेत् ॥ पलद्वयंकणांशुं
ठीगुडूचीगोक्षुरेवरी ॥ सहदेवीविडंगंचप्रत्येकंपलसं
मितं ॥ मधुनावटिकांकृत्वाखादन्ज्वरमपोहति ॥ का
संश्वासमलस्तंभं वन्हिमाद्यंनियच्छति ॥

अर्थ—हरदकी छाल, निसोथ, विधायरा, प्रत्येक ८ तोले, पीपर, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई, वायविडंग, ये प्रत्येक तोले ४ प्रमाण लेकर चूर्ण कर सहतसे गोळी बनावे यह ज्वर, खांसी, श्वास, मलावरोध, और आमि मांघ इनका नाश करे, ॥

स्वेदकाढनेकेविषयमेंप्रमाणकहतेहै
वातश्लेष्मज्वरेस्वेदंजंघापार्श्वास्थिशूलिनि ॥ पीन
सश्वासबाधिर्येकारयेत्तद्विघानवित् ॥ स्रोतसांमार्दवंकृ
त्वानीत्वापावकमाशयं ॥ हत्वावातकफस्तंभंस्वेदो
ज्वरमपोहति ॥

अर्थ—वातकफज्वरमें, जंघा, पार्श्वभाग और हड्डी इनमें शूल होनेसे तथा पी-
नस, श्वास, तथा बाधिरता ए विकार होनेसे पसीने काढने चाहिये, अर्थात् प-
सीने निकालनेसे इतने गुण होते है, रसवाहिनी नाडियोंका नष्ट होना, तथा अ-
मिकी स्वस्थानमें छावे और वात तथा कफ संबधी जडत्वको नाशकर ज्वरका
नाश करे है, ॥

खर्परभृष्टवालुकास्वेदयोग

खर्परभ्रष्टपरास्थितकांतिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ॥
शमयतिवातकफामयमस्तकशूलंगंभादीन् ॥

अर्थ—वालूको सिपडेमें तपाय उसपर काजी डाल उसका बफारो देय तो-
वात कफ रोग, मस्तकशूल, तथा अंगोंका दृटना इससे शांति होता है, ॥

निद्रानाशनिदान

नावनंलंघनंचिंताव्यायामःशोकभीक्रुधः ॥ एभिरेवम
वेन्निद्रानाशःश्लेष्मातिसंक्षयात् ॥

अर्थ— नस्य, लंघन, चिंता, दंडकसरत, शोक, भय, और क्रोध, इन कार-
णोंसे अत्यंत कफ नाश होनेसे निद्रा नहीं आती ॥

विजयाचूर्णयोग

भ्रष्टं तु विजयाचूर्णं मधुनानि शिभक्षयेत् ॥

निद्रानाशे तिसरे च ग्रहण्यां पावकक्षये ॥

अर्थ— रात्रिमें भांगको भून उसके चूर्णको सहतके साथ देवे तो निद्रा नाश,
आतिसार, संग्रहणी, तथा मंदाग्नि इत्यादि रोग नष्ट होवे, ॥

सगुडादिचूर्ण

गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहन् ॥ चिराद्

पिचसंनष्टानि द्रानामाप्नोति मानवः ॥

अर्थ— पीपरामूलके चूर्णको गुडके साथ खानेसे बहुत दिनका निद्रा नाश हु-
आ होय वो नष्ट होवे ॥

॥

निद्रालनेकी औषध

मूलंतु काकमाच्यावद्धं सूत्रेण मस्तकेनियतं ॥ विदग्धा

तिनष्टनिद्रानिद्रायाश्चैव सिद्धमिदं ॥

अर्थ— काकमाची (मकोय) की जड़ सूतसें मस्तकमें बांधे तो निद्रा तत्का-
र आये यह अनुभव सिद्ध है, ॥

पित्तज्वरके लक्षण

वेगस्तीक्ष्णेतिसारश्च निद्रालपत्वं तथा वमिः ॥ कंठो

ष्टमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ प्रलापो वक्रकटु

तामूर्छादाहो मदस्तृषा ॥ पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्पैतिके

भ्रम एव च ॥

अर्थ— ज्वरका तीक्ष्णवेग हो आतिसार (यानी पित्तके वेगमें दस्तका पतला
होना न कि आतिसार रोगहो) थोड़ी निद्रा आवै, पित्तको कफके स्थानमें पहुंच-
नेसे वमनका होना, कंठ, होठ, मुख, नाक, इनका पकना । और पसीनोंका आना
बढ़बढाना मुखमें कटुआठ, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विषा, मूत्र, नेत्र,
देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं । शंका-
क्यांजी भ्रमको वातविकारमें लिखा है यासें ये तो वातका धर्म है फिर पित्तके

विकारमें भ्रमशब्द क्यों कहा ? *उत्तर—तुमने कहासो ठीक है परंतु रोग एकही दोषसैंही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसैं होय है जैसे लिखाहै “न रोगोप्ये कदोषजः इति ” और “ पैत्तिके भ्रम एवच ” इस पदमें च कार जो पढाहै इस्से इस श्लोकमें जो नहीं कहै कोन तीव्रगरमी, लालचकते, शीतकी इच्छा, दाह अरुचि, इत्यादि जानने॥

छिन्नादिपाचन

छिन्नरुहापिचुमंदकधान्यंविश्वनिशाजनितश्वकषायः ।

पाचनकंगुडमिश्रितमेवपित्तभवेज्वरएवहिपेयं ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकीछाल, धनिया, सोंठ, तथा हलदी इनका कादा गुड डालकर देंवे यह पित्तज्वरपर पाचनहै, ॥

दुस्पर्शादिकाढा

दुस्पर्शवासाकटुकाहरेणुप्रियंगुभूनिंबकृतःकषायः ॥

पीतोहिपित्तप्रभवंसदाहंज्वरंजयेदाशुसितासमेतः ॥

अर्थ—धमासो, अदूसा, कुटकी, पित्तपापरा, फूलप्रियंगु, और चिरायता इनका काढा खांड डालकर पीवे तो दाहयुक्त पित्तज्वरका नाश करे, ॥

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षापटेलीपिचुमंदतित्ताहरीतकीसिंहमुखाजलंच ।

धान्याकलोघ्रांबुदनागरंचपित्तज्वरांभोनिधिवाडवाग्निः॥

अर्थ—दास, पटोलपत्र, नीमकीछाल, कुटकी, छोटीहरद, कटेरी, नेत्रवाला-धनिया, लोध, नागरमोया, औरसोंठ इनका काढा पित्तज्वररूप समुद्रको बढ, वाग्नीके समान है, ॥

पित्तज्वरप्रतिकार

अमलैःकमलैरथानिलैरलसैःपुष्परजःसमन्वितैः ॥

जलकेलकथाकुतूहलैरपिपित्तज्वरजारुजोजयेत् ॥

अर्थ—श्वेतकमल, सुगंधित पुष्पोंमें होकर आया मंद सुगंध वायु, और जल क्रीडा, इन करके वैद्योंको पित्तज्वर जनित पीडा जीतनी चाहिये ॥

तित्तादिकाढा

तित्तामुस्तायवैःपाठाकटुफलाभ्यांसहोदकं॥ पक्वसश
कैरंपीतंपाचनं पैतिकज्वरे ॥

अर्थ—कुटकी, नागरमोषा, इन्द्र जौ, पाठ, कायफल, और नेत्रवाला इनका काढा सांड डालके पीवे यह पित्तज्वरको पाचक है, ॥

पर्पटादिकाढा

पर्पटोवासकस्तित्तकिरातोधन्वयासकः ॥ प्रियंगुश्च
कृतःक्वाथएषुपःशर्करयापुनः॥पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं
पित्तज्वरंहरेत् ॥

अर्थ—पित्तपापडा, अदूसा, कुटकी, चिरायता, धमासो, फूलप्रियंगु, इनका, काढा सांड डालकर लेय तो प्यास, दाह, तथा रक्तपित्त, इन सहित पित्तज्वरको दूर करे

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षाहरीतकीमुस्ताकटुकीकृतमालकः । पर्पटश्चकृ-
तः क्वाथएषुपित्तज्वरापहः ॥ सुखशोषप्रलापांतर्दा-
हमूर्च्छाभ्रमप्रणुत् । पिपासारक्तपित्तानांशमनोभे-
दनीमतः ॥

अर्थ—दास, छोटीहरद, नागरमोषा, कुटकी, अमलतासकागुदा, और पि-
त्तपापडा इनका काढा लेय तो मुखशोष, बकवाद, अंतर्दाह, मूर्च्छा, तथा भ्रम
इनको नाश करे और प्यास तथा रक्तपित्त इनको शमन करे तथा मलको नि-
काले ॥

पटोलादिकाढा

पटोलयवधान्याकमघुकंमघुसंयुतं । हंतिपित्तज्वरंदा-
हंनृष्णां चातिप्रमाथिनीं ॥

अर्थ—पटोलपत्र, इन्द्र जौ, पनिया, मुलहदी, इनका काढा सहत डालके
पीवे तो पित्तज्वर, दाह, तथा प्यास शांत हो ॥

[११]

गुडूच्यादिकाढा

गुडूच्यामलकीयुक्तः केवलोवापिपर्पटः ।
पित्तज्वरहरेतूर्णपित्तशोषभ्रमान्वितं ॥

अर्थ—गिलोय, आमले, तथा पित्तपापडा, इनका अथवा केवल पित्तपाप-
डेका काढा, लेनेसैं शोष, तथा भ्रम युक्त पित्तज्वरको हरण करे. ॥

ह्रीवेरादिकाढा

ह्रीवेरचंदनोशीरघनपर्यटसाधितं । दद्यात्तुशीतलंवा-
रितृड्वृद्धिज्वरदाहनुत् ॥

अर्थ—नेत्रबोला, लाल चंदन, खस, नागरमोथा, और पित्तपापडा इनका
काढा शीतल करके देय तो अत्यंत प्यास, ज्वर, तथा दाह, इनको दूर करे ॥

भूर्निवादिकाढा

भूर्निवातिविषालोघ्रमुस्तकेद्रयवाः स्मृताः । वालकं-
धान्यकं बिल्वंकपायोमाक्षिकान्वितः ॥ भिनत्तिश्वास-
कासांश्चरक्तंपित्तज्वरं हरेत् ॥

अर्थ—चिरायतो, अतीस, लोघ, नागरमोथा, इन्द्रजो, नेत्रवाला, घनिया-
और बेलगिरी इनका काढा सहत डालके लेयतो अतिसार, श्वास, सांसी, रक्त,
पित्त, ज्वर इनको दूर करे ॥

कट्फलादिकाढा

कट्फलेन्द्रयवांवष्टातिक्तामुस्तैः शृतंजलं ।
पाचनंदशमेन्हिस्यात्तीव्रपित्तज्वरेनृणां ॥

अर्थ—कायफल, इन्द्रजो, पाठ, कुटकी, और नागरमोथा इनका काढा
तीव्र पित्त ज्वरवालेको दशमेदिन दे (अर्थात् पित्तज्वर दशवेदिन पाचन होता है)
इसीवास्ते दशवे दिन देय तो पित्तज्वर दूर हो ॥

पंचभद्रादिकाढा

पर्यटाद्दामृताविश्वकैरातैः साधितंजलं । पंचभद्रमि-
दंज्ञेयंवातपित्तज्वरापहं ॥

अर्थ—पित्तपापडा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, और चिरायता इनका काढा चातपित्तज्वरको दूरकरे इसे पंचमद्र काथ कहते है, ॥

कलिंगादिकाढा

कलिंगकट्फल्लोघ्रंपाठाकटुकरोहिणी । पक्कंसशर्करं-
पीतंपाचनंपित्तकेज्वरे ॥

अर्थ—कुडाकीछाल, कायफल, लोघ, पाठ, और कुटकी इनका काढा सांड डालके पीवे तो पित्तज्वरको पचावे, ॥

शर्करादिकाढा

शर्करामधुरोहतिकषायः पैतिकंज्वरं । चंदनोशीरश्री
पर्णीपुरुवकमधूकजः ॥

अर्थ—छालचंदन, नेत्रवाला, कायफल, फालसे, मुलहंटी इनका काढा सांड डालकर देय तो पित्तज्वरका नाश करे, ॥

क्षुद्रादिकाढा

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः । रक्तचंदन-
भूनिवपटोलवृषपौष्करैः ॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभांगीपर्प-
टकैः समैः । काथंप्रातर्निषेवेतशीतंसर्वज्वरच्छिदं ॥

अर्थ—कटेरी, धनिया, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पद्मास, लालचंदन, चिरायतो, पटोलपत्र, अहूसा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजो, कूठ, भारंगी, और पित्तपापडा इनका काढा पीवे तो सर्वप्रकारके शीतज्वर दूर होय, ॥

लोघ्रादिकाढा

लोघ्रोत्पलामृतापद्मसारिवाणांसशर्करः । काथः पित्त-
ज्वरंहन्यादथवापर्पटोद्भवाः ॥

अर्थ—लोघ, कमलगट्टेकी गिरी, गिलोय, पद्मास और सारिवन इनका काढा सांड डालके पीवे अथवा पित्तपापडेकाही काढा पित्तज्वरको दूर करता है ॥

पर्यटादिकाढा

पर्यटामृतघात्रीणांकाथपित्तज्वरंजयेत् । द्राक्षारग्वध
योश्वापिकाश्मर्याश्वापिवापुनः ॥

अर्थ—पित्तपापडा, गिलोय, और आमले, इनका काढा पित्तज्वरको दूर करे अथवा दास, अमल तासका गूदा, इनका अथवा केवल कंभारीका काढा पित्तज्वरको जीतता है, ॥

विश्वादिकाढा

विश्वपर्पटकोशरिघनचंदनसाधितं । दद्यात्सुशीतलं
वारितृच्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥

अर्थ—सोंठ, पित्तपापडा, नेत्रवाला, नागर मोथा, और लाल चंदन, इनका काढा शीतलकर देवे तो तृषा, वमन, ज्वर, और दाह इनको नाशकरे, ॥

गुडूच्यादिकाढा

गुडूचीमुस्तधान्याकमधुकंकडुरोहिणी । तृष्णाशूलरु-
चिच्छर्दिपित्तज्वरहरोगणः ॥

अर्थ—गिलोय, नागर मोथा, धनिया, मुलहठी, और कुटकी इनका काढा प्यास, शूल, अरुचि, वमन, और पित्तज्वर इनको नाशकरे, ॥

किरातादिकाढा

किरातामृतधान्याकचंदनोशरिपर्पटैः ॥ सपद्मकैः कृतः
काथोहंतिपित्तभवंज्वरं ॥ दाहतृष्णाश्रमारुचिमुत्क्लेशं
वमथुंक्लमं ॥

अर्थ—चिरायता, गिलोय, धनिया, चंदन, नेत्र वाला, पित्तपापडा और पन्नास इनका काढा पित्तज्वर, दाह, तृष्णा, श्रम, अरुचि, मुखसैपानी छूटना वमन, और म्लानि इनकानाश करे, ॥

चंदनादिकाढा

चंदनमधुकंद्राक्षांकडुकांसदुरालभां । चंदनादिर्गणः प्रो-
क्तोहन्यादाहज्वरारुचिः ॥

अर्थ—चंदन, मुलहठी, दास, कुटकी, और घमासो यह चंदनादि गण दाह, अरुचि, और ज्वर इनका नाशकरे, ॥

पर्पटादिकाढा

एकएवखलुपैतिकज्वरंहंतिपर्पटकृतः कपायकः ॥ चंद-
नोदकमहोषधान्वितश्चेत्तदाकिमुपुनर्विचारणा ॥

अर्थ—केवल एकही पित्तपापडेका काढा पित्तज्वरकोनष्ट करता है यदि उसमें लालचंदन, नेत्रवाला और सोंठ मिलायकर काढा कराजावे तो पित्तज्वर दूरकरे इसमें क्या मदेह है॥

उदुंबरादिहिम

उदुंबरशिफाच्छिन्नातज्जलंसितयान्वितम् ।

पीतपित्तज्वरंहंतिपथोल्यावाशिफाजलं ॥

अर्थ—गूलरके छालके पानीमें खांड मिलायकर पीनेसे, अथवा पथोल पत्र की जडका पानी खांडके साथ पीवे तो पित्तज्वरको नाशकरे ॥

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतित्ताकाथःससंपाकफलोविद
ध्यात् ॥ प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्वितोपित्त
भवज्वरेच

अर्थ—मुनक्कादास, हरडजंगी, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी, और अमलतासकोगूदो इनका काढा करके पीवेंतो प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, शोष और तृषा इन करके युक्त जो पित्तज्वर उसका नाशकरे ॥

दुरालभादिकाढा

दुरालभापर्पटकप्रियङ्गुभूर्निम्बवासाकटुरोहिणीनां ॥
क्वाथपिवेच्छर्करयावगाढंतृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥

अर्थ—धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, चिरायता, लहसुआ, और कुटकी इनका काढा करके उसमें सोंठ डालके तृषा, रक्तपित्तज्वर, और दाह इनकरके युक्त जो रोगी होवे उसको पीना चाहिये ॥

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षापर्पटराजवृक्षकटुकामुस्ताभयानांजलं ॥ मूर्च्छा
शोषनिदाघतृष्टप्रलपनभ्रान्त्याढ्यपित्तज्वरे ॥ दुस्पर्श
प्रमदाकिरातकडुकासिंहास्यरेणूद्रवः ॥ क्वाथःशर्कर
यान्वितोहरतितृष्टदाहाख्यपित्तज्वरान् ॥

अर्थ—मुनक्कादास, पित्तपापडा, अमलतासकी गूदा, कुटकी, नागरमोथा,

और हरडकी, छाल इनका काढा पीवेतो पित्तज्वर जनित जो मूच्छी, शोष, दाह, प्यास, प्रलाप, और भ्रांति इनका नाश होवे, जवासा, अतीस, चीरायता, कुटकी, अहूसेके पत्ते और पित्तपापडा इनकाकाढा करके उसमे मिश्री ढालके पीवे तो तृषा, दाह, रक्तपित्त, और ज्वर इनका नाशहोवे ॥

छिन्नादिकाढा

अहोकिमर्थंबहुभिःकषायैःपाराशराद्यैर्मुनिभिःप्रदिष्टैः ॥ छिन्नाशिवापर्पटतोयपानात्पित्तज्वरःकिंनसरीसरीति ॥

अर्थ—पाराशरादि ऋषियोंने इतने काढे काहेके वास्ते कहे? गिलोय, हरड, और पित्तपापडा, इनका काढा सेवन करनेसे क्या पित्त ज्वर नहीं जाताहै? ॥

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षाचंदनपद्मानिमुस्तातिक्तामृतापिच ॥ धात्रीवालमुसरिंचलोधेन्द्रयवपर्पटाः ॥ परूपकंप्रियंगुश्वयवासीवासकस्तथा ॥ मधुकंकुलकंचापिकिरातोधान्यकस्तथा ॥ एपांकाथोनिहंत्येवज्वरंपित्तसमुत्थितं ॥ तृष्णांदाहप्रलापंचरक्तपित्तंभ्रमंक्लमं ॥ मूच्छीच्छीर्दितथाशूलं मुखशोषमरोचकं ॥ कासंश्वासंचहृत्तासंनाशयेन्नात्रसंशयः ॥

अर्थ—द्राक्ष, लालचंदन, कमल गट्टकी मिंगी, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, नेत्रवाला, स्वस, लोध, इन्द्रजो, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु-धमासो, अहूसा, मुलहठी, पटौलपत्र, चिरायता, और धनियां इनका काढा ले, नैसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, ग्लानि, मूच्छी, वमन; शूल, मुखशोष, अरुचि खांसी प्यास मुससें पानीगिरना, इन सबका नाश निस्तदेहकरे ॥

ससितादिकाढा

ससितोनिशिपर्युपितःप्रातर्धान्याकतंडुलकाथः ।

पीतःशमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंपैतं ॥

अर्थ—धनिया, और चावलको रात्रिमें कोरे मटकनेमें मिगोदे और प्रातःकाल कायकर उसमें सांड मिलाय पीवेतो अंतर्दाह तथा पित्तज्वरको दूरकरे ॥

मुद्गादिकाढा

मुद्गानामंजलिचूर्णयष्टीमधुकसाधितं ।

पाक्यंशीतकषायंवापिवेत्पित्तज्वरापहं ॥

अर्थ—मुलहठी, और मूंगका आठ तोले चूर्णका काढा कर और शीतल पी-
वेतो पित्तज्वर नाशहो ॥

ह्विवेरादिकाढा

ह्विवेरंमुस्तकंधान्यचंदनंयष्टिकामृता ॥ वृषोशीरयुतः

काथःशर्करामधुसंयुतः।रक्तपित्तंजयत्युग्रंतृष्णादाह-

ज्वरापहः ॥

अर्थ—नेत्रवाला, नागरमोथा, धनिया, लालचंदन, मुलहठी, गिलोय, अहू-
सा और स्वस इनके काढेमें खांड और सहत मिलाय पीनेसे रक्तपित्त, तृष्णा-
दाह, और पित्तज्वरको दूरकरे ॥

तिक्तादिकाढा

तिक्तायासकभूनिवश्यामापर्पटवासकैः ।

शृतंजलंसितायुक्तंरक्तपित्तज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—कुटकी, धमासो, चिरायतो, पीपल, गिलोय, पित्तपापडा, और अहू-
सा इनका काढा मिश्री मिलाय पीनेसे रक्तपित्त, और ज्वरको जीते ॥

पथ्यादिकाढा

पथ्यांतैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहं ।

कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासंहंतिवमिमपि ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण, तेल, अथवा घी, अथवा, सहतके साथ चाटेतो दाह,
ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन इनका नाशकरे ॥

आम्रादिफांद

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशृंगप्ररोहकैः ॥ उशरिणकृतःफां-

टःसक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ पिपासाछर्द्यतीसारान्मूर्च्छां-

जयतिदुस्तरां ॥

अर्थ—आम्र, तथा जामुन इनके कोमल पत्ते तथा बडके कोमल कडी, त-

था तत्काल निकले हुए पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंको पूर्वरीतिसँ फाँटकर पीनेसँ ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार, तथा कष्टसाध्य मूर्छा ए दूरहो ॥

गुड्ड्यादिकाढा

गुड्डीपद्मलोघ्राणांसारिवोत्पलयोस्तथा ।

शर्करामधुरःकाथःपीतःपित्तज्वरापहः ॥

अर्थ—गिलोय, पद्मास, लोष, सरवन, और कमलगट्टा इनका काढा शीतल कर मिश्री मिलाय पीनेसँ पित्तज्वरको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा

पटोलयवनिकाथोमधुनामधुरीकृतः ।

तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दीपानाचृद्दाहनाशनः ॥

अर्थ—पटोलपत्र, और जौ इनका काढाकर उसमें सहत मिलाय शीतलकर पीवित्तो तीव्रपित्त ज्वर, तृषा, दाह, इनका नाश करे ॥

केसरमातुलिंगादियोग

जिन्हातालुगलक्लोमशोषेमूर्ध्निचदापयेत् ।

केसरंमातुलिंगस्यमधुसैधवसंयुतं ॥

अर्थ—जीभ, तालू, गला, क्लोम (तृषा लगनेका स्थान) और मस्तक इनमें शोष होनेसँ—विजोरेकी केशर, सहत, और सैधानिमक, मिलायकर मालिसकरे ॥

दुसराप्रकार

केसरंमातुलिंगस्यमधुसैधवसंयुतं । हरीतकीप्रियंगु-

श्वपिप्पलीलोघ्रमेवच ॥ दार्वाहरिद्रातेजोव्हासक्षौद्रं-

मुखघावनं । एतेनकटुभावश्चमुखरोगश्चशाम्यति ॥

वक्रंविशदतामेतिभक्तछंदश्चजायते । मूद्ग्यूपोदनोदेयः

सितयापैतिकेज्वरे ॥

अर्थ—विजोरेकी केशर, सहत, और सैधानिमक, इनका अथवा हरद, प्रियंगु, पीपल, लोष, दारहलदी, हलदी, तेजवल, इनका चूर्ण सहतसँ मिलाय जलमें डाल कुरलाकरे तो मुखकी कटुता, तथा मुख रोग, शांतहोय, और मुख स्वच्छहो रुचि होयहै, उसरोगीको मूंगका यूप और भात तथा घृतामिलाय प-
थ्य देवे ॥

रसपर्पटी

शुद्धसूतं द्विधा गंधं मर्द्यं भृंगोरसैः क्षणं ॥ पाचयेत् लोहपात्रस्थं चालयंतु चुटकेन च ॥ लोहभस्माथवा ताम्रपादांशेन विनिक्षिपेत् ॥ पाच्यं प्रचालयेन्नैव यामार्धं मृदुवन्दिना ॥ तत्क्षिपेत्कदलीपत्रे गोमयस्योपरिस्थिते ॥ तत्पत्रंधारयेद्दूर्ध्वं तद्दूर्ध्वं गोमयं क्षिपेत् ॥ ततः संचूर्णयेत्क्वलेनिर्गुड्याभावयेद्दिनं ॥ जयंती त्रिफला कन्यावासाभार्ङ्गी कटुत्रयैः ॥ भृंग्याग्निमुनिमुंडीभिर्भावयेत्प्रत्यहंपृथक् ॥ आर्द्रकस्य द्रवैः पश्चाद्भावयेद्दिनसप्तकं ॥ अंगारैः स्वेदयेत्पश्चात्पर्पट्याख्यो महारसः ॥ चतुर्गुजामितो देयः सम्यक्श्लेष्माधिके ज्वरे ॥ वासाशुंठीभयाक्वाथमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ चव्यकस्वरसैर्वाथपेयं श्लेष्मज्वरापहं ॥

अर्थ— शुद्धपारा १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग इनकी कजली करके भांगरेके रसकी भावनादे फिर उसको मंदाग्निवाले चूल्हेपर लोहके पात्रमें धीरे २ हिलाता हुआ पचन करावे, पीछे ताम्र, तथा लोह की भस्म चतुर्थांश डाल फिर चार घडी बिना हिलाए मंदाग्निपर पचन करावे जब पतला होकर सब एक रस हो जाय तब केलेके पत्तेपर उलट देवे और दूसरा पत्ता ढककर दावदेवे, जब शीतल होजावे तब खरलमें घोट सझालूके रसकी ३ पुटदेवे । फिर जयंती, त्रिफला, धीगुवार, अदूसी, भारंगी, त्रिकुटा, भांगरा, चीता, अगस्तिया, और मुंडी इनके रसकी महर २ तक भावनादेवे, फिर अदरकके रसकी सातदिन भावनादेवे, और अंगारोंके ऊपर भूने यह पर्पटी रस ४ रत्नी अदूसी, सोंठ, तथाहरड, इनके कादेसैं अथवा चव्यके रससैं देवे तो कफज्वरको हरण करे, ॥

उत्तानसुप्तयोग

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते चना-

भौ । शीतानुधारावहुलापतंतीनिहंति दाहं ज्वरितज्वरंच ॥

अर्थ—ज्वरवाले मनुष्यको चिच सुलाय उसकी नाभी (दूही) परतामेंका अ-

यवा कांसेका ओंधापात्र घर उसमें शीतल जलकी बड़ी धार डाले तो दाह ज्वरको तत्काल नाश करे ॥

औदुंवरादियोग

औदुंवरस्यनिर्यासःसितयादाहनाशनः ।

छिन्नासारःसितायुक्तःपित्तज्वरनिषूदनः ॥

अर्थ—गूलरका गोद सांड मिलाय कर लेवे तो दाहको नाश करे, और मिलो-यका सत्व सांड मिलाय कर ले यह पित्त ज्वरनाशक है ॥

धर्म

अथगोतक्रसंसिक्तशीतलीकृतवाससा ।

कांजिकार्द्रपटेनावगुंठनंदाहनाशनं ॥

अर्थ—गौकी छाछमें किवा कांजीमें बसू भिगो उस बसूको रोगीको उठावे तो दाह नष्ट हो ॥

द्राक्षादिकल्क

द्राक्षामलककल्केनकवलोत्रहितोमतः ।

पक्वदाडिमजैर्वाथधानाकल्केनचक्रचित् ॥

अर्थ—दाख और आमले इनके कल्कका अथवा पके हुए अनारका अथवा धनियेका हिम करके मुखमें कवल देवे तो हित है ॥

मुद्गयूप

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितं ॥ शर्करामधु-

संयुक्तंपाययेल्लाजतर्पणं ॥ मुद्गयूपौदनोदेयःसितयापै-

तिकेज्वरे ॥

अर्थ—यदि दाह, और वमन इनसैं पीडित, कृप कुछ स्नाय नहीं प्यास अधिक लगे उसको चाबलोका मंड-मिश्री और स्रहत डालके देवे और मूंगका यूप भात और सांड ये पदार्थ भक्षणार्थ देवे तो पित्तज्वर शांति हो ॥

अमृतादिहिम

अमृतायाहिमःप्रातःससितःपैत्तिकंज्वरं ।

वासायाश्वतथाकासरक्तपित्तज्वरान्जयेत् ॥

अर्थ—गिलोयको रात्रिमें कूट पानीमें भिगोदेवे प्रातःकाल उस पानीको छान मिश्री मिलायके पीवे तो पित्त ज्वर नाशक है, इसी प्रकार अहूसेका हिन स्वांसी, रक्त, पित्तज्वर इनका नाशक है ॥

कफज्वरकेलक्षण

स्तैमित्यंस्तिमितोवेगआलस्यंमधुरास्यता ॥ शुक्लमू-
त्रपुरीषत्वक्स्तंभस्तृप्तिरथापिवा ॥ नात्युष्णगात्रता-
च्छिर्दिरंगसादोविपाकता ॥ गौरवंशीतमुत्केदोरोमह-
र्षोतिनिद्रता ॥ प्रतिश्यायोरुचिःकासःकफजेक्षणो-
श्वशुक्लता ॥

अर्थ—स्तैमित्य (गीले कपड़ेसें देहको आच्छादित करदेनेसें जैसा हो ऐसा मालूमहो) ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुख मीठा, मलमूत्र सफेद, देहका जकडना ज्वरसरस्ता, अन्नमें अरुचि, पेट भरासारहे देहबहुत गरम नहोवे, अंगरहजावे, देह-भारी शीतल, शीनलगे ओकारी आवे * अन्य आचार्य कहतेसें कि कफका धू-कना, रोमांचका होना, अतिनिद्रा, रसके बहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उत्तरना पसीना, मुसमें नोनकासा सवाद देहका थोडा गरम-होना रदका होना लारका गिरना मुखपाक तथा मुखनाकमें कफका पडना, अरुचि स्वांसी नेत्र श्वेतहों ये लक्षण कफज्वरमें होते हैं “ स्तंभस्तृप्तिरथापि च ” इस पदमें जो चकार है उस्से देहमें पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तत्रिकरोग, हृदयव्दिसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने॥

कलिंगादिचूर्ण

कलिंगरोहिणीनिशाकटुत्रिकेभकेसरं ॥

विचूर्णितंकफज्वरेनिहंतिकोष्णवारिणा ॥

अर्थ—इन्द्रजो, कुटकी, हलदी, नागकेशर, और त्रिकटु इनका चूर्ण गरम जलसें लेवे तो कफज्वर दूरहो ॥

शृंग्यादिवलेह

शृंगीकणाकटुफलपौष्कराणांक्षौद्रान्वितानांविहितोव

लेहः ॥ श्वासेनकासेनयुतंबलासंज्वरंजयेदन्नकापिशंका ॥

अर्थ— काकडासिंगी, पीपल, कायफर, पोहकरमूल, इनका अवलेह सहित मिलायकर देवे तो श्वास, खासीयुक्तकफ, और ज्वरको दूर करे । इसमें कुछ स-
देह नहीं है ॥

सिंधुकवल

सिंधुत्रिकट्टराजीभिराद्रकैणकफेहितः ॥ कवलइतिशेषः ॥

अर्थ—सैधानिमक, त्रिकुटा, राई, और अदरक इनको एकत्र पीसजसकी कवल करके मुखमें धारण करे यह कवल कफपर प्रसस्त है ॥

मुद्गयूष

मुद्गयूषौदनोदेयोज्वरेकफसमुत्थिते ॥

अर्थ— कफज्वरमें मूंगका यूप और भात पथ्यदेना चाहिये ॥

त्रिफलादिचूर्ण

लिहन्ज्वरार्तस्त्रिफलांपिप्पलींचसमाक्षिकां ॥ कासे
श्वासेचमधुनासर्पिपाचसुखीभवेत् ॥

अर्थ— कफज्वरवाले रोगीको त्रिफला, तथा पीपलका चूर्ण सहितसे देवे और खांसी, तथा श्वास पर वही चूर्ण सहित और घृतके साथ देवे ॥

अजाजियोग

अजाजिशर्करायुक्तोदाडिमस्वरसेनतु ॥ रुचिष्योम
धुनायुक्तःकर्तव्यःकवलग्रहः ॥ मुद्गयूषौदनश्चापिदे
यःकफसमुत्थिते ॥

अर्थ— जीरा, और स्वाह अथवा अनारकारस तथा सहित ये रुचिकारी है, इनको मुखमें धारण करे और मूंग भात पथ्य देवे ॥

चंदनादिकाढा

चंदनंचसुगंधंचवालकोशीरपर्पटाः ॥ मुस्ताशुंठीसमायु
क्तापित्तज्वरनिपूदनाः ॥

अर्थ—लालचंदन, रोहिपट्टण, नेत्रवाला, पित्तपापडा, नागरमोथा, और सौं-
ठ, इनका काढा पित्तज्वर नाशक है ॥

शतघृतघृत

शतघृतघृतस्यलेपतोदवधुर्नाशमुपैतितत्क्षणात् ॥ अ
थवापिचुमंदपत्रजस्वरसप्रोत्थितफेनलेपतः ॥

अर्थ—सौंवार धुलेहुए घीको शरीरमें लगानेसे अथवा नीमका रस फेनयुक्त करके अंगोंमें लेप करनेसे दाह शांति होता है ॥

पलाशादिलेप

पलाशस्यवदर्यावानिबस्यमृदुपल्लवैः ।

अम्लपिष्टैःप्रलेपोयंहन्याद्दाहयुतंज्वरं ॥

अर्थ—ढाककी-बेरकी, किंवा नीबके कोमलपत्ते छाछमें अथवा नीबूके रसमें पीस लेप करे तो दाह युक्त ज्वर दूर हो ॥

नीरदादिपाचन

नीरदविश्वदुरालभवासासाधितमंजुहिपाचनमेवं ॥

पेयमिदंज्वरपुषकफाख्येश्वासकासघनशूलहरं च ॥

अर्थ—नागरमोथा, सोंठ, धमासो, अहूसा, इनका काढा पाचक होकर ज्वर नाशक, श्वास, सोंसी, शूल, कफज्वर इनका नाश करे ॥

पिप्पल्यादिपाचन

पिप्यलीपिप्पलीमूलंमरिचंगजपिप्पली ॥ नागरं चि-

त्रकंचव्यंरेणुकाचाजमोदिका ॥ सर्पपौर्हिगुभार्गीचपा-

ठेंद्रयवजीरका ॥ महानिंबश्वमूर्वाचनिपातिक्ताविडंग-

काः पिप्यल्यादिगणोह्येप कफघातातिनाशनः ॥ गु-

ल्मशूलज्वरहरोदीपनश्चामपाचनः ॥

अर्थ—पीपर, पीपरामूल, कालीमिरच, गजपीपर, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुकाधीज, अजमोद, सरसो, हींग, भारंगी, पाद, इन्द्रजो, जीरा, वकायन, मूर्वा, अतीस, कुटकी, वायविडंग, यह पिप्यलादि गण कफ और वादीको दूर करे गोला शूल, ज्वरको हरण करे तथा दीपन और आमको पचावे ॥

क्षौद्रादिकाढा

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः, श्वासकासज्वरापहः ।

स्त्रीहानंहन्तिहिकांचबालानामपिशस्यते ॥

अर्थ—पीपर और सहतका योग, खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीह, हिचकी इनका नाश करनेवाला है और बालकोंको उचम है ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण

पिप्पलीत्रिफलांचापिसमभागांज्वरीलिहन् ।

मधुनासर्पिषावापिकासीश्वासीसुखीभवेत् ॥

अर्थ—पीपर, त्रिफला, ए समान भागले वा सहत घृतके साथ चाटे तो खांसी, श्वास और ज्वर दूर हो, ॥

कट्फलादिलेह

कट्फलंपौष्करंशृंगीकृष्णाचमधुनासह ।

कासश्वासज्वरहरोलेहोयंकफनाशनः ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडा सिंगी, और पीपर इनका चूर्ण सहत के साथ साथ तो श्वास, खांसी, ज्वर और कफको नाश करे, ॥

कट्फलादिचूर्ण

कट्फलंपौष्करंशृंगीयवानीकारवीतथा ॥ कटुत्रयंच-

सर्वाणिसमभागानिचूर्गयेत् ॥ आर्द्रकस्वरसैलिह्या-

न्मधुनावाकफज्वरी ॥ कासश्वासारुचिछर्दीश्लेष्मा

निलनिवृत्तये ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजमायन, अजमोद, त्रिकुटा, इनका चूर्ण अदरसके रससै अथवा सहतके साथ देवे तो खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, सर्दी, वायु, कफज्वर इनका नाश करे, ॥

निर्गुड्यादिकाढा

सिंदुवारदलकाथंकणाढ्यंकफजेज्वरे ॥

जंघयोश्चवलेक्षीणेकर्णेचपिहितेपिबेत् ।

अर्थ—कफज्वर तथा जाँघोंकी निर्बलता और कानोंका बंद हो जाना इनपर सझालूके पत्तोंका काढा पीपलका चूर्ण ढालके पीवे ॥

यवान्यादिकाढा

यवानीपिप्पलीवासातथाखस्वसवलकलां ॥

एषकाथंपिबेत्कासेश्वसेचकफजेज्वरे ॥

अर्थ—अजमायन, पीपल, अहूसा, और खसखसके डोढे इनका काढा पीनेसें खांसी, श्वास, तथा कफज्वर इनका नाश होय ॥

वासादिकाढा

वासाक्षुद्रामृताक्वाथःक्षौद्रेणज्वरकासहृत् ॥

अर्थ—अहूसा, कटेरी, गिलोय, इनका काढा सहृत्के साथ पीनेसें कफज्वर और खांसीको दूर करे ॥

निंवादिकाढा

निंबविश्वामृताभिरुयासभूनिंबपौष्करं ॥

पिप्पल्योवृहतीचितिकाथोहंतिकफज्वरे ॥

अर्थ—नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, सतवार, जवासो, चिरायतो, पोहकर मूल, पीपर, और कटेरीकी जड़ इनका काढा कफज्वरको नाश करे ॥

मरीच्यादिकाढा

मरीचंपिप्पलीमूलंनागरंकारवीकणा ॥ चित्रकंकट-

फलंकुष्ठंससुगांधिवचाशिवा ॥ कंटकारीजटाशृंगीयवा

नीपिचुमदंकः । एषांक्वाथोहरत्येवज्वरंसोपद्रवंकफात् ॥

अर्थ—कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, सोफ, पीपल, चीता, कायफल, कूद, निर्गुडी, वच, हरड, कटेरीकी जड़, जटामांसी, काकडासिंगी, अजमायन, और नीमकी छाल, इनका काढा उपद्रव सहित कफज्वरका नाश करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा

निदिग्धिकाच्छिन्नरुहोपकुल्याविश्वौपथैःसाधितमंडुपीतं

हंतिय्वरंश्वासवलासकासश्ललाग्निमांघंजठरानिलंच ॥

क्षौद्रादिकाढा

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः ।

ष्ठीहानंहंतिहिकांचबालानामपिशस्यते ॥

अर्थ—पीपर और सहतका योग, खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीह, हिचकी इनका नाश करनेवाला है और बालकोंको उचम है ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण

पिप्पलीत्रिफलांचापिसमभागांज्वरीलिहन् ।

न्मधुनासर्पिषावापिकासीश्वासीसुखीभवेत् ॥

अर्थ—पीपर, त्रिफला, ए समान भागले वा सहत घृतके साथ चाटे तो खांसी, श्वास और ज्वर दूर हो, ॥

कट्फलादिलेह

कट्फलंपौष्करंशृंगीरुष्णाचमधुनासह ।

कासश्वासज्वरहरोलेहोयंकफनाशनः ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडा सिंगी, और पीपर इनका चूर्ण सहत के साथ साथ तो श्वास, खांसी, ज्वर और कफको नाश करे, ॥

कट्फलादिचूर्ण

कट्फलंपौष्करंशृंगीयवानीकारवीतथा ॥ कटुत्रयंच-

सर्वाणिसमभागानिचूर्णयेत् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्लिह्या-

न्मधुनावाकफज्वरी ॥ कासश्वासारुचिछर्दीश्लेष्मा

निलनिवृतये ॥

अर्थ— कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजमायन, अजमोद, त्रिकुटा, इनका चूर्ण अदरसके रससै अथवा सहतके साथ देवे तो खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, सर्दी, वायु, कफज्वर इनका नाश करे, ॥

निर्गुड्यादिकाढा

सिंहवारदलकाथंकणाढ्यंकफज्वरे ॥

जंघयोश्चवलेक्षीणेकर्णेचपिहितेपिबेत् ॥

पंचकोलं

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरं ।

पंचकोलमिदंप्रोक्तंशोधनंकफनाशनं ॥

अर्थ—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठ, यह पंचकोल शोधन तथा कफनाशक है ॥

पटोलादिकाढा

पटोलत्रिफलातिकासठीवासामृताभवः ॥

क्वाथोमधुयुतःपीतोहन्यात्कफकृतंज्वरं ॥

अर्थ—पटोलपत्र, त्रिफला, कुटकी, कचूर, अहूसो, और गिलोय इनका का-
थ सहितके साथ पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

बीजपूरादिकाढा

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रंथिकैःशृतं ॥

सक्षारंपाचनंश्लेष्मज्वरेद्वादशवासरे ॥

अर्थ—विजोरेकीजड, छोटीहरड, सोंठ, और पीपरामूल, इन औषधोंका
काढा कर उसमें जवाखार मिलाय बारवेदिन कफज्वर पर पाचन देवे तो क-
फज्वर दूर होय ॥

भूर्निंबादिकाढा

भूर्निंबनिंबापिप्पल्यःसठीशुंठीशतावरी ॥

गुडुचीवृहतीचेतिक्वाथोहन्यात्कफज्वरं ॥

अर्थ—चिरायतो, नीमकीछाल, पीपल, कचूर, सोंठ, मतावर, गिलोय,
और कटेरी इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

कटुक्यदिकाढा

कटुकीचित्रकनिंबंहरिद्रातिविषंवचा ॥ सप्तपर्ण्यमृ-

तानिंबरुनुह्यकैःसाधितंजलं ॥ पेयंमाक्षिकसंयुक्तंवास

ज्वरशांतये ॥

अर्थ—कुटकी, चीतेछाल, नीमकीछाल, हलदी, अतीस, वच, सतानाकी-

अर्थ—कटेरीकी जड़, गिलोय, पीपल और सोंठ इनका काढा ज्वर, श्वास, कफ, खांसी, शूल, मंदाग्नि, इनको दूरकरे ॥

भार्ग्यादिकाढा

भार्गीगुडूचीधनदारुसिंही सुंठीकणापुष्करजःकषायः

ज्वरंनिहंतिश्वसनंक्षिणोतिक्षुधांकरोतिप्ररुचिंतनोति ।

अर्थ—भारंगी, गिलोय नागरमोथा, देवदारु, कटेरी, सोंठ, पीपल, और पु-
इकरमूल इनका काढा ज्वर और श्वासको नष्टकरे एवं क्षुधाकरे और अन्नमें रु-
चि प्रगटकरे है ॥

मातुलिंगादिकाढा

मातुलिंशिफाविश्ववयस्थाग्रंथिकोद्भवं ।

कफज्वरेपुसक्षारंपाचनंवाकंणादिकं ॥

अर्थ—विजोरेकी जड़, सोंठ, गिलोय, पीपरामूल, इनके काढेमें जवासार
अथवा पीपरडालके पीये तो कफज्वर दूर हो तथा पाचन हो ॥

त्रिफलादिकाढा

त्रिफलात्रिवृतामुस्तंकटुकंसकलिंगकं ॥ पटोलरग्व-

धंचैवरोहिणीचित्रकंसमं ॥ क्वाथःक्षौद्रयुतःश्लेष्मज्व-

रकासगतामये ॥

अर्थ—त्रिफला, निसोथ, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजो, पटोलपत्र, अमल-
तास, कुटकी, और चीता ये समभागले काढाकर सहत डालके पीये तो कफ-
ज्वर, खांसी, तथा कंठ रोग दूर होवे ॥

पिप्पल्यादिगण

॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरं ॥ मरीचैला-

जमोर्देद्रपाठारेणुकजरिकं ॥ भार्गमिहानिवफलंहिंगु-

रोहिणिसर्पपं ॥ विडंगातिविषामूर्वागणोयंकफनाशनः ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिरच, छोटीइलाय-
ची, अजमोद, इन्द्रजो, पाद, रेणुका, जीरा, भारंगी, वकायनकेफल, हींग, कु-
टकी, सरसो, वायविडंग, अतीस, और मूर्वा यह औषधोंका गण कफनाशक
है अतएव कफज्वरपर इसका काढा देवे ॥

अर्थ—आमले, हरडकी छाल, पीपल, और चित्रक, यह औषधोंका गण सर्व ज्वर और कफके रोगोंको दीपन और पाचनकर्ता है ॥

तित्तादिकाढा

तित्तानिंबविषाव्योषशक्राव्हाभिःशृतंजलं ।

पिबेत्कफज्वरहंतिहिकाकाससमन्वितं ॥

अर्थ—कुटकी, नीमकी छाल, अतीस, त्रिकुटा, इन्द्रजो और नेत्रवाला इन्का काढा हिचकी और खांसी युक्त कफज्वरको दूर करे ॥

मुस्तादिकाढा

मुस्तंमधुकवीजानित्रिफलाकटुरोहिणी ॥

परूषकाणिचक्वाथःकफज्वराविनाशनः ॥

अर्थ—नागरमोथा, मौआकेबीज, त्रिफला, कुटकी, और फालसे इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

चपलादिकाढा

चपलाचपलापदनागरिकाचवकानलसंजनितंसलिलं ॥

कसनेश्वसनेहृदयोलसनेकफजूतिगदप्रपिबेच्चमुदे ॥

अर्थ—पीपल, गजपीपल, सोंठ, चव्य चीतेकी छाल, इनका काढा श्वास, खांसी हृष्टास, इत्यादि रोगयुक्त कफज्वर दूर हो ॥

पिचुमंदादिकाढा

पिचुमंदमहौषधान्वितावृहतीपौष्करतिक्तकंसठी ।

वृषकट्फलकंकणावरीकथितंवारिकफज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—नीमकीछाल, सोंठ, कटेरीकीजड, पोहकरमूल, चिरायता, कचूर, अहूसा, कायफर, पीपल, और सतावर, इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

वासादिकाढा

वासाविशालादशमूलगौरीमहौषधंपुष्करभाग्युक्ता ।

एषांकपायोविनिहंतिकासंकफज्वरंशूलनिवर्त्तनंच ॥

अर्थ—अहूसा, इन्द्रायनकागुदा, दशमूल, तुलसी, सोंठ, एहकरमूल, और भारंगी इनका काढा कास, और कफज्वर, तथा शूल, इनका नाश करे ॥

छाल, गिलोय, चिरायता, थूहर, और आक इनके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिकंठकादिकाढा

त्रिकंठकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितं ॥

वर्चोमूत्रविवंधघ्नंकफज्वरहरंपयः ॥

अर्थ—गोखरू, गगेरन, कटेरी, गुड, और सोंठ, इनका काढा मलमूत्रके रुकनेको और कफज्वरको दूर करे, परंतु इसकाढ़ेमें औषधोंसे अठगुना दूध और दूधसे चैगुना पानी ढालके ओंटावे ॥

कुष्ठादिकाढा

कुष्ठमिंद्रयवंमूर्वापटोलेनापिमाधितं

पिवेन्मरीचसंयुक्तसक्षौद्रकफजेज्वरे ॥

अर्थ—कूठ, इन्द्रजो, मूर्वा, पटोलपत्र इनका काढा सहत और कालीमिरच ढालके पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिफलादिकाढा

त्रिफलापटोलवासाच्छिन्नरुहारोहिणीवचाशुंठी ॥

मधुनाश्लेष्मसमुत्थदशमूलीवासकस्यचक्राथः ॥

अर्थ—हरड, बहेडा, आमला, पटोलपत्र, अहूसा, गिलोय, कुटकी, वच और सोंठ, इनका अथवा दशमूल और अहूसेका काढा सहतके साथ कफज्वर-पर देवे ॥

सप्तच्छदादिकाढा

सप्तच्छदगुडूचीचर्निवस्फूर्जकमेवच ॥

क्वाथंरुत्वापिवेतोयंसक्षौद्रंकफजेज्वरे ॥

अर्थ—सतोना, गिलोय, नीवकाछाल, और स्फूर्जक इनका काढा सहतके साथ पीवेतो कफज्वर दूर होय ॥

आमलक्यादिकाढा

आमलक्याभयारुष्णाचित्रकश्चेत्ययंगणः ।

सर्वज्वरकफातकेभेदीदीपनपाचनः ॥

और फालसे इन औषधोंका पूर्वरीतिसें हिमकरके पीवेतो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मोह, और तृष्णा इनको दूर करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा

निदिग्धिकामृतारास्त्रात्रायमाणामृतायुतः ॥

मसूरविदलकाथोवातपित्तज्वरंजयेत्

अर्थ—कटेरी, गिलोय, रास्ना, त्रायमाण, हरद, और मसूरकीछाल, इनका काढा वात पित्तज्वरको दूर करे ॥

विश्वादिकाढा

विश्वामृताब्दभूनिंवपंचमूलसमन्वितः ॥

कृतःकषायोहंत्याशुवातपित्तभवंज्वरं ॥

अर्थ—सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, पचमूल इनकाकाढा तत्काल वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

नीलोत्पलादिकाढा

नीलोत्पलमुशिराणिपद्मकामलकानिच ॥ काश्मीर-
मधुकद्राक्षामधूकानिपरूषकान् ॥ पिवेच्छीतंक-
षायंचवातपित्तज्वरापहं ॥ संप्रलापंचसंमोहंशमयेत्पै-
त्तिकंज्वरं ॥

अर्थ—नीलकमल, खस, पद्मास, आमले, कंभारी, मुलहठी, दास, महुआके, फूल, और फालसें इनके काढेको शीतलकर पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, मोह, और पित्तज्वर इनको शमन करे ॥

आरग्वधादिकाढा

आरग्वधफलंमुस्तंयष्टीमधुकमेवच ॥ उशीरमभयाचै-
वहरिद्रादारुसाव्हया ॥ पटोलंपित्तुमदंचअमृताकटु-
रोहिणी ॥ एषांपीतःकषायःस्याद्वातपित्तभवेज्वरे ॥

अर्थ—अमलतासकागूदा, नागरमोथा, मुलहठी, महुआके फूल, खस, हरद, हलदी, देवदारु, पटोलपत्र, नीमकीछाल, गिलोय, और कुटकी, इनका काढा वातपित्तज्वरको शांतकरे ॥

कंटकार्यादिकाढा ॥

कंटकार्यमृतादारुवृषविश्वासमाश्रितः ॥

क्वाथःकणारजोयुक्तःसद्यःश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, देवदारु, अदूसा, सोंठ इनका काढा पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो तत्काल कफ ज्वर दूर हो ॥

कणादिकाढा

कणाविश्वामृतादारुकिरातैरंडमूलकः ।

निंबएपांकृतःक्वाथःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, चिरायता, अंडकी जड़ और नीमकी छाल, इनका काढा पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

मुस्तादिकाढा

मुस्तादुरालभाशुंठीक्वाथएपांसमांशतः ।

हंतिश्लेष्मज्वरंतीव्रनिपीतःपथ्यभोजने ॥

अर्थ—नागरमोथा, घमासा, बरावर ले काढाकरके पीवे और पथ्यसँ रहे तो तीव्र कफज्वर दूर हो ॥

वातपित्तज्वरलक्षण

तृष्णामूर्छाभ्रमोदाहःस्वप्ननाशःशिरोरुजः॥ कंठास्य-

शोषोवमथूरोमहर्षोरुचिस्तमः ॥ पर्वभेदश्चजृम्भाच-

वातपित्तज्वराकृति ॥

अर्थ—प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडां, कंठ, मुखका सू-
खना, घमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जंभाई ये
वातपित्तज्वरके लक्षण है ॥

नीलोत्पलादिहिम

नीलोत्पलंवलाद्राक्षामधुकंमधुकंतथा॥ उशीरंपद्मकं-

चैवकाश्मरीचपरूपकं ॥ एतच्छीतकपायश्चवात-

पित्तज्वरंहरेत् ॥ विप्रलापभ्रमच्छर्दामोहतृष्णानिवारणः ॥

अर्थ—नीलकमल, गगेरन, दास, मुलइटी, महुआ, सस, पद्मास, कंभारी,

अर्थ—मुलहठी, सारिवा, दास, महुआके फूल, लालचंदन, कमलगट्टा, कं-
भारी, लोथ, त्रिफला, कूठ, नागकेशर, फालसे, और भसीडेकि जिनको क-
मलकी जड कहते है इनका काढा खांड, और सहत तथा खीलमिलायकर देवे
तो वातपित्तज्वर, दाह तृषा, मूच्छा, अरुचि, भ्रम, तथा रक्तपित्त, इनको शमन
करे इसमें दृष्टांत है कि जैसे वहलोंको पवन दूर करता है ॥

पंचभद्रकषाय

छिन्नोद्धवापर्पट्वारिवाहभूनिवशुंठीजनितःकषायः ॥
समीरपित्तज्वरजर्जराणां करोति मद्रं खलु पंचभद्रः ॥

अर्थ—गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता, और सोंठ इनका का-
ढा वात पित्तज्वरको नाश करे इस काथको पंचभद्र कहते है ॥

दुरालभादिकषाय

दुरालभामृताधनोजलंचरोहिणीरजो ॥ ज्वरंचवातपि-
त्तजंनिहंत्यसौकषायकः ॥

अर्थ—धमासो, गिलोय, नागरमोथा, नेत्रवाला, कुटकी, और पित्तपापडा
इनका काढा वातपित्तज्वरका नाश करताहै ॥

भूनिवादिकषाय

भूनिवतिक्ताजलचंदनंचधानेयपथ्यादशमूलसंघाः ॥
हीवेरविश्वाकरमर्दकाचणुपांशृतंपित्तमरुज्वरेष्टम् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, नेत्रवाला, लालचंदन, धनिया, हरड, दशमूल, ख-
स, सोंठ, और कपरख इनका काढा वातपित्तज्वर पर हितकारी है ॥

त्रिफलादिकषाय

त्रिफलाशाल्मलीरास्त्राराजवृक्षाढरूपकैः ।
शृतमंघुहरत्याशुवातपित्तभवंज्वरं ॥

अर्थ—त्रिफला, सेषरका मूसला, रास्त्रा, अमलतासका गूदो और अहूसो,
इनका काढा वातपित्तज्वरका नाश करे ॥

मधुकादिफांट

मधुपुष्पंमधूकंचचंदनंसपरूपकं ॥ मृणालंकमलंलोघ्नं-

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षाकिरातामृतवासकासठीकाथंपिवेत्पित्तमरुज्वरंहरेत् ॥

अर्थ—दाख, चिरायता, गिलोय, अडूसा, और कचूर इनका पीवे तो वात-पित्तज्वर दूर हो ॥

पंचमूलादिकाढा

पंचमूल्यमृतामुस्ताविश्वाम्भूर्निवसाधितः ।

कपायःशमयत्याशुवायुमायुभवंज्वरं ॥

अर्थ—पंचमूल, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, और चिरायता, इनका काढा वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

मुद्गादियूप

मुद्गामलकयूपस्तुवातपित्तज्वरेहितः ॥ महादाहेप्रदा-

तव्योयूपश्चणकसंभवः॥ दाडिमामलकमुद्गसंभवोयूप-

उक्तइहवातपैतिके ॥

अर्थ—मूंग और आमलेका यूप वातपित्तज्वरमें हित है। अत्यंत दाहमें चनेका यूप देना चाहिये। और अनारदाने, आमले तथा मूंगकायूप वातपित्तमें देना ॥

मुद्गादियोग

कफपितहरामुद्गाकारवेष्टादयस्तथा ॥ प्रायेणनचतेदे-

यावातपित्तोत्तरेज्वरे ॥ दत्तास्तुज्वरविष्टंमश्लोदावर्त-

कारिणः ॥

अर्थ—वातपित्तज्वर पर मूंग तथा करेले इत्यादि न देवे, ये कफपित्त हारक हैं इनके देनेसे ज्वर-मलावष्टंभ-शूल-तथा उदावर्त होता है ॥

मधुकादिकपाय

मधुकंसारिवाद्राक्षामधुकंचंदनोत्पलं ॥ काशमरीफल-

कंलोध्रंत्रिफलापद्मकेसरं ॥ परूपकंमृणालंचक्षिपेत्सं-

चूर्ण्यवारिणा ॥ निशोपितंसितक्षौद्रलाजयुक्तंतुतत्पि-

वेत् ॥ वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णांमूर्च्छारुचिभ्रमान् ॥

शमयेद्रक्तपित्तंचजीमूतमिवमारुतः ॥

अर्थ—गगेरु, गिलोय, अंडकीजड नेचवाला, नागरमोथा, पद्मास, भारंगी पीपर, सस, और लालचंदन, इनका कादा वातपित्तज्वर नाशक तथा अग्नि वृद्धिकारक है ॥

रसायण

त्रिफलामृतलोहचभृंगराजंचूर्णीति ॥ चूर्णमर्जुनपत्रस्य
त्रिजातकशिलाजतु ॥ ज्यूषणतुल्यतुल्यांशं सर्वेषांचस-
मासिता ॥ क्षौद्रेणवटिकाकार्याकर्षमात्रंचभावयेत् ॥
वातपित्तज्वरंहंतिअनुपानंचकल्पयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला, लोहभस्म, भाँगरो कोह्वृक्षकेपत्र, त्रिजातक, शिलाजीत और त्रिकुटा, इनका चूर्ण करके सब चूर्णके समान मिश्री मिलाय सहतसे १ तोलेकी गोली करे, १ गोलीअनुपानके साथ देवेतो वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

वातकफज्वरलक्षण

स्तैमित्यंपर्वणाभेदोनिद्रागौरवमेवच ॥ शिरोग्रहःप्र-
तिश्यायःकासःस्वेदप्रवर्तनं ॥ संतापोमध्यवेगश्चवात-
श्लेष्मज्वरालृतिः ॥

अर्थ—स्तैमित्य नाम (गीले कपड़ेसे देहको ढकनेसें जैसा हो ऐसा मालुमहो) संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी नाकसें पानी गिरे, खाँसी, पसी-
नोंका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यवेग ये वातश्लेष्मज्वरके लक्षण हैं ॥

चिकित्सा

वातश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंनवमेहनि ॥

अर्थ—वातकफज्वरमें नवमदिन औषधी वैद्यको देनी चाहिये ॥

यूप

शुष्कमूलकयूपस्तुवातश्लेष्माधिकेहितः ॥

अर्थ—सूखीमूलीका यूप वात कफ ज्वरमें हितकारी है ॥

पंचकोल

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्याचित्रकनागरैः ॥ दीपनीयः-

कंभारीनागकेसरं ॥ त्रिफलासारिवाद्राक्षालाजान्को-
ष्णेजलेक्षिपेत् ॥ सितामधुयुतःपेयःफांटोवासोहिमो-
थवा ॥ वातपित्तज्वरंदाहंतृषांमूर्च्छारतिभ्रमान् ॥ रक्त-
पित्तमदंहन्यान्नात्रकार्यविचारणा ॥

अर्थ—महुआकेफूल, मुलहठी, लालचंदन, फालसे, कमलकीजड, कमलगट्टा, लो-
ध, कंभारी, नागकेशर त्रिफला, सरिवन, दास, और सील, इनका फांटकरके
खांडसें अथवा सहतसें देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, भ्रम, रक्तपित्त
और मद ये दूरहो अथवा पांच औषधोंका हिम करकेलेवे तो उक्तगुण करे ॥

द्राक्षादिक०

द्राक्षाकिरातकंधात्रीकर्पूरामृतवल्लरी ॥

काथएपांगुडयुतःपीतोद्वंद्वजरोगहृत् ॥

अर्थ—दास, चिरायता, आमले, कपूर, और गिलोय, इनका, काढा गुड
मिलाके पीवे तो द्वंद्वज ज्वरका नाश करे ॥

व्याघ्रादिक०

व्याघ्रीभार्गीसिंहवक्राचरास्त्रादुस्पशैपाशाल्मलीरा-
जवृक्षः ॥ तद्वज्जेयत्रैफलंकाथएपांशस्तःकासेवात-
पित्तज्वरेच ॥

अर्थ—कटेरी, भारंगी, शङ्खसा, रास्त्रा, धमासो, सेमर, अमलतास, और
त्रिफला, इनका काढा वातपित्तज्वरपर हितकारी है ॥

मुस्तादिकाढा

जलदधान्यकिरातगुडूचिकानियमनंकटुकीचपटोलिका ॥

क्वथितमेभिरिदंतुजलंहरत्पवनपित्तभवंज्वरमुन्नतं ॥

अर्थ—नागरमोथा, धनिया, चिरायता, गिलोय, नीम, कुटकी, और पटो-
लपत्र, इनका काढा वातपित्तज्वर नाशक है ॥

वलादिकाढा.

वलामृतैरंडजलाब्दपद्मकभार्गीकणोशीरयुतैःसचंदनैः ॥

संकाध्यतोयंकफापित्तज्वरप्रणाशनं वन्धिविवृत्तिकारकं ॥

ज्वरापहः ॥ हंतिवातंतथाशीतंप्रस्वेदमतिवेषुं ॥
प्रलापंचातितंद्रांचरोमहर्षोरुचिस्तथा ॥ महावातेपतं-
त्रेचशून्यत्वेसर्वगात्रजे ॥ पिप्पल्यादिर्महाकाथोज्वरे-
सर्वत्रपूजितः ॥

अर्थ—पिप्पल्यादिगणका काढा वातकफज्वरी रोगीको पीवावे, इस्तै इसज्वरके ऊपर दूसरी उत्तम औषधी नहीं है। पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, वच, अतीस, जीरा, पाद, कुडार्कीछाल, रेणुकबीज, चिरायता, कुटकी, मूर्वा, सरसो, कालीमिरच, कायफर, पुहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकडासिंगी आककी जड़, बढीकटेरी, राप्णा, धमासो, अजमायन, अजमोद, टिडुककी छाल, और हींग ये औषध समान भाग लेकर काढाफर पीवे तो वातकफज्वर, वाय, शी-
त, पसीने, कंप, प्रलाप, अत्यंतनिद्रा, रोमांच, अरुचि, महावात, अपतंत्रवात, सर्वदेहकी शून्यता, और, संपूर्ण ज्वर इतका नाश करे यह पिप्पल्यादि गण सर्व ज्वरपर प्रशस्त है ॥

सिंहिकादिकपाय

सिंहीयवानीछिन्नानांकाथश्चपलयायुतः ।

कफवातज्वरश्वासशूलपीनसकासजित् ॥

अर्थ—कटेरीकी जड़, अजमायन और गिलोय, इनका काढा पीपलका चूर्ण ढालके पीवे, तो वात कफ ज्वर, श्वास, शूल पीनस और खाँसीको दूर करे ॥

कट्फलादिकपाय

कट्फलविश्वचाधनपांशुधान्यशिवाजलशृंगिसुरावैः ॥

भार्गीयुतैःकथनंकिलपेयंवातकफघ्नगणोननुचैषां ॥

अर्थ—कायफर, सोंठ, वच, नागरमोथा, पित्तपापडा धनिया, हरद, नेत्रवाला, काकाडासिंगी, देबदारु, और, भारंगी इनका काढा वात कफनाशक है ॥

दशमूलीकाढा

दशमूलैरसःपेयःकणाद्यःकफवातजे ।

ज्वरेविपाकेतंद्रायांपार्श्वरुक्श्वासकासके ॥

अर्थ—दशमूलके रसमें पीपरका चूर्ण मिलाय पीवेतो ज्वर, अजीर्ण, तंद्रा, पार्श्वशूल, श्वास, और खाँसी, इनका नाशकरे ॥

स्मृतोवर्गोवातश्लेष्मज्वरापहः॥कोलमात्रोपयोगित्वा-
त्पंचकोलमिदंस्मृतं ॥ तीक्ष्णोष्णपाचनंश्रेष्ठंदीपनंक-
फवातनुत् ॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नंपित्तकोपनं ॥

अर्थ—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठ, यहवर्ग अग्नि दीपक तथा वातकफज्वर नाशक है। ये सर्व औषधी पंचकोल (जाठमासे) लीजाति है इसीसे इसको पंचकोल कहते हैं। यह तीक्ष्ण, गरम, पाचन, दीपन, कफवात, गोला, ग्रीह, उदर, अफरा, और शूल इनको नाश करे तथा पित्तको कुपित करता है ॥

निंवादिक्रपाय

निंवामृताविश्वदारुकट्फलंकटुकावचा ॥ कषायं-
पाययेदाशुवातश्लेष्मज्वरापहं ॥ पर्वभेदशिरःशूलं-
कासारोचकपीडितं ॥

अर्थ—नीमकीछाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल, और वच इनका काढापीने से संधिपीडा मस्तकशूल, खांसी, अरुचि, तथा वातकफज्वर इनकानाश करे ॥

किरातादिक्रपाय

किरातविश्वामृतवल्लिसिंहिकाकणामूलरसोनसिंदूरकः ॥
कृतःकषायोविनिहंतिसत्वरंज्वरंसमीरात्सकफात्समुत्थितं ॥

लर्थ—चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेरीकीजड, पीपल, पीपरामूल, लहसन, सत्सालू इनका काढा वातकफ ज्वर नाशक है ॥

वृहत्पिप्पल्यादिकाढा

पिप्पल्यादिगणकाथंपिवेद्वातकफज्वरी ॥ नातःपरं-
किंचिदस्मिन्ज्वरेभेपजमुत्तमं ॥ पिप्पलीपिप्पलीमू-
लंचव्यचित्रकनागरं ॥ वचासातिविपाजाजिपाठाव-
त्सकरेणुकं ॥ किराततित्तकोमूर्वासर्पपामरिचानिच ॥
कट्फलंपुष्करंभांगीविडंगंकर्कटाव्हयं ॥ अर्कमूलंवृह-
त्सिंहिश्रेयसीसदुरालभा ॥ दीपकश्वाजमोदश्चशुक-
नासासहिंगुका ॥ एपांकायोनिपीतःस्याद्वातश्लेष्म-

आरग्वधादिक०

आरग्वधकणामूलमुस्तातिक्ताभयाकृतः ॥

क्वाथःशमयतिक्षिप्रंज्वरंवातकफोद्भवं ॥

अर्थ—अमलतासकागूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी, और हरद इनका काढा तत्काल वातकफज्वरको शमन करे ॥

मुस्तादिकाढा

मुस्तापर्पटकंशुंठीगुडूचीसदुरालभा ।

कफवातारुचिर्छर्दिदाहशोपज्वरापहः ॥

अर्थ—नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, और धमासों, इनका काढा कफवात, अरुचि, वमन, दाह, शोष और ज्वर इनका नाश करे ॥

भूर्निवादिकाढा

भूर्निवमुस्ताकटुकागुडूचीदुरालभापर्पटनागरारव्यः ।

क्वाथोनिलश्लेष्महरोवदंतिसूर्योयथानाजयतेंधकारं ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, धमासो, पित्तपापडा, और सोंठ, इनका काढा वातकफको हरण करे जैसें सूर्य अंधकारको ॥

चातुर्भद्रादिकाढा

किरातंतित्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजं ॥ चातुर्भद्र-

कमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहं ॥

अर्थ—कडुआचिरायता, नागरमोथा, गिलोय, और सोंठ, यह चातुर्भद्रकाढा वातकफज्वरको दूर करे ॥

स्वेदशोपकचूर्ण

स्वेदोद्गमेभ्रष्टकुलिथचूर्णनिर्यातनंशस्तमितिभुवन्ति ।

जर्णिशकृद्गोलवणस्यभाजनंसंचूर्णितंस्वेदहरंसुधूलनाव ॥

अर्थ—पसीनेआनेपर कुलथीको भूनकर पीसे, इस चूर्णको देहमें मालिस करे अथवा गौका पुराना गोबर और नोनके पात्रको पीसके मालिसकरे तो पसीने आना दूर होवे ॥

पिप्यल्यादिकाढा

पिप्पलीभिःशृतंतोयमनभिष्यंदिदीपनं ।
वातश्लेष्मज्वरंहंतिसेवितंछीहनाशनं ॥

अर्थ—पीपलका काढा सेवन करनेसे कफको दूर करे अग्निदीपक, और वातकफज्वर तथा श्लेष्म इनका नाश करनेवाला है ॥

दार्वीदिकाढा

दारुपर्पटभांग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः ॥ साभयावि-
श्वपूतीकैःकाथोर्हिगुमधूत्कटः ॥ कफवातज्वरेपीतो-
हिकाशोपगलग्रहान् ॥ श्वासकासप्रमेहांश्चहन्यात्तरु-
मिवाशनिः ॥

अर्थ—देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, बच, धनिया, कायफर, हरद, सोंठ, तथा कंभा इनका काढा हिग तथा सहत मिलायके देवे तो कफवातज्वर, हिचकी, शोष, गलरोग, श्वास, खांसी, और प्रमेह इनका नाशकरे जैसे वृक्षको यज्ञ नाश करता है ॥

पटोलादिकाढा

तृष्णान्वितेवातकफार्तिशूलेसश्वासकासारुचिविद्वि-
बंधे ॥ हितंजलंदीपनपाचनंचपटोलशुंठीयवपिप्पलीनां ॥

अर्थ—प्यास, वात, कफरोग, शूल, श्वास, खांसी, अरुचिं, तथा, बदकोष्ठ इनपर पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजो, और पीपल इनका काढा दीपन पाचन और हितकारी है ॥

क्षुद्रादिक०

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराव्हयैःरुतःकषायकफमारुतो-
त्तरे ॥ सश्वासकासारुचिपार्श्वशूलेज्वरेत्रिदोषप्रभवे-
पिशस्यते ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, सोंठ, और, पुहकरमूल इनका काढा कफवातज्वर श्वास, खांसी, अरुचि, पार्श्वशूल, और त्रिदोषजनित ज्वर इनपर हितकारी है ॥

अर्थ—मुखकफसेँ लिप्तहो, तथा पित्तके जोरसेँ मुखमें कडुआट, तंद्रा, मूर्च्छा, खाँसी, अरुचि, प्यास, स्तंभ (देहका जकडना) पसीना, कफ, पित्तका गिरना, वारंवार दाढ़हो और वारंवार शीतका लगाना ये कफपित्तज्वरके लक्षण है

कफपित्तज्वरप्रक्रिया

पित्तश्लेष्मज्वरेदेयमौषधं दशमेहानि ॥

अर्थ—पित्त कफज्वरमें औषधी दशमे दिन देनी चाहिये ॥

कंटकार्यादिकाढा

कंटकार्यमृताभार्गीविश्वेन्द्रयववासकं ॥ भूर्निवचंदनं-

मुस्तंपटोलंकटुरोहिणी ॥ विपाच्यपाययेत्काथंपित्त-

श्लेष्मज्वरापहं ॥ दाहत्तृष्णारुचिच्छर्दिकासशूलनिवारणं ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजो, अडूसा, चिरायता, लालचंदन, मोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका काढा पित्तकफज्वर, दाढ़, प्यास, अरुचि, वमन, खाँसी और शूल इनको दूर करे ॥

नागरादिकाढा

नागरोशीरविल्वाब्दधान्यमोचरसांबुभिः ॥

कृतःकाथोभवेद्ग्राहीपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—सोंठ, खस, वेलगिरी, नागरमोथा, धनिया, मोचरस और नेत्रवाला इनका काढा ग्राही और पित्त कफज्वरका नाशक है ॥

शृंगवेरादिकाढा

कपायपरिपीतस्तुशृंगवेरपटोलयोः ॥ पित्तश्लेष्म-

ज्वरवमीदाहकंडूविसर्पन्त ॥

अर्थ—अवरस और पटोलपत्रका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, वमन, दाढ़, सुजली और विसर्प ए दूर हो ॥

पटोलादियूप

पटोलघान्ययोर्यूपःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ दीपनः

कफविच्छेदीपित्तवातानुलोमनः ॥

अर्थ—पटोलपत्र और धनियेका यूप पित्तकफज्वर को दूरकरके दीपन और कफको छुटानेवाला तथा पित्तवातको अनुलोमकर्त्ता है ॥

मरिचाद्युद्धूलन

मरिचंपिप्पलीशुंठीपथ्यालोघ्रश्वपुष्करं ॥ भूनिंबः
कटुकाकुष्ठं कर्चुरो लिंगिका सठी ॥ एतानिसमभागा-
निमूक्षमचूर्णानिकारयेत् ॥ एतदुद्धूलनं श्रेष्ठं स्रोते-
वस्वेदनिर्गमे ॥

अर्थ—काली मिरच, पीपल, सोंठ, हरड़, लोध, पोहकरमूल, कडुआचिरा-
यता कूट, कचूर, शिवलिंगी, और कपूरकचरी ये औषध समान भागले कपड
छन चूर्णकरके देहमें लगावे तो पसीनेकी झडीवीलगरही हो उसको बंद करे ॥

भूनिंबाद्युद्धूलन

भूनिंबकारवीतिकावचाकफट्टलजंरजः ।

एषामुद्धूलनं श्रेष्ठं सततं स्वेदसंघवे ॥

अर्थ—चिरायता, अजमायन, कुटकी. वच और कायफल इनका चूर्ण अंगमें
लगावे तो निरंतर आनेवाले पसीनोके बंदकरनेको उत्तमहै ॥

सूतशेखररस

सूतकंटकणं भ्रष्टं गंधं शुद्धं संसमं ॥ द्विगुणं सूतकादेयं-
जैपालंतुपवर्जितं ॥ सैधवं मरिचं चिंचात्वक्क्षारः शर्क-
रापिच ॥ प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जंवीरैर्मदयेद्दिनं ॥ सू-
र्यशेखरनामायं रसो गुंजाद्वयोन्मितः ॥ भक्षितस्तप्त-
तोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—शुद्धपारा. भुनामुहागा, शुद्धगंधक, सैधानिमक, मिरच, इमलीकासार
और मिश्री प्रत्येक एक एक टके भर शुद्ध जमालगोटा २ टके भर इन सबको
कूट पीस नींबूके रसमें १ दिन सरलकरे यह सूर्यशेखर नामक रस हो रतीग
रस जलसै लेय तो वातकफज्वर दूर हो ॥

कफपित्तज्वरलक्षण

लिततिकास्यतातंद्रामोहः कामोऽरुचिस्तृपा ॥ तथा-
स्तंभश्च संस्वेदः कफपित्तप्रवर्तनं ॥ मुहुर्दाहो मुहुः शी-
तं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

युक्तकपायंतुपिवेन्नरः ॥ भ्रममूर्छारुचिच्छर्दिपित्तश्ले-
ष्मज्वरापहं ॥

अर्थ—सोठ, इन्द्रजो, नागरमोथा, लालचंदन, और कुटकी इनका काढाकर उसमें पीपलकाचूर्ण डाल पीवैतो भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, पित्तकफज्वर इनका नाश करे ॥

द्राक्षादिकाढा

द्राक्षाशम्पाककटुकामुस्तंश्रंथिकधान्यकं ॥
पक्कंहन्यादुदावर्तंशूलंपित्तकफज्वरं ॥

अर्थ—द्राक्ष, अमलतासकोगूदो, कुटकी, मोथा, पीपरामूल, और धनिया इनका काढा देवे तो उदावर्त, शूल, और पित्तकफज्वर, ये दूर हो ॥

पटोलादिकाढा

पटोलयवधान्याकमुस्तामलकचंदनं ।
श्लैष्मिकश्लेष्मपित्तोत्थज्वरतृट्छर्दिदाहनुत् ॥

अर्थ—पटोलपत्र, इन्द्रजो, धनिया, नागरमोथा, आमले और लालचंदन इनका काढा कफपित्तज्वर, कफज्वर, प्यास, वमन, और दाह, इनको नाश करे ॥

यवादिकाढा

यवपद्मकधान्याकंद्रेहरिद्रेद्वेसचंदने ॥ गुडूचीदेवकाष्ठ-
चतेजोह्वासदुरालभा ॥ श्रपयित्वापिवेत्कार्थकफ-
पित्तज्वरापहं ॥ पिपासाच्छर्दिदाहघ्नंवृष्यंवल्लिविदीपनं ॥

अर्थ—इन्द्रजो, पद्मास, धनिया, हलदी, दारुहलदी, रक्तचंदन, गिलोय-देवदार, तेजवल, और जवासो इनका काढा कफपित्तज्वर, तथा प्यास, वमन, दाह इनको नाश करे और अग्निको दीपन करे ॥

त्रायंत्यादिकाढा

त्रायंतीभिषकटुकारामसेनापटोलिका ।
ज्वरेपैतकफेह्येतद्देयंदीपनपाचनं ॥

अर्थ—त्रायमाण, मोथा, कुटकी, सपेदकटेली, और पटोलपत्र, इनका काढा पित्तकफज्वरपर दीपन और पाचनार्थ देवे ॥

पटोलादिकाढा

पटोलंपिचुमंदश्वत्रिफलामधुकंबला ॥ साधितोयंक-
षायःस्यात्पित्तश्लेष्मभवेज्वरे ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नीमकीछाल, त्रिफला, मुलहठी और गगेरन इनका काढा पीने से पित्तकफज्वर दूर हो ॥

तिक्तादिकाढा

तिक्तोशीरबलाधान्यपर्पटांभोधरैःकृतः ॥ काथःपुनः
समायातंज्वरंशीघ्रनिवारयेत् ॥

अर्थ—कुटकी, खस, गगेरन, धनिया, पित्तपापडा और नागरमोथा इनका काढा उलटकर आनेवाले ज्वरको तत्काल दूर करे ॥

लोहितचंदनादिकाढा

लोहितचंदनपद्मकधान्यछिन्नरुहापिचुमंदकषायः ॥
पित्तकफजरदाहपिपासावांतिविनाशहुताशकरःस्यात् ॥

अर्थ—लालचंदन, पद्माख, धनिया, गिलोय और नीमकीछाल इनका काढा पित्त, कफज्वर, दाह, प्यास, वमन. इनको दूर करे और अग्निको बढ़ावे ॥

जीरकादिकाढा

जरिकंकारवेल्यंयुशीतपूर्वज्वरेहितं ॥ पाक्यंशीतक-
षायंचमुस्तापर्पटकंभवेत् ॥

अर्थ—जीरा और करेलेका रस देनेसे शीतज्वरका नाश करे एवं नागरमो-
था और पित्तपापडा इनका काढा शीतल देनेसे पाचक है ॥

यवादिकाढा

यवःपर्पटकंवान्यंपटोलारिष्टसाधितं ॥ पित्तेत्सश-
करक्षौद्रंपित्तश्लेष्मज्वरापहं ॥

अर्थ—जो पित्तपापडा, धनिया, पटोलपत्र, नीमकीछाल, इनका काढा सरत
और मिश्री मिलाकर पीये तो पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

नागरादिकाढा

नागरेन्द्रयवंमुस्तंचंदनंकटुरोहिणी ॥ पिप्पलीचूर्णसं-

अर्थ—कटेरी, गिलोय, सोंठ, पुहकरमूल, और चिरायता इनका पंचतित्त-
चामक काढा सर्वज्वरोको तत्काल दूर करे ॥

भांग्यादिकाढा

भांगीपुष्करमूलंचमुस्तकंकटकारिका ॥ त्रिकंटकवृह-
त्यौचकर्णिनीनागरैःशृता ॥ गणोभांग्यादिकोनाम-
पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ कासश्वासारुचिहरःपार्श्वशूल-
निवारणः ॥

अर्थ—भांगी, पुहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरू, बड़ीकटेरी, अमल
तासकोगूदो, और सोंठ, इन औषधोंका काढा पित्तकफज्वर, खासी, श्वास, अरु-
चि, और पसवाडोंका दरद इन रोगोंको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा

पटोलंचंदनंमूर्वातित्तापाठामृताकणाः ॥

पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकंडूविषापहाः ॥

अर्थ—पटोलपत्र, लालचदन, मूर्वा, कुटकी, पाढ, गिलोय, और पीपल इ-
चका काढा पित्तकफ अरुचि, वमन, ज्वर, खजली, और विष इनको नाश करे

त्रिफलादिकाढा

त्रिफलात्रायमाणाचमृद्धीकाकटुरोहिणी ॥

पित्तश्लेष्मज्वरेह्येषकपायोत्वानुलोमिकः ॥

अर्थ—त्रिफला, त्रायमाण, दास और कुटकी इनका काढा पित्तकफज्वरको
दूर करनेको देवे ॥

वत्सकादिकाढा

वत्सकंपद्मकाष्ठंचनागरंचंदनामृते ॥ पटोलंधान्यकं-
चैवमुस्तकरक्तचंदनं ॥ पाठांमूर्वांमृतांशुंठीमुशरिंकटु-
रोहिणीं ॥ समभागशृतंतोयंसर्वज्वरहरंपिवेत् ॥ पि-
त्तामृक्दाहशूलघ्नमम्लपित्तविनाशनं ॥

अर्थ—कुडाकीजाल, पद्मास, सोंठ, रक्तचदन, गिलोय, पटोलपत्र, घनिया,

किरमालादिकाढा

किरमालोवचाहिं गुवालकंधान्यकं निशा ॥ मुस्ताय-
ष्टिस्तथाभार्गीपर्पटः समभागतः ॥ अष्टावशेषितः का-
थोमधुनाप्रतिपाकतः ॥ श्लेष्मपित्तज्वरंहंतिरोगिणः प-
थ्यभोजिनः ॥

अर्थ—अमलतासको गूदो, वच, हिंग, नेत्रवाला, धनिया. हलदी, नागरमो-
या, मुलहठी, भारंगी, और पित्तपापडा ए समभागलेके अष्टावशेष काढाकरे उ-
समे सहत डालके पीवे और पथ्यसै रहे तो कफपित्तज्वरका नाश हो ॥

पटोलादिकाढा.

पटोलमुस्ताजलरक्तचंदनं तित्कारजो विश्वमुशीरवासकं ॥
संक्राथ्य तोयंकफपित्तजंज्वरं निहंति चाराच्वरितंतृपायुतं ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नागरमोया, नेत्रवाला, रक्तचंदन, कुटकी, पित्तपापडा,
सोठ, खस, और अडूसा इनका काढा कफपित्तज्वर और तृपा इनका नाश करे

गुडूच्यादिकाढा

गुडूचीनिवधान्याकपद्मकंचंदनान्वितं ॥

तृष्णादाहरुचिच्छर्दि सर्वज्वरहरो गणः ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकीछाल, धनिया, पद्मास, रक्तचंदन इनका काढा तृष्णा
दाह, अरुचि, यमन, और संपूर्ण ज्वरोंको नाश करे ॥

सुंठ्यादिकाढा

सनागरंपर्पटकंपिवेद्वासदुरालभम् ॥

किराततित्तकं मुस्तं गुडूचीं सदुरालभां ॥

अर्थ—सोठ, पित्तपापडा, अथवा धमासा इनका काढा अथवा चिरायता
नागरमोया, गिलोय, और धमामो इनका काढा पित्तकफज्वरवालेको देवे ॥

सुद्रादिकपंचतित्तकाढा

सुद्रामृताभ्यांसहनागरेण सपुष्करंचैव किराततित्तं ॥

पिथेत्कपायं भुवि पंचतित्तं विधिः समस्तज्वरमाशुहंति ॥

अर्थ—जवोंको अच्छीरीतिसँ वीन छरके मिर्गी निकालले फिर चौदह गुनेजलमें पककरे जब जों सीज जाय तब उस पानीको छानके प्यावे इसको वाक्यमंछ कहते है यह कफपित्तको दूरकरे कंठको हितकारी और रक्तपित्तको दूर करे ॥

मुस्तादिनिर्ग्रह

मुस्तापर्पटकैरातनिर्ग्रहेनप्रसाधितः ॥

कफपित्तज्वरहरयूपोधान्यपटोलयोः ॥

अर्थ—नागरमोथा, पित्तपापडा, और चिरायता, इनका निर्ग्रह अथवा भनिया और पित्तपापडा इनका यूप कफपित्तज्वरका नाश करे ॥

निंवादिग्रह

निंबकुलकग्रहस्तुहितःपित्तकफात्मके ॥

अर्थ—नीमकीछाल, और पटोलपत्र इनका यूप पित्तकफका नाश करता है

चंद्रशेखररस

शुद्धंसूतंसमंगंधंमरिचंटंकणंतथा ॥ चतुस्तुल्याशि-
लायोज्यामत्स्यपित्तेनभावयेत् ॥ त्रिदिनंभावयेत्तेनर-
सोयंचंद्रशेखरः॥द्विगुंजमार्द्रकद्रवैर्देयंशीतोदकंपुनः॥
तक्रौदनंचवृंताकंपथ्यंतत्रनिवेदयेत् ॥ त्रिदिनात्श्ले-
ष्मपित्तोत्थमत्युष्णनाशयेज्वरं ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, कालीभिरघ, सुहागा, तथा इन चारोकी बरो-
बर मनसिलले सबको एकत्रकर मछलीके पित्तेसँ तीनदिन खरलकरे तो यह चंद्र-
शेखर रस बनकर तयारहो, इसको२रत्ती बदरकके रससे देवे और ऊपर शीतल
जलपीवे तथा दही भात और वेंगन ए पथ्यमेदेतो तीनदिनमें कफपित्तज्वर नाश हो॥

संनिपातज्वरलक्षण

क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसंधिशिरोरुजः ॥ सस्त्रावेक-
लुपेरत्केनिर्भुंग्रेचापिलोचने॥सस्वनैस्रुजौकणौकंठः
श्लुकैरिवावृतः ॥ तंद्रामोहःप्रलापश्चकासश्वासोरुचि-
र्भ्रमः ॥ परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्त्रस्तांगतापरं ॥

नागरमोथा, सपेदचंदन, पाठ, मूर्वा, खस, और कुटकी ए समान भागलेके का-
ढा करे यह सर्वज्वर, रक्तपित्त, दाह, शूल, और अम्लपित्तको दूर करे ॥

अमृतादिकाढा

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः ॥ पटोलचंदना-
भ्यांचपिप्पलीचूर्णयुक्कृतं ॥ अमृताष्टकमेतच्चपित्त-
श्लेष्मज्वरापहं ॥ छर्द्यरोचकहृत्लासदाहृतृष्णानिवारणं ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकीछाल, कुटकी, नागरमोथा, सोंठ, पटोलपत्र, और दोनो चंदन इनके काढेमें पीपलकाचूर्ण मिलायके पीवे तो यह अमृताष्टकपित्त-
कफज्वर, वमन, अहाचि, हृत्लास, दाह, और प्यासको दूर करे ॥

वासास्वरस

सपत्रपुष्पवासायारसःक्षौद्रसितायुतः ।
कफपित्तज्वरंहंतिसास्रपित्तंसकामलं ॥

अर्थ—पत्ते और फूल सुद्धा अहूसेका रस लेवे उसमें मिश्री और सहत मि-
लाय पीवे तों कफपित्तज्वर, रक्तपित्त, और कामला दूर हो ॥

कटुकीचूर्ण

सशर्करामक्षमात्रांकटुकींचोष्णवारिणा ।
पित्वाज्वरंजयेज्जंतुःपित्तश्लेष्मसमुद्भवं ॥

अर्थ—कुटकीका चूर्ण एक तोला ले उसमें चार मासे मिश्री मिलाय गरम
जलसे लेवे तो पित्तकफज्वर दूर हो ॥

लाजमंड

लाजैर्वातंडुलैर्भ्रष्टैर्लाजमंडःप्रकीर्तितः ।
श्लेष्मपित्तहरोग्राहीपिपासाज्वरजिन्मतः ॥

अर्थ—खीलौंका अथवा भुने चावलौंका माँड निकालकर देवे यह कफ,
पित्त, प्यास, ज्वर, इनको दूर करे और ग्राही है ॥

वाद्यमंड

सुकंडितैस्तथाभ्रष्टैर्वाद्यमंडोयवैर्भवेत् ।
कफपित्तहरःकंठ्योरक्तपित्तप्रसादनः ॥

श्वरोंने कहा है (धातुपाक) कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्लादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे (धातुपाक) कहते हैं ॥

दोषपाकलण

दोषप्रकृतिवैकृत्यलघुताज्वरदेहयोः ।

इन्द्रियाणांचवैमल्यंदोषाणांपाकलक्षणम् ॥

अर्थ—दोषोंका स्वभाव पलटजाय, ज्वरका हलका होना, देह हलकी हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये (मलपाक) के लक्षण जानने (धातुपाक) और (मलपाक) होना केवल ईश्वरपर है इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है ॥

सन्निपातज्वरकेविशेषलक्षण

संनिपातज्वरस्यांतेकर्णमूलेसुदारुणः शोथःसंजाय-

तेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते ॥ ज्वरस्यपूर्वज्वरमध्यतो-

वाज्वरांततोवाश्रुतिमूलशोथः । क्रमादसाध्यःखलुक-

प्रसाध्यःसुखेनसाध्योमुनिभिःप्रदिष्टः ॥

अर्थ—संनिपातज्वर शांति होनेके पीछे कानकी जड़में दारुण सूजन पैदा होती है उस सूजनसे कोई रोगी बचे है प्राय यह मारही डाले है ॥१॥ यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तो असाध्यहै ज्वरके मध्यमें होय तो कष्टसाध्य है और ज्वरके अंतमें होय तो सुखसाध्य है । ऐसैं मुनीश्वरोंने कहा है ॥

साध्यासाध्यलक्षण

दोषेविवृद्धेनष्टेऽप्रौसर्वसम्पूर्णलक्षणः । सन्निपातज्वरो-

साध्यःकृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमें दोष (वात पित्त कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलतेहों, और अग्नि शांति होगई हो, वो सन्निपातज्वर असाध्य है । और इसैं विपरीत अर्थात् दोष बढे नहीं अल्प लक्षण हों अग्नि थोड़ी दीप्त हो वो सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

संनिपातकिकालमर्यादा

सप्तमेदिवसेप्राप्तेनवमैकादशेपिवा ॥ पुनर्घोरतराभू-

त्वाप्रशमंयातिर्हतिवा ॥ सप्तमीद्विगुणायावन्नवम्यै-

ष्ठीवनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ॥ शिरसो-
लोडनंतृष्णानिद्रानाशोहृदि व्यथा ॥ स्वेदमूत्रपुरी-
णांचिराद्दर्शनमल्पशः ॥ कृशत्वंनातिगात्राणांसततं-
कंठकूजनं॥कोष्ठानांश्यावरक्तानांमंडलानांचदर्शनं ॥
मूकत्वंस्रोतसांपाकोगुरुत्वमुदरस्यच ॥ चिरात्पाक-
स्तुदोषाणांसंनिपातज्वराकृतिः ॥

अर्थ—अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें सीत लगे, हाड, संधि, मस्तक इनमें शूल, अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र होजावे (अथवा टेढे नेत्र हों ये जेज्जटका मत है) कानोमें शब्द ओर पीडाहो, कंठमें कांटे पडजाय; तंद्रा, बेहोशी हो, जनर्थ बोलें, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हो, जीभ परिदग्धवत (काली) और खर्दरी गोत्रीभके समान तथा सिथिल (लठर) हो, पित्त और रुधिर मिला कफ धूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा बहुत लगे, निद्राका नाशहो, हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र मल इनका बहुतकालमें थोडा उत्तरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना, कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले लालकोठ और चकत्तोंका होना, शब्द बहुत मन्द निकले, कान नाक, मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, वात पित्त कफ इनका देरमें पाकहो (उदरस्य च) इस पदमें जो चकार है यासें वाग्भटने जो लिखे हैं कोन शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, नित्यरात्रिमें जागना, अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं. पसीना बहुत आवे और नहीं आवे, कभी गान करे, कभी नांचे. हंसे, रोवै, और चेष्टा पलटजाना इत्यादि जानने ये सन्निपात-पत्रके लक्षण जानने। सुश्रुत वाग्भटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है परंतु और आचारीनके मतसे उल्वणादि भेद करके १२प्रकारका है ॥

धातुपाकलक्षण

निद्रावलौजोरुचिर्वीर्यनाशो हृद्देदनागौरवताल्पचेष्टा ।

विष्टंभतायस्यकिलारतिःस्यात्सधातुपाकीमुनिभिःप्रदिष्टः ॥

अर्थ—निद्रा, बल, तेज, रुचि, वीर्य, इन्का नारा, हृदयमें पीडा, देह भारी, हीनचेष्टा जफरा मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको धातुपाकी मुनी-

१ कोठके लक्षण भालुकिने बहेहे यथा—“ वरटीदंशसंकाशः बंडूमान् लोहितोऽस्त्रकफ-
पित्तवान् क्षणितोत्तन्निविनाशः कांड इत्यमित्रीयते मात्रेः इति ।

अर्थ—धमासा, गोस्वरू, औरकटेरी, इनके काढेंमें सिद्ध कराहुआ आहार देवे। इससे दोष शांतिहो तथा बल और अग्नि ये बढे, और त्रिदोष रोगवालेको हित है ॥

लाजसक्तुक

लाजसक्तूनसमश्रीयात्सैंधवेनसमन्वितान् ।

तच्चेज्जीर्यत्यविघ्नेनज्वरीजिवित्ताध्रुवं ॥

अर्थ—त्रिदोषज्वरवालेको खीलका सतू-सैंधानोन ढालके देवे तो यदि यह निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निश्चय जीवे ॥

लाजसक्तुनिषेध

रक्तपित्तेहितत्वेनतृष्णादाहज्वरेषुच ।

लाजानांसक्तवःशीतानचतेत्रहितामताः ॥

अर्थ—खीलका सतू शीतल है यह रक्तपित्त, प्यास दाह और ज्वर इनपर हित है परंतु संनिपातपर नहीं देना चाहिये ॥

पित्तशमनकरनेकेकारण

निर्हरेत्पित्तमेवादौज्वरेषुसमवायिषु ।

दुर्निवारतरंतद्धिज्वरार्तेषुविशेषतः ॥

अर्थ—समवायि संनिपात ज्वरमें प्रथम पित्तका हरण करे क्यो कि यह दुर्निवार है ॥

शीतोदकसेचनकानिषेध

संनिपातेतुदाहार्तयःसिंचेच्छीतवारिणा ।

आतुरःसकथंजीवेद्धिपग्वासकथंभवेत् ॥

अर्थ—जो वैद्य संनिपातके दाहमें शीतल जलसै सिंचन करता है उसको वैद्यकै से कहना चाहिये और वह रोगी कैसे बचेगा ॥

शिरीषाद्यंजन

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैंधवैः ।

अंजनंस्यात्प्रवोषायसरसोनशिलारसैः ॥

अर्थ—सिरसके बीज, गौमूत्र, पीपर, कालोमिरच ओर सैंधानिमक इनको

कादशीतथा ॥ एपात्रिदोषमर्यादामोक्षायचवधायच ॥

अर्थ—संनिपातज्वर यदि सातवे, नवे, ग्यारवे, चौदवे, अठारवे और वार्दस वे दिन जादा होवे तो रोगी इस मर्यादाके दिवसोंमें मरे, और मर्यादा चूक जा वे तो रोगी जीवे, यह त्रिदोषकी मर्यादा है । जबसे त्रिदोष प्रकटहो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोष ज्वरोंकी मर्यादा है इस अवधिमें ज्वर जाता रहै अथवा मृत्युहोय ॥

दोषजनितकालमर्यादा

पित्तकफानिलवृद्ध्यादशदिवसद्वादशाहसप्ताहान् ।

हन्तित्रिमुंचत्याशत्रिदोषजोधातुमलपाकात् ॥

अर्थ—पित्तकफ और वात इनके पाकहोनेकी मर्यादा अनुक्रमसे दशमे, वा रवे, और सातवे दिवस होती है अतएव उसीउसी दिनमें धातुपाक होनेसे रोगी मरे मलपाक होनेसे रोगी रोगरहित होवे ॥

कट्फलादिपानम्

कट्फलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूपकं ॥ कटुकापद्मको-

शीरंविपचेत्कार्पिकंजले ॥ त्रिदोषदाहत्वृष्णाघ्नंपान-

मात्रेणपूजितं ॥ दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमं ॥

अर्थ—कायफल, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, कुटकी, पत्रास, और स्वस इन औषधोंको एक २ तोलालेकर काढा करके पीवेतो त्रिदोष दाह और वृष्णा इनको शांत करे और दीर्घकालसे आनेवाले ज्वररोगीको अमृतके तुल्यद्वै

दशमूलादिमंड

पाचनोदीपनःसोष्णोलाजमंडोयतःस्मृतः ।

दशमूलादिसिद्धःससंनिपातज्वरोहितः ॥

अर्थ—दशमूलके कादेसे सिद्ध कराहुआ सीलोंका मांड पाचन दीपन और गरम है अतएव संनिपातज्वरपर हित है ॥

दुःस्पर्शादिसिद्धान्न

दुस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रसिद्धमाहारमर्पयेत् ।

दोषशांतिवलाग्न्यर्थंत्रिदोषज्वरिणेपृथक् ॥

मातुलिंगादिनस्य

मातुलिंगार्द्रकरसंकोष्णंत्रिलवणान्वितं ॥ अन्यद्वा-
सिद्धविहितं नस्यंतीक्ष्णंप्रयोजयेत् ॥ तेनप्रभिद्यते-
श्लेष्माप्रभिन्नश्चप्रसिच्यते ॥ शिरोहृदयकंठास्यपा-
श्वरुकोपशाम्यति ॥

अर्थ—विजोरेका रस और अदरककारस, इनको गरम कर तीनों नोन (संघर-साह्यर-सारी) मिलायके नस्यदेवे, अथवा और जो सिद्धवैद्योकी कही-हुई तीक्ष्ण ओषधोंकी नस्यदेवे तो इससे कफ फटजावे और फटकर दयजाय कि जिससे शिर, हृदय, कंठ, मुख और पसवाडोंकी पीडा शांति हो ॥

कल्पतरुनस्य

मोहामयेनमुग्धं बोधयितुं यादृशः शक्तः ॥ क-
ल्पतरुनामधेयोरसो न तादृक्परं किंचित् ॥

अर्थ—जो मोहरूप रोगसे मूढ हो रहा है उसके चैतन्य करनेमें जैसा कल्प-तरुरस सामर्थ्य रखता है असा अन्य नहीं है ॥

द्राक्षादिलेपजिह्वापर

जिह्वातालुगलक्लोममरुत्पित्तेनवोच्छ्रितः ॥ तदास-
चाचरेच्छोषंजिह्वायाः खरतांतथा ॥ स्फुटनंचतदा-
जिह्वांलेपयेन्मधुपिष्टया ॥ द्राक्षयासाज्ययातेनजि-
ह्वास्यात्सरसामृदुः ॥

अर्थ—यदि वातापित्तके प्रभावसे जीभ, तालु, गला, और क्लोम (पिपासा-स्थान) ये उठ आवे तो ये शोषको करते हैं और जीभको सरदरीकरे, तथा जीभ फटजावे, इसमें जीभपर दास और घृत मिलाय सहतका लेपकरे तो जीभ रंसयुक्त नम्र हो जावे ॥

आर्द्रकादिकवलग्रह

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैधवं कटुकत्रयं ॥ आकंठाद्वारये-
दास्येनिष्ठिवेच्च पुनः पुनः ॥ तेनास्यहृदयक्लोमन्या-
पार्श्वशिरोगलान् ॥ लीनोप्याकृष्यते श्लेष्मालाघवं

एकत्र पीस अंजनकरे तो सन्निपातकी मूच्छा जाय, अथवा मनासिल और वक्क इनका लहसनके रसमें अंजन करे ॥

कस्तूरिकाद्यंजन

कस्तूरीमरिचंवाजिलालाचमधुनांजनं ।

तंद्रानिवारयत्याशुव्यूषंक्षिप्तंयथानसि ॥

अर्थ—कस्तूरी और मिरच इनको घोडेकी लारमें पीस सहत डालके अंजन करे तो तंद्रा शीघ्र दूर होवे । उसी प्रकार त्रिकुट्टाके चूर्णकी नासलेनेसे तंद्रा दूर होय

लंघन

सन्निपातज्वरीपूर्वसम्यग्लंघनमाचरेत् ।

शृतशीतंपिवेदंभःसमयेभेषजंभजेत् ॥

अर्थ—संनिपातज्वरवाला प्रथम उत्तम लंघन करे और पानीकी ओटाय शीतल करके बहुत प्यासमें पिवावे, और समय २ पर औषधि देवे ॥

शीतजलपाननिषेध

सन्निपातेनतृप्यंतंपार्श्वरुक्तालुशोषिणं ।

यःपाययेज्जलंशतिसमृत्युर्नरविग्रहः ॥

अर्थ—संनिपातज्वरवाले रोगीके शोष होय और कूसमें झूल तथा तालुआ सूखताहो इसमें जो पिय विना ओटाहुआ जल देवे वह मनुष्यरूप मृत्यु जानना,

वालुकास्वेद

वातश्लेष्मकृतेस्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।

स्निग्धस्वेदोनिपिद्वोत्रविनाकेवलवातजात् ॥

अर्थ—वातकफके विकारमें रूक्ष औषधोंसे स्वेद विधि करे किन्तु स्निग्ध स्वेद केवलवात रोग विना अन्यत्र निषेध है ॥

सैधवादिनस्य

सैधवंश्वेतमरिचंसर्पपाःकुष्ठमेवच ॥

वस्तमूत्रेणसंपिष्टंनस्यंतंद्रानिवारणं ॥

अर्थ—सैधानिमिक, सपेदमिरच, सरसो, और कूट इनको बकरके मूत्रमें पीस नास देवे तो संनिपातकी तंद्रा जाय ॥

अर्थ—ऊपर कहा अष्टांग अवलेह सहतसँ किंवा अदरखके रससँ चाटे तो स्वांमी, तंद्रा, और अत्यंत मोह इनका नाशकरे ॥

मधुनिषेध

सर्वेषुसंनिपातेपुनक्षौद्रमवचारयेत् ॥ शीतोपचारि-
क्षौद्रस्याच्छीतंचात्रविरुध्यते ॥ उष्णैर्विरुध्यतेसर्व-
विषान्वयतयामधु ॥ उष्णार्तमुष्णैरुष्णंचतंनिहंति-
यथाविषं ॥

अर्थ—संपूर्ण संनिपातोंमें सहत न देवे कारण कि सहत भक्षण करनेसँ उस-
पर शीतल उपचार करने चाहिये और संनिपातोंमें शीतल चिकित्सा विरुद्ध है
तथा सर्व उष्णपदार्थोंसँ सहतका विषके सदृश विरोध है अतएव जो मनुष्य अ-
सलमें गरमीसँ पीडित होय और फिर उसके ऊपर गरम उपचार होय तो वो
विषके समान मारने वाले होते है ॥

प्रक्रिया

संनिपातज्वरेपूर्वकुर्यादामकफापहं ।
पश्चाच्छ्लेष्मणिसंक्षीणेशमयेत्पित्तमारुतौ ॥

अर्थ—संनिपातज्वरपर प्रथम आम और कफनाशक औषधी देवे जब कफ
क्षीय हो जावे तब पित्तवादको शमन करे ॥

दुसराप्रकार

लंघनंवालुकास्वेदोनस्यनिष्ठीवनंतथा ॥
अवलेहंजनंचैवप्राक्प्रयोज्यत्रिदोषजे ॥

अर्थ—संनिपातमें लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, धूकना, अवलेह और अंजन ये
प्रथम करने चाहिये ॥

लंघनकासहन

दोषाणामेवसाशक्तिर्लघनेयासहिष्णुता ॥
कश्चिदोषविमुक्तो न लंघनंसहतेनरः ॥

अर्थ—लंघनोंका सहन होना यह दोषोंकीहीशक्ती है दोषमुक्त होनेपर री-
गोंको लंघन सहन नहीं होते ॥

चास्यजायते ॥ पर्वभेदोज्वरोमूर्छानिद्राश्वासगला-
मयाः ॥ मुखाक्षिगौरवंजाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥
सकृद्द्वित्रिचतुःकुर्याद्द्वारोगवलावलं ॥ एतद्विपर
मंप्राहुर्भेषजसन्निपातिनां ॥

अर्थ—अदरसके स्वरसमें सैधानिमक और त्रिकुटा मिलायके गोलीकरे, इस गोलीको मुखमें रक्खे, वारंवार कफ आवे उसको धूक देवे, इस प्रकार करनेसे मुख, हृदय, क्लोम, मन्यानाडी, पसवाढेकेभाग और गला इनसे लिहसा हुआ कफ निकले और शरीरमें हलका पना आवे, और गांठोका दूखना, ज्वर, मूर्च्छा, श्वास, गलेका रोग, मुखनेत्र, इनकी जडता, मुखसे पानीका गिरना, ये सब रोग दूर हो । यह प्रकार दोषोंको वलावल देखकर दो चारवार करे यह संनिपात रोगमें उत्तम है ॥

अष्टांगावलेह

ऊर्ध्वजत्रुगदग्नीयासासायमवलेहिका ।

अधोरोगहरीयासाभोजनात्प्राक्प्रयुज्यते ॥

अर्थ—जत्रुके ऊपरके रोगोंमें सायंकालमे अवलेह लेवे, और अधोभागके रोगोंमें भोजनके पूर्व लेनी चाहिये ॥

कट्फलादिवलेह

कट्फलंपुष्करंशृंगीव्योपंथासश्चकारवी ॥ श्लक्ष्णचूर्णकृतंचैतन्मधुनासहलेहयेत् ॥ एपावलेहिकाहंतिसंनिपातंसुदारुणं ॥ हिकांश्वासंचकासंचकंठरोगंचनाशयेत् ॥ एतद्योज्यंकफोद्रेकेचूर्णमार्द्रकजैरसैः ॥

अर्थ—कायफर, पुहकरमूल, काकडासिंगी, त्रिकूटा, घमामो, और अजमोद इनका कपडछन चूर्णकर सहतसे चाटे तो यह दारुण संनिपात, हिचकी, श्वास, सांसी, और कंठरोग—इनको दूरकरे । यदि कफ अधिक होवे तो इसी चूर्णको अदरसके रसके साथचाटना चाहिये ॥

आर्द्रकादिस्वरस

अष्टांगमधुनालिह्यादार्द्रकस्यरसेनवा ।

संमोहदारुणंहन्यात्तद्राकाससमन्वितं ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, कूठ, अजमायन, इन्द्रजो और कचूर, इनका समभाग चूर्णलेकर देहमें लगावे तथा संधीन्में विशेष मालिसकरे तो कफसें हुआ कंठावरीध और संनिपातज्वर ये शांति हो ॥

यवानिकाद्युद्धूलन

यवानिकावचाशुंठीपिप्पलीकारवीतथा ।

एतैरुद्धूलनंश्रेष्ठंत्रिदोषोत्थेज्वरेनृणां ॥

अर्थ—अजमायन, वच, सोठ, पीपर, और अजमोद, इनका चूर्ण संनिपातज्वर वालेके पसीने आनेमें लगाना उत्तम कदा है ॥

विषाद्युद्धूलन

विषभागोभवेदेकोमरीचंत्रिगुणंमतं ॥ आरण्योपलजं-

भस्मषोडशांशसमन्वितं ॥ एकत्रमीलितंचूर्णघूर्तस्व-

रसभावितं ॥ आतपेशोषितंतच्चशतिस्वेदहरंपरं ॥

अर्थ—विष १ भाग, कालीमिरच ३ भाग, आरने उपलोंकी भस्म १६ भाग, सबको मिलाय अंगोंमें लगावे तो पसीने बंदहोय ॥

चणकाद्युद्धूलन

अथवाचणकाभ्रघ्रायवानीचूर्णमिश्रिताः ।

वचोपगारजोयुक्ताःस्वेदसंशोषणामर्ताः ॥

अर्थ—अनेहुए चनाका चून, अजमायन, वच, और काली मिरच इनको मिलाय देहमें मालिसकरे तो पसीने आते हुए बंद हो जावे ॥

चटनी

सुरसार्जकनिर्याससमघुव्योपसंधवः ।

महत्श्लेष्मानिलोद्रेकेसंज्ञानाशविनाशनः ॥

अर्थ—तुलसीकारस, राल, त्रिकुटा, सैंधानिमक और सहत इनको मिलायके चाटेतो कफवातादिक ज्वस्को और मूर्च्छाको नष्ट करे ॥

लंघनविधि

त्रिरात्रंपंचगान्त्रंवादशरात्रमथापिवा ।

लंघनंसन्निपातेपुकुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥

(एककालमेदोप्रकारकीऔषधदेनेकानिषेध)
 क्रियायास्तुगुणालाभेक्रियामन्यांप्रयोजयेत् ॥
 पूर्वस्यांशांतत्रेगायांनक्रियासंकरोहितः ॥

अर्थ—एक औषधक्रियाका गुण न होय तो दूसरी औषधक्रिया करनी चाहिये परंतु पूर्वऔषधका वेग नष्ट हो जानेपर करे एककालमे दो औषधक्रिया हितकारी नहीं है ॥

अन्यप्रतीकार

तप्तायोलांछनंपंचताल्वादिपुत्रिदोषजे ॥ रुद्राभिषे-
 कोभूदेवभोजनंग्रहजाप्यतः ॥ मंत्ररक्षादिभिःकार्या-
 संनिपातेप्रतिक्रिया ॥

अर्थ—सन्निपातमें तालु आदि पांचस्थानोंमें तत्ते लोहकी सलाई आविसैं दा गदेवे, और रुद्राभिषेक, ब्राह्मणभोजन, ग्रहोंकाजप, तथा मंत्ररक्षादिक, रोगनाशार्थ अन्यउपाय कराने चाहिये ॥

कंटकार्यादिपाचन

कंटकारिद्वयंशुंठीधान्यकंसुरदारुच ॥

एभिःशुतंपाचनंस्यात्सर्वज्वरनिवारणं ॥

अर्थ—कटेरीदोनों, सोंठ, धनिया, और देवदारु इनका काढा सर्वज्वरमें पाचक तथा ज्वरनाशक है ॥

मनःशिलादिअंजन

तुरंगलालासहितामनःशिलानिहतितंद्रासकृदंजनेन ।

वव्वूलपत्राणिहरीतकीचसंस्वेदितास्वेदविकारहंत्री ॥

अर्थ—मनसिन्धुको घोड़ेकी लारमें घिमके अंजन करायेतो तंद्राका आना दूर हो और बबूरके पत्ते और हरद इनकी चाफ स्वेदहरण कर्त्ता जाननी ॥

भूनिंवादिमर्दनवउद्धूलन

भूनिंवकटुकाकुष्ठंकारवींद्रयवाःसठी ॥ एतानिसमभा-
 गानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ प्रस्वेदेकंठरोधेचसंघौ-
 मर्दनमिप्यते ॥ एतदुद्धूलनंश्रेष्ठंसनिपातहरंपरं ॥

कफ, इनका नाशक और शूल, गुल्म, श्वास, खाँसी, और क्षय इनपर उत्तम है

सप्तमुष्टिकयूप

यवकोलकुलित्थैश्वशुष्कमूलकमुद्गकैः ॥ धान्याकैर्वि-

श्वयुक्तैश्वयूषोवातज्वरापहः ॥ सप्तमुष्टिकइत्येषसंनि-

पातज्वरापहः ॥ कफवातामदोपघ्नःकंठहृदक्रशोधनः ॥

अर्थ—जौ, बेरकी गुठली, कुलथी, मूंग, सूखीमूली, और सोंठ, धनिया ये प्रत्येक चार ४ तोले लेकर यूप बनावे. तो सप्तमुष्टिक संज्ञक यूप वातज्वर, संनिपातज्वर, कफ, वायु, और आमदोष, इनको नाशकरे और गला, छाती, तथा मुख, इनको स्वच्छ करे ॥

कंपादिककीचिकित्सा

सन्निपातज्वरेयस्तुकंपतेप्रलपत्यपि ॥

किंचिदेवजनजानातिचिकित्सातस्यकथ्यते ॥

अर्थ—संनिपातज्वरमें कंप होय बकवादकरे, और बेहोस होय तो उसकी चिकित्सा कहते हैं ॥

अभ्यंजन

अभ्यंजयेत्पुराणेनसर्पिषापूर्वमेवतं ॥ बला-

रास्नागुडन्याद्यैस्तैलैश्चपरिषेचयेत् ॥

अर्थ—प्रथम संनिपातवाले रोगीके अंगमें पुराना घीलगावे किवा बला रास्ना, गिलोय, इनका तेल अंगमें लगावे ॥

वर्तकादिरस

वर्तकोवर्तकालावोवार्तीकस्ततिरीःशशः ।

कुलिंगश्चरसेनैपांतर्पयेतयथानलं ॥

अर्थ—वतक, विचित्ररंगकाचिडा, लवा, बटेर, तीतर, शशा और चिडा इनके मांसका रस रोगीका अग्निबल देखके देवे ॥

सन्निपातीमांसनिषेध

सन्निपातेक्षुधार्तयोभोजयेत्पिशितौदनैः ।

सकथंभिषगाख्यातिलभतेभिषजाधमः ॥

अर्थ—संनिपातरोगीके अच्छाकरनेको तीन, पांच, किंवा दसदिन लंघन करावे

लंघन

शस्तंसुलंघितस्यादौविधायकवलग्रहं ॥

अर्थ—रोगीको लंघन करनेपर पूर्वोक्त कवल मुखमें धरना चाहिये ॥

अतिलंघनकेविचार

कफपित्तद्रवौधातूसहेतेलंघनमहत् ।

आमक्षयादूर्ध्वमापिवायुर्नसहेतेक्षणं ॥

अर्थ—कफ और पित्त ये द्रवधातु है अतएव आमके क्षयपर्यंत बहुत लंघन सहन होते है परंतु वादीवालेको बहुत लंघन क्षणमात्र सहन नहीं होते ॥

लंघितकोअन्न

ग्राम्येगुरुत्वंश्रद्धाचविकृतिर्हीनलंघिते ॥ प्रकांक्षाला-

घवंग्लानिःस्वच्छतासुप्रसन्नता ॥ उपद्रवनिवृत्तिश्च

सम्यक्लंघितलक्षणं ॥ संमोहःसंधिशैथिल्यंवातरु-

क्चातिलंघिते ॥

अर्थ—हीनलंघन होनेसे मैधुन करनेमें अश्रद्धा तथा अंगोंमें भारीपना एलक्षण होते है । उत्तम लंघन होनेसे अन्नकी इच्छा अंगोंका हलका होना, ग्लानि, स्वस्थता, सुप्रसन्नता, तथा ज्वरोपद्रवोंका नाश ए लक्षण होते है । और अतिलंघन होनेसे मोह, संधीका शिथिलपना, वायुके विकार ए होते है ॥

पंचमुष्टिकग्रूप

पंचमुष्टिकग्रूपेणत्रिकंठकलतेनच ॥ आद्रोपशमना-

न्नित्यंभिपक्श्चेष्टस्तुसाधयेत् ॥ यवकोलकुल्लिथानां-

सुद्रमूलकशुंठिनां ॥ एकैकमुष्टिमादायपचेदष्टगुणेज-

ले ॥ पंचमुष्टिकइत्यपवातपित्तकफापहः ॥ अस्यत-

शूलगुल्मेचश्वासेकासेज्वरेक्षये ॥

अर्थ—गोमरु डालके पंचमुष्टिकग्रूप द्रोप शमन पर्यंत देवे, पंचमुष्टिकको बहने है—जौं, बेरकी गुठली, कुल्पी, मूंग, मूंगी और मोंट, ये चार २ तांठे केय तथा अठारु पानीमें काटा करे उसको पंचमुष्टिकग्रूप मंडा है. यह बानपिच,

वातोल्बणसन्निपात

संध्यस्थिशिरसःशूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः ॥ वा-
तोल्बणेस्याद्वचनगुत्तृष्णाकंठास्यशुष्कता ॥

अर्थ—वाताधिक्य और कफपित्तहीन असे संनिपातमें संधि, दह्ही, और मस्तकमें, शूल, प्रलाप, देहमेंगौरव, भ्रम, प्यास, तथा गला और मुखका सूखना ये लक्षण होतेहैं ॥

वातोल्बणसंनिपातकीचिकित्सा

पंचमूलीकषायंतुदद्याद्वातोत्तरेज्वरे ॥ भृशो-
ष्ण्वासुखोष्ण्वाद्यद्वादोपवलावलं ॥

अर्थ—वाताधिक्य संनिपातमें पंचमूलकाकाढा गरम अथवा सुखोष्ण ऐसे दोषोका बलावल विचारके देवे ॥

मुस्तादिकाढा

समुस्तंपंचमूलंचदद्याद्वातोत्तरेज्वरे ॥

भृशोष्ण्वासुखोष्ण्वाद्यद्वादोपवलावलं ॥

अर्थ—नागरमोथा और पचमूल इनका काढाकरके इसे दोपवली होयतो गरम और निर्बल होयतो सुखोष्ण देवे ॥

कट्फलादिकाढा

कट्फलाब्दवचापाठपुष्कराजाजिपपटैः ॥ देवदार्वभ-
याशृंगिकणाभूनिबनागरैः ॥ भांगिकर्लिंगकटुकासठी-
कटूतृणधान्यकैः ॥ समांशैःसाधितकाथोहिग्वार्द्रक-
रसैर्युतः ॥ कर्णमूलोद्भवंशोथंहंतिमन्यागलाश्रयं ॥
कफत्रातज्वरंश्वासंकासंहिकांहनुग्रहं ॥ गलगंडगंडमा-
लांस्वरभेदंकफात्मकं ॥ शिरोगुरुत्वंवाधिर्यवृद्धिंचक-
फमेदसोः ॥ दशमूलज्वरान्होपःसन्निपातज्वरान्जये-
त् ॥ अभिन्यासमसंज्ञांचकट्फलादिनिहंतिच ॥

अर्थ—कायफर, नागरमोथा, वच, पाड, पुहकरमूल, जीरा, पित्तपापडा, दे-
वदार, हरड, काकडासिंगी, पीपर, चिरायता, मोंठ, भारगी, इन्द्रजो, कुटकी,

अर्थ—सन्निपातज्वरमें क्षुधितरोगीको जो वैद्य मांस और भातखानेको देता है, वह अधम वैद्यलोकमें प्रतिष्ठाको कैसें प्राप्त होगा॥

सुवर्णादिलेप

सुवर्णमुक्तारजतप्रवालंकस्तूरिकाकुंकुमरोचनंच ॥ व-
राटरुद्राक्षमयूकविल्वंकुष्ठंचखजूरपुनर्नवाच ॥ द्रा-
क्षाकणानागरपुत्रजीवीसारंगशृंगंकतकस्यबीजं ॥
एरंडमूलंशरशीर्षकंचमयूरिकाश्वेतपुनर्नवाच ॥ स्त-
न्येनपिष्ट्वाकुहसन्निपातेलेपःसदासर्वगदाच्छिहंति ॥

अर्थ—सोना, मोती, चांदी मूंगा, कस्तूरी, केशर, गौरोचन, कौडी, रुद्राक्ष मुलहठी, बेलगिरी, कूठ, खजूर, सोंठ, दास, पीपल, सोंठ, जीयापोता, हरणके सींग, निर्मलीकेबीज, अंडकीजड, सरपतेकी जड, अंवाडा, और विसखपरा, ये सब औषधस्त्रीके दूधसें पीस लेपकरे तो सर्व संनिपातके विकार दूर हो ॥

चिकित्साप्रक्रिया

श्लेष्मनिग्रहमेवादौकुर्याद्द्वयादौत्रिदोषजे ॥ निरस्ते-
श्लेष्मणिह्यस्यस्रोतःसूद्घाटितेषुच ॥ लाघवंजायते-
सद्यस्तृष्णाचैवोपशाम्यति ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको जीते कफके घटनेपर तथा शिराओंके मार्ग खुलनेपर शरीरमें हलकापना आता है और प्यास दूर होय ॥

अन्यसन्निपातनिदाने

एकोल्वणास्त्रयस्तेस्युद्घर्षुल्वणाश्वतथेतिषट् ॥ उ-
ल्वणश्वभवेदेकोविज्ञेयःसतुसप्तमः ॥ प्रवृद्धमध्यही-
नाश्ववातपित्तकफैश्वषट् ॥ सन्निपातज्वरस्येवंस्यु-
र्विशेषास्त्रयोदश ॥

अर्थ—संनिपातमें कफ, वात, और पित्त इन मल्येक दोषोंके उल्वण होनेसें तीन, दो दोषोंके उल्वणसें तीन, तथा तीन दोषोंके उल्वणोंके मिलनेसे एक, सब सातहए। ओर प्रवृद्ध, मध्य, और हीन जे घातापित्त ओर कफदोष इनके पर्याय करके छः. अंसं सन्निपातके तेरह भेद होते हे ॥

णउच्यते ॥ अष्टादशांगमुदकंसन्निपातज्वरापहं ॥
पित्तोतरेसन्निपातेहितमुक्तमनीषिभिः ॥ मन्यास्तं-
भेउरोघातेहनुस्तंभेशिरोग्रहे ॥

अर्थ—नागरमोया, पित्तपापडा, स्वस, देवदार, त्रिफला, धमासा, नीली, क-
षीला, निसोथ, चिरायता, पाद, खरेटी, कुटकी, मूलहटी, पीपरामूल, यह मु-
स्तादि अष्टादशांग गण इसका शीतल काढा संनिपातज्वरका, नाशकरे, और
यह ऋषियोंने पित्ताधिक संनिपात, मन्यानाडीके स्तंभ, उरोघात, हनुस्तंभ, इ-
नपर कहा हैं ॥

किरातादिकाढा

किरातातित्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेपंजं ॥
पाठोदीच्यंमृणालंचगृतंपित्ताधिकेपिवेत ॥

अर्थ—पित्ताधिक संनिपातमें चिरायता, कुटकी, नागरमोया, गिलोय, सोंठ,
पाद, नेत्रवाला, और कमलगट्टा, इनका शीत काढादेये ॥

शक्यादिकाढा

शठीपुंकरमूलंचव्याघ्रशृंगीदुरालभा ॥ वत्सकस्यच-
वीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥ एपशक्यादिकोवर्गःसन्नि-
पातज्वरापहः ॥ कासंश्वासंदिवानिद्रांरात्रौजागरणं-
तथा ॥ मुखशोषंतृपांदाहंनिद्रोपंचनियच्छति ॥

अर्थ—कचूर, पुहकरमूल, कटेरी, काकडासिंगी, धमासों, इन्द्रजो, पटोलपत्र
और कुटकी, यह शक्यादिवर्ग संनिपातज्वर, दमा, सर्सी, दिनकीनिद्रा, रात्रि
में जागना, मुखशोष, प्यास, दाह, और त्रिदोष इनका नाशकरे ॥

कफोल्बणसन्निपातनिदान

आलस्यारुचिदृष्टासदाहवम्यरतिभ्रमैः ।
कफोल्बणंसन्निपातंतंद्राकासेनचादिशेत् ॥

अर्थ—कफाधिक संनिपातमें आलस्य, अरुचि, दृष्टास, दाह, वमन, बेचैनी
भ्रम, सन्द्रा, और सर्सी एलक्षण होते हैं ॥

कञ्चूर, रोहिपट्टण, और धनिया ये औषध समान भागले काढाकरके, उसमें हींग और अदरसका रस ढालके पीवेतो, कर्णमूल, गर्दन और गलाइनकीसूजन, कफवातज्वर, श्वास, खांसी, हिचकी, हनुग्रह, गलगंड, गंडमाला, कफजन्य-स्वरभेद, मस्तककीपीडा, बहरापना, कफ और मेदइनकीवृद्धि, दशप्रकारकाज्वर, सन्निपात, अभिन्यास, और संज्ञानाश इनको यह कट्फलादिकाढा नाशकरताहै ॥

पित्तोत्त्रणसन्निपातनिदान

रक्तविण्मूत्रतादाहोस्वेदस्तृड्वलसंक्षयं ॥

मूर्च्छाचेतित्रिदोषेस्याल्लिंगंपित्तेगरीयसि ॥

अर्थ—पित्तोत्त्रणसन्निपात होनेसे मलमूत्रका लालहोना, दाह, पसीने, प्यास, बल, क्षय और मूर्च्छा ए लक्षण होते है ॥

पित्तोत्त्रणसं०चिकि०काढा

परुपकाणित्रिफलादवदारुसकट्फलं ॥ चंदनंपद्मकंचै-
वतथाकटुकरोहिणी ॥ पृश्निपर्णीशतत्वेभिरूपितंशी-
तलंजलं ॥ पित्तोत्तरेनृणामेतत्सन्निपातेचिकित्सितं ॥

अर्थ—फालमे, त्रिफला, देवदारु, कायफर, चंदनलाल, पद्मास, कुटकी और पिठवन ये औषध समान भागले रात्रिको शीतल जलमें भिगोयबेबे, प्रातःफाल काढाकर शीतल होनेपर पीवेतो पित्ताधिक सन्निपात दूरहो ॥

चंदनादिपानी

चंदनंपद्मकंचैवतथाकटुकरोहिणी ॥ पृथक्पर्णीसमं-
सिद्धमुपितंशीतलंजलं ॥ पित्तोत्तरेनृणामेतत्सन्नि-
पातेचिकित्सिते ॥

अर्थ—लाल चंदन, पद्माम, कुटकी, और पृश्निपर्णी, एगमानभागले रात्रिमें शीतल जलमें भिगोयबेबे, प्रातःकाठ उस जलको छानके पीवेतो पित्ताधिक सन्निपात दूरहो ॥

मुस्ताद्यष्टादशंग

मुस्तापर्पटकोशीरिदवदारुमहापथं ॥ त्रिफलायन्व-
यासधनीलीकंपिष्टकंत्रिवृत् ॥ किराततिक्तकंपात्रा-
बलाकटुकरोहिणी ॥ मधुकंपिप्पलीमृलंमुस्ताद्यंग-

सभ्रूनिंबामृतापाठैस्त्रिदोषज्वरजिज्जलं ॥

अर्थ—सोठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आवला, नीमकी, छाल, पटोलपत्र, कुठकी, इंद्रजो चिरायता, गिलोय, और पाढ इनका काढा त्रिदोषज्वरका नाशकरे ॥

वातपित्तोल्बणसन्निपात

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोतिरुक् ॥

वातपित्तोल्बणविंध्यालिंगमंदकेफज्वरे ॥

अर्थ—भ्रम, प्यास, दाह, गौरव, मस्तकपीडा, ये वातपित्तोल्बण ओर हीन-कफ असे सन्निपातमें लक्षण होते है ॥

वातपित्तोल्बणचिकित्सा

वातपित्तहरंवृष्यंकनीयःपंचमूलकं ॥

तत्क्वाथोमधुनाहंतिवातपित्तोल्बणज्वरं ॥

अर्थ—वातपित्तनाशक, और वृष्य असे लघुपंचमूल है, अतएव इसका काढा सहत डालके देय तो वातपित्तोल्बण सन्निपातका नाशहोय ॥

वातश्लेष्मोल्बण

शैत्यंकासोरुचिस्तंद्रापिपासादाहरुक्तथा ॥

वातश्लेष्मोल्बणव्याधौलिंगपित्तवरेविदुं ॥

अर्थ—वातकफाधिक और हीनपित्त असा सन्निपात होनेसे सरदी, सासी-अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह और पीडा ए लक्षण होते है ॥

चिकित्सा.

किराततित्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजं ॥

चातुर्भेद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मोल्बणज्वरे ॥

अर्थ—चिरायताकडुआ, नागरमोथा, गिलोय, और सोठ, इनका काढा फ-रके वातकफोल्बणज्वर, वालेको देय, इसको चातुर्भेद्र कहते है ॥

कफोल्बणचिकित्सा

बृहत्यौपुष्करंभांगीशठीशृंगीदुरालभा ॥ वत्सदस्यंच-
वीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥ बृहत्यादिगणःशस्तःस-
न्निपातेकफोत्तरे ॥ श्वासादिपुचसर्वेषुहितःसोपद्रवेषुच ॥

अर्थ—दोनो कटेरी, पुहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिगी, धमासो, इन्द्रजो, पटोलपत्र, और कुटकी यह बृहत्यादिगण कफादिकसंनिपात, दम और सर्वउपद्रवपर हितकारक है ॥

कफोल्बणोपरक्वाथ

कफोत्तरेबृहत्यादिगणश्चदशमूलजः ।

परूपकाणित्रिफलादेवदारुसकट्फलं ॥

अर्थ—कफाधिक संनिपातपर बृहत्यादिगण, दशमूल, फालसे, त्रिफला, देव-
दारु, और कायफल इनका काढा देय ॥

ऋत्युल्यणसन्निपात

सर्वलक्षणसंयुक्तऋत्युल्यणस्तुमतोद्युवैः

अर्थ—सर्वलक्षणोंवाकें युक्त होय उसको ऋत्युल्यणसन्निपात जानना ॥

नागरादिकाढा

नागरंधान्यकंभांगीपद्मकरक्तचंदनं ॥ पटोलःपित्तुमं-

दश्चत्रिफलामधुक्रंवला ॥ शर्कराकटुकामुस्तागजा-

व्हाव्याधिघातकः ॥ किराततिक्तममृतादशमूलीनि-

दिग्धिका ॥ योगगजोनिहंत्येपःसन्निपातज्वरापहः ॥

सन्निपातसमुत्थानंमृत्युमप्यागतंजयेत् ॥

अर्थ—सोठ, धनिया, भारंगी, पद्मास, लालचंदन, पटोलपत्र, नीमकीछाल, बिक्राना, मुलहठी, मटेरी, मिश्री, कुटकी, नागरमोधा, गजपीपल, अमरनाग, चण्डो चिरायतो, गिलोय, दशमूल, और कटेरी इनका काढा मृत्युसमानभी सन्निपातका नाशकरे ॥

व्योपादिनाढा

व्योपाद्दत्रिफलाग्निप्रपटोलीतिक्तवत्सवैः ।

(हीनपित्तमध्यकफश्लेष्माधिकसं)

शीतगौरवतंद्राश्वप्रलापोस्थिशिरोतिरुक् ॥

हीनपित्तेमध्यवातेलिंगंश्लेष्माधिकेमत्तं ॥

अर्थ—हीनपित्त मध्यवात, और कफाधिक संनिपात होनेसे शीतलगे, अंगोंमेंगौरवता, तन्द्रा, प्रलाप, हड्डी और मस्तकमें पीडा ए लक्षण होते है ॥

(कफहीनमध्यवातवपित्ताधिकसं०)

पर्वभेदोग्रिदौर्बल्यंतृष्णादाहोरुचिभ्रमः ॥

कफेहीनेमध्यवातेलिंगंपित्ताधिकेविदुः ॥

अर्थ—कफहीन, मध्यवात और पित्ताधिक संनिपातमें सधियोंमें पीडा, मंदाग्नि, प्यास, दाह, अरुचि, और भ्रम ए लक्षण होते है ॥

(हीनकफमध्यपित्तववाताधिकसं०)

कासश्वासप्रतिश्यायमुखशोपोतिपाश्वरुक् ॥

कफेहीनेमध्यपित्तेलिंगंवाताधिकेस्मृतम् ॥

अर्थ—हीनकफ. मध्यपित्त और वाताधिक संनिपातमें सांसी, श्वास, सरे कमा, मुखशोप, और पसवाढोमें अत्यंत पीडा, ये लक्षण होते है ॥

(छहोंकिष्कश्लोकसैचिकित्सा)

प्रवृद्धं कर्षयेद्दोषं क्षीणं संवर्द्धयेद्विपक्व ॥

चिकित्सेयं विधातव्यादोषयोर्हीनवृद्धयोः ॥

अर्थ—जो दोष बढ़ाहो उसको क्षीण करे, और क्षीणदोषको बढ़ावे. इसमकार वैद्य क्षीण वृद्धदोषोंकी चिकित्साकरे ॥

प्रवृद्धेशमिते दोषे मध्यमः स्वयमेव हि ॥

शान्तियातिशमं नीतित्वनुबंध्यनुबंधवत् ॥

अर्थ—बड़े दोषके शान्तिहोनेसे मध्यमजो दोष है सो स्वयं शान्ति होजाते है जैसे सायीका शान्तहोनेसे अर्थात् दूसरा दुर्बलहोनेसे आपभी शान्ति होजाता है ॥

द्वात्रिंशंगकाथ

भार्गीभूनिबनिवाघनकडकवचाव्योपवासाविशाला रा-

पित्तकफोल्बण

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोस्थिवेदना ॥

मंदावातेव्यवस्यंतिलिंगंपित्तकफोल्बणे ॥

अर्थ—पित्तकफाधिक और हीनवात ऐसेसंनिपातके होने से वांती, शीत वा रंवार दाह, प्यास, मोह और हृद्दियोंमें पीडा, ए लक्षण होते है ॥

चिकित्सा

पर्पटःकट्फलकुष्ठमुशीरंचंदनंजलं।नागरंमुस्तकंशृंगी-
पिप्पल्येषांशृतंहितं ॥ तृष्णादाहाग्निमांशेषुपित्तश्ले-
ष्मोल्बणेज्वरे ॥

अर्थ—पित्तपापडा, कायफर, फूठ, खस, छालचंदन, नेत्रवाला, नागरमोया सोठ, काकडा सिंगी, और पीपल, इनका काढा प्यास, दाह, मंदाग्नि और पित्तकफात्मकज्वर इनका नाश करे ॥

(हीनवातमध्यपित्तवश्लेष्माधिकसं०)

प्रतिश्याछर्दिरालस्यंतंद्रारुच्यग्निमर्दिवं ॥

हीनवातेमध्यपित्तेचिन्हंश्लेष्माधिकेमतं ॥

अर्थ—कफाधिक हीनवायु और मध्यपित्त अैसे सन्निपातहोनेसे, सरेकमां, व-
मन, आलस्य, तंद्रा, अरुचि, और मंदाग्नि ये लक्षण होतेहै ॥

(हीनवातमध्यकफवपित्ताधिकसं०)

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्दाहस्तृष्णाभ्रमोरुचिः ॥

हीनवातेमध्यकफेलिंगंपित्ताधिकेमतं ॥

अर्थ—पित्ताधिक, हीनवायु, ओर मध्यकफ, अैसे सन्निपातके होनेसे नेत्र मूत्र
और त्वचा ये पीलेहो, तथा दाह, प्यास, भ्रम और अरुचि ये लक्षण होते है ॥

(हीनपित्तमध्यकफवाताधिकसं०)

शिरोरुग्वेपथुश्वासप्रलापच्छर्द्यरोचकाः ॥

हीनपित्तेमध्यकफेलिंगंवाताधिकेमतं ॥

अर्थ—हीनपित्त, मध्यकफ और वाताधिक अैसे सन्निपातमें मस्त्वकद्रूल, फं-
प, श्वास, प्रलाप, वमन और अरुचि ए लक्षण होते है ॥

अर्थ—दशमूल, पुहकरमूल, और पीपल इनका काढा संनिपाताज्वरपर देवे तो श्वास, खांसी, और सन्निपात इनका नाशकरे ॥

सन्निपातपररेचन

विल्वकंत्रिवृतादंतीसमूलंचतुरंगुलं ॥ पक्ककपायवि-
स्त्राव्यनीलाचूर्णविमिश्रितं ॥ ससर्पिष्कंपिवेत्तूर्णसंनि-
पातेविरेचनं ॥

अर्थ—बेलगिरी, निसोथ, दंती, और अमलतासकागूदा, इनकाकाढा करके इसमें नीलकाचूरा और धीमिलाय देवेतो यह संनिपातका नाशकरे ॥

संज्ञानाशचिकित्सा

कंपःप्रलपनयस्यसंज्ञानाशश्चदारुणः॥रसैश्वलाववर्तै-
श्चकुर्लिंगैःशशतित्तिरैः ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेनसर्पिपा-
भ्यंजयेन्नरं ॥ बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्चपरिपचयेत् ॥

अर्थ—जो रोगी कंप, प्रलाप, और संज्ञानाश इनके युक्तहो इसको लवा, ब-
टेर, चिड़ा, कबूतर, और तीतर, इनके मांसरस प्रथम पिलायके फिर अंगोंमें
पुरानेघीकी मालिस करावे । तथा खरेटी, रासना, और गिलोय इनका तेल
देहमें लगावे ॥

विल्वादिकाढा

विल्वग्निमथःस्योनाकःकाश्मरीपाटलातथा ॥ शा-
लिपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीद्वयगोक्षुरैः । उभयदशमूल-
स्यात्सन्निपातहरोगणः ॥

बेलगिरी, अरनी, टेदू, कंभारी, पाढ, सालपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनोकटेरी, और
गोखरू, ये दशमूल है इनका काढा सन्निपात नाशक है ॥

शुंठ्यादिकाढा

शुंठीदासुशठीरजोवृहतिकात्तिकाकिरातांबुदानंताभि-
र्जानितःकपायकवरःकृष्णामद्युभ्यांयुतः ॥ निःशेषंत्रि-
तयोद्भवज्वरहरोजीर्णज्वरस्यांतकृत्कासारिर्विपमाप-
होनिमदितःशुंठ्यादिकःसूरिभिः ॥

स्नानंतापटोलीसुरतरुजनीपाटलातिंडुकैश्च ॥ ब्राह्मी-
 दावीगुडूचीत्रिवृतमतिविषापुष्करत्रायमाणैर्व्याघ्री-
 सिंहीकलिंगैस्त्रिफलशठियुतैःकल्पितस्तुल्यभागैः ॥
 काथोद्गात्रिंशनामात्रिभिरधिकदशान्सन्निपातान्निहं-
 ति शूलंकासादिहिक्काश्वसनगदरुजाध्यानविध्वंमका-
 री ॥ ऊरुस्तंभांत्रवृद्धीगलगदमरुचिसर्वसंधिग्रहार्ति-
 मातंगौर्धान्निहन्यान्मृगरिपुरिहचेद्रोगजालंतथैव ॥

अर्थ—भारंगी, चिरायता, नीमकीछाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, अहुसा, इंद्रायणकागूदा, रासना, घमासा, पटोलपत्र, देवदारु, हलदी, पादल, कुचला, ब्राह्मी, दारुहलदी, गिलोय, निसोथ, अतीस, पुहकरमूल, त्रायमाण, दोनोकटेरी, इन्द्रजो, हरद, वहेडा, आमला, और कचूर, ये सब औषध समानभागले काढाकरे, इसको द्वात्रिंशनामकाथ कहते है यह तेरह प्र, फारके संनिपात, शूल, साँसी, हिचकी, श्वास, अफरा, उरुस्तंभ, अंत्रवृद्धि, गलेकारोग, अरुचि, ओर संधिग्रह, इनको जैसे, हाथियोंकी पंक्तिको सिंह नाश करताहै इसमकार यह काढा नाशकरे ॥

अष्टादशांगकाढा

भूनिवदारुदशमूलमहौषधाव्दतिकेन्द्रवीजधनिकेभक-
 णाकपायः ॥ तंद्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासा-
 दियुक्तमखिलज्वरमाशुहंति ॥ अष्टादशांगइत्येपमृ-
 त्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजो, ध-
 नियां, और गजपीपल. इनका काढा करके पीवेतो तंद्रा, प्रलाप, सामी, अरु-
 चि, दाह, मोह, श्वास, इनकरके युक्त मरुज्वरोंका नाशकरे यह अष्टादशांग
 काढा मृत्युतुल्य ज्वरका नाशकरे ॥

द्वादशांग

दशमूलीकपायस्तुसपौष्करकणान्वितः ॥
 सन्निपातज्वरदेयःश्वासकाससमन्विते ॥

दाव्याद्यष्टादशांग

दारुनागरभूर्निबधान्यतिकाकलिंगजैः ॥ गजाब्हाद-
शमूलाव्दैर्मृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥ अष्टादशांगइत्येपः
सन्निपातज्वरापहः ॥ कासहृद्ग्रहपाश्वातिश्वास-
हिक्रावमीहरः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंठ, चिरायता, धनिया, कुटकी, इन्द्रजौ, गजपीपल, द-
शमूल, और नागरमोथा, इन अठारह औषधोंका काढा देयतो अत्यंत कठिन
मृत्युके समान ज्वर, सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयशूल, पसवाडेकीपीडा, श्वास,
हिचकी, और वमन इनका नाशकरे ॥

गुडूच्यादिकाढा

गुडूचीचंदनंपद्मनागरेद्रयवासकं ॥ अभयारग्वधोशी-
रपाठाधान्याव्दरोहिणी ॥ कषायंपाययेदेतंपिप्पली-
चूर्णसंयुतं ॥ तंद्राकासज्वरश्वासपिपासादाहनाशनः ॥
विण्मूत्रानिलविष्टंभन्निदोषप्रभवस्यत् ॥ गुडूच्यादि-
गणोह्येपःपाचनोदीपनःपरः ॥

अर्थ—गिलोय, चंदन, पुहकरमूल, सोंठ, इन्द्रजौ, घमासा, हरद, अमलता-
सका गूदा, नेत्रवाला, पांड, धनिया, नागरमोथा, कुटकी, इनका काढा कर उ-
समें पीपलका चूर्ण मिलायके देवेतो तन्द्रा, खांसी, ज्वर, श्वास, प्यास, दाह,
मलमूत्र, वायुकारुकना, विदोषजन्यज्वर, इनको यह गुडूच्यादिगणकाढा दूरकरे
और दीपन पाचनहै ॥

अमृतादिकाढा

अमृतादशमूलीभ्यांसाधितंविधिवज्जलं ॥

संनिपातज्वरंहन्यान्नयोदशविधंनृणां ॥

अर्थ—गिलोय और दशमूल इनका काढा तेरहप्रकारके सन्निपातज्वरोंको दूरकरे

विश्वादिकाढा

विश्वशुंठीदशमूलीच्छिन्नापाठाचपिप्पलीद्रयैवः ॥

सकिराततिक्त्वासाशमयातिहतौजसंसद्यः ॥

अर्थ—सोंठ, देवदारु, कचूर, पित्तपापडा, कटेरी, कुटकी, चिरायता, नागरमोथा, और धमासा इनका काढा पीपलका चूर्ण और सहतडालके देवे तो निःशेष संनिपात, जीर्णज्वर, और खाँसी इनको यह शुक्यादि काढा नाशकरे ॥

अर्कादिकाढा

अर्कानंताकिरातामरतरुसनासिंधुवारोग्रगंधातर्का-
रीशिभुपंचोषणघुणदयितामार्कवाणांकषायः ॥ सद्य-
स्तीवान्त्रिदोषानपहरतितथामारुतंदेतबधंशैत्यंगा-
त्रेपुगाढंश्वसनकसनकंसूतिकावातरोगान् ॥

अर्थ—आककीजड, धमासो, चिरायता, देवदारु, रासना, निर्गुंडी, वच, अरनी, सहजना, पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अतीस, और भाँगरा, इनका काढा देयतो घोर त्रिदोष, धनुर्वात, वतीसीकाभिचना, देहकी अत्यंत सरदी, श्वास, खाँसी, प्रसूतके और घादीके सर्वरोगोंको नाशकरे ॥

तिक्तादिकाढा

तिक्तातिक्तकपर्पटामृतसठीरास्त्राकणापौष्करं त्रायं-
तीवृहतीसुरौपयशिवादुःस्पर्शभार्गीकृतः ॥ काथो-
नाशयतित्रिदोषनिकरंस्वापंदिवाजागरंनक्तंतृणमुख-
शोपदाहकसनश्वासानशेषानपि ॥

अर्थ—कुटकी, चिरायता, पित्तपापडा, गिलोय, कचूर, रास्त्रा, पीपल, पुहकर मूल, त्रायमाण, कटेरी, देवदारु, सोंठ, हरड, धमासो, और भारंगी इनका काढा करके देवेतो त्रिदोष, दिनकीनिद्रा, रात्रिकाजामना, प्यास, मुखशोष, दाह, खाँसी, और संपूर्णश्वास, इनका नाशकरे ॥

त्रिदोषपर

पित्तप्रायेचशक्यादिर्वृहत्यादिःकफादिके ॥
वातोत्तरेसन्निपातिकट्फलादिःप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—पित्ताधिक संनिपातवालेको शक्यादिकाढा और कफाधिकवालेको वृहत्यादिकाढा एवं वाताधिक संनिपातवालेको कट्फलादिकाढेकी योजना करे ॥

किरातादिकाढा

चिरज्वरेवातकफोत्त्वणेवान्निदोषजेवाद्दशमूलमिश्रः ।
किराततित्कादिगणःप्रयोज्यःशुद्धयर्थिनेवान्निवृतावि-
मिश्रः ॥ किराततित्ककोमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजं ॥
किरातादिगणोह्येषश्चातुर्भद्रकमित्यपि ॥

अर्थ—बहुतदिनका वात कफोत्त्वण ज्वर और त्रिदोष ज्वर इनपर चिराय-
ता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह किरातादिगण और दशमूलकी औषध
इनका काढा करके देवे यदि इसको दस्तलानेके अर्थ देवेतो इसमें निसोथ और
मिलायलेवे ॥

अष्टादशांगकाढा

दशमूलीशठीशृंगीपौष्करंसदुरालभं ॥ भार्गीकुटजवी-
जंचपटोलंकटुरोहिणी ॥ अष्टादशांगइत्येषःसन्निपा-
तज्वरापहः ॥ कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्वावमीहरः ॥

अर्थ—दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पुहकरमूल, धमासो, भारंगी, इन्द्रजो,
पटोलपत्र, और कुटकी इसको अष्टादशांग कहते है यह काढा सन्निपात ज्वर,
साँसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, श्वास, हिचकी, और वमन इनको नाशकरे ॥

पंचतित्ककाढा

सुद्रापुष्करभूनिंवगुडूचीविश्वभेषजैः ॥
पंचतित्कनामायंक्वायोहंत्यष्टाज्वरं ॥

अर्थ—कटेरी, पुहकरमूल, चिरायता, गिलोय, और सोंठ, यह पंचतित्कना-
मक गणहै, इसका काढा भाठप्रकारके ज्वरोंको नाशकरे ॥

दाव्यंशुदादिकाढा

दाव्यंशुदातित्कफलत्रिकंचसुद्रापटोलीरजनीसर्निवा ।
क्वाथंविदध्याज्वरसन्निपातेनिश्चेतनेपुंसिचिवोवनार्थं ॥

अर्थ—दारहलदी, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, कटेरी, पटोलपत्र, हल-
दी और नीमकीछाल, इनका काढा सन्निपातज्वरोंमें जो मूर्च्छा आतीहै उसे दूरकरे।

अर्थ—अतीस, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपर, इन्द्रजो, कहुआचिरायता, और अडूसा इनका काढा देयतो ज्वरकर्के क्षीणहुआ रोगी शीघ्र अच्छाहोय॥

त्र्यूपणादिकाढा

त्र्यूपणदशमूलशुंठीभार्गीछिन्नोद्भवःकाथः ।

पीतःशमयतिसहसाज्वरमुग्रसंनिपाताख्यं ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी, और गिलोय इनका काढा उग्रसंनिपातको शमन करे ॥

दशमूलादिकाढा

द्विपंचमूलीषड्ग्रंथाविश्वगृध्रनखीद्वयं ।

कफवातहरःकाथोसंनिपातहरःपरः ॥

अर्थ—दशमूल, पीपरामूल, सोंठ, वेर, और झरियावेर इनका काढा कफवात हरक और संनिपातको दूरकरे ॥

आढरूपादिकाढा

सिंहास्यपंपर्पटारिष्टयष्टीधान्याव्दनागरं ॥ दासूग्रगंधेंद्रयवाश्वदंष्ट्राग्रंथिकंतथा ॥ एपांकपायमाहृत्यसंनिपातज्वरीपिवेत् ॥ श्वासातिसारकासघ्नशूलरुचिहरंपरं ॥

अर्थ—अडूसा, पित्तपापडा, नीमकीछाल, मुलहठी, धनिया, नागरमोधा, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजो, गोखरू, और पीपलामूल, इनका काढा सन्निपातज्वर, श्वास, अतिसार, साँसी, शूल और अरुचिको दूरकरे ॥

कट्फलादिकाढा

कट्फलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूपकं ॥ कटुकंपद्मको-

शीरंविपचेत्कार्पिकंजले ॥ तत्संनिपातदाहग्रंपान-

मात्रेणपूजितं ॥ दीर्घकालप्रयुक्तानांज्वराणाममृतोपमं ॥

अर्थ—कायफर, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, पटोलपत्र, पद्मास, और नेत्रवाला, इनका काढा संनिपात, दाह. जीर्णज्वर, इनपर माक्षान् अमृतके तुल्यहै

अर्कादिकाढा

अर्कग्रंथिकशिथुदोरुचविकानिर्गुडिकापिप्पलीरा-
स्ताभृगपुनर्नवानलवचाभूनिंबशुंठीकृतः ॥ काथःसं-
हरतित्रिदोषमखिलंस्वापानिलंसूतिकानानामारु-
तशैत्यशांतिकृदपस्मारस्मरत्र्यंबकः ॥

अर्थ—आककीजड, पीपरामूल, आमलतासकोगुदो, देवदार, चव्य, निर्गु-
डी, पीपल, रास्ता, भाँगरो, साँठ, चित्रक, वच, चिरायता, और साँठ, इनका
काढा सर्व त्रिदोष ज्वर, निद्रा, प्रसूतकेरोग, अनेक प्रकारकीवायु, शीत, अप-
स्मार, इनका नाशकहै ॥

मृतसंजीवनिवटिका

विपत्रिकटुकंगंधंठंकणमृतशुल्बकं ॥ धतूरस्यचबीजा
निर्हिगुलंनवमंतं ॥ एतानिसमभागानिदिनैकंविज-
याद्रवैः ॥ मर्दयेच्चणकाकाराकर्तव्यावटिकाथसा ॥
भक्षणीयानुपातव्योरविमूलकपायकः ॥ मृतसंजीव-
नीनाम्नासंनिपातज्वरांतकृत् ॥

अर्थ—सिगियाविप, त्रिकुटा, गंधक, सुहागा, ताम्रकीभस्म, धतुरेकेबीज,
और हिगुल, ए नौऔपथ समान लेकर चूर्णकर भाँगरेकेरममें एकदिन सरलकरे
फिर चनेके प्रमाण गोली बनावे एकगोली सायके ऊपरसे आककीजडका का-
ढा पीवे तो संनिपातज्वरका नाशहो ॥

त्रिनेत्रस

शुद्धसूतंसमंगंधंसूतांशमृतताम्रकं ॥ त्रिभिस्तुल्यैर्ग-
वांक्षरैर्मर्दयेदातपेखरे ॥ मर्दयेद्दिनमेकंतुनिर्गुडीशि-
थुजद्रवैः ॥ विधायगोलंतंगोलमंधमूपागतंपचेत् ॥
त्रियामान्वालुकाथत्रेततःखल्वेविचूर्णयेत् ॥ अष्टमां-
शंविपंतत्रिक्षिपेत्तेनापिमर्दयेत् ॥ त्रिनेत्राख्योरमोहो-
पदेयोगुंजाद्दयोन्मितः ॥ पंचकोलकपायेणछागीडु-

; ग्रंथ्यादिकाढा

ग्रंथींद्रजामरपुरकृमिशत्रुभांगीभृंगत्रिकट्वनलकट्फ-
लपौष्कराणां ॥ रास्नाभयाबृहतिकाद्वयद्दीप्यभूतके-
शीकिरातकवचाचविकावृकीणां ॥ काथोहन्यात्सं-
निपातान्समग्रात्रबुद्धिभ्रंशस्वेदशैत्यप्रलापान् ॥ श्ल-
लाध्मानंविद्रधिंश्लेष्मवातान्वातव्याधीन्सूतिका-
नांचतद्वत् ॥

अर्थ—पीपरामूल, इन्द्रजो, देवदारु, गूगल, वायविडंग. भारंगी, भागरों, त्रि-
कुटा, चित्रक, कायफर, पुहकरमूल, रास्ना, हरड, दोनोकटेरी, अजमायन, नि-
गुंडी, चिरायता, वच, चव्य, और पाठ, इनका काढा सर्वसंनिपात, बुद्धिभ्रंश-
पसीने, शीत, प्रलाप, शूल, अफरा, विद्रधि, कफवात, वादीकेरोग, और प्रसृत,
केरोग, इनका नाशकरे ॥

लशुनादिकाढा

लशुनंतिक्तकंकांडंभार्गीचातिविपातथा ।

नरमूत्रेणचक्षाथैःसन्निपातेसुदारुणे ॥

अर्थ—लहसन, चिरायता, तिरकाड, भारंगी, और अतीस इनको घोडेके
मूत्रमें काढाकरके देयतो दारुणसंनिपातज्वर नाशहोय ॥

दशमूलादिकाढा

दशमूलस्यनिर्यूहःकट्फलादिरजोयुतः ।

तुल्यार्द्रकरसोपेतोमृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—दशमूलका निर्यूहकरके उसमें कायफलका चूर्ण और काटेके समान
अदरसका रस ढालके देयतो मृत्युके समान कठिन ज्वरका नाशकरे ॥

पंचमूलादिकाढा

पंचमूलीकिरातादिर्गणोद्योज्यस्त्रिदोषजे ।

पित्तोत्कटेतुमघुनाकणयाचकफोत्कटे ॥

अर्थ—पंचमूल, और किरातादिगण इनका काढा त्रिदोषजनित ज्वरपर तथा
पित्तोत्कटपर महत्के और पीपलका चूर्ण मिलाय के देवे ॥

अर्थ—पारा, गंधक, दोदो कर्पलेकर, कजलीकरे फिर उसको हंसपदीके रससे १ दिन खरलकरे, फिर इस कलककी गोली बनाय कांचकी शीशीमें भरे, उसके ऊपर १ कर्प विपका चूर्ण डालके शीशीका मुसबंद करे, फिर इस शीशीको बड़े बरतनमें रखके गलेपर्यंत बालूभरदेवे और १२ प्रहर दीपकाग्निसे पचन करावे, स्वांगसीतल होनेपर उसको चूल्हेपरसे उतार. औषधको खरलमें डाले आधातोला विप और आधा तोला कालीमिरच डालके खरलकरे, यह अग्नि कुमाररस एकरची रोगीके देयतो सन्निपातज्वर, वायु, मंदाग्नि, शूल, संग्रहणी, गोला, पांडु, श्वास, और सांसी, इत्यादि रोगोंका नाशकरे ॥

पंचवक्ररस

गंधेशटंकं मरिचं विषंधतूरजैरसैः ॥ दिनसंमर्दितं शुष्कं-
पंचवक्रोरसो भवेत् ॥ आर्द्रकस्य द्रवणैः पदातव्योरक्ति-
काभितः ॥ सन्निपातज्वरं घोरं नाशयेन्नान्नात्र संशयः ॥

अर्थ—गंधक, पारा, सुहागा, कालीमिरच, और सिंगियाविप, ये औषध धतूरेके रसमें १ दिन खरल कर सुखायले तो यह पंचवक्ररस तयारहो इमको अदरसके रससे एकरची देवे तो घोरसन्निपातका नाशकरे ॥

दूसरा प्रकार

शुद्धं सूतं विषं गंधं मरिचं टंकणं कणां ॥ मर्दयेद्भूतज-
द्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् ॥ पंचवक्रो रसो नाम द्विगु-
जः सन्निपातहा ॥ अर्कमूलकपायं तु सञ्चूपमनुपा-
ययेत् ॥ युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ॥
रसेनानेन शाम्यति सक्षौद्रेण कफादयः ॥ मध्वार्द्र-
करसेनैनं पिवेदग्निविवृद्धये ॥ यथेष्टं घृतमांसाशी श-
क्तो भवति पावकः ॥

अर्थ—शुद्धपारा, विप, गंधक, कालीमिरच, सुहागा और पीपल, इन छः औषधोंको धतूरेके रसमें १ दिन खरलकर २ रत्तीकी गोली बनावे, इसे पंचवक्ररस कहते हैं, यह आककीजइके काठमें त्रिकुटाका चूर्णमिलायके १ गोलीदेय- और दहीभात इसके ऊपर पथ्यदेवे पीनेके वाग्ने शीतल जल देय. तो यह सन्निपातज्वरको दूरकरे, सरतके साथ लेनेसे कफादिरोग दूरहो, तथा अदरसके

ग्धेनवासह ॥ रसेनानेनभुक्तेनसंनिपातज्वरोमहान् ॥
संक्षयंत्रजतिक्षिप्रं कर्तव्योनात्रसंशयः ॥

अर्थ—पारा गंधक दोनो शुद्ध और तामेकी भस्म ये समभागले, और इन औषधोके बराबर गौका दूध डालके तीव्र घूपमें खलकरे, और एकदिन निर्गु ढीके रसमें, एकदिन सहजनेके रसमें खलकरे, गोलावनाय अंधमुपामें रखके तीन प्रहर बालुकायंत्रमें पचनकरावे, फिर सिद्धहोनेके पश्चात् अष्टमांस शुद्धविष डालके फिर खरलकरे, वह त्रिनेत्राल्यरस दोरत्ती पंचकोलके काढेसैं अथवा बकरीके दूधसैं देयतो निःसंशय महासंनिपातका नाशहोय ॥

भस्मेश्वररस

भस्मषोडशनिष्कस्यादारण्योपलसंभवं ॥ मरिचंनि
ष्कमात्रंचविपनिष्कविचूर्णयेत् ॥ रसोभस्मेश्वरोना
म्नासंनिपातज्वरांतकृत् ॥ एकगुंजामितोभक्ष्यार्द्र
कस्यद्रवेणाहि ॥

अर्थ—आरने उपलोंकी राख १६ तोले, कालीमिरच, और सिंगियाविष-
ये प्रत्येक एक एक तोलेले, वारीक चूर्णकरे यह भस्मेश्वर रस एकरत्ती अदरख-
के रससैं देयतो संनिपातज्वरका नाशकरे ॥

अग्निकुमाररस

द्वौकपौसूतकाड्याह्यौगंधकाड्द्वौतथैवच ॥ यत्नत-
स्तूभयंमर्द्यंदिनंहंसपदीरसैः ॥ कल्कस्यवटिकांकृत्वा-
निक्षिपेत्काचभाजने ॥ कर्पूकममृतंतत्रक्षिप्वावक्रंनि-
रोधयेत् ॥ कुपिकायाः परौभागौवालुकाभिश्चपूरये-
त् ॥ सार्द्धयावदहोरात्रंतावत्तत्रपचेद्रसं ॥ दीपंमात्रो-
नलोदेयः स्वांगशतिसमद्धरेत् ॥ तोलार्धममृतंतत्र-
क्षिपेत्तावत्थोपणं ॥ भक्षितोरक्तिकाभात्रोरसस्त्व-
ग्निकुमारकः ॥ सन्निपातज्वरंहन्याद्वातंमंदाग्निताम-
पि ॥ शूलसंग्रहर्णागुल्मक्षयंपांडुगदंतथा ॥ श्वासका-
सादिकान्सर्वान्गदानेपविनाशयेत् ॥

तंद्रासां०

सन्निपातज्वरोत्पन्नां युक्तया तंद्रां जयेद्विषक् ॥

उपद्रवः कष्टतमोज्वराणां सविशेषतः ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें तन्द्रा उत्पन्न होती है उसको वैद्य युक्तिसँ जीते, यह ज्वरमें कष्टसाध्य उपद्रव है ॥

तंद्रालक्षण

आचितामाशयकफे संनिपातज्वरे दृढे ॥ शांतिव्यवशय-
तस्याशु तंद्रासमुपजायते ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवा-
स्वापनिषेवणात् ॥ दुर्बलस्याल्पवातस्य जंतोः श्ले-
ष्माप्रकुप्यति ॥ वायुमार्गसमावृत्य धमनरिनुसृत्य सः ॥
तंद्रासुघोरां जनयेत्तस्यावक्ष्यामि लक्षणं ॥ उन्मीलित-
विनिर्भुग्रे परिवर्तिततारके ॥ भवतस्तस्य नयने ललिते
चलपक्ष्मणी ॥ विवृताननदंतोष्ठं मुहुर्मुहुरुत्तानशायिनं ॥
पिच्छिलेच्छिन्नतंतुश्च कंठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ कं-
ठमार्गाविरोधश्च वैरुतंचोपजायते ॥ सोर्वात्रिरात्रं-
साध्यः स्यादसाध्यस्तु ततः परं ॥

अर्थ—जिस ज्वरमें आमाशयमें आम और कफ इनके संचय करके दृढ संनि-
पात होकर शांति होने पर उस रोगीके निश्चय तन्द्रा उत्पन्न होती है। और पतले रस,
दूध, और दिनकी निद्रा इनके सेवन करनेसँ दुर्बल तथा अल्पवायुवाले रोगीके
कफ कुपित होता है और वो कफवायुके मार्गको रोककर धमनियोंमें प्रवेश करते हैं
और घोर तन्द्रा उत्पन्न करे उसके लक्षण कहता हूँ। उस रोगीके नेत्र आधे मिचे हुए
किंवा टेढ़ेसे हों, तारे फिरे तथा नेत्रोंकी बन्नी चंचल हो। नेत्रगिरेसँ प्रतीत हो, होठ
अचंचल होकर मुख खुला तथा दांत बाहरसँ दाँसे, बारंबार चित्त लेटे, चिकना
तंतुयुक्त कफको गलेमें लावे तथा कंठमार्ग रुकजावे इमप्रकार विकृति होती है य-
ह तीनरात्रिके पूर्व साध्य है और त्रिरात्रानंतर असाध्य जानना ॥

असुरादिअंजन

असुरावहस्य विट्चूर्णं कस्तूरी मधुसंयुतं ।

रसमें सहत मिलायके पीवेतो जठराग्निकी वृद्धि होय, और घृत मांसादिक भारी अन्न यथेष्ट भक्षणकरे तोभी पचजावे तथा मस्तकपर जलकीधार देनी चाहिये ॥

उन्मत्तरस

रसगंधकतुल्यांशंधतूरफलजैरसैः ॥ मर्दयेद्दिनमेकं-
चतत्तुल्यंत्रिकटुक्षिपेत् ॥ उन्मताख्योरसोनामनस्ये-
स्यात्संनिपातजित् ॥

अर्थ—शुद्धपारा. १ भाग, गंधक १ भाग, इनको धतूरेके फलके रसमें एक-दिन खरलकर फिर इसमें बराबरका त्रिकुटाका चूर्ण मिलावे, इस रसकी नस्य-लेनेसे संनिपात दूरहोवे ॥

कनकसुंदररस

कनकस्याष्टशाणाःस्युःसूतोद्वादशभिर्मतः ॥ गंधो-
पिद्वादशप्रोक्तस्ताम्रंशाणद्वयोन्मितं ॥ अभ्रकस्यच-
तुःशाणंमाक्षिकस्यद्विशाणकं ॥ वंगोद्विशाणःसैविरिं-
त्रिशाणंलोहमष्टकं ॥ विषंत्रिशाणकंकुर्यात्लांगलीप-
लसंमिता ॥ मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ द-
द्यान्मृदुपुटेवन्हैततःसूक्ष्मविचूर्णयेत् ॥ मापमात्रोर-
सोदेयःसंनिपातेसुदारुणे ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोन-
स्वरसेनवा ॥ किलासंसर्वकुष्ठानिविषर्षचभगंदरं ॥
ज्वरंगरमजीर्णचजयेद्भोगहरोरसः ॥

अर्थ—सोना २४ मासे, पारा ३ तोले, गंधक ३ तोले, तामेकीभस्म ८ मासे, अभ्रकभस्म १६ मासे, सोनामक्तीकीभस्म ८ मासे, वंगभस्म ८ मासे, शुद्धसुरमा २ तोलेभर. लोहभस्म २॥ तोले, सिंगियाविष ६ तोलेभर, कल्यारीकीजड ४ तो-लेलेय, सबको नीबूके रसमें १ दिन खरलकर मिट्टीके सराय मेंपुष्टमें रस कपड-मिठी चढाय आरने उपलोंकी हलकी पुष्टदेवे, शीतलहोनेपर जगमेंसे निकाल खरलमें डाल वारीक चर्णकरके धरकरे, इसको कनकसुंदर रस कहतेहै यह १ मासे अदरसके रसमें अथवा लहसनके रसमें लेयतो घोर भंनिपातको दूरकरे, तथा किलासकुष्ठ, इतरकुष्ठ, विषर्ष, भगंदर, जर, विषदोष, और अजीर्ण, ये रोग दूरकरे ॥

अर्थ—आमलेनको सिजायकर पीसवाले, फिर इसमे गुनकादास, सोंठ, इनकाचूर्ण मिलाय सहतके साथ देवेतौ खाँसी, श्वास, मूर्छा, अरुचि, ये रोग दूरहो

संनिपातप्रकोपकारण

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकपायैः काम-
क्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरापिशिताहारसौहित्यशीतैः ॥ शोकव्या-
यामचिंताग्रहणवनितयात्यंतसंगप्रसंगैः प्रायःकुप्यंतिपुंसां-
मधुसमयशरद्वर्षणसंनिपाताः ॥

अर्थ—खट्टे, चिकने, गरम, विदाही, चरपरे, मधुर, मद्य, धूप, कसैलेपदार्थों-
के सेवनसे तथा काम, क्रोध, अतिरूक्ष, भारीपदार्थोंका कठपर्यंतभोजन, मांसभ-
क्षण, शीतपदार्थसेवन, शोक, श्रम, चिंता, पिशाचवाधा, अतिस्त्रीप्रसंग, इनका-
रणोंसे और चैत्र, वैशाख, आश्विन, कार्तिक, श्रावण, भाद्रपद, इनमहिनोंमें
संनिपातका प्रायः प्रकोपहोताहै ॥

संनिपातोंकेनाम

संधिकश्चांतकश्चैवरुग्दाहश्चित्तविभ्रमः।शीताङ्गस्तंद्रिकःप्रो-
क्तःकंठकुब्जश्चकर्णकः ॥ ३ ॥ विख्यातोभुग्रनेत्रश्चरक्तष्ठी-
वीप्रलापकः। जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ४ ॥
अर्थ—१ संधिक, २ अंतक, ३ रुग्दाह; ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग, ६ तंद्रिक
७ कंठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ भुग्रनेत्र, १० रक्तष्ठीवी, ११ प्रलापक, १२ जिह्वक,
और १३ आभिन्यास, ये तेरह संनिपात कहेहैं ॥

उनकीमर्यादा

संधिकेवासराःसप्त चान्तकेदशवासराः। रुग्दाहेविंशतिर्ज्ञेया
वन्ह्यष्टौचित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकंतुशीतांगेतन्द्रिकेपंचविं-
शतिः। विज्ञेयावासराश्चैवकंठकुब्जेत्रयोदश ॥ ६ ॥ कर्णके-
चत्रयोमासाभुग्रनेत्रेदिनाष्टकं। रक्तष्ठीविदशाहानिचतुर्दशप्र-
लापके ॥ ७ ॥ जिह्वकेषोडशाहानिकलाभिन्यासलक्षणे।
परमायुरिदंप्रोक्तंभ्रियतेतत्क्षणादपि ॥ ८ ॥
अर्थ—संधिककी ७, अंतककी १०, रुग्दाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २४, शी-

अंजनाद्बोधयेन्मुग्धं तंद्रितं सन्निपातिनं ॥

अर्थ—कांसेके मलका चूर्ण, कस्तूरी, और सहतं, इनका अंजन करनेसे सं-
निपातरोगीकी तन्द्रा दूरहोय ॥

लोहांजन

अयोरजः श्वेतलोध्रमंजनंमरिचंतथा ।

गोरोचनसमायुक्तंतंद्रानाशनमुत्तमं ॥

अर्थ—लोहभस्म, सपेदलोध, मिरच, और गोरोचन ये सर्वऔषध खरलकर
अंजन करेतो तंद्राका नाश करनेमें उत्तमहै ॥

सैधवादिअंजन

अंजनं सम्यगारब्धं मधुसिंधुशिलोषणैः ।

प्रमोहद्रोहिभवति भाषितं भिपजांवरैः ॥

अर्थ—सैधानिमक, मनसिल, और त्रिकुटा ये समानले सहतसे खरलकर अं-
जन करेतो तंद्राकी नाशकहो असे उत्तम वैद्योंने कहाहै ॥

ज्योतिष्मतीनस्य

ज्योतिष्मत्यास्तथातैलंमूलंपिंडारकस्यच ।

वस्तमूत्रेणसंपिष्टानस्यंतंद्रानिवारणं ॥

अर्थ—मालकागनीकातेल, और पिंडारककी जड़ इनको बकराके मूत्रमें पी-
स नस्यदेवेतो तन्द्रा दूरहो ॥

जातीपुष्पनस्य

जातीपुष्पप्रवालंचमरिचंरोहिणिविचा ॥

सैधवंवस्तमूत्रेणतंद्रानाशनमुत्तमं ॥

अर्थ—जाईकेफूल, औरमूंगा, कोलीमिचर, कुटकी, चच और सैधानिमक, इ-
नका बकराके मूत्रमें नस्यदेवेतो तंद्राको नाशकरे

द्राक्षाद्यवलेह

स्विन्नमामलकंपिष्टाद्राक्षयासहमेलयेत् ॥ विश्वभेषजसंयुक्तं-
मधुनासहलेहयेत् ॥ तेनास्यशाम्यतिश्वासःकासोमूर्च्छारु-
चिस्तथा ॥

पूरञ्चूषणं ॥ चत्वारःसूततुल्याःस्युःसप्तत्राम्हचारिकद्रवैः ॥
भावयेच्चमहाराष्ट्र्यानिर्गुञ्ज्याकरवीरजैः ॥ द्रवैरेतैःपृथग्भाव्य-
सप्तधासप्तधाक्रमात् ॥ चूर्णयित्वातुषड्गुंजंदापयेदारिकद्रवैः ॥
सन्निपातानलःसोयंरसःस्यात्संनिपातजित् ॥ अतितंद्राज्वर-
श्वासकुमकासातिसाराजित् ॥

अर्थ—पारदभस्म, और गंधक, दोनो एक, २ भाग ताम्रभस्म, सपरिया, और
हिंगुल, ये प्रत्येक दो दो भाग, लेकर अमलवेतके रसमें यदि अमलवेत न मिले-
तो चनाखार और जंभीरीके रसमें खरलकर भूधरयंत्रमें एकपुटदेवे फिर हींग,
कपूर, सोंठ, मिरच, पीपल, ये एक एक भागले उन्हीसे खरल करे, और ब्रह्मी,
अदरख, जलपीपल, निर्गुंडी, कनेर, इन प्रत्येकके रसकी सात २ भावनाडेय,
तो यह संनिपातानल रस तयारहो, इसमेंसे छःरत्तीरस अदरखके रससे, देय तो
सनिपात, तंद्रा, ज्वर, श्वास ग्लानि, खाँसी, और अतिसार इनको, नाशकरे ॥

निर्गुञ्ज्यादिधूप

निर्गुंडीपुरसहितःसिद्धार्थकनिंबपत्रसंयुक्तः ॥
सर्जरसेनसमेतोधूपःसंधिकग्रहंहरति ॥

अर्थ—निर्गुंडी, गूगल, सरसो, नीमकेपत्ते, और राल इनकी धूनी संधिक
संनिपातका नाशकरे ॥

दुसरानिर्गुञ्ज्यादिधूप

निर्गुंडीपिचुमंदकुष्ठविजयाकार्पाससिद्धार्थकैःपट्टग्रंथातगरा-
मरेन्द्रतरुभिमातंडमूलान्वितैः ॥ चंडापावकरुद्रमाल्यसहि-
तैर्मध्वासवैर्मोदितैर्धूपोयंग्रहसंनिपातजनितांपीडांपिनष्टिक्षणात्

अर्थ—निर्गुंडी, नीमकीपत्ती, कूठ, भांग, विनोले, सरसों, वच, तगर, देवदार,
आककीजड, किरमानी अजमायन, चित्रक और बेलगिरी इनका चूर्णकर इस-
को सहत और दारुसे भिगोय धूपदेवेतो सनिपात और ग्रहोंकीपीडा इनको क्ष-
णमात्रमें दूरकरे ॥

देवदारुकाढा

सुरदारुसठीसुधालतासुवहाशुंठियुताःशृताजलेन ॥
सपुराःशमयंतिसेविताःसततंहंतिसदासदागतिं ॥

तांगकी १५, तंद्रिककी २५, कंठकुब्जकी १३, कर्णककीतीन महीनाः (१०, दिन) भुग्ननेत्र ८, रक्तष्टीवीकी १०, मलापककी १४, जिह्वककी १६, अभिन्यासकी १६ दिनकीये, सन्निपातोंकी परमायुके दिन कहेहैं । परंतु रोगी शीघ्र-वी मरजाता है ॥

साध्यासाध्य

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैवकर्णकःकंठकुब्जकः ।

जिह्वकश्चित्तविभ्रंशःषट्साध्यासप्तमारकाः ॥ ९ ॥

अर्थ—संधिक १, तंद्रिक २, कर्णक, ३, कण्ठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तविभ्रंश ६, येछह साध्य हैं बाकी बचे सातसौ मारक हैं ॥

संधिकसन्निपात

पूर्वरूपकृतशूलसंभवंशोपवातबहुवेदनान्वितं ॥ श्लेष्मताप-
वलहानिजागरंसन्निपातमितिसंधिकंवेदेत् ॥

अर्थ—जिसज्वरके पूर्वरूपमें शूल, शोष, वायुकी अत्यंतपीडा, कफ, संताप-वलकी हानी, और जागरण येलक्षण हो उसको संधिक संनिपात जानना ॥

संधिकारिरस

शुद्धसूतंसमंगंधमारितंचाभ्रकंसमं ॥ त्रिक्षारजीरकव्योपत्रिफ-
लालवणैःसमं ॥ चित्रकस्यकपायेणदिनैकमर्दयेद्दृढं ॥ गुंजापं-
चमितंखादेत्संधिकारिरितिस्मृतः ॥ पिप्पलीमधुनाचानुपि-
वेदुष्णोदकंतथा ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अभ्रकभस्म, तीनोक्षार, जीरा, त्रिकुटा, त्रिफला, निमक, येसमानभागले. चित्रकके काष्ठमें १ दिनगलकरे यह संधिकारी रस ५ रत्ती सहन पीपल इनके साथ देवे, और ऊपर गरमजल पीवावे तो यह संधिक सन्निपातको दूरकरे ॥

संनिपातानलरस

रसभस्मसमंगंधंताम्रभस्मद्वयोःसमं ॥ ताम्रतुल्यंखर्परंचखर्प-
रांशंचहिंगुलं ॥ अम्लवेतसकाभवेक्षारंचणकसंभवं ॥ जंवी-
रैर्गर्भितंरुध्वापुटकेभूधरेपचेत् ॥ आदायखल्लयेचूर्णांहिगुक-

अर्थ—गिलोय, अंडकीजड, सोठ, देवदारु, रास्ना, हरड, इनका काढा मातःकाल पीवेतो सर्ववातकेरोगोंका नाशकरे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा

ग्रंथीकलितरूपथ्याकृतमालशिवाढरूपकैर्विहितः ।

एरंडतैलयुक्तःकाथो हन्यान्मरुन्माद्यं ॥

अर्थ—पीपरामूल, बहेडा, हरड, आमलतासकोगूदो, आमले, और अडूस, इनकेकाढेमें अंडीकातेल मिलायके पीवेतो वादीसँहुए मंदत्वको नाशकरे ॥

पंचमूल्यादिकाढा

मूलीपंचककल्ककाल्पितमिदंसन्मागधीमिश्रितं

कौलत्थेनरसेनसैधवयुतंपेयंचविश्वौषधं ॥

अर्थ—पंचमूल, पीपल, सैधानिमक, सोंठ, इनकेचूर्णको कुलधीके जलकेसाथ देवेतो वायुका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा

रास्नागुडूचीशठिवृद्धदारुसुरावहविश्वात्रिफलावरीभिः ।

काथंपिवेद्गुगुलुसंनियुक्तंसमग्रसंधिग्रहसंनिपाते ॥

अर्थ—रास्ना, गिलोय, कचूर, विधायरो, देवदारु, सोंठ, त्रिफला, और सतावर इनकेकाढेमें गुगुलुमिलायके पीवेतो संधिक संनिपातको दूरकरे ॥

क्षारादिपरिमाण

जीरकंगुग्गुलुंक्षारंलवणंचशिलाजतु ।

हिंगुत्रिकटुकंचैवकाथेशाणोन्मिताक्षिपेत् ॥

अर्थ—जीरा, गुगुलु, क्षार, नोन, शिलाजीत, हींग, और त्रिकुटा इनका चूर्णकाढेआदिमें ४ मासेढाले ॥

संधिकपरलंघन

संधिस्थेहितमस्तिलंघनविधिःस्वेदोपनाहादिकं ।

सूक्ष्मकर्मसमग्रमेवविहितंकुर्याद्यवागूरसं ॥

अर्थ—संधिक संनिपातपर लंघन, स्वेदन, पिंढीआदि औषधना इत्यादि देहदलकाकरनेके उपचार करना योग्यहै और यवागू आदि पच्यहै ॥

अर्थ—देवदारु, कचूर, गिलोय, रास्ना, और सोंठ, इनके काढेमें गूगल ढालके सेवन करेतो वायूका नाशकरे ॥

मुस्तादिकाढा

मुस्तैरंडप्राणदावाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरुकर्चूरतिकाः ॥ -

वासाविश्वापंचमूलीयुगाढ्योहन्यान्मन्यास्तंभसंधिग्रहार्ति ॥

अर्थ—नागरमोथा, अंडकीजड, जलपीपल, नीलापियावासा, तेलियादेवदार, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ, और दशमूल, इनका काढा मन्यास्तंभ, और संधिवात इनका नाशकरे ॥

वचादिकाढा

वचाकत्रचकछुरासहचरामृताभंगुरासुराव्हघननागरातरुण-
दारुरास्नापुरा ॥ वृपातरुणभीरुभिःसहभवंतिसंधिग्रहव्यथो-
रुजडिमछमभ्रमणपक्षघातापहाः ॥

अर्थ—वच. धमासों, गिलोय, भारंगी, पियावासा, देवदार, नागरमोथा, सोंठ, विधायरों, रास्ना, गुग्गुल, असगंध, अंडकीजड, शतावर, इनका काढा संधिक संनिपात, जडता, ग्लानि, भ्रम, और पक्षाघात इनका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा

रास्नाशुंठीगुड्डीसहचरजलदैर्भीरुपथ्यासुराव्हैस्तिक्काकर्चूरं-
वासानिलरिपुसहितैःपंचमूलीद्वयेन ॥ एभिर्द्रव्यैःकपाय-
स्त्वरित्तमपहरेत्पीतमात्रःप्रभातेमन्यास्तंभांश्रुद्धिज्वरपिटि-
ककाटिसंधिसर्वांगपीडा ॥

अर्थ—रास्ना, सोंठ, गिलोय, पियावामा, नागरमोथा, शतावर, हरद, दे-
वदारु, कुटकी, कचूर, अडूसा, अंडकीजड, और दशमूल, इनका काढा मन्या-
स्तंभ, अंत्रवृद्धि, ज्वर, पिडिका, कमर. तथा संधि इनका शूल, और मर्बटेहकी
पीडा को दूरकरे ॥

अमृतादिकाढा

अमृतोरुतुक्विश्वासुरतरुरास्नाहरीतकीकाथः ।

सकलसमरिणरोगान्प्रातःसद्योद्वरेत्पीतः ॥

दितः ॥ मृतोपिसंनिपातेन जीवत्येव न संशयः ॥ सक्षीरं दाप-
येत्पथ्यदेयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ—पारा, और गंधक दोनों की कजलीकरे फिर लोहभस्म, विप, हरताल, मुरदासिंग, मनसिल, हींगरू, चित्रक, इन्द्रायनका गूदा, अतीस, त्रिकुटा, सोना-मक्खी, भांग, जमालगोटा, और चौलाईकीजड़, सब समानले अदरक और भांगरेके रसमें एकदिन खरलकरे, फिर कौंचकी शीशीमें भर बालुका यंत्रमें २ प्रहर पचन करावे, फिर अदरकके रसमें एक दिन घोंटे तो शिवप्रोक्त मृतसंजीवनी-रस तयारहो इसको तीन रत्नी देय तो सन्निपातसें आसन्नमरणवालाभी रोगी बचजावे । इसके ऊपर दूध भात पथ्यदेवे अथवा यह रस नमिले तो आनंद भैरव रस देना चाहिये ॥

पथ्यादिकाढा

पथ्यावृषारग्वधदारुतिकारान्नागुडूचीगदजःकपायः ॥

सोपद्रवाञ्चांतकनामधेयाज्वरान्नरंमोचयतीतिचित्रं ॥

अर्थ—हरड, अहूसा, अमलतासका गूदा, देवदारु, कुटकी, रास्ना, गिलोय, और कुलीजन इनका काढा उपद्रवसहित मनुष्यको अंतकज्वरसमुत्तकरे इसमें क्या आश्चर्य है ॥

असाध्यत्वकहते है

इहापहायवृत्तमुष्णवारिज्वरारियूपादिगदापहारि ।

ज्वरच्छिदंजीवितदंचनित्यंमृत्युंजयंचेतसिचिंतयस्व ॥

अर्थ—अंतक संनिपात होनेसें गरम जल, ज्वरनाशक फादे, सुप इत्यादि-को त्यागके जीवनका देनेवाला और ज्वर नाश कर्त्ता जो मृत्युंजय शिव उसका चिंतवन करे ॥

भिपग्भिरितिनिर्णीतंसंनिपातैतकाभिधे ।

भेपजंजान्हवानीरंवैद्योगोविंदेष्वहि ॥

अर्थ—अंतक संनिपात होनेसें वैद्योंने असा निश्चय करा है कि उस रोगीका विष्णुभगवान् वैद्य है और गंगाजल यही औषधी है अर्थात् मगवन्नामस्मरण और गंगाजल पीवे ॥

अंतकसं०निदान

दाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरः
प्रकंपं ॥ हिकां करोति कसनंच समाजुहोति जानीहितं विबुधव-
र्जितमंतकारव्यं ॥

अर्थ—दाह, संताप, मोह, शिरःकंप, हिचकी, और खांसी ये अंतक सनिपा-
तके लक्षण हैं इस अंतक संनिपातको वैद्यत्यागदे ॥

अंतकेरोटिकाबंधनं

अयं प्रयोगो यदि सन्निपातेभिपग्वराणां कथितो नुभूतः ॥ सरा-
गिकापिष्टपलांडुतोयं विधाय सम्यक् सरोटिकांच ॥ मृद्धीपुनः
स्निग्धविभर्जिताचसोष्णाचताल्वोपरिवंधनया ॥ यामद्दयं-
बध्यपुनश्च वध्यावावन्मनुष्यो घृतिमातनोति ॥ एवंविधिश्चां-
तकसंनिपाते मृत्युव्यथागच्छति निश्चयेन ॥

अर्थ—बैद्योने बहुत अनुभव करके अंतक संनिपातपर यह प्रयोग कहा है कि
राईकेचूर्णको लहसनके रसमें सानके उसकीरोटि बनाय तेलमें अथवा घृतमें से-
क गरमागरम मस्तकपर बाँधे, दोमहरकेबाद फिर बाँधे तो मनुष्यके अंतक सं-
निपातकी व्यथा दूरहोय परंतु हमारी समझमें उसरोटीको अंडिके तेलमें सेके ॥

मृतसंजीवनीरस

शुद्धं मृतसंमंगधं खल्वेवैकज्जलीकृतं ॥ तथा लोहकभस्मात्र-
ताम्रभस्मसंमंसं ॥ विपतालककंकणशिलाहिंगुलचित्रकैः ॥
हस्तिमुंडीचातिविपंशूपणहेममाक्षिकं ॥ भृंगीकुंभीमवना-
दाः प्रतिचूर्णरसांशकं ॥ त्रिदिनं मर्दयेत्खल्वेद्रवैरार्द्रकसंभवेः ॥
निर्गुंडीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत्पुनः ॥ जंवीरस्यचचांगे-
र्याद्रवैः संमर्दयेद्दिनं ॥ काचकुप्यांनिवेश्याथवालुकायंत्रगंप
चेत् ॥ द्वियामांते समुद्धृत्य मर्दयेच्चार्द्रकद्रवैः ॥ दिनैकं शोषि-
तं चूर्णं त्रिगुंजं संनिपातजितं ॥ मृतसंजीवनीनाम रसायंशं करो-

अर्थ—नेत्रवाला, लालचंदन, खस, दाख, आमले और पित्तपापडा इनका काढा शीतलकरके देय तो दाह, तृषा, और ज्वर ये शांति होय ॥

धान्याककाढा

सासितोनिशिपर्युषितःप्रातरधान्याकतंडुलकाथः ॥

पीतःशमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंशैत्यं ॥

अर्थ—धानिया, ओर चावल, इनको रात्रिमें भिगोय देवे, प्रातःकाल इसकी पेयाकर शीतल होनेपर देवे तो अतर्दाह और पित्तज्वर इनका शमन करे ॥

अगर्वादिधूप

अगरुघनसारसल्लककररुहनतनीरचंदनैर्युक्तः ॥

सर्जरसेनसमेतोधूपोरुग्दाहकंहंति ॥

अर्थ—कालीअगर, कपूर, सल्लकी, नख, तगर, नेत्रवाला, चंदन और रार, इनकी धूनी रुग्दाह नाशक है ॥

दध्यादिलेप

शमयतिदाहमचिराद्घिष्णुकर्कशुपल्लवैर्लेपः ॥

लेपोहिमकरमलयजनिंबदलैस्तक्रापिष्ठैर्वा ॥

अर्थ—वेरके पत्तोंको पीस दहीमें मिलाय अंगोंमें लेपकरे अथवा कपूर, चंदन नीमकेपत्ते, ये एकत्र छाछमें पीसके लेपकरे तो इस्से दाह शमन होवे ॥

वदर्यादिलेप

वदरीपल्लवलेपःश्रीखंडारिष्टकेनसंयुक्तः ॥ दा-

तव्यःपादतलयोस्त्वरयारुग्दाहसंनिपातघ्नः ॥

अर्थ—वेरकेपत्ते, चंदन, और नीम ए औषध एकत्र पीस पैरोके तलूमें ले-पकरे तो रुग्दाह शमन होय ॥

लाजतर्पण

दाहवग्म्यदितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितं ॥

शर्करामधुसयुक्तंपाययेल्लाजतर्पणं ॥

अर्थ—दाह और वमन इनमें दश अन्नचले नहीं, और तृषा अंते रोगी-को सीलोंका मूष, घूरा और सरत मिलापके देवे ॥

रुग्दाहसंनि०निदान

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्य-
थितकंठमन्याहनुः ॥ निरंतरतृपाकरःश्वसनकासद्विकाकुलः
सकष्टतरसाधनोभवतिहंतिरुग्दाहकः ॥

अर्थ—प्रलाप, संताप, अत्यंतमोह, मंदत्व, श्रम, भौर, और कंठ, मन्याना-
ही, तथा ठोड़ी इनमें मीठा, सर्वकाल तृपा, श्वास, खांसी, और हिचकी, इन
लक्षणकरके युक्त भेसा रुग्दाह संनिपात कष्टसाध्य और मारक है ॥

जलधरकाढा

जलधरमलयजनागरसवालकोशीरपर्पटैःक्वथितं ।

यःपिबतिपयःसुशीतंशाम्यतिरुग्दाहकस्तस्य ॥

अर्थ—नागरमोथा, लालचंदन, सोंठ, नेत्रवाला, खस, और पित्तपापड़ा, इन-
का काढा शीतल होनेपर देवे तो रुग्दाह सन्निपातको शमन करे ॥

अभयादिकाढा

अभयापर्पटमुस्ताकडुकीशम्याकगोस्तनीक्वाथः ।

पीतःकरोतिनाशंरुग्दाहरुजोनसंदेहः ॥

अर्थ—हरड़, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा, और मु-
नक्कादास इनका काढा करके पीये तो रुग्दाह संनिपात नाश होय ॥

ब्राम्हद्यादिकाढा

ब्राह्मीद्राक्षाजलधरवचोशीरशम्याकतित्तापथ्याधात्रीकलि-

तरुबलानिवकोशातकीभिः ॥ भूनिंवाढ्याभवतिसहितः पं-

चमूलीद्वयेनपीतःक्वाथःसकलपवनव्याधिरुग्दाहहंता ॥

अर्थ—ब्राह्मी, दास, नागरमोथा, वच, खस, अमलतासको गूदो, कुटकी,
त्रिफला, खरेटी, नीमकीलाल, कटुई धीयाके बीज, चिरायतो जीर दशमूल इ-
नका काढा सर्ववात व्याधियोंको और रुग्दाह संनिपातको नाश करे ॥

उशीरादिपटंगकाढा

उशीरचंदनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ।

शृतंशीतंजलंद्वाद्वाहृतृहृज्वग्शांतये ॥

संनिपातचिकित्सा

अर्थ—नेत्रवाला, लालचंदन, स्वस, दास, आमले और पित्तपापडा इनका काढा शीतलकरके देय तो दाह, वृषा, और ज्वर ये शांति होय ॥

धान्याककाढा

ससितोनिशिपर्युषितःप्रातर्धान्याकतंडुलकाथः ॥
पीतःशमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंशैत्यं ॥

अर्थ—धानिया, ओर चावल, इनको रात्रिमें भिगोय देवे, प्रातःकाल उसकी पेयाकर शीतल होनेपर देवे तो अंतर्दाह और पित्तज्वर इनका शमन करे ॥

अगर्वादिधूप

॥ अगरुघनसारसल्लकररुहनतनीरचंदनैर्युक्तः ॥
सर्जरसेनसमेतोधूपोरुग्दाहकंहंति ॥

अर्थ—कालीअगर, कपूर, सल्लकी, नख, तगर, नेत्रवाला, चंदन और रार, इनकी धूनी रुग्दाह नाशक है ॥

दध्यादिलेप

शमयतिदाहमचिराद्घिष्णुर्कृष्णपल्लवैर्लेपः ॥
लेपोहिमकरमलयजनिंबदलेस्तक्रापिष्ठैर्वा ॥

अर्थ—वेरके पत्तोको पीस दहीमें मिलाय अंगोंमें लेपकरे अथवा कपूर, चंदन नीमकेपत्ते, ये एकत्र छाछमें पीसके लेपकरे तो इस्से दाह शमन होवे ॥

वदर्यादिलेप

वदरीपल्लवलेपःश्रीखंडारिष्टकेनसंयुक्तः ॥ दा-
तव्यःपादतलयोस्त्वरयारुग्दाहसंनिपातघ्नः ॥

अर्थ—वेरकेपत्ते, चंदन, और नीम ए औषध एकत्र पीस पैरोके तलूमें ले-
पकरे तो रुग्दाह शमन होय ॥

लाजतर्पण

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितं ॥
शर्करामधुसयुक्तंपाययेल्लाजतर्पणं ॥

अर्थ—दाह और वमन इनकरके रुश अन्नचले नहीं, और वृषार्थ अंसे रोगी-
को खीलौका यूप, घूरा और सहत मिलायके देवे ॥

स्त्रीकाआलिङ्गन

पयोधराढ्यांकुशलांसुरूपानवयौवनां ॥

प्रमदांस्वभुजाश्लेषैर्भजेद्गुग्गुदाहपीडितः ॥

अर्थ—रुग्दाह युक्तमनुष्यका स्वरूपवती, पीनस्तनी, विलासचतुर औसी स्त्री-
का आलिङ्गन करनेसे रुग्दाह शमन होय ॥

पथ्यावलेह

पथ्यांतैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहां ॥

कासासृक्सर्ववीसर्पश्वासान्हंतिवमीरपि ॥

अर्थ—हरडकाचूर्ण, तेल, घी, अथवा सहत इनके साथ खायतो खाँसीमें जो
रुधिर गिरे वो तथा विसर्प, श्वास, वमन, (वांति.) इनका नाश होय ॥

भैरवीगुटी

शुद्धसूतं द्विधा गंधं मर्दयेदिक्षुकद्रवैः । दिनं भाव्यं च मर्दय च शो-
पयित्वा तु भृंगजैः ॥ चतुर्धा भावयेद्द्रवैस्ति लपर्ण्यां द्रवैश्च सः ॥
भावितं च विशोष्याथ चूर्णयेद्दस्त्रगालितं ॥ चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रं-
ताम्रादष्टांशं कंविपं ॥ कृष्णाशीतविडंगानि कृष्णाजीरासनं-
वला ॥ ताम्राधं प्रति चूर्णं स्यात्सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ यामैकं भृं-
गजद्रवैर्मर्दयेत्कल्कतांगतं ॥ स्निग्धभांडगतं पाच्यं पिंडयामा-
त्कृशाग्निना ॥ चणमात्रावटी योज्या चित्रकार्द्रकसैंधवैः ॥ स-
म्यक्त्रिदोषजं हंति संनिपातं सुदारुणं ॥ भैरवीगुटिकाख्याता-
दध्यन्नं पथ्यमाचरेत् ॥

अर्थ—शुद्धपारा, और गंधक इनकी कजली कर इसके रसमें १ दिन भाव-
ना देवे, फिर भाँगेके रसकी ४ भावनादेय, फिर तिलपर्णीके रसकी भावना दे-
कर सुत्ताय कपहछन कर लेवे। पीछे इस चूर्णके समान ताम्रभस्म, ताम्रका अष्ट,
मांश सिंगियाविप, और काली तथा सपेद वायविडंग, पीपर, जीरा, राम्ना-
सरेटी, ये प्रत्येक ताम्रसे आधी २ लेवे, सबको एकत्रकर भाँगेके रससे १ प्रहर
सरल करे जब घुटते २ कल्कके समान हो जावे तबघीके चिकने घरतनमें रस-
के मंदाग्निर जयतक गोला होय तबतक पचन करावे फिर उमकी चनेके प्रमाण
गोली करे उमको चीता, जदरस और सँघानेमक इनके साथ देवे तो त्रिदोष-

जन्य संनिपातका नाश करे इसको (भैरवीगुटी) कहतेहैं इसके ऊपर दही भात-
की पथ्यदेनी चाहिये ॥

चित्तभ्रमसन्निपात

यदिकथमपिपुंसांजायतेकायपीडाभ्रममदपरितापोमोहवैक-
ल्यभावः ॥ विकलनयनहासोद्वीतनृत्यप्रलापीह्यभिदधति-

नसाध्यकेपिचित्तभ्रमारुख्यं ॥

अर्थ—किसीप्रकार शरीरमें पीडा, भ्रम, उन्माद, संताप, मोह, विकल्पना-
नेत्रोंमें व्याकुलता, हसना, गाना, नाचना और बकना ये लक्षण होनेसँ इसको
चित्तविभ्रम संनिपात कहते हैं यह असाध्य है ॥

मध्वादिकाढा

मधुनखशालमलिकृष्णावनतरुपथ्यामुरागरूभिश्च ॥

मलयजसहितैरैतैःक्वाथश्चित्तभ्रमंहन्ति ॥

अर्थ—महुआकी छाल, नख (सुगंधद्रव्य) सेमरका मूसला पीपर, कोह-
वृक्षकी छाल, हरड़, मुरा, अगर और लाल चंदन इनका काढा चित्तविभ्रम को
शमन करे ॥

द्राक्षादिकाढा

मृद्गीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्योमृताप-
थ्यैरेवंतरामसेनकरजाराजीफलैःसंयुतः॥हन्युश्चित्त-

रूजोथदुर्दुरदलद्राक्षापटोलीपयःपथ्यापर्पटराजवृक्ष-

कटुकाशंबूकपुष्पशृतः ॥

अर्थ—दास, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले, गिलोय, हरड़, अमल-
तासकागूदा, चिरायता, पित्तपापडा, और पटोलपत्र, इनका अथवा ब्राम्ही,
दाव, पटोलपत्र, नेत्रवाला, हरड़, पित्तपापडा, अमलतासको गूदो, कुटकी,
और शंखपुष्प, इनका काढा चित्तविभ्रमको शमनकरे ॥

ब्राम्ह्यादिकाढा

ब्राम्हिवचामिरुफलत्रिकेणतिकावलारग्वघतित्केन ॥ नि-
वाव्हकोशातकिहारहूराद्विपंचमूलीभिरसौकपायः॥ पीतो-
द्दिचित्तभ्रमसंनिपातंनिहंतिरुद्राहमपिप्रभूतं ॥

अर्थ—ब्राम्ही, वच, शतावर, त्रिफला, कुटकी, खरेटी, अमलतासकागुदा, चिरायता, नीमकीछाल, धीयाकेबीज, दाख, और दशमूल, इनका काढा चित्तभ्रम संनिपातको और रुग्दाहको नाशकरे ॥

पथ्यादिकाढा

पथ्यापर्पटकटुकामृद्धीकादारुजलदभूर्निवाः ॥

शम्याकपटोलशिवाकाथश्चित्तभ्रमंहन्ति ॥

अर्थ—हरड, पित्तपापडा, कुटकी, दाह, देवदार, नागरमोथा, कहुआचिरायता, अमलतासकागुदा, पटोलपत्र, और आमले इनका काढा, चित्तविभ्रम संनिपातको नाश करे ॥

हरीतक्यादिकाढा

हरीतकीपर्पटहारहूराशंबूकपुष्पैःकटुकीपयोदैः ॥

शम्याकदेवाव्हयभारतीभिश्चित्तभ्रमंहन्तिऋतःकषायः ॥

अर्थ—हरड, पित्तपापडा, दाख, शंसपुष्पी, कुटकी, नागरमोथा, अमलतासकागुदा, देवदार, और ब्राम्ही इनका काढा चित्तभ्रम संनिपातको नाशकरे ॥

कणार्द्यजन

कणोपणोग्रालवणोत्तमानिकरंजबीजक्षणदामलानि ॥ पथ्या-
क्षसिद्धार्थकहिंसुशंठीयुतानिवस्तांबुविमिश्रितानि ॥ पिष्टा-
गुटीयंनयनेविधेयाप्रचेतनेतिप्रथितान्वितार्था ॥ चित्तभ्रमा-
पस्मृतिभूतदोषशिरोक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥

अर्थ—पीपर, कालीमिरच, वच, संधानिमक, कंजाकेबीज, हलदी, आमले, हरड, वहेडा, सरसो, हिग, और सोंठ इनका चूर्ण एकत्रकर करके मूत्रमें खरलकरके गोलीवांधे इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो चैतन्यता होय और चित्तविभ्रम, मृगी, भूतदोष, मस्तकरोग, नेत्ररोग और भ्रम इनका नाशकरे ॥

कुम्भोद्भवनस्य

कुम्भोद्भतरोरंभोगुडविश्वाकणान्वितं ॥

निहितंनसिन्नंनस्याश्चित्तभ्रमविनाशनं

अर्थ—अगस्तीयाके पत्तोंके रसमें गुड, सोंठ, औरपीपलको ढालके नस्यदेवे तो चित्तभ्रमको नाशकरे ॥

धूप
 मुरामूर्धजमेघावहमधूकमलयोद्भवैः ॥ मरुतरुमधून्मिश्रैःपुर
 पाणिजपांसुभिः ॥ लोहलामज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तभ्रमापहः ॥
 ग्रहदोषहरःश्रीदःसौभाग्यकरउत्तमः ॥

अर्थ—मुरा(गंधद्रव्य) नेत्रवाला, महुआकीछाल, चंदन, देवदारु, सहत, नसद्रव्य, पित्तपापड़ा, अगर, पीलासुगंधवाला, और इलायची इनकी धूनी चित्तभ्रम संनिपात और ग्रहदोष इनकी नाशक तथा लक्ष्मीकारक और कांतिप्रद है

संनिपातगजांकुश

शुद्धंसूतमृतंचाभ्रशुद्धेतालकमाक्षिके ॥ हिंशुंचतुल्यतुल्यं
 स्यान्मृदयेत्स्वल्बकेद्रवैः ॥ वंध्यापटोलनिर्गुंडीसुगंधानिव-
 चित्रकैः ॥ धतूरलांगुलीपाठामृंगाजवीरजद्रवैः ॥ त्रिदिनमृद-
 येदेभिश्चूर्णीकृत्यविमिश्रयेत् ॥ त्रिक्षारसैवंधवालंविपमधुरसा-
 रकं । तुल्यंतुल्यंविचूर्ण्यार्थपूर्वोक्तचंद्रमासं ॥ एकीकृत्यभवे-
 त्सिद्धःसन्निपातगजांकुशः ॥ सन्निपातनिहत्याशुमापमात्रः प्र-
 योजितः ॥

अर्थ—पारा, अभ्रकभस्म, हरताल, सुवर्णमाक्षिक, ए शुद्धलेवे उसमें समान-
 भाग हीग डालके घीगुवार, बांझककोटा, परबल, सपेद और कालीनिर्गुंडी,
 नीम, चित्रक, धतूरा, कल्यारी, पाद, भाँग ओर जैभीरी इनकेरसमें ३ दिनस-
 रलकरे, तथा इसमें क्षारनय, सेंधानिमक, विप, काकोली, और जमालगोटा ये
 समानभागले अर्थात् ए पूर्व औषधोंकी बराबर होय इसप्रकारमिलाने तो यह सं-
 निपातगजांकुश रमवने इसमें १ मासे देनेसे सन्निपातका नाशकरे ॥

प्राणेश्वररस

रसंगंधसंशुद्धंसूतंचाभ्रमृतरसं ॥ दिनैकंतालमूल्याश्ववारा-
 ह्यारसमर्दितं ॥ निरुद्धंकाचकुप्यांतुवालुकायंत्रगंपचेत् ॥ दिनं-
 वाभूधरेपत्तवासमादायविचूर्णयेत् ॥ त्रिक्षारंपंचलवणंत्रिफला-
 व्योपचित्रकैः ॥ सजीरकैःसंद्रयवैर्हिंगुगुगुलुदीप्यकैः ॥ सं-
 वैःसमैःपूर्वसमंचूर्णीकृत्यविमिश्रयेत् ॥ मापमात्रंप्रदातव्याकिं-

चिदुष्णोदकंपिबेत् ॥ सन्निपाताचलेवज्रंसज्वरग्रहणीप्रणुत् ॥
कुर्यात्प्राणपरित्राणमतःप्राणेश्वरोरसः ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, ताम्रभस्म, पारदभस्म, इन सबको मूसली और वाराहीकंदके रसमें स्वरलकर शीशीमें भरके वालुका यंत्रमें अथवा भूधरयंत्रमें पचन करावे जब शीतल होजावे तब इसमें क्षारत्रय, निमकपाँचो, त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, जीरा, इन्द्रजो, हींग, गूगल, और अजमायन, सब समानले इनका चूर्ण पहिलीऔपधेके बराबर लेकर मिलावे, फिर इसमेंसे १ मासे लेकर ऊपरसे गरमपानीपीवे तो सन्निपात संग्रहणी, और ज्वर इनको नाशकरे यह प्राणेश्वररस प्राणोंकी रक्षाकरनेवालाहै ॥

मोरेश्वररस

शुद्धसूतं द्विधा गंधं दिनैकं चार्द्रकद्रवैः ॥ मर्दयित्वा च तंगो लंगो-
लार्धेताम्रसंपुटे ॥ क्षिप्तवानिरुध्यतत्संधिमृन्मूषायां निरुध्य-
च ॥ रात्रौ गजपुटे पाच्यं प्रातरादाय चूर्णयेत् ॥ गुंजैकं नागरस-
मंसघृतं सन्निपातनुत् ॥ अनुपानं पिबेत्पश्चात्तप्तं वारिपलद्वयं ॥
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं तृपायां शीतलं जलं ॥ कृशंच कुरुते स्थूलं न-
रं मोरेश्वरोरसः ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, गंधक २ भाग, इनको एकदिन अदरकके रसमें स्वरलकर गोली बाँधे उन गोलियोंका आधा तामा ले उसकी डिब्बी बनाय उसमें बोगोली भरके बंदकर दुसरे मिट्टीके पात्रमें रखके मुख बंदकर संधियों को लेपकर बंदकरदेवे फिर १ रात्रि गजपुटमें रखके आँच देवे प्रातः काल निकालकर चूर्ण करे इसमेंसे १ रत्ती सोंठ, और घीसें देवे उपर ८ तोले गरम जलपीवे, ओर दहीभातका पथ्यदेके जब प्यासलगे तब शीतल जलदेवे तोयह (मोरेश्वर रस) कृशपुरुषको मोटा करे ॥

शीतांगसं० निदान

हिमसदृशशरीरोवेपथुःश्वासहिकाशियिलितसकलांगःखिन्न-
नादोग्रतापः ॥ क्लमथुःद्वथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्तस्त्वरितमर-
णहेतुःशीतगात्रःप्रभावात् ॥

अर्थ—देह अत्यंत शीतल, कंप, श्वास, हिचकी, अंगोमें शियिलता, शब्द

वारीक, भीतरसंताप, बिनाकारण श्रम, संताप, खौंसी, वमन, और अतिसार, इनलक्षणों करके युक्त संनिपातको शीतगात्र (शीतांग) संनिपात कहते हैं यह तत्काल प्राण नाश करे ॥

शीतांगकीचिकित्सा

मृतसंजीवनोवाथरसो गुंजाद्वयोहितः ॥ सर्वांगसुंदरोवाथस्व
च्छंदोभैरवोपिवा ॥ दातव्यः पंचवक्रोवाशीतांगनाशयेत्युवं ॥

अर्थ—शीतांग संनिपातपर मृतसंजीवन रस दो रत्तीकिंवा सर्वांग सुंदरअथवा स्वच्छंद भैरव किंवा पंचवक्र रस देवे तो शीतांगसंनिपात नाश होय ॥

अर्कादिकाढा

भास्वन्मूलंजीरकव्योषभांगीव्याघ्रीशुंगीपुष्करं गोजलेन ॥

सिद्धंसद्यः शीतगात्रातिमोहश्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहंति ॥

अर्थ—आककीजड, जीरा, त्रिकुटा, भारंगि, कटेरी, कौंकडासिगी, और पुहकरमूल, इनका काढा गोमूत्रमें सिद्धकरके पीवे तो तत्काल शीतगात्रसंनिपात मोह, श्वास और कफष्टि, इनका नाश हो ॥

मातुर्लिंगादिकाढा

मातुर्लिंगादिभूनिवग्रंथिकंदेवदारुच ।

दशमूलाजमोदंचशुंठीशीतांगनाशनं ॥

अर्थ—विजोरेकीकेशर, चिरायतो, पीपरामूल, देवदारु, दशमूल, अजमोद, और सोंठ इनका काढा शीतांग संनिपात नाशक है ॥

कर्कोटकाद्युद्धर्तन

कर्कोटिकाकंदरजःकुलित्थालुष्णावचाकट्फलरुष्णजौरैः ॥

किराततित्ताग्रिककट्फलानुपथ्याभिरुद्धर्तनमत्रशस्तं ॥

अर्थ—कर्कोटिकाका कंद, पित्तपापडा, कुलथी, पीपल, वच, कायफर, कालाजीरा, चिरायता, चित्रक, कबई, तुंबी, और हरद, इनके चूर्णको देहमें मले तो शीतांग संनिपातका नाश करे ॥

श्रीविष्टादिचूर्ण

श्रीविष्टफलसंभूतभस्मभागाष्टकंशुभं ॥ मरीचस्यचचत्वारोरस-
स्यैकोविपस्यच ॥ सूक्ष्मचूर्णततःकृत्वामर्दयेदतियत्नतः ॥ अ-

साध्येपिहिशीतांगेस्वेदोयातिहिनिश्चितं ॥ चूर्णचणकभृष्टोत्थं-
भृष्टभृंगीभवंतथा ॥ कुलित्यकोत्थचूर्णेनस्वेदोयातिहिनिश्चितं ॥

अर्थ—शरलवृक्षके फलोंकी भस्म ८ भाग, भांग ४ भाग, कालीमिरच ४ भाग, पारा और सिंगियाविप ये सब एकत्रकर इनका वारीक चूर्णकरे इसके सेवनसँ असाध्य शीतांगवालेके भी पसीने आवे, भुनाहुआ चनेका चून, भुना हुआ भांगका चूर्ण और कुलथी का चूर्ण इनकीमालीस करनेसँ पसीने दूरहो ॥

तंद्रिकसं० निदान

प्रभूतातंद्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरोभवेच्छ्यामाजिष्हापृ-
थुलकटिनाकंटकवृता ॥ अतीसारःश्वासःक्लमथुपरितापःश्रुति-
रुजोभृशंकंठेजाड्यंशयनमनिशंतंद्रिकगदे ॥

अर्थ—(तंद्रिक) संनिपातमें अत्यंत तंद्रा, शूल, ज्वर, कफ, प्यास, इनसँ रोगी पीडित हो जीभ काली, कठोर और ऊपर कांटे युक्त हो, अतीसार स्वास, ग्लानि, संताप, कानोंमें पीडा, गलेमें जडता, और निरंतर निद्राका आना ये लक्षण होते हैं ॥

तंद्रिकपरीक्षा

ज्वरेप्रथममुत्पन्नेचक्षुभ्यांनैवपश्यति ॥

तंद्रिकःसंनिपातोयंकष्टसाध्योभवेत्ततः ॥

अर्थ—ज्वर उत्पन्न होतेही नेत्रोंके आगे अंधेरा आवे तो यह तंद्रिक संनिपात कष्टसाध्य जानना ॥

भांग्यादिकाढा

भांगीगुडूचीधनकंटकारिहरीतकीपौष्करनागराणां ॥

कृतःकपायस्त्रिदिनंनिपीतोघोरंजयेत्तंद्रिकसंनिपातं ॥

अर्थ—भांगी, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, हरड, पुहकरमूळ, और सोंठ' इनका काढा तीनदिन पीवे तो घोर तंद्रिक संनिपात दूर होय ॥

दुसराप्रकार

भांगीपुष्करपथ्यानिदग्धिकानागरामृताक्वाथः ॥

अपनत्तितंद्रिकभयंनिःसंशयंप्रगेतनेपीतः ॥

अर्थ—भारंगी, पुहकरमूल, हरड, कटेरी, सोंठ, और गिलोय इनका काढा मातःकाल पीवे तो निःसंदेह तंद्रिक संनिपात शमन होय ॥

अमृतादिकाढा

अमृतापटोलवासाव्योपयुतस्तंद्रिकेकाथः ॥

अर्थ—गिलोय, पटोलपत्र, अदूसा, और त्रिकुटा इनका काढा तंद्रिकपरं देवे

रास्नाअंजन

रास्नामनःशिलातैलमंजनंचैवतंद्रिके ॥

अर्थ—रास्ना, मनसिल, इनसै सिद्धकरे हुए तेलका अंजन तंद्रिक संनिपातनाशक है

तुरंगलालाअंजन

तुरंगलालवणोत्तमेंदुमनःशिलामागधिकामधूनि ॥

नियोजितान्यक्षिणिनिश्चितंद्राक्तंद्रांसनिद्रांविनिवारयंति ॥
अर्थ—सैधानिमक, कपूर, मनसिल, और पीपल, ये चार औषधोंको घोड़े की लारमें और सहतमें घिसके अंजन करे तो तंद्रिक को दूरकरे ॥

कृष्णादिनस्य

कृष्णामनःशिलातालमंजनमेवतंद्रिकेत्विष्टं ॥

अमृतापटोलयूपोव्योपयुतस्तंद्रिकंजयति ॥

अर्थ—पीपल, मनसिल, हरताल, इनका अंजन हितकारी है और गिलोय पटोलपत्र, इनका काढा त्रिकुटाके चूर्णसँ देवे तो तंद्रिक संनिपातका नाशकरे ॥

कुष्ठादिनस्य

कुष्ठगवाक्षीनागरनिशाद्रयमरीचकणावचायुक्तं ।
वस्तसलिलेनपिष्टंतंद्रिकहिंस्रंभवेन्नस्यं ॥

अर्थ—कूठ, इंद्रायन, सोंठ, हलदी, दारहलदी, मिरच, पीपर, और वच, इनको बकराके मूत्रसँ पीस नस्य देवे तो तंद्रिक संनिपात को दूरकरे ॥

मरिचादिनस्य

मरीचकंचपचंपचावचारुकूलमिहरनागरश्वरीगवाक्ष्यः । छ-
गलकजलकान्वितानितांतनसिनिहिताननुतंद्रिकंजयंति ॥

अर्थ—मिरच, दारहलदी, वच, कूठ, वायचिडंग, मोठ, हलदी, और इनको प-
करीके मूत्रमें सरलकर नस्यदेवे तो तंद्रिकको निश्चय दूरकरे ॥

क्षुद्रादिनस्य

क्षुद्रामृतापौष्करनागराणिशृतानिपीतानिशिवायुतानि ।

शुंठीकणागस्त्यरसोपणानिनस्येनतंद्राविजयोल्बणानि ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, पुहकरमूल, सोंठ, और हरद, इनका काढा देकर, अगस्तियाके रसमें त्रिकुटा को मिलाय नस्यकरे तो यह नस्य और ऊपर कहाहुआ काढा तंद्राके जीतने को समर्थ है ॥

कंठकुब्जनिदान

शिरोर्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वरोरक्तसमीरणार्तिः ॥

हनुग्रहस्तापविलापमूर्च्छास्यात्कंठकुब्जःखलुकष्टसाध्यः ॥

अर्थ—मस्तकका दूखना, कंठका जिकडना, दाह, मोह, कंप, ज्वर, वातरक्त, रक्तकी पीडा, ठोड़ीका जिकडना, संताप, प्रलाप, और मूर्च्छा इतने लक्षण युक्त ज्वरको (कंठकुब्ज) संनिपात कहते हैं ॥

शृंग्यादिकाढा-

शृंगीवत्सकचेतकीघनसठीभूर्निंबभांगीनिशातिकापुष्करचि-
त्रकैःसमरिचैर्व्याघ्रीवृषामिश्रितैः ॥ धात्रीदारुविभीतकैश्च-
चविकाविश्वाकणाकट्फलैःपीतःकृततिकंठकुब्जमचिरात्को-
ष्णःकपायस्त्वह ॥

अर्थ—काकडासिगी, कूडाकी छाल, हरद, नागरमोधा, कचूर, चिरायता, भारंगी, हलदी, कुटकी, पुहकरमूल, चित्रक, कालीमिरच, कटेरी, अट्टसा, आमरे, देवदार, बहेडा, चव्य, सोंठ, पीपल, और, कायफल, इनका काढा किंचित् उष्ण पीवे तो कंठकुब्ज संनिपात को जीते ॥

त्रिकट्वादिकपाय

त्रिकटुकालिंगककडुकाहरीतकीविभीतकामलकैः ॥

ध्वंसयतिकंठकुब्जंवृषपरजनीद्रयसंयुतःकपायः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, इन्द्रजो, कुटकी, हरद, बहेडा, आमले, अट्टसा, हलदी, और दारुहलदी, इनका काढा कंठकुब्जवाले रोगीको हितकारी है ॥

फलत्रिकादिकाढा

फलत्रिकत्र्यूपणमुस्तकट्टीकालिंगसिंहाननशर्वरीभिः ॥

काथःकृतःकृततिकंठकुब्जकंठीरवःकुंजरमाशुयद्वत् ॥

अर्थ— त्रिफला, त्रिकुटा, मोथा. कुटकी, इन्द्रजो, अहूसा, और हलदी, इनका काढा करके पीये तो जैसे सिंह हाथीको जीते इसप्रकार कंठकुब्जको जीते किरातादिकाढा.

किरातकटुकाकणाकुटजकंटकारीसटीकलिद्रुकिलिमाभया-
कटुककटुफलांभोधरैः ॥ विषामलकपुष्करानलकुलीरशृंगी-
वृषैर्महौषधसखैरयंजयतिकंठकुब्जगणः ॥

अर्थ— चिरायता, कुटकी, पीपर, इन्द्रजो, कटेरी, कतूर, वहेडा, देवदारु, हरड़, कालीमिरच, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमले, पुहकरमूल चित्रक काकडासिंगी, अहूसा, और सोंठ, इनका काढा कंठकुब्ज संनिपातको जीते ॥

कृष्णादिनस्य

अपनयतिकंठकुब्जकृष्णापामार्गयुञ्जस्यं ॥

अथहंतिसलिलसहितंत्रिकटुककटुतंविनीनस्यं ॥

अर्थ— पीपल, और ओंगाके रसकी नस्य अथवा त्रिकुटा, कहुई घीयाके बीज, इनको पानीमें औटायके इसकी नस्य देवे तो कंठकुब्जको दूरकरे ॥

सिद्धवटि

शुद्धसूतंतथागंधंकाकडंसैधवंसमं ॥ सद्योवालस्यधिष्ठांचद्र-
वैर्ब्राह्म्याविमर्दयेत् ॥ गुटिकावदराकाराभक्षितारोगनाशि-
नी ॥ इयंसिद्धवटीनामसंनिपातानियच्छति ॥ पूर्वोक्तेनानु-
पानेनदेयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, काकडासिंगी, सैधानिमक तथा मदजाए बालक की विष्टा ये सब समान भाग ले ब्राह्मीके रसमें सरलकर बरके बराबर गोली बनावे यह गोली संनिपातरोग नाशक है अथवा पूर्वोक्त अनुपानके साथ आनंद भैरव रस देय बोभी संनिपात नाशक है ॥

कर्णकसंनिपातनिदान

प्रलापश्रुतिन्हासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावं ॥
ज्वरंतापकर्णातयोर्गलपीडावुधाःकर्णकंकटसाध्यं वदति ॥

अर्थ—प्रलाप, बहरेंपना, कंठका स्तंभ, अंगोंमें पीडा, श्वास, खांसी, लार-कागिरना, संताप, कान और गाल इनमें पीडा इत्यादि लक्षणों करके कर्णक संनिपात जानना, यह कष्टसाध्य ज्वर है ॥

रास्नादिकषाय

रास्नाश्वगंधाधनकंटकारीभांगीवचापौष्कररोहिणीनां ॥

क्वाथःकृतःशृंग्यभयायुतानांपीतो जयेत्कर्णकसंनिपातं ॥

अर्थ—रास्ना, असगंध, नागरमोथा, कटेरी, भारंगी, वच, पुहकरमूल, कुटकी, काकडासिंगी, हरड. इनका काढा कर्णक संनिपात नाशक है ॥

रास्नादिकाढा

रास्नागृहतीपथ्याव्योपकटुकाधनपुष्कराव्हंच ॥

शृंगीधाराभांगीक्वाथोयंकर्णकंहरेस्मरणात् ॥

अर्थ—रास्ना, कटेरी, हरड, त्रिकुटा, कुटकी, नागरमोथा, पुहकरमूल, काकडासिंगी, आमरे और भारंगी, इनका काढा कर्णक संनिपातको दूर करे ॥

मरीचादिकाढा

मरीचदशमूलमगधाफलत्रयनिशामहौपधोति

क्वा ॥ भूनिंबसैधवयुतःकर्णकहंता भवेत्क्वाथः ॥

अर्थ— कालीमिरच, दशमूल, पीपर, त्रिफला, इलदी, सोंठ, कुटकी, चिरायता, इनके काढेमें सैधानिमक ढालके पीये तो कर्णकको दूर करे ॥

भांग्यादिकाढा

भांगीजयापुष्करकंटकारिकटुत्रिफोत्रावनकंडुलीभिः ॥

कुलीरशृंगीकटुकारसाभिःकृतःकषायःकिलकर्णकघ्नः ॥

अर्थ— भारंगी, छोकरा, पुहकरमूल, कटेरा, त्रिकुटा, वच, वनका जमी-कद काकडासिंगी, कुटकी, और रास्ना इनका काढा कर्णक संनिपात नाशक है ॥

दशमूलादिकाढा

दशमूलमत्स्यशकलाचपलात्रिफलामहौपधकिरातयुताः ॥

मरीचपरिक्वथितमायुवलादपहंतिकर्णकरुजःसकलाः ॥

अर्थ—दशमूल, कुटकी, पीपल, त्रिफला, सोंठ, चिरायता, कालीमिरच, इनका काढा कर्णक संनिपातको शीघ्र दूरकरे ॥

इंगुद्यादिलेप

इंगुदिनिशाविशालासैधवसुरदारूरविदुग्धैः ।
दत्तःक्रमेणलेपोहरतिमहाकर्णकग्रंथिं ॥

अर्थ—हिंगोट (गोंदी) हलदी, इन्द्रायनका गूदा, सैधानिमक, देवदार, और आकका दूध, इनका लेप कर्णमूलपर क्रमसँ एकके ऊपर दूसरा वारंवार करावे तो कर्णक दूर हो ॥

प्रलेप

प्रलेपस्समस्तंनयत्यल्पमेकःसमुद्रित्तशोथंचरक्तावसेकः ॥
विपक्वंचशस्त्रक्रियापूयजित्स्याद्भ्रणत्वंगतेचेतद्भुतंतच्चिकित्सा ॥

अर्थ—प्रथम कर्णमूलपर शीघ्र लेप देय जिससँ सूज न बैठजावे, यदि सूजन बहुत भारी होय तो उसका रुधिर निकलवावे, यदि पक्वजावे तो उसमें चीरादेकर राधनिकाल फिर व्रणचिकित्सा करे ॥

व्रणचिकित्सा

निशाविशालामयपाणिमंथदावींगुदीमूलकृतःप्रलेपः ।
प्रभाकरक्षीरयुतःप्रभावाद्यस्तःसमस्तोप्यथकर्णकग्रः ॥

अर्थ—हलदी, इन्द्रायनकागूदा, कूठ, करोदाकीपत्ती, दारुहलदी, और हिं-गोटकी जड़, ये औषध आकके दूधमें गरम करके उसका लेप करे यदी ये सब औषध नमिले तो जो औषध मिले उसीको गरम करके लेप करे तो कर्णक सन्निपातका नाश होय ॥

कुलित्थादिलेप

कुलित्थःकट्फलंशुंठीकारवीतैःसमांशकैः ।
सुखोष्णैर्लेपनंकार्यकर्णमूलेमुहुर्मुहुः ॥

अर्थ—कुलथी, कायफल, सोंठ, सोफ, इनका समभाग चूर्णकर गरम जलमें मिलायके लेप करे तो कर्णमूल बैठ जावे ॥

गैरिकादिलेप

गैरिकंफांतिनीशुंठीकट्फलैःसवचैःसमैः ॥
उष्णैःकांजिकसंपिष्टैःप्रलेपःकर्णमूलनुत् ॥

अर्थ—गेरू, गोखरू, सोंठ, कायफल, और वच, इनको काजीमें पीस गरम कर लेप करे तो कर्णमूल शांती हो ॥

शिश्वादिलेप

शिशुराजिकयोःपिष्टंकर्णमूलेप्रलेपयेत् ॥

कर्णमूलभवःशोफस्तेनलेपेनशाम्यति ॥

अर्थ—सहजनेकी छाल, और शिरस इनको महीन पीस कर्णकपर लेप करे तो कर्णमूल संबंधी सूजन शांतिहो ॥

अर्ककालेप

दशशतकरदुग्धंपुष्करत्वक्समेतंदहनगुडनिकुंभाकुष्ठ-
कासीसयुक्तं ॥ अपनयतिवितीर्णलेपनंसप्तरात्रात्श्व-
यथुहरणयुक्तंकर्णकग्रंथिमेतत् ॥

अर्थ—पुहकरमूल, दालचीनी, चित्रक, गुड, कायफल, कूड और हीराकसी-
स, इन औषधोंका चूर्ण करके आकके दूधमें घोंटकर लेप करे तो यह लेप सात-
ही दिनमें कर्णमूलको शमन करे ॥

दंत्यादिलेप

दंतीचित्रकयोर्मूलंस्नुह्यर्कपयसागुडः ॥

भ्रूहातकास्थिकासीसलेपोभवतिकर्णके ॥

अर्थ—दंती, चित्रक, दोनोकी जड़, धूहर, आकका दूध, गुड, भिलावेकी
मिंगी, और कसीस इनको जलमें पीस लेप करे तो कर्णकसंनिपात दूर हो ॥

नागरादिलेप

सनागरंदेवदारुरास्त्राचित्रकपेपितं ॥

प्रलेपनमिदंश्रेष्ठंगलशोफनिवारणं ॥

अर्थ—सोंठ, देवदारु, राम्ना, और चित्रक, इनको जलमें पीस लेप करे तो
गलेकी सूजन दूर हो ॥

निशादिलेप

निशेगुदीसैधवदारुकुष्ठदार्वाविशालारविदुग्धलेपः ॥

तंकर्णग्रंथिसमपाहरेद्वाजलौकयापातनमत्रशस्तं ॥

संनिपातचिकित्सा

अर्थ—हरदी, हिंगोट, सैंधानिमक, देवदारु, कूठ, इन्द्रायनकीजड, इनको आकके दूधसे पीस लेप करे तो कर्णकशांति हो, अथवा उस गांठमें जो सलगायके रुधिरको निकाल डाले तो अच्छा होय ॥

बीजपूरादिलेप

बीजपूरकमूलत्वक्वन्दिमंथस्तथैवच ॥ शरपुंखाशि-
खितुंबीसकृष्णाविषमुष्टिभिः ॥ प्रलेपोवाहिडिंबी-

भिःश्वयथौकर्णमूलजे ॥

अर्थ—विजोरेकी जड, दालचीनी, अरनी, सरफोका, चित्रक, कडुईतुंबी, पीपल, कुचलाकेबीज इनका लेप कर्णमूलकी सूजनपर करे ॥

वज्रमुष्ट्यादिलेप

वज्रमुष्टिभवःकंदोशोथविध्वंसनक्षमः ॥ कर्कटस्यचमां-
सेनस्वेदनबंधनंतथा ॥ कर्णमूलभवंशोथनाशयत्यविलंबतः ॥

अर्थ—वज्रमुष्टीका कंद कर्णककी सूजनको नष्ट करे और कैकडेका मांससे सैकें और वहीमांस उसपर बाध देवे तो कर्णक संबंधी सूजन शीघ्र नाश होय ॥

सिद्धार्थादिलेप

सिद्धार्थसैधववचाग्रहधूमविश्वैःपिष्टैर्जलेननिशयास-
हितंसुसूक्ष्मं ॥ लेपोहितोरुधिरनिष्क्रमणेप्रभातेशो-

फव्रणस्यशमनःसरुजश्चकर्णे ॥

अर्थ—प्रथम कर्णमूलकी सूजनपर जोस लगायकर रुधिर निकलवाय डाले, और दूसरे दिन प्रातःकाल उस सूजनपर सरसो, सैंधानिमक, घच, घरकाघूआ, सोंठ, हलदी, इनको पानीमें पीस उसका लेप करे तो सूजनपुक्त व्रणको और पीडाको शमन करे ॥

रोहीतकादिलेप

लेपेनरोहीतकपीलुसिंधुपुत्रीद्रवलीकटुहंजिकावा ॥ तुत्या-
लसर्पपशिलानवसारगंयकासीसकुष्ठपटुहंसपदीकरंजः ॥ ले-

पात्पलंकष्युताश्वसयावशुकानिःसंशयंसपदिर्णकवेदनाघ्नाः ॥
अर्थ—रुहेडा, भस्मरोटवृक्षकी छाल, मोतीकी सीप, इन्द्रायन, करेले, लीलाधोया, हरताल, सरसो, मनसिल, नोसहर, गयक, हीराकसीस, कूठ, निम-

क, हंसपदी, कंजा, गूगल, और जवाखार, इनका लेप कर्णमूलपर करे तो तत्काल, कर्णमूलकी पीडा दूर करे ॥

मरीचादिनस्य

अशिशिरजलपरिमर्दितं मरिचकणालवणजं रजस्त्वरितं ॥

नस्यविधौसेवितं किल कर्णकरुड्नाशनं गदितं ॥

अर्थ—गरमजलमें मिरच, पीपल, और सैंधानिमक, औटायकर नस्यलेप तो कर्णककी पीडा दूर हो ॥

कर्णकपरनस्य

अशिशिरजलयुक्तं नावनं कर्णकार्तौ जनयति सुखसिद्धिं घ्राणरं-
घ्रप्रवेशात् ॥ लवणपरमकृष्णाचूर्णयुक्तं प्रभाते सकलमुनिभिरु-
क्तं व्याधिविध्वंसकारि ॥

अर्थ—कर्णकरोगमें सैंधानिमक, और पीपल, इनका चूर्ण गरमपानीमें डालके प्रातःकाल नस्य लेवे तो कर्णक पीडावालेको सुख होय ॥

सामान्य उपचार

तंजयेच्छोणितस्रावैः सर्पिः पानप्रलेपनैः ॥

प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥

अर्थ—रक्तस्राव, घृतपान, लेप, दागना, कफपित्तनाशक वमन और सुखमें कवल धरना इत्यादि उपचार कर्णककी सूजनपर करे

कांजिकादिलेप

कांजिकेन सुपिष्टं तु घृतवीजप्रलेपनं ॥

राजिकागुडमिश्रेण कर्णमूले सुखावहं ॥

अर्थ—धतूरेके बीज, राई, और गुड, इनको एकत्रकर पीस कांजीमें मिलाय लेप करे तो सुख होय ॥

उपचारं

रक्तस्रावोजलौकाभिर्घृतपानं च युज्यते ॥

कर्णग्रंथिविनाशार्थमायुर्वेदविदांवरैः ॥

अर्थ—कर्णमूलवालेके जोस लगाय रुधिर कटावे और घृत पिवावे तो अच्छा होय

अन्न

जीर्णानारक्तशालीनां ज्वरघ्नः काथसाधितः ॥ प्रसृत-
स्त्वोदनोद्विस्त्रिकार्यो यूपोऽपि वा ॥ सचेज्जीर्यत्य-
विघ्नेन ज्वरीजवित्तदाधुवं ॥

अर्थ—पुराने लालचावलोंका ज्वरघ्न काढें भात अथवा यूप बनायके देवे
यदि यह जिस रोगीको निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निःसंदेह बचे ॥

भुग्ननेत्रसंनिपातनिदान

ज्वरबलापचयस्मृतिशून्यताश्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ॥
प्रलपनभ्रमवेपथुशोथवान्त्यजतिजीधितमाशुसभुग्नदृक् ॥

अर्थ—ज्वरकके बलहीन, स्मरण शक्तिका नाश, श्वास, टेढ़ीदृष्टी, मूर्च्छा,
प्रलाप, भ्रम कंप, ये लक्षण भुग्ननेत्र संनिपातमें होतेहै यह रोगी तत्काल मरे ॥

दाव्यादिकाढा

दावीपटोलाघनकंटकारीतित्तानिशाविंबफलत्रिकाणां ॥
काथोनियोज्यो ज्वरसंनिपाते विभुग्ननेत्रे प्रतिबोधनाय ॥

अर्थ—दारुहलदी, पटोलपत्र, नागरमोथा, कटेरी, कुटकी, हलदी, नीमकी-
छाल, हरड, बहेडा, और आमला, इनका काढा ज्वर और भुग्ननेत्र संनिपात इ-
नपर बोध होनेके लिये देय ॥

श्रेष्ठादिकाढा

श्रेष्ठापटोलकटुकाघननिंबसुराव्हवावनीसहिताः ॥
घ्नन्तिभृशं मोहं पित्तज्वरमुग्रसंनिपातोत्थं ॥

अर्थ—पीपल, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोथा, नीमकीछाल, देवदार और
कटेरी, इनका काढा मोह, पित्तज्वर, तथा संनिपातज्वर इनका नाश करे

यष्ट्यादिकाढा

यष्टीपटोलकटुकाघननिंबसुराव्हवावन्यः ॥
अपहरन्ति मोहं पित्तज्वरमुग्रसंनिपातोत्थं ॥

अर्थ—मुलहठी, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोथा, नीमकीछाल, देवदार, औ-
र कटेरी इनका काढा पित्तज्वर और उग्रसंनिपातज्वर इनका नाशक है ॥

मरिचादिनस्य

मरिचतुरगगंधामागधीसिंधुजातंलशुनमधुकसारैरुग्रगंध-
द्रकाभ्यां ॥ छगलकजलपिष्टंसंयुतंशास्त्रविद्धिःसपदिभव-
तिनस्यंभुग्रनेत्रप्रमाथि ॥

अर्थ—कालीमिरच, असगंध, पीपल, सैधानिमक, लहसन, महुआकागोद, वच, और अदरक, इनको बकरेके मूत्रमें पीस नस्यदेवे तो भुग्रनेत्र संनिपात-
को दूर करे ॥

अश्वगंधादिनस्य

तुरंगगंधालवणोग्रगंधामधूकसारोपकमागधीभिः ॥

वस्तांबुशुंठीलशुनान्विताभिर्नस्यंन्वसंभुग्रदृशं करोति ॥

अर्थ—असगंध, सैधानिमक, वच, मुलहठी, अनारदाना, त्रिकुटा, और ल-
हसन, इनको बकराके मूत्रमें नस्यदेवे तो नेत्र स्वच्छ करे

भूनिंवादिअवलेहअंजनवनस्य

भूनिंवमाक्षिकवचासहितंचकुर्याल्लेहंकणोपणरसोनकरा-

जिकाभिः ॥ नेत्रांजनंचलवणोत्तमपिप्पलीभ्यांनस्यं-

वच.मरिचहिंगुमधूकसारैः ॥

अर्थ—चिरायता, सहस्र, वच, पीपल, मिरच, लहसन, और राई, इनका अ-
वलेह देवे, तथा निमक और पीपल इनका अंजनकरे और वच. मिरच, हींग,
मुलहठी, और अनारदाना इनका नस्य करावे ॥

मार्तंडभैरवरस

शुद्धसूतंसमंगंधंघात्पादांशटंकणं ॥ ताम्रपात्रेक्षिपेत्पिष्टंजयं-

त्यालोडयेद्रवैः ॥ शिशुमूलरसेनाथभावेयदृष्टधातेप ॥ कटुत्रय-

स्यवासायावन्हिरुद्रजटाद्रवैः ॥ तिलपर्णीतथाजातीपिप्प-

लीपत्रमूलकैः ॥ द्रावैरेवतुसप्ताहंशोष्यंशोष्यंविभावयेत् ॥ ता-

म्रपात्रात्समुद्धृत्यकृत्वागोलंविशोपयेत् ॥ वस्त्रेवद्भामृदाप्यत्र-

भूधरैःस्वेदयत्पुट ॥ द्वियामात्तिसमुद्धृत्यचूर्णयेदोपथैःसह ॥ वि-

पकर्पूरजात्येलारसस्यदशमांशतः ॥ भावेयेद्विजयाद्रावैर्दिनमे-

कंचमर्दयेत् ॥ चतुर्गुंजासकपूरमधुनासन्निपातजित् ॥ मार्तंडो-
यंरसोनामअसाध्यंसाधयेयेत्पुवं ॥ दशमूलंपिबेच्चानुपथ्यं-
स्यान्मुद्गयूपकैः ॥

अर्थ—पारा १ भाग, गंधक १ भाग. सुहागा चतुर्थांस, सबको एकत्र कर तामे-
के पात्रमे ढालके जयंतीके रसकी तथा सहजनेकी जडके रसकी आठ २ भावना
धूपमें धरके तामेके पात्रमें देय और त्रिकुटा, अहूसा, चित्रक, ईश्वरी, तिलपर्णी,
जावित्री, पीपलके पत्ते और जड इन प्रत्येकके रसकी सात २ भावना देवे, फिर
सुखावे फिर तामेके पात्रमेंसे निकाल उसका गोला कर सुस्वायके ऊपर कपड़-
मिष्टी कर भूधर यंत्रमें दो प्रहर पचन करावे; जब शीतल हो जाय तब निकाल
वारीक छोटे उसमें विप, कपूर, जावित्री, और इलायची ये सब वस्तु पारेके
दशांश ढालके भाँगेके काढें एक दिन खरल करे तो यह (मार्तंड रस) बने
इसमेंसे चार रत्नी सहत और कपूर इनमें देवे ऊपरसे दशमूलका काढा देवे तो
असाध्यभी संनिपातका नाश करे ॥

रक्तष्ठीवीसंनिपातनिदान

रक्तष्ठीवीज्वरवमितृषामोहशूलतिसारद्विक्राध्मानभ्र-
मणद्ववधुश्वाससंज्ञाप्रणाशः ॥ श्यामारक्ताधिकतररस-
नामंडलोत्थानरूपारक्तष्ठीवीनिगदितग्रहप्राणहंता-
प्रसिद्धः ॥

अर्थ—रुधिर गेरना, ज्वर, वमन, तृषा, मूर्च्छा, शूल, अतिसार, द्विचकी, पे-
टका फूलना, भौर, नेत्रोंमें दाह, श्वास, चित्तभ्रम, जिब्हा काली किंवा लाल उ-
सपर चकते हो असे लक्षणयुक्त जो हो उसको (रक्तष्ठीवी) संनिपात कहते है यह
प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

पर्पटादिकाढा

पर्पटकधन्वयासकवासाभूतृणकैः कटुकीफलनस्यं ॥
शर्करयासहितोपिकपायोलोहितमास्यगतं विनिहंति ॥

अर्थ—पित्तपापरा, धमासा, अहूसा, रोहिम (सुगंधि वृण) इनका काढा
खांड मिलायके देवे और कंकोलका चूर्ण करके इसकी नस्य करे तो मुससे रु-
धिर गिरनेको दूर करे ॥

जलदादिकाढा

जलदाव्हयपद्मकपर्पटकमलयोद्भवजातिवरीमधुकैः ॥

मधुनिंबजलानलचंदनकैःकाथितंमुखरक्तदरंसालिलं ॥

अर्थ—नागरमोथा, पद्मास, पित्तपापडा, चंदन, चमेली, सतावर, मुलहटी, सहत, नीमकीछाल, नेत्रवाला, चित्रक, और लालचंदन इनका काढा मुससैँ रुधिर बहते को बंद करे ॥

रौहिषादिकाढा

रौहिषधन्वयवासकवासापर्पटगंधलताकटुकाभिः ॥

शर्करयासममेपकषायःक्षतजष्ठीविनउदितउपायः ॥

अर्थ—सुगंधितृण, धमासो, अडूसा, पित्तपापडा, गंधलता, कुटकी, इनका काढा सांडके माथ देवे तो रक्तष्ठीवी सन्निपात दूर हो ॥

पद्मादिकाढा

पद्मकचंदनपर्पटमुस्ताजातिवरारुणचंदनवारि ॥

क्रीतकनिंबयुतंपरिपक्वशरिभवेदिहशोणितहारि ॥

अर्थ—पद्मास, चंदन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेलीके पत्ते, त्रिफला, लालचंदन, मुगंधवाला, मुलहटी, और नीम, इनका काढा रक्तष्ठीवीको नष्ट करे ॥

मधुकादिकाढा

मधुकमधुकपरूपकषायश्चंदनपल्लवदारूसनाथः ॥

श्रीपर्णीफलशीतकषायःससितइहस्यादस्त्रजयाय ॥

अर्थ—महुआ, मुलहटी, फालसा, रक्तचंदन, पत्रज, देवदार, सालवनके फल इनका काढा शीतल करके सांड मिलायके देय तो रुधिर बंद होय ॥

दूर्वादिनस्य

देयंदूर्वारसैर्नस्यंरसैर्दाडिमपुष्पजैः ॥

अथवात्रिफलादूर्वाजलंरक्तहरंपरं ॥

अर्थ—दूर्वके रसकी अथवा बनारके फूलके रमकी किंवा त्रिफला, और दूर्वके रमकी नस्यदेवे तो रक्तष्ठीवी संनिपात नष्ट होय ॥

आम्रादिनस्य

आम्रास्थिचपलांडुर्वांनासिकाच्युतरक्तजित् ॥

अर्थ—आमकी गुठलीकी अथवा लइसनके रसकी नस्यदेवे तो नाकसै रुधिर गिरना बंद हो ॥

चिकित्सा ॥

पंचवक्रोरसोप्यत्रदेयोगुंजाद्रयोहितः ॥

भस्मेश्वरोरसोवाथमाषैकंसनिपातजित् ॥

अर्थ—पंचवक्ररस दो रत्ती अथवा भस्मेश्वर १ मासे देय तो रक्तष्टीवीकोनाश करे ॥

रक्तष्टीवीचिकित्सा

रक्तेमोरेश्वरोदेयोरसोगुंजाद्रयंघृतैः ॥ सनागरोनिहं-

त्याशुसंनिपातंसुदारुणं ॥ अनुपानविशेषाच्चतप्तंवा-

रिपलद्रयं ॥ दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंतृषार्तशीतलंजलं ॥

अर्थ—रक्तष्टीवीमें मोरेश्वररस घृतके और सोंठके चूर्णसै दो रत्ती देय अनुपान विशेषमें गरम जल ८ तोले देय और पथ्यमें दहीभात देय, और जिततृषामें शीतल जल देवे ॥

सोमपाणीरस

सूतनिष्कंगंधनिष्कमर्दयेच्चित्रकद्रवैः ॥ माषैकंमृतती-

क्ष्णंस्यान्मृतशुत्वंचमाक्षिकं ॥ माषैकैकंचसंमिश्र्यपू-

र्वसूतेथमर्दयेत् ॥ धतूरत्रिफलाकन्यावृद्धादाव्वाद्रि-

कद्रवैः ॥ कोशाम्रकस्यमंडूक्यानिर्गुंज्याभृंगिचित्रकैः

वयस्थापिचवाताग्निशक्रासनद्रवैरपि ॥ प्रतिद्रावंपलै-

कैकंदत्वास्वल्पंविमर्दयेत् ॥ रसांसंश्रूषणंक्षिप्तवाचण-

मात्रावटीकृता ॥ तांमिश्रसंनिपातार्तेदापयेज्जीरकद्र-

वैः ॥ कषायःपंचमूलानामनुपानंप्रशस्यते ॥ दध्य-

न्नंदापयेत्पथ्यंतृषार्तशीतलंजलं ॥ संनिपातंनिहंत्या-

शुसोमपाणीरसोवरः ॥

अर्थ—पारा, और गंधक, चारचार मासे लेकर उनको चीतेके रसमें खरल करे फिर १ मासा तीक्ष्ण लोहकी भस्म १ मासा ताम्रभस्म, और एक मासा शुद्ध माक्षिक ये एकत्र कर उक्तपारे गंधकमें मिलाय धतूरा, त्रिफला, घीगुवार, विधायरो, अदरख, लाल आम, ब्राह्मी, निर्गुडी, भाँगरो, चीता, आमले, अंडकी जड़ और भांग इनके एक एक पल काढेमें अथवा रसमें घोंटे फिर पारेका समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण ढालके चनेकी बराबर गोली बनावे ये रक्तघ्नी संनिपात पर जीरेके काढेसै देवे और पीछे पंचमूलका काढा देय तथा दहीभातका पथ्य दे; जब प्यास लगे तब शीतल जल देवे तो यह (सोमपाणिरस) संनिपातको दूर करे

प्रलापकसंनिपातनिदान

कंपप्रलापरितापनशीर्षपीडाप्रौढप्रभावपवमानपरोन्य-
चिंता ॥ प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादःक्षिप्रंप्रयाति-
पितृपालपदंप्रलापी ॥

अर्थ—कंप, प्रलाप, संताप, मस्तकपीडा, अत्यंत प्रभाव, स्वच्छता विषय इच्छा अन्य पुरुषकी चिंता, बुद्धिका नाश, विकलता, अत्यंतवक्त्रवाद करना, अथवा वादकरना, इन लक्षण करके (प्रलापक) संनिपात जानना. यह रोगीको तत्काल यमलोकको पहुंचावे ॥

मुस्तादिकाढा

मुस्तवारिदशमूलनागरंपर्पटोमलयजंभवत्वचः ॥

वासकःकृतसमानविभागःकाथएवहरतिप्रलापकं ॥

अर्थ—नागरमोथा, नेत्रवाला, दशमूल, सोंठ, पित्तपापडा, लालचंदन, धौंछाल, और अहूसा, ए समान भाग ले काढाकर पीवे तो प्रलापक संनिपात दूर हो

तगरादिकाढा

तगरतुरगगंधापर्पटीशंखपुष्पीत्रिदशविटपित्तिकाभा-
रतीभूतकेशी ॥ जलधररुतमालश्वेतकीगोस्तनीभ्यां
सहहरतिकपायोमंक्षुपानात्प्रलापं ॥

अर्थ—तगर, असगंध, पापरी, शंसा हूली, देवदार, कुटकी, ब्राम्ही, उमांसी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, हरड, और दास इनका काढा प्रलापक संनिपातको तत्काल शमन करे ॥

BL-17

BHAVAN'S LIBRARY.

BOMBAY-400 007.

NB—This book is issued only for one week till _____
This book should be returned within a fortnight
from the date last marked below

Date	Date	Date
1 10 1954		

f Bhartiya Veda Bhawan's Granthagar
Not to be issued

Call No Sa 6V/PAT/20780

Title Bṛhat Nighantu Rātmākara

Dr. L. C. Das Author
Datta Rama Pathak

Date of issue	Borrower's No	Date of issue	Borrower's No
5-SEP-1981	1235		
-	-	-	-
-	-	-	-
-	-	-	-
-	-	-	-

Not to be issued